आधुनिक
हिन्दी नाटकों
में
संघर्ष
तत्व
डॉ० ज्ञा० का० गायकवाड

आधुनिक हिन्दी नाटकों में संघर्ष तत्त्व

पूना विश्वविद्यालय की पी एच् डी की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध

लेखक
डॉ॰ ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
श्री शिवाजी महाविद्यालय, बार्शी
जिला सोलापुर, महाराष्ट्र

पुस्तक संस्थान
१०९/५० ए नेहरु नगर, कानपुर १२

सस्वरण	प्रथम, १९७५
प्रकाशक	पुस्तक सस्थान, १०९/५०ए, नेहरू नगर, कानपुर–२०८०१२
पुस्तक	आधुनिक हि दी नाटको म सघप तत्व
लेखक	डा० शा क गायकवाड
मुद्रक	आराधना प्रिन्टस, ब्रह्मनगर कानपुर
मूल्य	पचास रुपये

Adhunik Hindi Natkon mein Sangharsh tattva

By Dr D K Gaikwad

Price Rs 50 00

परमपूज्य पिताजी

काशीनाथ मसू गायकवाड

और परमपूज्य माताजी

लक्ष्मीबाई काशीनाथ गायकवाड

को

भूमिका

प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय "आधुनिक हिन्दी नाटकों (सन् १९३४ से १९७० ई०) में संघर्ष तत्त्व" है। मैंने इस विषय को उद्देश्यपूर्वक चुना है। हिन्दी के नाट्य विषयक आलोचनात्मक ग्रंथों में हिन्दी नाटककारों के नाटकों का विवेचन किया गया है। इन ग्रंथों में संघर्ष तत्त्व का विवेचन जितनी विपुलता से होना चाहिए था उतनी विपुलता से नहीं हुआ है। अतः इस दिशा में मैंने विनम्र प्रयास करने के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में 'आधुनिक हिन्दी नाटकों में संघर्ष तत्त्व' की सोद्देश्य विवेचना की है।

जयशंकर 'प्रसाद' और उनके बाद के नाटककारों के नाटकों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि इन नाटकों की महत्ता, मार्मिकता, प्रभावक्षमता, रमणीयता तथा रोचकता का महत्त्वपूर्ण कारण है संघर्ष तत्त्व। अतः मन में जिज्ञासापूर्ण प्रश्न उठना सम्भव है कि हिन्दी नाटक के सन्दर्भ में संघर्ष तत्त्व की मीमांसा क्यों न की जाय? इस प्रश्न के उत्तर के रूप में ही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का निर्माण हुआ है। हाँ इसमें प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों को ही केन्द्र बनाकर संघर्ष तत्त्व की विवेचना की गई है। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रसादोत्तर युग के कई नाटक इसलिए श्रेष्ठ बन पड़े हैं कि उनमें संघर्ष तत्त्व का अत्यधिक महत्त्व का स्थान दिया गया है। साथ ही विवेच्य विषय का सूक्ष्म और गहराई से विवेचन करने की दृष्टि से भी विशिष्ट एवं मर्यादित कालखण्ड चुनना अभीष्ट प्रतीत हुआ।

विवेचन की सुविधा का ध्यान में रखकर उक्त विषय की विवेचना कुल आठ अध्यायों में की गई है।

पहले अध्याय में 'नाटक और संघर्ष तत्त्व परस्पर अभिन्न सम्बन्ध' की विवेचना की गई है। अध्याय के आरम्भ में निर्देशित

किया गया है कि प्राप्ति और प्राप्य के संघर्ष में साहित्य का जन्म होता है। साहित्य में संघर्ष का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। वह साहित्य का एक प्रभावी अंग बन जाता है। उससे कथा साहित्य प्रभावशाली बन जाता है। नाटक कथा साहित्य तो है ही साथ ही साथ दृश्य काव्य भी है। उसका रंगमंच से घनिष्ठ सम्बन्ध है। रंगमंच से घनिष्ठ सम्बन्ध होने से नाटक अत्यधिक सामाजिक है। परिणामस्वरूप नाटक के तत्त्वों में संघर्ष तत्त्व का अनिवार्य स्थान है। संघर्ष तत्त्व का नाटक के अन्य तत्त्वों पर विशिष्ट मनोहारी प्रभाव पड़ता है। इससे नाटक नितांत मार्मिक एवं रुचिर बन पड़ता है।

संघर्ष दो प्रकार का होता है—एक बाह्य संघर्ष होता है तो दूसरा आन्तरिक संघर्ष। परिस्थिति विशेष के सन्दर्भ में विभिन्न कारणों से व्यक्ति और नियति, व्यक्ति और प्रकृति, व्यक्ति और व्यक्ति, व्यक्ति और समुदाय, समुदाय और समुदाय का संघर्ष छिड़ता है। आन्तरिक संघर्ष परिस्थिति विशेष के सन्दर्भ में परस्पर विरुद्ध प्रवृत्तियों में छिड़ता है। बाह्य संघर्ष से आन्तरिक संघर्ष श्रेष्ठ होता है। वह व्यक्ति के चरित्र की कसौटी होता है। इस सन्दर्भ में व्यक्ति की सद्वृत्तियों की आन्तरिक संघर्ष श्रेष्ठतम होता है।

संस्कृत नाट्यशास्त्र में संघर्ष तत्त्व की चर्चा का अभाव-सा है। पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में संघर्ष तत्त्व की सूक्ष्म तथा व्यापक चर्चा की गई है। इस चर्चा का सूत्रपात फ्रेंच विवेचक ब्रुनतिएर ने किया है। तब से अनेक पाश्चात्य मनीषियों ने संघर्ष तत्त्व की चर्चा की है और उसे नाटक के प्राण तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। उनके दृष्टिकोण के अनुसार संघर्ष के बिना नाटक नहीं हो सकता।

पाश्चात्य नाट्य साहित्य के प्रभाव में आकर हिन्दी नाटककारों ने अपने नाटकों में तत्त्व के रूप में संघर्ष को महत्त्व का स्थान दिया है। इस दृष्टि से प्रसादोत्तर युग के अनेक नाटक मननीय हैं।

दूसरे अध्याय में प्रसाद पूर्व तथा प्रसादकालीन नाटक और संघर्ष तत्त्व का अवलोकन किया गया है। इस अध्याय में आरम्भ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों के सन्दर्भ में संघर्ष तत्त्व का अवलोकन किया गया है। तत्पश्चात भारतेन्दु युग से लेकर प्रसाद युग

तथा प्रसाद और प्रसाद के समकालीन नाटककारों के सन्दभ मे सघष तत्त्व का अवलोकन किया गया है। प्रसाद के नाटको के सन्दभ में बाह्य तथा आतरिक सघष पर अधिक ध्यान दिया गया है।

तीसरे अध्याय मे "प्रसादोत्तर पौराणिक नाटक और सघर्ष तत्त्व" का विवेचन किया गया है। इस अध्याय से प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक के सन्दभ में सघष तत्त्व का विवेचन आरम्भ हाता है। अध्याय के आरम्भ म "पौराणिक" विशेषण क प्रयाग तथा पौराणिक नाटक के निर्माण के उद्देश्य पर प्रकाश डाला गया है। विवेचन की सुविधा की दष्टि से स्वीकृत वर्गीकरण के अनुसार क्रमश रामचरिताश्रित, कृष्णचरिताश्रित और अन्य चरिताश्रित पौराणिक नाटको के सन्दभ म सघष तत्त्व का निरूपण किया गया है।

चौथे अध्याय म "प्रसादोत्तर ऐतिहासिक नाटक और सघष तत्त्व" का विवेचन किया गया है। अध्याय के आरम्भ में 'ऐतिहासिक' विशेषण का स्पष्टीकरण दिया गया है। तदुपरान्त स्वीकृत वर्गीकरण के अनुसार क्रमश प्राचीन युग स सम्बद्ध, मध्य युग से सम्बद्ध और आधुनिक युग म सम्बद्ध ऐतिहासिक नाटको क सन्दभ मे सघष तत्त्व का विवेचन किया गया है।

पाचवें अध्याय म "प्रसादोत्तर राजनीतिक नाटक और सघष तत्त्व का विश्लेषण किया गया है। अध्याय के आरम्भ में ऐतिहासिक नाटक से राजनीतिक नाटक की विभिन्नता का विवेचन किया गया है। तदुपरान्त सशस्त्र क्रान्ति आन्दोलन से सम्बद्ध स्वातन्त्र्य के अहिंसात्मक आन्दोलन से सम्बद्ध और स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक आक्रमण से सम्बद्ध नाटको के सन्दभ म सघर्ष तत्त्व का विवेचन किया गया है।

छठे अध्याय म "प्रसादोत्तर सामाजिक नाटक और सघष तत्त्व' का विवेचन किया गया है। अध्याय के आरम्भ में 'सामाजिक नाटक' शब्द प्रयोग का स्पष्टीकरण दिया गया है। तदनन्तर स्वीकृत वर्गीकरण क अनुसार प्रेम और विवाह से सम्बद्ध, पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध, आर्थिक विषमता से सम्बद्ध, जातीय तथा साम्प्रदायिक एकता से सम्बद्ध शासकीय अन्याय एव त्रुटियो स सम्बद्ध और इतर विषयो से सम्बद्ध नाटका के सन्दभ में सघष तत्त्व

का विवेचन किया गया है ।

सातवें अध्याय में गत निर्देश के रूप में 'प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों में अन्य तत्वों पर संघर्ष तत्व का प्रभाव' निरूपित किया गया है। इस अध्याय में यह दर्शाया गया है कि कथानक चयन पर कथानक के विकास पर पात्र चयन पर पात्र के चरित्र प्रकाशन पर कथोपकथन की शैली पर वातावरण की सज्जा पर, शैली की रोचकता पर तथा उद्देश्य की अभिव्यक्ति पर संघर्ष तत्व का क्या प्रभाव पड़ा है ।

आठवाँ अध्याय उपसंहार है। इसमें उपर्युक्त अध्यायों के विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में निरूपित किया गया है कि प्रसादोत्तर हिंदी नाटक में संघर्ष तत्व को अत्यंत महत्व का स्थान मिला है। इस युग के नाटकों के विभिन्न तत्वों तथा शैली पर संघर्ष तत्व का विचारणीय प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव के कारण प्रसादोत्तर युग के अनेक नाटक अधिक प्रभावी मार्मिक हृदयग्राही तथा चिंतनीय बन पड़े हैं। विशेषतः जिन नाटकों में बाह्य संघर्ष की अपेक्षा आंतरिक संघर्ष को महत्वपूर्ण स्थान मिला है, वे अत्यधिक प्रभावशाली एवं स्मरणीय बन पड़े हैं। आज के नाटककार का ध्यान व्यक्ति पर, व्यक्ति के अंतर्मन पर अन्तस में छिड़े हुए आंतरिक संघर्ष पर अधिक केंद्रित हुआ है। इस आंतरिक संघर्ष के उद्घाटन के लिए आज का नाटककार मनोविज्ञान की भी सहायता ले रहा है। फलतः प्रसादोत्तर युग का नाटक बहुत अधिक प्रभावात्मक बन पड़ा है और बन भी रहा है ।

उक्त अध्यायों में से पहला अध्याय प्राप्त अंग्रेजी और हिंदी समीक्षा ग्रंथों के आधार पर लिखा गया है। इस संबंध में मराठी नाट्य विषयक समीक्षा ग्रंथों की भी सहायता ली गयी है। दूसरा अध्याय प्राप्त हिंदी नाट्यविकास सम्बन्धी समीक्षा ग्रंथों के आधार पर लिखा गया है। शेष पाँच अध्यायों में प्रसादोत्तर हिंदी नाटकों में अंकित संघर्ष तत्व की विवेचना की गयी है। इस दिशा में मेरा यह विनम्र प्रयास सर्वथा मौलिक है। क्योंकि नाटकों के संघर्ष तत्व की स्वतंत्र एवं विस्तारपूर्वक विवेचना इससे पूर्व नहीं हो पायी है। उक्त अध्यायों में जो स्थापनाएँ की गयी हैं वे भी मेरी अपनी हैं।

दूसरा अध्याय लिखते समय डॉ० दशरथ ओझा, डॉ० चन्द्रलाल दुबे, डॉ० सोमनाथ गुप्त, डा० गोपीनाथ तिवारी डा० श्रीपति

शर्मा, डॉ० वेदपाल खन्ना, डॉ० विश्वनाथ मिश्र डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा डा० गिरीश रस्तोगी और डॉ० भानुदेव शुक्ल इन विद्वानों एवं नाट्यमर्मियों के ग्रन्थों ने बहुत अधिक सहायता पहुँचायी है। मुझे इन विद्वानों का सदैव ऋणी रहने में आनन्द मिलेगा।

प्रबन्ध लेखन को प्रबन्ध की दृष्टि से अत्यावश्यक एवं अध्ययनीय सामग्री निम्नलिखित ग्रन्थालयों से उपलब्ध हुई है।

१ ग्रन्थालय, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे।
२ ग्रन्थालय नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
३ जयकर ग्रन्थालय पुणे विश्वविद्यालय, पुणे।
४ शासकीय ग्रन्थालय, पुणे।

मैं इन ग्रन्थालयों का सदैव ऋणी रहूँगा।

प्रबन्ध लेखन में निर्देशक श्रद्धेय गुरुवर्य डॉक्टर प्र० रा० भुपटकर का अमोल मार्ग दर्शन, अपार स्नेह एवं प्रोत्साहन प्राप्त न होता, तो मैं विषय का अधिकाधिक स्पष्ट तथा व्यवस्थित विवेचन करके प्रबन्ध को पूर्ण करने में असफलता पाता। गुरुवर्य के प्रति अपना आभार व्यक्त करके मैं उनके अपूर्व ऋण से मुक्त होना नहीं चाहता हूँ। यह ऋण आजीवन बना रहे इसलिए मैं आभार व्यक्त करने की औपचारिकता से मुक्त होने में आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ।

प्रबन्ध के पूर्ण होने में अपनी सहृदयता से सहायता पहुँचाने वाले मान्यवर दवीसिंह चौहान (भूतपूर्व सदस्य, महाराष्ट्र राज्य लोकसेवा आयोग), आदरणीय प्राचार्य ना० सि० मुसाळे (श्री छत्रपति शिवाजी कालेज, उमरगा),

मान्यवर डॉ० म० ह० राजूरकर (अध्यक्ष तथा आचार्य, हिन्दी विभाग, मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद) मेरे हितैषी मि० शि० शिन्दे, मित्रवर प्रा० यशवन्त भिमाले तथा अन्य अनेक सहृदयों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना मैं अपना कर्त्तव्य मानता हूँ।

प्रबन्ध की पूर्णता का श्रेय मेरे पूज्य बन्धु सौ० के० गायकवाड, मेरे पिता के अभिन्न मित्र वन्दनीय उद्धव धोंडो शिवशरण, आदरणीय श्वसुर विनायक उद्धव शिवशरण के आशीर्वादों तथा गृहस्थी की गाडी सहर्ष खीचने वाली मेरी प्रिय पत्नी सौ० लता की स्नेहलता को भी है।

जब मैं शोध प्रबन्ध के सिलसिले में काशी में अध्ययन कर रहा था, उस समय डा० बच्चनसिंह ने मेरे विचारों का आदर करते

हुए मुझे जो प्रोत्साहन दिया, इस सन्दर्भ में उनका कृतज्ञ रहने में मुझे आनन्द ही मिलेगा।

प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रकाशन में मुझे सुस्नेही पाण्डुरंग इंगले (प्रधपाठ श्री शिवाजी महाविद्यालय, बार्शी) और सुहृद महेश चन्द्र त्रिपाठी का स्मरणीय प्रोत्साहन मिला है। अत इन दोनों के प्रति धन्यवाद प्रदर्शन में मैं हर्ष का अनुभव करता हूँ। कागज की भयानक तंगी के दिनों में भी कानपुर की ख्यातिप्राप्त प्रकाशन संस्था पुस्तक संस्थान ने प्रस्तुत प्रबन्ध को शीघ्रातिशीघ्र सुचारु रूप में प्रकाशित करके मुझ जैसे अहिन्दी भाषाभाषी की दृष्टि से बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है अत मैं पुस्तक-संस्थान का चिर ऋणी हूँ।

ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड़

विषय-सूची

आधुनिक हिन्दी नाटको
मे
सघर्ष तत्त्व

पहला अध्याय

नाटक और संघर्ष : परस्पर अभिन्न सम्बन्ध

१ संघर्ष ही जीवन है

यह सत्य है कि मनुष्य अपनी अनेक मौलिक विशेषताओं के कारण अन्य प्राणियों की अपेक्षा श्रेष्ठ प्राणी है। इन्हीं विशेषताओं के बल पर मनुष्य आदि काल से प्राप्य को पाने तथा अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए परिस्थिति से संघर्ष कर रहा है।[1]

प्रकृति ने मनुष्य को संवेदनशक्ति, इच्छाशक्ति, विचारशक्ति, कल्पनाशक्ति, कर्मशक्ति और रचनाशक्ति की मूल्यवान देन दी है। परन्तु मनुष्य का जीवन बड़ा टेढ़ा उलझा हुआ, आपत्तियों से घिरा हुआ, विषम परिस्थितियों से भरा हुआ है। इस स्थिति को देखकर लगता है कि प्रकृति मनुष्य को जीवन की कसौटी पर कस रहा है। मानो वह मनुष्य को आदि काल से ललकार रही है— 'देखो, मैंने तुम्हें सब कुछ तो नहीं दिया है, परन्तु मुझे जो देना था वह मैंने तुम्हें दे दिया है। अब तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम्हें जो चाहिए उसे पाने के लिए मेरी देन के बल पर संघर्ष करना।' मनुष्य ने प्रकृति की ललकार को स्वीकार किया है और उसी के अनुसार प्राप्य को पाने तथा गुणात्मक (Qualitative) अस्तित्व को बनाये रखने के लिए परिस्थिति से संघर्ष करता आया है और कर भी रहा है।

(अ) अस्तित्व के लिए संघर्ष

अनेक मनोविज्ञान वेत्ताओं ने इस विषय पर सप्रमाण प्रकाश डाला है कि मनुष्य को जीने के लिए परिस्थिति से किस प्रकार का व्यवहार (Behavior) करना पड़ता है। इस व्यवहार में संघर्ष का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस वस्तुस्थिति को ध्यान में रखकर ही मनोविज्ञानवेत्ता जे० पी० गिल्फोर्ड ने कहा है— संघर्ष से कोई मुक्त नहीं है।[2]

---

1 Every manifestation of life from birth to death is Conflict "
—Lajos Egri—The Arts of Dramatic Writing—(P 132)
Edition 1960

2 'No one escapes conflicts' —P 144
J P Guilford—General Psychology (Edition 1964)

मनुष्य में जीने की प्रबल इच्छा होती है। इस इच्छा को लेकर ही मनुष्य अपने जीवन के लिए क्रियाशील बन जाता है। इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए मनोविज्ञानवेत्ताओं ने कहा है--

The will to live', often said to be the great inclusive motive of all living creatures is in human beings not simply the will to stay alive but rather the will to live in an active relation with the environment [1]

इससे व्यंजित होता है कि जीवन की इच्छा मनुष्य को क्रियाशील (Active) बनाती है। अतः क्रियाशील मनुष्य उद्देश्ययुक्त क्रिया (Purposive Action) करने लगता है।[2]

उद्देश्ययुक्त क्रिया मनुष्य को संघर्ष प्रवृत्त कर देती है। भूखा मनुष्य अनुभव करता है कि यदि उसे जीवित रहना है तो भूख को मिटाना अत्यावश्यक है। वह यह भी अनुभव करता है कि भूख मिटाने के लिए कुछ खाने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता से भूखे मनुष्य में कुछ पाने की इच्छा उत्पन्न होती है। इस इच्छा को लेकर मनुष्य सोचने विचारने तथा कल्पना करने लगता है।[3] तदुपरान्त वह बाह्य

---

1 Robert S Woodworth — Psychology–P 320
Donald G Marquis — (Fifth Edition–1947)

2 Purposive action is the most fundamental category of Psycho logy, just as the motion of a material particle according to the mechanical principles of Newton s laws of motion has long been the fundamental category of physical science Behavior is always purposive action or a train or sequence of purposive actions '

William Mcdougall—An Outline of Psychology–P 51
(Thirteenth Edition 1949)

3 Thus when I am hungry and no food is within reach to imagine food is at the same time to desire it And the food–impulse when it is very strong may dominate our thinking in the form of desire Everything that can make us think of food starts up our desire a fresh and the desire tends to keep us thinking of its object

William Mcdougall–An Outline of Psychology (Edition 1949)
P 312

एक निर्णय कर लेता है और प्राप्य को पाने के लिये कार्य आरम्भ कर देता है। यदि इस कार्य मे प्रकृति अथवा जीव या जीव समूह के द्वारा बाधा के रूप में प्रतिकूल परिस्थिति का निर्माण किया गया, तो भूखे मनुष्य में असंतोष उत्पन्न होता है। इस असंतोष के कारण भूखा मनुष्य प्राप्य को पाने के हेतु प्रतिबन्ध रूपी परिस्थिति से संघर्ष करता है।[1] ठीक इसी ढंग से कामातुर मनुष्य भी असन्तोष के कारण प्रतिबन्ध रूपी परिस्थिति से संघर्ष करता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य उपलब्ध जीवन से असंतुष्ट होकर अभिलषित जीवन के लिए प्रतिकूल परिस्थिति से संघर्ष करता है। परिणामस्वरूप मनुष्य और प्रतिकूल परिस्थिति में बाह्य संघर्ष छिड़ता है।

मनुष्य के जीवन मे कभी ऐसा क्षण आता है उस समय मनुष्य कोई निर्णय नहीं कर पाता। एक ही समय क्षुधा और काम से व्याकुल मनुष्य निर्णय नहीं कर पाता कि क्षुधा पूर्ति को प्राधान्य दिया जाय अथवा काम पूर्ति को। इससे मनुष्य में आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है। निर्णय करने तक मनुष्य में असह्य मानसिक तनाव उत्पन्न होता है।[2] इस तनाव से मुक्त होने के लिए मनुष्य अपनी अनिर्णयात्मक मनःस्थिति से संघर्ष करने लगता है और दोनों में से किसी एक को चुनने का निर्णय कर लेता है।

उपर्युक्त दोनों संघर्षों का सम्बन्ध मनुष्य द्वारा किये जाने वाले अस्तित्व के लिए संघर्ष (Struggle for Existence) से है। अस्तित्व के लिए संघर्ष के अनुसार मनुष्य अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रतिबन्धों से संघर्ष करता है। यह तो मनुष्य का प्राथमिक (Primary) संघर्ष है।

(आ) गुणात्मक (मूल्यात्मक) अस्तित्व के लिए संघर्ष

प्राथमिक संघर्ष के पश्चात् मनुष्य अपने गुणात्मक (Qualitative) अस्तित्व के लिए संघर्ष करता है। यह संघर्ष ही मनुष्य के जीवन को वैशिष्ट्यपूर्ण आकार प्रदान करता है। यह संघर्ष ही मनुष्य को अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ बनाता है। जो व्यक्ति गुणात्मक अस्तित्व के लिए जीवनपर्यन्त संघर्ष करता है, उसका जीवन सामान्य जन के लिए आदरणीय, पूजनीय और स्मरणीय होता है। उस आदरणीय व्यक्ति के

---

1 'The urge to struggle arises when a situation prevents the gratification of an urge.' (P 114)

J P Guilford-General Psychology (Edition 1964)

2 Ibid (P 141)- Until the matter is decided in one way or the other he lives in a state of heightened tension Now he wavers in the one direction now in the other The tension may become so unbearable

मनुष्य में जीने की प्रबल इच्छा होती है। इस इच्छा के कारण ही मनुष्य अपने जीवन के लिए क्रियाशील बन जाता है। इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुए मनोविज्ञानवेत्ताओं ने कहा है——

The will to live often said to be the great inclusive motive of all living creatures is in human beings not simply the will to stay alive but rather the will to live in an active relation with the environment[1]

इससे व्यक्त होता है कि जीवन की इच्छा मनुष्य को क्रियाशील (Active) बनाती है। अतः क्रियाशील मनुष्य उद्देश्ययुक्त क्रिया (Purposive Action) करने लगता है।

उद्देश्ययुक्त क्रिया मनुष्य की मूल प्रवृत्ति रही है।[2] भूखा मनुष्य अनुभव करता है कि यदि उसे जीवित रहना है तो भूख को मिटाना अत्यावश्यक है। वह यह भी अनुभव करता है कि भूख मिटाने के लिए कुछ खाने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता से भूखे मनुष्य में कुछ खाने की इच्छा उत्पन्न होती है। इस इच्छा के कारण मनुष्य सोचने विचारने तथा कल्पना करने लगता है।[3] तदुपरान्त वह कार्य

---

1 Robert S Woodworth Psychology–P 320
Donald G Margais (Fifth Edition–1947)

2 Purposive action is the most fundamental category of Psychology just as the motion of a material particle according to the mechanical principles of Newton's laws of motion has long been the fundamental category of physical science Behavior is always purposive action or a train or sequence of purposive actions

William Mcdougall—An Outline of Psychology–P 51
(Thirteenth Edition 1949)

3 Thus when I am hungry and no food is within reach to imagine food is at the same time to desire it And the food–impulse when it is very strong may dominate our thinking in the form of desire Everything that can make us think of food starts up our desire afresh and the desire tends to keep us thinking of its object

William Mcdougall–An Outline of Psychology (Edition 1949)
P 312

एक निणय कर लता है और प्राप्य को पाने के लिय काय आरम्भ कर देता है। यदि इस काय मे प्रकृति अथवा जीव या जीव समूह के द्वारा बाधा के रूप म प्रतिकूल परिस्थिति का निर्माण किया गया, तो भूखे मनुष्य म असतोष उत्पन्न होता है । इस असतोष के कारण भूखा मनुष्य प्राप्य को पाने के हेतु प्रतिब ध रूपी परिस्थिति से सघष करता है ।[1] ठीक इसी ढग से कामातुर मनुष्य भी अस तोष के कारण प्रतिबन्ध रूपी परिस्थिति से सघष करता है । तात्पय यह है कि मनुष्य उपलब्ध जीवन से असतुष्ट होकर अभिलषित जीवन के लिए प्रतिकूल परिस्थिति से सघष करता है। परिणामस्वरूप मनुष्य और प्रतिकूल परिस्थिति म बाह्य सघष छिडता है ।

मनुष्य के जीवन मे कभी ऐसा क्षण आता है उस समय मनुष्य कोई निणय नही कर पाता । एक ही समय क्षुधा और काम से व्याकुल मनुष्य निणय नही कर पाता कि क्षुधा पूर्ति को प्राधा य दिया जाय अथवा काम पूर्ति को । इससे मनुष्य मे आतरिक सघष छिडता है । निणय करने तक मनुष्य म असह्य मानसिक तनाव उत्पन्न होता है ।[2] इस तनाव स मुक्त होने के लिए मनुष्य अपनी अनिणयात्मक मन स्थिति से सघष करने लगता है और दोनों म स किसी एक को चुनने का निणय कर लेता है ।

उपयु त्त दोना सघर्षो का सम्ब ध मनुष्य द्वारा किय जाने वाले अस्तित्व के लिए सघष (Struggle for Existence) से है । अस्तित्व के लिए सघष के अनुसार मनुष्य अपनी मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए प्रतिबन्धो से सघष करता है । यह तो मनुष्य का प्राथमिक (Primary) सघष है ।

(आ) गुणात्मक (मूल्यात्मक) अस्तित्व के लिए सघष

प्राथमिक सघष के पश्चात मनुष्य अपने गुणात्मक (Qualitative) अस्तित्व के लिए सघष करता है । यह सघष ही मनुष्य के जीवन को वशिष्ट्यपूण आकार प्रदान करता है । यह सघष ही मनुष्य को अ य प्राणिया से श्रेष्ठ बनाता है । जो यक्ति गुणात्मक अस्तित्व के लिए जीवनपय त सघष करता है उसका जीवन सामा य जन के लिए आदरणीय, पूजनीय और स्मरणीय होता है । उस आदरणीय व्यक्ति के

---

1 'The urge to struggle arises when a situation prevents the gratification of an urge (P 114)

J P Guilford-General Psychology (Edition 1964)

2 Ibid (P 141)–'Until the matter is decided in one way or the other he lives in a state of heightened tension Now he wavers in the one direction now in the other The tension may be ome so unbearable '

मनुष्य में जीने की प्रबल इच्छा होती है। इस इच्छा के कारण ही मनुष्य अपने जीवन के लिए क्रियाशील बन जाता है। इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए मनोविज्ञानवेत्ताओं ने कहा है--

The will to live often said to be the great inclusive motive of all living creatures is in human beings not simply the will to stay alive but rather the will to live in an active relation with the environment [1]

इससे व्यक्त होता है कि जीवन की इच्छा मनुष्य को क्रियाशील (Active) बनाती है। अतः क्रियाशील मनुष्य उद्देश्ययुक्त क्रिया (Purposive Action) करने लगता है।[2]

उद्देश्ययुक्त क्रियाएँ मनुष्य को सतत प्रेरित करती रहती हैं। भूखा मनुष्य अनुभव करता है कि यदि उसे जीवित रहना है तो भूख को मिटाना अत्यावश्यक है। वह यह भी अनुभव करता है कि भूख मिटाने के लिए कुछ खाने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता से भूखे मनुष्य में कुछ पाने की इच्छा उत्पन्न होती है। इस इच्छा को लेकर मनुष्य सोचने विचारने तथा कल्पना करने लगता है।[3] तदुपरान्त वह कार्य

---

1 Robert S Woodworth — Psychology–P 320
Donald G Margais — (Fifth Edition–1947)

2 Purposive action is the most fundamental category of Psychology just as the motion of a material particle according to the mechanical principles of Newtons laws of motion has long been the fundamental category of physical science Behavior is always purposive action or a train or sequence of purposive actions

William Mcdougall—An Outline of Psychology–P 51
(Thirteenth Edition 1949)

3 Thus when I am hungry and no food is within reach to imagine food is at the same time to desire it And the food-impulse when it is very strong may dominate our thinking in the form of desire Everything that can make us think of food starts up our desire a fresh and the desire tends to keep us thinking of its object

William Mcdougall–An Outline of Psychology (Edition 1949)
P 312

एक निणय कर लता है और प्राप्य को पाने के लिय काय आरम्भ कर देता है। यदि इस काय मे प्रकृति अथवा जीव या जीव समूह के द्वारा बाधा के रूप म प्रतिकूल परिस्थिति का निर्माण किया गया तो भूखे मनुष्य में असतोष उत्पन्न होता है। इस असतोष के कारण भूखा मनुष्य प्राप्य को पाने के हेतु प्रतिबन्ध रूपी परिस्थिति से सघष करता है।[1] ठीक इसी ढग से कामातुर मनुष्य भी असन्तोष के कारण प्रतिबन्ध रूपी परिस्थिति से सघष करता है। तात्पय यह है कि मनुष्य उपलब्ध जीवन से असतुष्ट होकर अभिलषित जीवन के लिए प्रतिकूल परिस्थिति से सघष करता है। परिणामस्वरूप मनुष्य और प्रतिकूल परिस्थिति म बाह्य सघष छिडता है।

मनुष्य के जीवन म कभी ऐसा क्षण आता है उस समय मनुष्य कोई निणय नही कर पाता। एक ही समय क्षुधा और काम मे व्याकुल मनुष्य निणय नही कर पाता कि क्षुधा पूर्ति को प्राधा य दिया जाय अथवा काम पूर्ति को। इससे मनुष्य मे आ तरिक सघष छिडता है। निणय करते तक मनुष्य म असह्य मानसिक तनाव उत्पन्न होता है।[2] इस तनाव स मुक्त होने के लिए मनुष्य अपनी अनिणयात्मक मन स्थिति से सघष करने लगता है और दोनों मे से किसी एक को चुनने का निणय कर लेता है।

उपयु क्त दोनो सघर्षो का सम्ब ध मनुष्य द्वारा किय जाने वाले अस्तित्व के लिए सघष (Struggle for Existence) से है। अस्तित्व के लिए सघष के अनुसार मनुष्य अपनी मूलभूत आवश्यकताओ की पर्ति के लिए प्रतिबन्धो से सघष करता है। यह तो मनुष्य का प्राथमिक (Primary) सघष है।

(आ) गुणात्मक (मूल्यात्मक) अस्तित्व के लिए सघष

प्राथमिक सघष के पश्चात मनुष्य अपने गुणात्मक (Qualitative) अस्तित्व के लिए सघष करता है। यह सघष ही मनुष्य के जीवन को वशिष्टयपूण आकार प्रदान करता है। यह सघष ही मनुष्य को अ य प्राणियो स श्रेष्ठ बनाता है। जो यक्ति गुणात्मक अस्तित्व के लिए जीवनपयन्त सघष करता है उसका जीवन सामा य जन के लिए आदरणीय पूजनीय और स्मरणीय होता है। उस आदरणीय व्यक्ति के

---

1 'The urge to struggle arises when a situation prevents the gratification of an urge' (P 114)

J P Guilford-General Psychology (Edition 1964)

2 Ibid (P 141)- Until the matter is decided in one way or the other he lives in a state of heightened tension Now he wavers in the one direction now in the other The tension may be ome so unbearable '

स्मरण में सामान्य जन सन्तोष, धीरज और गुणात्मक अस्तित्व के लिए संघर्ष करते रहने की प्रेरणा पाता है।

प्रस्तुत संघर्ष का सम्बन्ध मनुष्य के समाज जीवन में नीति नियमों से तथा वैयक्तिक चरित्र से सम्बन्धित मान्यताओं से, विचारों से, भावसंवेगों और सौन्दर्याभिरुचि से है। इस संघर्ष के सन्दर्भ में मनुष्य का आचरण वैशिष्ट्यपूर्ण होता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैक्डूगल ने, मनुष्य की पशु सदृश मूलवृत्तियों (Instincts) का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करने के पश्चात् अन्त में स्वीकार किया कि मनुष्य का उच्च स्तर का आचरण और संघर्ष उसकी सद्भिरुचि के अनुकूल होता है। मैक्डूगल कहते हैं--

Conduct of the higher level that is striving regulated in the choice of goals and means by the desire to realize an ideal of character and conduct a desire which itself springs from an instinctive disposition whose impulse is turned to higher uses by the subtle influence of organized society embodying in moral traditions [1]

इससे ध्वनित होता है कि मनुष्य का मनुष्यत्व उसके उच्चस्तर के आचरण और संघर्ष में है। इस कारण से ही मनुष्य केवल अपनी ही भूख का नहीं अपितु अन्यों की भूख का भी विचार करता है। स्वयं भूखा रहकर किसी भूखे को खिलाता है। इसमें वह सात्त्विक सन्तोष का अनुभव करता है। इस सन्तोष के बल पर वह अपनी क्षुधा से संघर्ष करता है।

मनुष्य कामपूर्ति की प्रबल इच्छा से भी संघर्ष करता है और विशिष्ट मान्यताओं का भंग न कर कामपूर्ति कर लेता है। इससे उसका मनुष्यत्व सुरक्षित रहता है।

जिस समय मनुष्य शिष्ट और दुष्ट प्रवृत्तियों के संघर्ष में शिष्ट प्रवृत्ति को प्राधान्य देता है तब उसके मनुष्यत्व का उत्थान होता है। इस स्थिति में मनुष्य अपने में उठे प्रतिहिंसा भाव पर नियन्त्रण पाता और शत्रु से भी प्रेम करने में सफलता पाता है। इसमें मनुष्य स्वभाव की सदभिरुचि लक्षित होती है।

अपनी सद्भिरुचि और सौन्दर्याभिरुचि के कारण ही मनुष्य पशुसदृश व्यवहार नहीं करता। यहाँ तक कि मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में भी सुधार अन्तर आ गया है। वह अपनी सद्भिरुचि और सौन्दर्याभिरुचि के अनुसार वस्त्र को

---

1 William Mcdougall– An Outline of Psychology–P 449
(Thirteenth Edition–1949)

विभिन्न ढगो से पका कर ग्रहण करता है मीठा और स्वच्छ पानी पीता है और काम वासना का शमन मर्यादा और सयम स करता है। मनुष्य का वस्त्र पहनना भी उसकी सदभिरुचि का ही लक्षण है। वह अपनी सदभिरुचि के अनुसार परिस्थिति को भी नया एव काम्यरूप प्रदान करने के लिए सघष करता है। इस सघष मे ही सस्कृति और सभ्यता का निमाण हो गया है। स्पष्ट है कि मनुष्य के गुणात्मक अस्तित्व को बनाये रखने के लिए मनुष्य के जीवन म बाह्य तथा आन्तरिक सघष का अत्यन्त महत्वपूण स्थान है। इस पर ही मनुष्य का मनुष्यत्व और समाज जीवन का महत्व अवलम्बित है।

उपयुक्त विवेचन से निर्देशित होता है कि प्राप्त से मनुष्य का सन्तोष नही होना। मनुष्य जब अनुभव करता है कि प्राप्त अपनी सदभिरुचि और सौन्दर्याभिरुचि क अनुकूल नही है। इस अनुभूति के उपरान्त मनुष्य म अपनी सदभिरुचि और सौन्दर्याभिरुचि के अनुकूल प्राप्य को पाने की इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। इन इच्छाओ को लेकर मनुष्य नवनिर्माण के लिए प्रतिकूल परिस्थिति से सघष छेडता है। यह सघष नवनिर्माण को विभिन्न कलाओ तथा साहित्य को जन्म देता है। इससे व्यजित होता है कि प्राप्त और प्राप्य के सघष म साहित्य का जन्म होता है।

२ साहित्य का जन्म प्राप्त और प्राप्य के सघर्ष मे

मनुष्य अपनी सदभिरुचि के अनुसार सन्तोष पाने के हेतु साहित्य का सजन करता है। अत साहित्य एक एसी सष्टि है जिसमें कल्पना के सहयोग से उन प्राप्य और काम्य रूपो का साकार किया जाता है, जिन्ह पान की अनेक इच्छाएँ मनुष्य म होती हैं। इस बात का निर्देश करने के उद्देश्य स ही आचाय नन्ददुलार वाजपेयी ने लिखा होगा—'साहित्य म मनुष्य का जीवन ही नही जीवन की वे कामनाएँ, जो अनन्त जीवन म भी पूरी नही हो सकती, निहित रहती हैं। जीवन यदि मनुष्यता की अभिव्यक्ति है तो साहित्य मे उस अभिव्यक्ति का आगामी उत्कठा भी सम्मिलित है। जीवन यदि सम्पूणता स रहित है तो साहित्य उससे सहित है, तभी तो उसका नाम साहित्य है तभी तो साहित्य जीवन से अधिक रसवान और परिपूण है तथा जीवन का नियामक और मार्गद्रष्टा भी रहता आया है।"[१] इस सन्दभ म डॉ० प्र० रा० भुपटकर का कथन मननीय है। साहित्य के जन्म को प्राप्त और प्राप्य के सघष म स्वीकार करते हुए व लिखत हैं—'काव्य प्राप्त और प्राप्य के सघष म जन्म लेता है। प्राप्त स मनुष्य को सन्तोष नही होता। अत प्राप्य या काम्य की कांक्षा उसके मन में जन्म लेती है। मनुष्य प्राप्य की कल्पना करने लगता और कल्पना प्रवृति स

१ आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य
पृ० ४५६, सन् १९५६ ई० (द्वि० सस्करण)

पर अपने संसार का सृजन करती है। वह वहाँ प्रसन्नता में उन्हें जोड़ देता है जिन्हें प्रकृति ने तोड़ रखा है अथवा उन्हें विच्छिन्न कर सकती है जिन्हें प्रकृति ने अभिन्न बना रखा है।[1] इस सारगर्भ कथन का विश्लेषण करते हुए हम स्वीकार करते हैं–
(१) प्राप्त से असंतुष्ट मनुष्य के मन में प्राप्य को पाने की इच्छा जन्म लेती है। (२) तब मनुष्य प्राप्य की कल्पना करने लगता है। (३) कल्पना प्राप्य को पाने के लिये सृजन प्रक्रिया का आरम्भ करती है। (४) सृजन प्रक्रिया के समय कल्पना वांछनीय को प्राप्त के साथ जोड़ती है और अवांछनीय को प्राप्त से अलग कर देती है। अर्थात् कल्पना के बल पर मनुष्य स्रष्टा बन जाता है। (५) इस प्रकार साहित्य का जन्म प्राप्त और प्राप्य के संघर्ष में होता है।[2]

(६) साहित्य मानवता की स्थायी निधि

यह भी मनुष्य की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि वह जब अपने लिए जीता है वैसे दूसरे के लिए भी जीता है। अकेले जीना उसके लिए दूभर हो जाता है। मनुष्य दूसरे के लिए जीने में भी संतोष पाता है। इस प्रवृत्ति के कारण मनुष्य समाज का निर्माण करता है और अपने साथ समाज का भी ध्यान रखता है। इस विशेषता से यह दृष्टिगत होता है कि मनुष्य की सत्‌अभिरुचि साहित्य में हितकारी भावों का संयोजन करता है। अतः मनुष्य मानवहित में निरत होकर साहित्य का सृजन करता है। इस कारण से ही साहित्य समाज की श्रेष्ठतम संस्कृति का द्योतक है–

---

१ डा० प्र० रा० भुपटकर–हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक : तुलनात्मक विवेचन (पृ० २६–२७) प्र० सं० सन् १९७०

२ (अ) साहित्य ममज्ञ हडसन ने भी साहित्य के जन्म के मूल कारणों का उल्लेख करते हुए एक कारण बताया है–
– Our interest in the world of reality in which we live and in the world of imagination which we conjure in to existence
–William Henry Hudson–An Introduction to the study of Literature P 11–12 (Second Edition 1917)
(आ) वस्तुतः यह तो मनुष्य की मौलिक विशेषता है। इस विशेषता पर प्रकाश डालते हुए जे० पी० गिल्फोर्ड कहते हैं—
The individual is affected by the world around him, and in turn he can obatain what he needs from it or can protect himself from it or can change it more to his liking
J P Guilford–General Pychology–p 20 (Edition 1964)

मानवता की स्थायी निधि है।"[1]

इस वास्तविकता को ध्यान म रखकर ही साहित्य ममन विलियम हडसन ने भी कहा है।

'Literature is a vital record of what men have seen in life, what they have experienced of it, what they have thought and felt about those aspects of it which have the most immediate and enduring interest for all of us It is thus, fundamentally an expression of life through the medium of language

इससे सूचित होता है कि (१) मनुष्य जीवन मे साहित्य का स्थान अत्यन्त महत्व का है और (२) भाषा उसका माध्यम है।

(ई) माध्यम भाषा

मनुष्य अपनी सवेदन शक्ति से जो कुछ अनुभव करता है, उस अनुभव तथा उससे सम्बन्धित प्रभाव, भाव, विचार, कल्पना आदि को दूसरा पर प्रकट करने की उत्कट इच्छा करता है। बिना प्रकट किए उससे रहा ही नही जाता। तब वह इनकी अभिव्यक्ति अपनी वाणी तथा अपनी चेष्टाओ और क्रियाओ के द्वारा करता है। वस्तुत अपनी अनुभति तथा उसस सम्बन्धित भावो, विचारो आदि को अभिव्यक्त करना अर्थात दूसरा पर प्रकट करना मनुष्य का स्वभावधर्म ही है। दुधमुँहे बच्चे का रोना भी अपनी अनुभूति, अपनी इच्छा दूसरे पर प्रकट करना ही होता है। बचपन से ही मनुष्य अभिव्यक्ति के द्वारा अपने अनुभवा, भावो, विचारो आदि का आदान प्रदान करता है। इस आदान प्रदान के दो मूलभूत साधन हैं–(१) वाणी और (२) मनुष्य का चेष्टायें एव क्रियायें। मनुष्य की वाणी भाषा का रूप धारण करती है और अनुभवो भावो विचारो आदि के परस्पर विनिमय का सवसुलभ साधन बन जाती है।

मानव समाज मे भाषा का महत्त्व कितना है इसका प्रतिपादन करते हुए क्रिस्तोफर काडवल लिखत हैं—'मनुष्य ने प्रकृति से सम्मिलित सघर्ष करने के क्रम म जो साधन विकसित किय हैं उनमे भाषा सबसे लचीला साधन है। भाषा मानवीय साहचय का उपयोगी उपकरण है। यही कारण है कि सत्य के सम्बन्ध मे भाषा के माध्यम के अतिरिक्त और किसी साधन पर हम कुछ सोच भी नही सकते–सत्य की

---

१ नन्ददुलारे बाजपेयी–आधुनिक साहित्य–(पृ० ४५८) द्वि० स० सन १९५६ ई०

2 William Henry Hudson–An Introduction to the study of Literature P 11 (Second Edition 1917)

उपलब्धि सामाजिक साहचर्य पर इतनी आश्रित है।"[1] यह सच है कि मनुष्य ने प्रकृति से संघर्ष करते हुए भाषा के रूप में इतना उपयुक्त साधन पाया है कि उसके कुछ ही शब्दों के प्रयोग द्वारा मनुष्य बहुत-अधिक विचार विनिमय और भावों का आदान प्रदान कर सकता है।

भाषा सुसंस्कार और पाशविक प्रवृत्तियों का नियन्त्रण करने का भी एक उत्तम साधन है। इस तथ्य का निर्देश करने के हेतु मनोवैज्ञानिक एन्० एल्० मन कहते हैं– आदिम मनुष्य ने भाषा का आविष्कार किया। अपने ऊपर घटित होने वाली वस्तुओं और विषयों को उसने नाम दिये। अब उसे स्वयं अपने से बातचीत करने का साधन सुलभ हो गया। यदि उससे कभी अहितकर परिणाम वाला कुछ हो जाता था तो वह अपने ही से कह लेता कि उसे भविष्य में ऐसा नहीं करना चाहिए। जब उसके कार्यों का परिणाम अच्छा निकलता तो भविष्य में उनकी याद स्वयं अपने को दिलाने तथा अपनी अनुभूति को अपने साथियों तक वर्तमान में समर्थ हो जाता। लिखने के आविष्कार के बाद एवं ज्ञान का संप्रेषण प्रत्यक्ष सम्पर्क के बिना तथा भावी पीढ़ियों के लिये भी सुकर हो गया। विचार विनिमय के इस प्रकार के साधनों के द्वारा ही परम्परा मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों का नियन्त्रण करने में समर्थ हो सकी।"[2] स्पष्ट है कि मनुष्य जीवन में भाषा कितनी महत्त्वपूर्ण है।

भाषा ही साहित्य का सर्वोत्तम माध्यम है। इस वास्तविकता को ध्यान में रखकर इस प्रकार कहना समाचीन प्रतीत होता है कि साहित्य 'वाणी और मानव भावना का साकार धनव है।"[3] इसलिए ही कला ममज्ञों ने साहित्य को श्रेष्ठ कला के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार मानव-जीवन में भाषा और साहित्य का स्थान अत्यन्त महत्त्व का है।

---

1 'Language is the most Flexible instrument man has evolved in his associated struggle with Nature Language is the essential tool of human association It is for this reason that one can hardly think of truth except as a statement in language so much is truth the product of association'
–Christopher Caudwell–Illusion and Reality P 139
(Edition 1966)

2 N L Munn–psychology
अनुवादक–आत्मारामशाह–मनोविज्ञान पृ० १०५ (प्रथम हिन्दी सं० जुलाई ६१)

३ नन्ददुलारे वाजपेयी–आधुनिक साहित्य (पृ० ४५८) द्वि० सं० सन १९५६ ई०

३ संघर्ष साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व

वास्तव म साहित्य सवसवेद्य है, उसका मानव जीवन स अत्य त व्यापक और अविछिन्न सम्बन्ध है ।

जीवनानुभूति की आधारभूमि पर जिस साहित्य सष्टि का निमाण होता है वह जावन को प्रभावित करती रहती है । वस्तुत जीवन और साहित्य परस्पर प्रभावित करते रहते हैं । जीवन से प्रभावित होकर विशिष्ट साहित्य का सजन होता है, तो साहित्य से प्रभावित जीवन को एक विशिष्ट दिशा मिल जाती है । अत जीवन और साहित्य अन्यो याश्रित हैं ।

साहित्य म पात्र और उससे सम्बन्धित कथानक के रूप मे मानव और उसके जीवन को महत्त्व का स्थान मिल जाता है । वस्तुत मानव और उसके जीवन को केन्द्र बनाकर साहित्य सष्टि का निर्माण होता है । फलत साहित्य मे मानव और जीवन सम्ब धी सघष को महत्त्वपूण स्थान मिल जाता है ।

साहित्य सजन की प्रक्रिया का सम्ब ध जिस प्रकार साहित्यकार की जीवनानुभूति से होता है उसी प्रकार उसकी नवनिर्माणाक्षम प्रतिभा कल्पनाशक्ति से भी होता है । अत साहित्यकार साहित्य के रूप म एक एसी सष्टि का निर्माण करता है जिसमे मानव प्राप्य को पाने के हेतु प्रतिकूलता म सघष कर रहा है ।

वास्तव म सघष साहित्य का एक महत्त्वपूण तत्त्व है ।[1] विशेषत प्रब धकाव्य उपन्यास नाटक आदि कथा साहित्य म सघष का महत्त्वपूण स्थान है । सघष से युक्त साहित्य जीवत, स्वाभाविक, मार्मिक, मनोज्ञ प्रेषणीय प्रेरणादायक और रुचिकर होता है । अत साहित्यकार साहित्य मे उन पात्रो को स्थान देना पसन्द करता है जो प्राप्त के लिए प्रतिकूलता म सघष कर रहे हैं । इस दृष्टि स साहित्य समाज का अगुवा है ।

४ संघर्ष नाटक का अनिवार्य तत्त्व

(क) रगमच से घनिष्ठ सम्बन्ध

साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा नाटक का समाज जीवन से अत्यधिक प्रत्यक्ष सम्बन्ध है । क्योंकि वह 'दश्यकाव्य' है । नाटक म काव्यत्व और दश्यत्व का समन्वय होता है । साहित्य की अन्य विधाओ का आस्वाद अकेले तथा एकान्त मे पढते हुए ले सकते हैं । लेकिन नाटक की यह निराली विशेषता है कि उसका आस्वाद दो प्रकार से ले सकते हैं । अकेले तथा एकान्त म पढ़ते हुए और जिस समय नाटक अभिनताओ

---

1 Conflict is the heartbeat of all writing' - (P 178) - Lajos Egri - The Art of ramatic writing - Edition - 1960

उपर्युक्त सामाजिक साहचर्य पर इतना आश्रित है।'[1] यह सच है कि मनुष्य ने प्रकृति से संघर्ष करते हुए भाषा के रूप में इतना उपयुक्त साधन पाया है कि उसके कुछ ही शब्दों के प्रयोग द्वारा मनुष्य बहुत-अधिक विचार विनिमय और भावों का आदान प्रदान कर सकता है।

भाषा सुसंस्कार और पाशविक प्रवृत्तियों का नियन्त्रण करने का भी एक उत्तम साधन है। इस तथ्य का निर्देश करने के हेतु मनोवैज्ञानिक एन० एल० मन कहते हैं— 'आदिम मनुष्य ने भाषा का आविष्कार किया। अपने ऊपर घटित होने वाली वस्तुओं और विषयों को उसने नाम दिये। अब उसे स्वयं अपने से बातचीत करने का साधन सुलभ हो गया। यदि उससे कभी अहितकर परिणाम वाला कुछ हो जाता था तो वह अपने से कह देता कि उसे भविष्य में ऐसा नहीं करना चाहिए। जब उसके कार्यों का परिणाम अच्छा निकलता तो भविष्य में उनको याद स्वयं अपने को दिलाने तथा अपनी अनुभूति को अपने साथियों तक व्यक्त करने में समर्थ हो जाता। लिखने के आविष्कार ने ज्ञान का प्रत्यक्ष सम्पर्क के बिना तथा भावी पीढ़ियों के लिए भी सुकर हो गया। विचार विनिमय के इस प्रकार के साधनों के द्वारा ही परम्परा मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों का नियन्त्रण करने में समर्थ हो सकी।'[2] स्पष्ट है कि मनुष्य जीवन में भाषा कितनी महत्त्वपूर्ण है।

भाषा ही साहित्य का सर्वोत्तम माध्यम है। इस वास्तविकता को ध्यान में रखकर इस प्रकार कहना समीचीन प्रतीत होता है कि साहित्य वाणी और मानव भावना का साकार वैभव है।[3] इसलिए ही कला ममज्ञों ने साहित्य को श्रेष्ठ कला के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार मानव-जीवन में भाषा और साहित्य का स्थान अत्यन्त महत्त्व का है।

---

1 Language is the most Flexible instrument man has evolved in his associated struggle with Nature Language is the essential tool of hum..n association It is for this reason that one can hardly think of truth except as a statement in lang uage so much is truth the product of association
–Christopher Caudwell–Illusion and Reality P 139
(Edition 1966)

2 N L Munn–psychology
अनुवादक–आत्मारामशाह–मनोविज्ञान पृ० १०५ (प्रथम हिन्दी सं० जुलाई ६१)

३ नन्ददुलारे वाजपेयी–आधुनिक साहित्य (पृ० ४५८) द्वि० सं० सन १९५६ ई०

३ संघर्ष साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व

वास्तव म साहित्य सवसवेद्य है, उसका मानव जीवन स अत्य त व्यापक और अविछिन्न सम्बन्ध है।

जीवनानुभुति की आधारभूमि पर जिस साहित्य सष्टि का निमाण होता है वह जावन को प्रभावित करती रहती है। वस्तुत जीवन और साहित्य परस्पर प्रभावित करते रहते हैं। जीवन से प्रभावित होकर विशिष्ट साहित्य का सजन होता है तो साहि य से प्रभावित जीवन को एक विशिष्ट दिशा मिल जाती है। अत जीवन और साहित्य अयो याश्रित हैं।

साहित्य मे पात्र और उससे सम्बधित कथानक के रूप म मानव और उसके जीवन को महत्त्व का स्थान मिल जाता है। वस्तुत मानव और उसक जीवन को केन्द्र बनाकर साहित्य सष्टि का निर्माण होता है। फलत साहित्य मे मानव और जीवन सम्ब धी सघष को महत्त्वपूण स्थान मिल जाता है।

साहि य सृजन की प्रक्रिया का सम्ब ध जिस प्रकार साहित्यकार की जीवनानुभूति से होता है उसी प्रकार उसकी नवनिर्माणक्षम प्रतिभा कल्पनाशक्ति से भी होता है। अत साहित्यकार साहित्य के रूप मे एक ऐसी सष्टि का निर्माण करता है जिसमे मानव प्राप्य को पाने के हेतु प्रतिकूलता म सघष कर रहा है।

वास्तव म सघष साहित्य का एक महत्त्वपूण तत्त्व है।[1] विशेषत प्रब धकाव्य उपन्यास, नाटक आदि कथा साहित्य म सघष का महत्त्वपूण स्थान है। सघष से युक्त साहित्य जीवत स्वाभाविक मार्मिक मनोज्ञ प्रेषणीय प्रेरणादायक और रुचिकर होता है। अत साहित्यकार साहित्य मे उन पात्रों को स्थान देना पसन्द करता है जो प्राप्त के लिए प्रतिकूलता स सघष कर रहे हैं। इस दष्टि स साहित्य समाज का अगुवा है।

४ संघर्ष नाटक का अनिवार्य तत्त्व

(क) रगमच से घनिष्ठ सम्बन्ध

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक का समाज जीवन से अत्यधिक प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। क्योंकि वह 'दृश्यकाव्य है। नाटक म का यत्व और दृश्यत्व का सम वय होता है। साहित्य की अ य विधाओ का आस्वाद अकेले तथा एकान्त म पढ़ते हुए ले सकते हैं। लकिन नाटक की यह निराली विशेषता है कि उसका आस्वाद दो प्रकार से ले सकते हैं। अकेले तथा एकान्त म पढ़ते हुए और जिस समय नाटक अभिनेताओ

---

1 'Conflict is the heartbeat of all writing' - (P 178) - Lajos Egri - The Art of ramatic writing - Edition - 1960

उपलब्धि सामाजिक साहचर्य पर इतनी आश्रित है। यह सच है कि मनुष्य ने प्रकृति से संघर्ष करते हुए भाषा के रूप में इतना उपयुक्त साधन पाया है कि उसके कुछ ही शब्दों के प्रयोग द्वारा मनुष्य बहुत-अधिक विचार विनिमय और भावों का आदान प्रदान कर सकता है।

भाषा सुसंस्कार और पाशविक प्रवृत्तियों का नियन्त्रण करने का भी एक उत्तम साधन है। इस तथ्य का निर्देश करने के हेतु मनोवैज्ञानिक एन्० एल० मन कहते हैं– आदिम मनुष्य ने भाषा का आविष्कार किया। अपने ऊपर घटित होने वाली वस्तुओं और विषयों को उसने नाम दिये। अब उसे स्वयं अपने से बातचीत करने का साधन सुलभ हो गया। यदि उससे कभी अहितकर परिणाम वाला कुछ हो जाता था तो वह अपने ही से कह सकता था कि उसे भविष्य में ऐसा नहीं करना चाहिए। जब उसके कार्यों का परिणाम अच्छा निकलता तो भविष्य में उनको याद कर स्वयं अपने को निदान तथा अपनी अनुभूति को अपने साथियों को बतलाने में समर्थ हो जाता। लिखने के आविष्कार से [illegible] ज्ञान का सम्प्रेषण प्रत्यक्ष सम्पर्क के बिना तथा भावी पीढ़ियों के लिए भी सुकर हो गया। विचार विनिमय के इस प्रकार के साधनों के द्वारा ही परम्परा मनुष्य को पाशविक प्रवृत्तियों का नियन्त्रण करने में समर्थ हो सका। स्पष्ट है कि मानव जीवन में भाषा कितना महत्त्वपूर्ण है।

भाषा ही साहित्य का सर्वोत्तम माध्यम है। इस वास्तविकता को ध्यान में रखकर इस प्रकार कहना समाधान प्रतीत होता है कि साहित्य वाणी और मानव भावना का साकार स्वरूप है।' इसलिए ही कला समीक्षकों ने साहित्य को श्रेष्ठ कला के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार मानव जीवन में भाषा और साहित्य का स्थान अत्यन्त महत्त्व का है।

---

1 Language is the most Flexible instrument man has evolved in his associated struggle with Nature Language is the essential tool of human association It is for this reason that one can hardly think of truth except as a statement in language so much is truth the product of association
–Christopher Caudwell–Illusion and Reality P 139
(Edition 1966)

2 N L Munn–psychology
अनुवादक–श्रीमाराममाह–मनोविज्ञान पृ० १० (प्रथम हिन्दी सं० जुलाई ६१)

३ नन्ददुलारे वाजपेयी–आधुनिक साहित्य (पृ० ४५८) द्वि० सं० सन् १९५६ ई०

३ सघर्ष साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व

वास्तव म साहित्य सवसवद्य है उसका मानव जीवन स अत्यन्त व्यापक और अविछिन्न सम्बन्ध है।

जीवनानुभुति की आधारभूमि पर जिस साहित्य सष्टि का निमाण होता है वह जीवन को प्रभावित करती रहती है। वस्तुत जीवन और साहित्य परस्पर प्रभावित करते रहते हैं। जीवन से प्रभावित होकर विशिष्ट साहित्य का सजन होता है, तो साहित्य स प्रभावित जीवन की एक विशिष्ट दिशा मिल जाती है। अत जीवन और साहित्य अन्योन्याश्रित हैं।

साहित्य म पात्र और उससे सम्बन्धित कथानक के रूप मे मानव और उसके जीवन को महत्त्व का स्थान मिल जाता है। वस्तुत मानव और उसके जीवन को केन्द्र बनाकर साहित्य सष्टि का निर्माण होता है। फलत साहित्य मे मानव और जीवन सम्बन्धी सघष को महत्त्वपूण स्थान मिल जाता है।

साहित्य सजन की प्रक्रिया का सम्बन्ध जिस प्रकार साहित्यकार की जीवनानुभूति से होता है उसी प्रकार उसकी नवनिर्माणक्षम प्रतिभा कल्पनाशक्ति से भी होता है। अत साहित्यकार साहित्य के रूप स एक ऐसी सष्टि का निमाण करता है जिसम मानव प्राप्य को पाने के हेतु प्रतिकूलता म सघष कर रहा है।

वास्तव म सघष साहित्य का एक महत्त्वपूण तत्त्व है।[1] विशेषत प्रबन्धकाव्य उपन्यास, नाटक आदि कथा साहित्य म सघष का महत्त्वपूण स्थान है। सघष स युक्त साहित्य जीवत स्वाभाविक, मार्मिक मनोज्ञ प्रेषणीय प्रेरणादायक और रुचिकर होता है। अत साहित्यकार साहित्य मे उन पात्रों को स्थान देना पसन्द करता है जो प्राप्त के लिए प्रतिकूलता स सघष कर रहे हैं। इस दष्टि म साहित्य समाज का अगुवा है।

४ सघर्ष नाटक का अनिवार्य तत्त्व

(क) रगमच से घनिष्ठ सम्बन्ध

साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा नाटक का समाज जीवन से अत्यधिक प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। क्योंकि वह 'दश्यकाव्य' है। नाटक म का यत्व और दृश्य व का समन्वय होता है। साहित्य की अन्य विधाओ का आस्वाद अकेले तथा एकान्त म पढते हुए ले सकते हैं। लेकिन नाटक की यह निराली विशेषता है कि उसका आस्वाद दो प्रकार स ले सकते हैं। अकेले तथा एकान्त म पढते हुए और जिस समय नाटक अभिनेताओं

1 'Conflict is the heartbeat of all writing' - (P 178) - Lajos Egri - The Art of ramatic writing - Edition - 1960

कथानक चाहे पौराणिक हो, ऐतिहासिक अथवा यथार्थ के धरातल पर काल्पनिक हो, संघर्ष के बिना वह नाटक का रूप धारण नहीं कर पायगा। इस बात का निर्देश करते हुए विवेचक विलियम हडसन कहते हैं 'प्रत्येक नाटकीय कथानक का आविर्भाव किसी संघर्ष से होता है जो कि विरोधी व्यक्तियों, अथवा भावों अथवा हितों की टक्कर से छिड़ता है। संघर्ष किसी भी प्रकार का क्यों न हो, नाटकीय कथानक के लिए वह एक आधारभूत तत्त्व है। संघर्ष के आरम्भ में वास्तविक कथानक का आरम्भ होता है और उसकी समाप्ति के साथ ही वास्तविक कथानक की समाप्ति होती है।'[1]

लेकिन इस कथन में कुछ त्रुटियाँ हैं। इसे स्वीकार किया जा सकता है कि 'संघर्ष के आरम्भ में वास्तविक कथानक का आरम्भ होता है। परन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता कि संघर्ष की समाप्ति के साथ ही वास्तविक कथानक की समाप्ति होती है।' इसके सन्दर्भ में मतभेद हो सकता है। क्योंकि कई नाटकों के कथानक की समाप्ति भी संघर्ष में ही होती है। जयशंकर प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' के कथानक का आरम्भ संघर्ष के आरम्भ में हुआ है और उसकी समाप्ति संघर्ष की समाप्ति के साथ हुई है। लेकिन मोहन राकेश के 'आधे अधूरे' नाटक के कथानक की समाप्ति संघर्ष की समाप्ति से नहीं बल्कि संघर्ष में ही होती है। ठीक ऐसी ही अवस्था जगदीशचन्द्र माथुर के 'पहला राजा', डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के 'कर्फ्यू' और 'रक्तकमल' रेवतीसरन शर्मा के 'चिराग की लौ' और विष्णु प्रभाकर के 'युग युग क्रान्ति", मन्नू भण्डारी के 'बिना दीवारों के घर' तथा विनोद रस्तोगी के 'बर्फ की मीनार' की है। इन नाटकों के आधार पर कह सकते हैं कि जिस नाटक के कथानक की समाप्ति संघर्ष की समाप्ति से होती है उससे अधिक प्रभावशाली नाटक वह होता है जिसके कथानक की समाप्ति संघर्ष में होती है। इससे भी अधिक प्रभावोत्पादक नाटक वह होता है जिसके कथानक की समाप्ति बाह्य संघर्ष के बदले आन्तरिक संघर्ष में होती है। इस कारण से ही जयशंकर प्रसाद का 'स्कन्दगुप्त' और मोहन राकेश कृत "आषाढ़ का एक दिन' तथा

---

1 'Every dramatic story arises out of some conflict—some clash of opposed individuals, or passions, or interests. Some kind of conflict is, however, the ductum and very backbone of a dramatic story. With the opening of this conflict the real plot begins; with its conclusion the real plot-end. (P 199)

—W. H. Hudson—An Introduction to the Study of Literature (Edition 1950)

के द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत होता है। इस समय अनेक प्रश्नों के समक्ष [illegible] हुए इस वास्तविकता को ध्यान में रखकर ही कहा गया है कि सभी ललित कलाओं में साहित्य सर्वश्रेष्ठ कला है और नाटक उस साहित्य का सर्वश्रेष्ठ अंग है। नाटक की श्रेष्ठता उसकी सामाजिकता में निहित है।[1]

साहित्य की दृष्टि से नाटक की अपने आप में महत्ता है ही लेकिन दर्शक की दृष्टि से रंगमंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत होने में भी उसकी महत्ता है। इसमें साहित्य और रंगतत्व का समन्वय अपेक्षित है। इनमें से किसी एक की उपेक्षा से नाटक का महत्व घटता है। नाटक तीनों की अभिव्यक्ति होता है — — — प्रथम साहित्यकार की, द्वितीय निर्देशक की और तृतीय अभिनेताओं की। अर्थात् नाटक का रंगमंच से अभिन्न सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध ही नाटक को एक विशिष्ट रूप प्रदान करता है।

रंगमंच पर प्रस्तुत होने के लिए नाटक को विशिष्ट रूप धारण करना पड़ता है। फलस्वरूप नाटक अत्यधिक सामाजिक बन जाता है। वह अन्य साहित्य प्रकारों की अपेक्षा जीवन से अधिक निकट का सम्बन्ध स्थापित करता है। रंगमंच पर प्रस्तुत होते समय उसके पात्र जीवन को प्रत्यक्ष भोगते हैं और अपनी क्रिया तथा वाणी से अपने जीवन तथा उनके चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन करते हैं। इससे यह भी होता है कि नाटक में एक अनिवार्य तत्व के रूप में संघर्ष को स्थान मिल जाता है।

(ग) संघर्ष और कथानक

नाटक के दो तत्व अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। एक है कथानक और दूसरा है पात्र। इनका उद्घाटन अभिनयात्मक रूप से होता है जिसमें इनकी क्रिया और संवाद का महत्वपूर्ण स्थान होता है। कथानक और पात्र से संघर्ष तत्व का अति घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। परिणामस्वरूप अभिनयात्मक स्तर पर भी संघर्ष का मार्मिक एवं मनोहर प्रभाव पड़ता है।

कथानक और पात्र परस्पराश्रित हैं। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। फलस्वरूप कथानक में जिन मार्मिक घटनाओं का संयोजन होता है उनका सम्बन्ध पात्र की चारित्रिक विशेषताओं से होता है। उन्हीं के सन्दर्भ में पात्र की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन और विकास होता है। इसके साथ साथ पात्र भी अपनी क्रिया से कुछ ऐसी घटनाओं को जन्म देता है जिनसे कथानक का प्रभावान्वित विकास हो जाता है।

नाटक में कथानक और पात्र के साथ संघर्ष का भी अन्योन्य सम्बन्ध है।

---

१ डॉ० प्र० रा० भुपटकर–हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक : तुलनात्मक विवेचन, पृ० ३ (प्र० सं० सन १९७० ई०)

कथानक चाहे पौराणिक हो, ऐतिहासिक अथवा यथार्थ के धरातल पर काल्पनिक हो, संघर्ष के बिना वह नाटक का रूप धारण नहीं कर पायगा। इस बात का निर्देश करते हुए विवेचक विलियम हडसन कहते हैं 'प्रत्येक नाटकीय कथानक का आविर्भाव किसी संघर्ष से होता है जो कि विरोधी व्यक्तियों, अथवा भावों अथवा हितों की टक्कर से छिड़ता है। संघर्ष किसी भी प्रकार का क्यों न हो नाटकीय कथानक के लिए वह एक आधारभूत तत्त्व है। संघर्ष के आरम्भ से वास्तविक कथानक का आरम्भ होता है और उसकी समाप्ति के साथ ही वास्तविक कथानक की समाप्ति होता है।'[1]

लेकिन इस कथन में कुछ त्रुटियाँ हैं। इसे स्वीकार किया जा सकता है कि "संघर्ष के आरम्भ से वास्तविक कथानक का आरम्भ होता है।" परन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता कि संघर्ष की समाप्ति के साथ ही वास्तविक कथानक की समाप्ति होती है।' इसके सन्दर्भ में मतभेद हो सकता है। क्योंकि कई नाटकों के कथानक की समाप्ति भी संघर्ष में ही होती है। जयशंकर प्रसाद के "स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' के कथानक का आरम्भ संघर्ष के आरम्भ से हुआ है और उसकी समाप्ति संघर्ष की समाप्ति के साथ हुई है। लेकिन मोहन राकेश के 'आधे अधूरे' नाटक के कथानक की समाप्ति संघर्ष की समाप्ति से नहीं बल्कि संघर्ष में ही होती है। ठीक ऐसी ही अवस्था जगदीशचन्द्र माथुर के 'पहला राजा' डा० लक्ष्मी नारायण लाल के 'कलंकी' और रक्तकमल' रेवतीसरन शर्मा के चिराग की लौ' और विष्णु प्रभाकर के युग युग क्रांति मन्नू भण्डारी के बिना दीवारों के घर' तथा विनोद रस्तोगी के बर्फ की मीनार' की है। इन नाटकों के आधार पर कह सकते हैं कि जिस नाटक के कथानक की समाप्ति संघर्ष की समाप्ति से होती है, उससे अधिक प्रभावशाली नाटक वह होता है जिसके कथानक की समाप्ति संघर्ष में होती है। इससे भी अधिक प्रभावोत्पादक नाटक वह होता है जिसके कथानक की समाप्ति बाह्य संघर्ष के बदले आन्तरिक संघर्ष में होती है। इस कारण से ही जयशंकर प्रसाद का स्कन्दगुप्त और मोहन राकेश कृत "आषाढ़ का एक दिन' तथा

---

1 'Every dramatic story arises out of some conflict—some clash of opposed individuals, or passions or interests Some kind of conflict is however the ductum and very backbone of a dramatic story With the opening of this conflict the real plot begins, with its conclusion the real plot-end" (P 199)

—W H Hudson—An Introduction to the Study of Literature (Edition 1958)

कथानक चाहे पौराणिक हो, ऐतिहासिक अथवा यथार्थ के धरातल पर काल्पनिक हो संघर्ष के बिना वह नाटक का रूप धारण नहीं कर पायगा। इस बात का निर्देश करते हुए विवेचक विलियम हडसन कहते हैं : 'प्रत्येक नाटकीय कथानक का आविर्भाव किसी संघर्ष से होता है जो कि विरोधी व्यक्तियों, अथवा भावों अथवा हितों की टक्कर से छिड़ता है। ... संघर्ष किसी भी प्रकार का क्यों न हो, नाटकीय कथानक के लिए वह एक आधारभूत तत्त्व है। संघर्ष के आरम्भ से वास्तविक कथानक का आरम्भ होता है और उसकी समाप्ति के साथ ही वास्तविक कथानक की समाप्ति होती है।'[1]

लेकिन इस कथन में कुछ त्रुटियाँ हैं। इसे स्वीकार किया जा सकता है कि 'संघर्ष के आरम्भ से वास्तविक कथानक का आरम्भ होता है।' परन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता कि 'संघर्ष की समाप्ति के साथ ही वास्तविक कथानक की समाप्ति होती है।' इसके सन्दर्भ में मतभेद हो सकता है। क्योंकि कई नाटकों के कथानक की समाप्ति भी संघर्ष में ही होती है। जयशंकर प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' के कथानक का आरम्भ संघर्ष के आरम्भ से हुआ है और उसकी समाप्ति संघर्ष की समाप्ति के साथ हुई है। लेकिन मोहन राकेश के 'आधे अधूरे' नाटक के कथानक की समाप्ति संघर्ष की समाप्ति से नहीं बल्कि संघर्ष में ही होता है। ठीक ऐसी ही अवस्था जगदीशचन्द्र माथुर के 'पहला राजा', डा० लक्ष्मी नारायण लाल के 'कर्फ्यू' और 'रक्तकमल', रेवतीसरन शर्मा के 'चिराग की लौ' और विष्णु प्रभाकर के "युग युग क्रान्ति", मन्नू भण्डारी के 'बिना दीवारों के घर' तथा विनोद रस्तोगी के 'बर्फ की मीनार' की है। इन नाटकों के आधार पर कह सकते हैं कि जिस नाटक के कथानक की समाप्ति संघर्ष की समाप्ति से होती है उसमें अधिक प्रभावशाली नाटक वह होता है जिसके कथानक की समाप्ति संघर्ष में होती है। इससे भी अधिक प्रभावोत्पादक नाटक वह होता है जिसके कथानक की समाप्ति बाह्य संघर्ष के बदले आन्तरिक संघर्ष में होती है। इस कारण से ही जयशंकर प्रसाद का 'स्कन्दगुप्त' और मोहन राकेश कृत 'आषाढ़ का एक दिन' तथा

---

1 'Every dramatic story arises out of some conflict—some clash of opposed individuals, or passions or interests ... Some kind of conflict is, however the ductum and very backbone of a dramatic story ... With the opening of this conflict the real plot begins, with its conclusion the real plot-end.' (P. 199)

—W. H. Hudson—An Introduction to the Study of Literature (Edition 1958)

के द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत होता है उस समय अनेक प्रभावों के समन्वय स्वरूप इस वास्तविकता को ध्यान में रखकर ही कहा गया है कि सभी ललित कलाओं में साहित्य सर्वश्रेष्ठ कला है और नाटक उस साहित्य का सर्वश्रेष्ठ अंग है। नाटक की श्रेष्ठता उसकी सामाजिकता में निहित है।[1]

काव्यत्व की दृष्टि से नाटक का अपने आप में महत्ता है ही, लेकिन रंगमंच की दृष्टि से रंगमंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत होने में भी उसकी महत्ता है। इसमें काव्यत्व और रंगमंच का समुचित आनन्द है। इसमें से किसी एक की उपेक्षा से नाटक का महत्त्व घटता है। नाटक तीनों का अभिसार होता है — — — प्रथम साहित्यकार का, द्वितीय निर्देशक की और तृतीय अभिनेताओं का। अर्थात् नाटक का रंगमंच से अभिन्न सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध ही नाटक को एक विशिष्ट रूप प्रदान करता है।

रंगमंच पर प्रस्तुत होने के लिए नाटक को विशिष्ट रूप धारण करना पड़ता है। फलस्वरूप नाटक अत्यधिक सामाजिक हो जाता है। वह अन्य साहित्य प्रकारों की अपेक्षा जीवन से अधिक निकट से सम्बन्ध स्थापित करता है। रंगमंच पर प्रस्तुत होते समय उसके पात्र जीवित हो उठते हैं और अपनी क्रिया तथा वाणी से अपनी आन्तरिक तथा बाह्य चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन करते हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि नाटक में एक अनिवार्य तत्त्व के रूप में संघर्ष को स्थान मिल जाता है।

(ख) संघर्ष ही कथानक है

नाटक के दो तत्त्व अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। एक है कथानक और दूसरा है पात्र। इनका उद्घाटन अभिनयात्मक ढंग से होता है जिसमें इनकी क्रिया और संवाद का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। कथानक और पात्र से संघर्ष तत्त्व का अति घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। परिणामस्वरूप अभिनयात्मक ढंग पर भी संघर्ष का मार्मिक एवं मनोहर प्रभाव पड़ता है।

कथानक और पात्र परस्पराश्रित हैं। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। फलस्वरूप कथानक में जिन मार्मिक घटनाओं का संयोजन होता है उनका स्रोत पात्र की चारित्रिक विशेषताओं से होता है। उन्हीं के सन्दर्भ में पात्र की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन और विकास होता है। इसके साथ साथ पात्र भी अपनी क्रिया से कुछ नयी घटनाओं को जन्म देता है जिससे कथानक का प्रभावोत्पादक विकास हो जाता है।

नाटक में कथानक और पात्र के साथ संघर्ष का भी अन्योन्य सम्बन्ध है।

---

१ डॉ० प्र० रा० भुपटकर—हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक : तुलनात्मक विवेचन, पृ० ३ (प्र० सं० सन् १९७० ई०)

तथ्य पर प्रकाश डालते हुए लाजस ईगरी कहते हैं—"We think that no character can reveal himself without conflict and no conflict matters without character."[1]

पात्र से ही संघर्ष का उद्गम होने के कारण नाटक में संघर्ष के स्वरूप को जानने के लिए प्रथम पात्र के स्वरूप को और उस पर प्रभाव डालने वाली उसकी परिस्थिति को देखना अपेक्षित है ।[2]

प्रस्तुत अध्याय के आरम्भ में निर्देशित किया गया है कि मानव आवश्यकता पूर्ति के लिए सक्रिय बन जाता है । नाटक में भी पात्र आवश्यकतापूर्ति के हेतु क्रियाशील बन जाता है । लेकिन नाटक में आवश्यकता पूर्ति से अधिक इच्छा पूर्ति के लिए पात्र क्रियाशील बन जाता है । जो पात्र क्रियाशील बन जाता है वह इच्छा पूर्ति के हेतु संघर्षशील बन जाता है । अतः नाटक में निरीच्छ तथा निष्क्रिय पात्र के लिए कोई स्थान नहीं है ।

अब प्रश्न उठता है कि पात्र क्यों संघर्ष छेड़ता है ? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि संघर्ष के मूल में पात्र की इच्छा कार्य करती है । नाट्य मर्मज्ञ ब्रुनेतिएर ने इस तथ्य पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है और निष्कर्ष के रूप में कहा है—

"Drama is a representation of the will of man in conflict."[3]

ब्रुनेतिएर के इस विशिष्ट दृष्टिकोण के अनुसार नाटक के पात्र की इच्छा क्रिया के रूप में संघर्षशील बन जाती है और किसी लक्ष्य की ओर बढ़ती है। इसका विवेचन करते हुए ब्रुनेतिएर कहते हैं—

' he (Brunetiere) tells us that the theater shows 'the development of the human will attacking the obstacles opposed to it by destiny, fortune or circumstances. And again, ' This is

---

1 Lajos Egri–The Art of Dramatic Writing–(P. 186)
(Edition 1960)

2 'So it seems that conflict does spring from character after all, and that if we wish to know the structure of conflict we must first know character. But since character is influenced by environment, we must know that, too.'
–Lajos Egri–The Art of Dramatic Writing–(P. 136)
(Edition 1960)

3 Quoted by–A. Nicoll–The theory of Drama–(P. 29)
(Edition 1969)

'लहरों के राजहंस' नाटक अधिक प्रभावी तथा मार्मिक हैं। अतः इसलिए नाटक में कथानक की समाप्ति संघर्ष की समाप्ति में ही होगा ऐसा कहना असत्य है।

वास्तव में नाट्य कथा के साथ-साथ नाट्य विषय से भी संघर्ष का महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है। इस सन्दर्भ में नाटककार का कौशल इसी में होता है कि वह किसी व्यापक संघर्ष को नाट्य विषय के रूप में अपनाता है और उसका विश्लेषण करने हेतु किन्हीं पात्रों में विशिष्ट संघर्ष को नाट्य कथा का रूप प्रदान करता है। जैसे कि डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने 'घाटियाँ गूँजती हैं' में नाट्य विषय के रूप में भारत-चीन संघर्ष को अपनाया है और उस व्यापक संघर्ष के विश्लेषण के हेतु राष्ट्राभिमानी नीरू, विवेक, रत्न, मोहनसिंह और ल्हासा मुकुल दूतों के विशिष्ट संघर्ष को नाट्य कथा का रूप प्रदान किया है। अभिप्राय यह है कि नाट्य विषय और नाट्य कथा में संघर्ष का होना सोने में सुगंध जैसी बात है। इस तथ्य का निर्देश करने के हेतु मिल्टन मार्क्स न्याय के साथ कहते हैं-- Conflict is the essence of drama and if a play is to rank among the important plays it must have conflict worthy of consideration in the both theme and plot [1]

नाटक के कथानक के लिए आवश्यक तत्व के रूप में संघर्ष को स्वीकार करते हुए नाट्यमर्मज्ञ थाम्पसन भी कहते हैं-- It really points out the three essentials of a plot the purpose that leads to action the conflict and the resolution [2]

इस कथन में संघर्ष के साथ साथ उद्देश्ययुक्त क्रिया (Purposive action) का भी उल्लेख किया गया है। यह उल्लेख अत्यधिक महत्त्व का है। क्योंकि इससे कुछ प्रश्न उपस्थित होते हैं--उद्देश्ययुक्त क्रिया कौन करता है? संघर्ष कौन और क्यों करता है? उसका कथानक से क्या सम्बन्ध होता है? इन प्रश्नों के उत्तर में यह सत्य है कि उद्देश्ययुक्त क्रिया तथा संघर्ष करने वाला पात्र होता है जिसका कथानक से अटूट सम्बन्ध होता है।

(ग) पात्र ही संघर्ष का निर्माता है

वस्तुतः नाटक में पात्र ही संघर्ष का निर्माण करता है और उसी संघर्ष से पात्र के व्यक्तित्व का उसकी चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन होता है। इस

1 Milton Marx–The Enjoyment of Drama–(P 36)
(Second Edition 1961)

2 Alan Reynolds Thompson–The Anatomy of Drama–(P 129)
(Edition 1946)

इस तथ्य के कारण ही पात्र की क्रिया साधारण क्रिया से भिन्न होती है। नाटक के पात्र की क्रिया सोद्देश्य होती है जिसका मूल उसकी इच्छा होती है। अत साधारण क्रिया और नाटक की क्रिया म विशेष अन्तर दर्शाते हुए ज० एच० लासन कहते हैं- Let us begin by distinguishing action (dramatic movement) from activity (by which we mean movement in general) Action is a kind of activity, a form of movement in general The effectiveness of action does not depend on what people do but on the meaning of what they do We know that the root of this meaning lies in the conscious will"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि नाटक के पात्र की क्रिया विशेष होती है।

नाटक के पात्र की क्रिया शारीरिक तथा मानसिक होती है। इन दोनो की अभिव्यक्ति शारीरिक चेष्टाओ और सवाद के माध्यम से होती है। शारीरिक चेष्टाओ का आँखो से देखा जाता है और सवाद का कानो से सुना जाता है। अत नाटक का निर्माण देखने सुनने के लिए होता है।

नाटक म पात्र क सवाद भी क्रिया का ही रूप धारण करते हैं। नाटक के सवाद केवल सवाद क लिए नही होते। नाटक के सवादो का भी नाटक की क्रिया से अटूट सम्बन्ध होता है। इस वास्तविकता का निर्देश करने के हेतु जे० एच० लासन भी लिखते हैं--

Speech is also a form of action The action projected by the spoken word may be retrospective or potential-or it may actually accompany the speech As soon as the character speaks the element of physical activity and purpose present[2]

वास्तव मे हर एक सतर्क नाटककार अपने नाटक म सवादो का रूप केवल वाद विवादात्मक प्रश्नोत्तरात्मक या अर्थहीन चर्चात्मक अथवा अर्थशून्य सभाषणात्मक नही रखता। वह तो अपने नाटक मे ऐसे सवादो का स्थान देता है, जिनके मूल मे कोई उद्देश्य या हेतु या निर्णय या असन्तोष उत्तेजना के रूप म कार्य करता है जिसका सम्बन्ध पात्र की इच्छा तथा मनोवाछित क्रिया से होता है। इस सन्दर्भ म जगदीशचन्द्र माथुर के कोणार्क का उल्लेख किया जा सकता है। इसमे विशु और धर्मपद क कथाकथन अपनी इच्छा क अनुसार एक विशिष्ट क्रिया (जो आगे

1 J H Lawson-Theory and Technique of Play Writing (P 170) (Edition 1969)

2 Ibid (P 171)

what may be called will to set up a goal and to direct everything toward it to strive to bring everything into line with it [1]

इससे ध्वनित होता है कि नाटक की संघर्षात्मक क्रिया के मूल में पात्र की इच्छा कार्य करता है।

इस सन्दर्भ में नाट्य समीक्षक लाजस ईगरी का भी कथन उल्लेखनीय है। वे कहते हैं— Only conflict can generate more conflict and the first conflict comes from a conscious will striving to achieve a goal which was determined by the premise of the play [2]

इस दृष्टि से जे० एच० लासन का भी मत द्रष्टव्य है— Dramatic conflict is also predicated on the exercise of conscious will [3]

इन कथनों से स्पष्ट होता है कि नाटक में पात्र की इच्छा प्राप्ति के लिए संघर्ष छिड़ता है। इस संघर्ष का आरम्भ उद्देश्य युक्त क्रिया से होता है। अतः नाटक में क्रिया का अधिक महत्त्व है।

पाश्चात्यों के दृष्टिकोण से नाटक का अर्थ ही क्रिया है। इस सन्दर्भ में नाट्य समीक्षक एस० एच० बुचर का कथन द्रष्टव्य है— The action of the drama has primary reference to that kind of action which while springing from the inward power of will manifest itself in external doing The very word of drama indicates this idea

The dram therefore is will or emotion in action [4]

इस कथन से विदित होता है कि नाटक में पात्र की इच्छा व्यक्त करने का प्रमुख माध्यम उसकी क्रिया है[5] जो संघर्ष का रूप धारण करता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि— Action cannot come of itself [6]

---

1 Quoted by J H Lawson Theory and Technique of play writing–(P 349) (Edition 1969)

2 Lajos Egri–The Art of Dramatic Writing (P 137) (Edition 1960)

3 J H Lawson–Theory and Technique of Play Writing (P 163) (Edition 1969)

4 S H Butcher–Aristotle's Theory of Poetry and Fine Art–(P 335) (Edition 1951)

5 Ibid (P 349)

6 Lajos Egri–The Art of Dramatic Writing–(P 125) (Edition 1960)

इससे स्पष्ट होता है कि नाटक में वही क्रिया महत्त्व की होती है जो उद्देश्य युक्त तथा संघर्षयुक्त होती है अन्‍ नाटक मे संघर्ष शून्य क्रिया लाभकारी नही होती।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि नाटक में संघर्ष का उद्भव पात्र की उस विशिष्ट क्रिया से होता है जिसके मूल मे उत्तेजक के रूप मे, पात्र की इच्छा से सम्बन्धित कोई उद्देश्य, हेतु निर्णय अथवा असन्तोष कार्य करता है। इस संघर्ष को पुष्ट तथा प्रखर बनाने का कार्य विशिष्ट परिस्थितियां, घटनाओं आदि के द्वारा होता है। परिणामत पात्र अपनी संघर्षात्मक क्रिया के द्वारा विशिष्ट व्यक्तित्व[1] तथा कथानक के[2] साथ ही नाटक का निर्माण करता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नाटक में संघर्ष का उद्गम तथा विकास पात्र के रूप में नाटक का महत्त्वपूर्ण एवं अभिन्न अंग बन जाता है। तात्पर्य यह है कि कथानक और पात्र के साथ संघर्ष भी नाटक का अनिवार्य तत्त्व है।

घ–नाटक के अन्य तत्त्वों पर संघर्ष तत्त्व का प्रभाव

उपर्युक्त विवेचन में यह स्पष्ट किया गया है कि संघर्ष से ही नाटक का निर्माण होता है। फलस्वरूप नाटक के कथानक पात्र तथा संवाद से संघर्ष का अभिन्न एवं अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध होता है। अब यह देखना उद्बोधक होगा कि प्रभावशाली संघर्षतत्त्व किस प्रकार नाटक को एक विशिष्ट रूप प्रदान करता है। इससे यह स्पष्ट होगा कि नाटक के विभिन्न तत्त्वों पर संघर्ष का किस प्रकार प्रभाव पड़ता है।

अ–कथानक पर संघर्ष तत्त्व का प्रभाव

नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत होते समय सुनिश्चित समय के भीतर अपेक्षित प्रभाव के साथ समाप्त होना पड़ता है। अतः नाटक में संघर्ष तत्त्व के द्वारा अपेक्षित प्रभावोत्पत्ति के हेतु नाटक का कथानक संगठन वैशिष्ट्यपूर्ण होता है। इस दृष्टि से नाटक के कथानक संगठन पर संघर्ष का प्रभाव निम्नलिखित रूपों में होता है।

१ संघर्ष के द्वारा अपेक्षित प्रभावोत्पत्ति के हेतु नाटक का आरम्भ कथानक के ऐसे क्षण से होना उपयुक्त होगा, जो आरम्भ से ही संघर्ष के प्रति ध्यान आकृष्ट कर मन में जिज्ञासा को जन्म देगा। इस प्रकार का संघर्ष बहुत पहले से आरम्भ हुआ रहता है। अतः नाटक का आरम्भ इस संघर्ष के किसी मार्मिक क्षण से होता

---

1 Ibid 'In the action of the drama character is defined and revealed' (P 352)

2 Character makes the plot (P 99)
–Lajos Egri–The Art of Dramatic Writing (Edition 1960)

नाटक मे क्षीण एव नाममात्र सघर्ष को स्थान मिल जाता है और परिणामस्वरूप नाटक प्रभावहीन बन जाता है। इस कारण से ही 'नीलकृत तीन दिन तीन घर', हरि कृष्ण प्रेमी कृत 'ममता' आदि नाटक प्रभावहीन बन गये हैं।

६ कथानक मे सघर्ष से उत्पन्न प्रभाव को कुछ कम करने के हेतु बीच बीच में हास्य विनोद का भी प्रयोग किया जा सकता है। इस दृष्टि से आषाढ का एक दिन में अनुस्वार और अनुनासिक का आगमन उल्लेखनीय है।

७ युद्ध अथवा महायुद्ध सम्बन्धी द यो को रगमच पर दिखाना या तो असम्भव है या बहुत ही परिश्रमसाध्य है। अत रगमच पर युद्ध दिखाने के बदले मानव के मन म युद्ध सम्बन्धी उठ भाव सवेगो का दिखाना सहज साध्य है। डा० शिवप्रसाद सिंह ने 'घाटियाँ गूँजती हैं' नाटक म आक्रमणकारी चीनियों के प्रतिकार के हेतु भारतीयो के मन में ऊठ भाव-सवेगो को दिखाया है। इन भाव सवेगो को दिखाने के पीछे और एक हेतु है। वह यह है कि पहले भाव सवेगो का महत्त्व होता है उसके बाद क्रियाओ का। अत नाटककार ने युद्ध को दिखाने के बदले युद्ध की पार्श्व भूमि पर भारतीयो के भाव सवेगो को दिखाने को महत्त्व का स्थान दिया है।

८ प्रदीर्घ समय तक चलने वाले सघर्ष को दिखाने के हेतु विशिष्ट शैली को अपनाया जा सकता है। जगदीशचन्द्र माथुर कृत पहला राजा मे सूत्रधार और नटी कथा निवेदन तथा कथा आलोचना करते रहते हैं। बीच बीच मे कथा घटती रहती है। विष्णु प्रभाकर कृत 'युगे युगे क्रान्ति' और डा० लक्ष्मीनारायण लाल कृत नाटक तोता मना' में इस शैली के द्वारा ही कथानक तथा सघर्ष का प्रभावशाली उद्घाटन किया गया है।

(आ) पात्र पर सघर्ष तत्त्व का प्रभाव

यह देख लिया गया है कि नाटक मे निरीच्छ निष्क्रिय तथा सघर्षहीन पात्र के बदले इच्छाशील, क्रियाशील तथा सघर्षशील पात्र का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इच्छाशील, क्रियाशील, सघर्षशील पात्र के बल पर ही नाटक प्रभावकारी रूप धारण करता है। 'कोणार्क, लहरो के राजहस' आदि नाटक सघर्षशील पात्रो के कारण स्मरणीय बन पडे हैं। इन नाटको म पात्रो के चरित्र का उद्घाटन सघर्ष से ही हुआ है। यहाँ तक कि इन पात्रो का बडप्पन भी सघर्ष से ही उजागर हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि सघर्ष चरित्रोद्घाटन का एक समर्थ माध्यम है।

(इ) सवाद तथा भाषा-शैली पर सघर्षतत्त्व का प्रभाव

सवाद तथा भाषा शैली पर भी सघर्षतत्त्व का प्रचुर प्रभाव पडता है। सघर्ष के कारण भावो म तीव्रता आ जाती है। इसम सवाद तथा भाषा विशिष्ट रूप धारण

है। मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' का आरम्भ इस प्रकार ही हो गया है। अम्बिका और मल्लिका के मध्य जो संघर्ष है वह बहुत पहले ही छिड़ गया है। अतः इस नाटक का आरम्भ इस संघर्ष के एक क्षण में होता है जो मल्लिका और अम्बिका को कालिदास के विषय में कोई निर्णय करने को उत्तेजित करता है। इससे नाटक का आरम्भ दर्शकों के मन में जिज्ञासा को जन्म देता है। मोहन राकेश के 'लहरों के राजहंस' का आरम्भ श्यामांग के आन्तरिक संघर्ष से हो गया है, जो प्रतीकात्मक रूप में नन्द के ही उस आन्तरिक संघर्ष को उजागर कर रहा है जो बहुत पहले छिड़ गया है। जयशंकर प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त' का आरम्भ भी स्कन्दगुप्त के उस आन्तरिक संघर्ष से हुआ है जो बहुत पहले छिड़ गया है। इस सन्दर्भ में विनोद रस्तोगी कृत 'बर्फ की मीनारें' डा० लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'सूर्यमुख' आदि नाटक उल्लेखनीय हैं।

२. नाटक का आरम्भ संघर्ष से होता है पर वह संघर्ष नाटक के आरम्भ के साथ अथवा आरम्भ की कुछ घटनाओं के उपरान्त छिड़ा हुआ रहता है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल के 'रक्त कमल' और 'कलंकी' में नाटक के आरम्भ में ही संघर्ष छिड़ा हुआ है। जगदीशचन्द्र माथुर के 'कोणार्क' में धर्मपद के आगमन से संघर्ष का बीजारोपण हो गया है। उपेन्द्रनाथ अश्क के 'अलग अलग रास्ते' और रेवतीसरन शर्मा के 'चिराग की लौ' में आरम्भ की कुछ घटनाओं के पश्चात् संघर्ष छिड़ गया है।

३. नाटक का आरम्भ इस प्रकार की पृष्ठभूमि में होता है जो आगे चलकर (प्रखर) संघर्ष को जन्म देती है। अमृतराय के 'चिन्दियों की एक झालर' का आरम्भ इस प्रकार की पृष्ठभूमि में हुआ है जो आगे चलकर नन्दन और मंगल में प्रखर संघर्ष छेड़ता है।

४. अपेक्षित प्रभावोत्पत्ति के लिए नाटक के अन्तर्गत संघर्ष का बुद्धिसंगत तथा क्रमिक विकास होना अपरिहार्य है। कुछ नाटक संघर्ष की चरम सीमा पर समाप्त होकर अत्यन्त प्रभावी ढंग से प्रमाणित होते हैं। नन्द का आन्तरिक संघर्ष चरम सीमा पर पहुँचने पर 'लहरों के राजहंस' नाटक का अन्त हो गया है। इससे प्रस्तुत नाटक अत्यधिक प्रभावशाली बन पड़ा है। बाह्य संघर्ष के चरम सीमा पर पहुँचने पर ही 'कोणार्क', 'चिराग की लौ' और 'आधे अधूरे' नाटक समाप्त हो गये हैं।

५. चरम सीमा पर पहुँचने के पूर्व संघर्ष का विकास घात प्रत्याघात की गति में होता है। अतः कथानक-संगठन में संघर्षोत्तेजक घटनाओं तथा क्रियाओं को महत्त्व का स्थान प्राप्त होता है। इससे कथानक में तनाव उत्पन्न होता है। साथ ही कथानक गतिमान हो जाता है। नाटक के कथानक का शिथिल एवं लम्बा होना अपेक्षित प्रभाव की दृष्टि से हानिकारक है। क्योंकि शिथिल कथानक में अपेक्षित प्रभाव की दृष्टि से संघर्ष का निर्वाह ठीक रीति से नहीं हो पाता। इसमें

व्यग्यात्मक सवाद एक-दूसरे पर इस प्रकार घात प्रतिघात करते हैं–

पुरुष एक– पर बात तो मेरे ही घर की हो रही है ।

स्त्री– तुम्हारा घर ! हूँ हूँ !

पुरुष एक– तो मेरा घर नही है यह ? कह दो नही है ।

स्त्री– सचमुच तुम अपना घर समझते इसे, तो ।

पुरुष एक– कह दो, कह दो, जो कहना चाहती हो ।

स्त्री– दस साल पहले कहना चाहिए था मुझे जो कहना चाहती हूँ ।

पुरुष एक– कह दो अब भी इससे पहले कि दस साल ग्यारह साल हो जायें ।

स्त्री– नहीं होने पायेंगे ग्यारह साल इसी तरह चलता रहा सब कुछ तो ।"[1]

वस्तुत बाह्य तथा आन्तरिक सघष के कारण भाषा में जो तीव्रता आ जाती है उससे सवाद भावात्मक काव्यात्मक, प्रतीकात्मक, साकेतिक, लाक्षणिक, ओजपूर्ण तथा व्यग्यात्मक शैलियों के रूप धारण करते हैं । अर्थात् इन सवादों की भाषा विविध शैलियों को ग्रहण करती है । 'आधे अधूरे' में पुरुष एक के भाव अत्यधिक तीव्र वनन के कारण भाषा प्रतीकात्मक तथा साकेतिक शैली ग्रहण करती है । सघष के कारण आविर्भूत उद्विग्नता का व्यक्त करते हुए पुरुष एक (महेन्द्रनाथ) कहता है– 'मैं इस घर में एक रबड स्टप भी नहीं, सिर्फ एक रबड का टुकडा हूँ–बार-बार घिसा जाने वाला रबड का टुकडा । इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है एक भी ऐसी वजह कि क्यों मुझे रहना चाहिये इस घर में ?'[2]

आन्तरिक सघष के कारण 'सूयमुख' में वनुरती, दपन' में पूर्वी और 'लहरों के राजहस' में नन्द की भाषा भावात्मक, काव्यात्मक, प्रतीकात्मक, लाक्षणिक तथा साकेतिक बन पडी है ।

प्रद्युम्न से मिलने को अधीर बनी वनुरती परिचारिका से कहती है– मेरे अन्त पुर के द्वार उनके लिये सदा खुले रहते हैं पर वे द्वार पर दस्तक देकर लौट जाते हैं । मैं नित्य उनके लिये अपने द्वार पर दीपावली सजाये बैठी रहती हूँ, पर अन्त पुर में उनके पैर रखते ही जैसे उसी कमल कोश से बादल और बिजली तडप उठती है और मेरे अन्त पुर के सारे दीप बुझ जाते हैं ।[3]

सभी ओर से असहाय होने पर नन्द का आन्तरिक सघष चरम सीमा को पहुँच जाता है । उस समय नन्द अपने ही से कहता है– 'लगता है मैं चौराहे पर

१ मोहन राकेश–आधे अधूरे (पृ० २१–२२) प्रथम सस्करण, सन् १९६९ ई०
२ वही (पृ० ४४) (प्रथम सस्करण, सन् १९६९ ई०)
३ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल–सूयमुख (पृ० ५४) प्रथम सस्करण, सन् १९६८

करते हैं। संघर्ष सम्बन्धी वेदना, आकुलता, उद्वेग और रोष प्रकट करते समय संवाद कभी छोटे तो कभी बड़े रूप धारण करते हैं। इस समय संवाद के वाक्य टूटे-फूटे भाव अधूरे होते हैं। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित संवाद उल्लेख्य हैं।

चिन्दियों की एक झालर में पिता (नन्दन) और पुत्र (मंगल) का संघर्ष इस प्रकार व्यक्त हुआ है –

नन्दन– मैं तुम्हारा बाप हूँ मंगल, मैं हूँ मैंने पढ़ाया तुझे

मंगल– होंगे किसी के बाप होंगे, मैं किसी बाप को नहीं जानता।

दादा– मंगल !

मंगल– मैं तो बस अपनी माँ को जानता हूँ जिसने पराये मोटे मोटे काम करके बर्तन माँजकर, कपड़े धोकर, खाना पकाकर मुझे पाला-पोसा, बड़ा किया, जब आप जेल की हवा खा रहे थे। मैं क्या जानूँ कौन मेरा बाप है, बड़ा किया आपने मेरे लिए? मेरे मरने के डर से माँ ने मुझे बी० ए० कराया। आप चाहते तो क्या मुझे कहीं लगा न सकते थे? नौकरी न दिला सकते थे? जिनके लोग आज ऊँची ऊँची कुर्सियों पर बैठे हैं, सबको कहते जाते हैं और सब आपको जानते हैं, बस जबान हिलाने भर की बात थी, उतना भी तो हुआ नहीं आपसे।

नन्दन– मैं नहीं जा सकता किसी से कहने कि मेरे बेटे को कहीं नौकरी दिलवा दो।

मंगल– हर बात में तो इज्जत जाती है आपकी।

नन्दन– क्यों तू मैं अपमान किया करूँ, जो मुझसे सपने में न सधेगा।[1]

इस संवाद में संघर्ष के कारण भाषा ने व्यंग्यपूर्ण शैली का रूप धारण किया है। संघर्ष के कारण आषाढ़ का एक दिन में अम्बिका की भाषा ने मार्मिक व्यंग्य का रूप धारण किया है। इसलिए अम्बिका मल्लिका की प्रेम भावना पर व्यंग्य करते हुए कहती है– माँ का जीवन भावना नहीं कर्म है। इस घर में रहकर कुछ करना है।[2] अलग-अलग रास्ते में संघर्ष के कारण ही पूरन की भाषा ने तीखे व्यंग्य का रूप धारण किया है। इसलिए क्रान्तिकारी पूरन घर-परिवार के समय पुरातनमतवादियों पर व्यंग्य करते हुए कहता है– चला गया। इन चिताओं और पत्नियों में कोई अन्तर नहीं।[3]

जिस संवाद की भाषा संघर्ष के कारण व्यंग्यपूर्ण शैली का रूप धारण करती है, वे संवाद बड़े मार्मिक होते हैं। अतः व्यंग्यात्मक संवाद नाटक संवादों की शोभा को बढ़ाता है। आधे अधूरे में स्त्री (सावित्री) और पुरुष एक (महेन्द्रनाथ) के

---

१ अमृतराय–चिन्दियों की एक झालर–(पृ० ८०–८१) प्रथम सं० १९६० ई०

२ मोहन राकेश–आषाढ़ का एक दिन (पृ० १०) प्रथम संस्करण सन् १९५८ ई०

३ उपेन्द्रनाथ अश्क–अलग अलग रास्ते (पृ० ११३) द्वि० संस्करण।

खड़ा एक नंगा व्यक्ति हूँ जिसे सभी निगाहें टटोल लेना चाहती हैं और अपने को ढकने के लिए उसके पास कोई आवरण नहीं है। परन्तु मैं इस असहायता की स्थिति में नहीं रह सकता। तब प्रश्न उन्होंने पूछे थे, अब मुझे जाकर उनसे कई कई प्रश्न पूछने होंगे।[1] जीने की इच्छा को कितने कितने प्रश्नों ने एक साथ घेर लिया है। व्याघ्र से लड़कर भी मन को शान्ति नहीं मिली। लगता है अभी और लड़ना है, बहुत लड़ना है, ऐसे किसी से जिसके पास लड़ने के लिए भुजाएँ नहीं हैं।" इससे विदित होता है कि आंतरिक संघर्ष तीव्र बनने पर संवाद तथा भाषा भावात्मक काव्यात्मक प्रतीकों से युक्त तथा सांकेतिक शब्दों का ग्रहण करते हैं।

संघर्ष से उत्पन्न क्षोभ अभिव्यक्त होते समय संवाद और भाषा ओजपूर्ण आवेगपूर्ण शब्दों का ग्रहण करते हैं। वीर उत्साही युवक धर्मपद चालुक्य की उद्दण्ड चुनौती का उचित उत्तर उस समय चालुक्य के दूत से ओजपूर्ण भाषा में कहता है—"तो सुनो गवाक्षिक। अपने नये स्वामी के पास यह संदेश मेरा लेकर जाओ कि कलिंग नरेश श्री नरसिंह देव महाराज अत्याचारी विश्वासघातियों की धमकियों की चिन्ता नहीं करते। वे आज अकेले नहीं हैं। आज उनके पास वह शक्ति है जिससे धरती डोलेगी, दीन निर्धन प्रजा की शक्ति जो कोणार्क के शिल्पियों और मजदूरों में रुद्र सेनाओं का बल भर देगी। कोणार्क का मन्दिर आज दुर्ग का काम देगा। जाओ हमें चुनौती स्वीकार है।[2]

ओजपूर्ण शब्दों से संवादों में गति आ जाती है। साथ ही वह घात प्रतिघात तथा व्यंग्यात्मक शब्दों को भी अपना सकता है। इस सन्दर्भ में 'चिराग की लौ' के (किशोर और तारा के) तथा 'रक्त कमल' के (महावीर और कमल के) संवाद विचारणीय हैं।

किशोर—एक के सौ सवा सौ रु० में होने के बाद कैसे चलेगा ?

तारा—मुझे कुछ करना होगा।

किशोर—तुम्हें ?

तारा—हाँ-साला तनख्वाह में गुजारा नहीं होता।

किशोर—(चिल्लाकर) तनख्वाह के आगे यह गाली मत लगाओ।

तारा—लगाना होगा। तनख्वाह में गुजारा नहीं होता।

किशोर—पहले कैसे होता था ?

तारा—मैं बावरचिन और कहार की तरह बनी रहती थी।

किशोर—(चीख सी मारकर) तारा !

---

१ मोहन राकेश—लहरों के राजहंस पृ० १४० (संस्करण १९६८ ई०)

२ जगदीशचन्द्र माथुर—कोणार्क (पृ० ५८) नवा संस्करण, १९६८ ई०

तारा– हा । पहले मैं हर वात पर अपना मन मारती थी ? अपनी इच्छाओ को दबाती थी । इस अधेरी कोठरी मे

किशोर–(भावावेश में) तारा, आज यह कमरा तुम्हारे लिय अधेरी कोठरी हो गया ?

तारा– हा । लेकिन अब मुझमे ऐस नही रहा जायगा । मैं कुछ करूँगी ।

किशोर–(घृणा से) तुम कुछ नहीं करोगी–सिर्फ होठो पर सुर्खी लगाकर और छ गिरह का ब्लाउज पहन कर झीनी झीनी साडी मे अपना बदन दिखाती फिरोगी ।

तारा– (चिल्लाकर) किशोर !

किशोर–ओह ! अब तुम्हारे गल क स्लैंडम इतने काम करन लग ? [1]

यह ओजपूर्ण तथा व्यग्यपूर्ण सवाद ईमानदार इ कमटैक्स इसपक्टर किशोर और भ्रष्टाचारियों क जाल म फँसी उसकी पत्नी तारा का है। इस सन्दभ मे कमल और महावीर का सवाद भी दृष्टव्य है।

कमल– य हाथ मिट्टी क नहीं हैं कि कोई इन्ह काट ले जाय। य हाथ दिशाएँ हैं दिशाएँ।

महावीर– ऐसा दिशाएँ जिनमे सिफ झूठ और फरेब है, जिनमे सिफ गन्दगी और बेईमानी है।

कमल– य विशषताएँ देखन वाले की आख मे है। दिशाएँ सदा निमल होती हैं। [2]

यह ओजपूर्ण तथा व्यग्यात्मक सवाद समाजवादी युवक कमल और पूँजीवादी महावीर का है।

उपयुक्त उदाहरणो में नन्द के उस स्वगत कथन का भी उल्लेख किया गया है जो नन्द क तीव्र आन्तरिक सघर्ष को अभिव्यक्त करता है। इससे ज्ञात होता है कि आन्तरिक सघर्ष की अभिव्यक्ति क लिए स्वगत कथन अत्यधिक उपयुक्त होता है। तभी तो नाटक म स्वगत कथन का विशेष प्रयोग किया जाता है।

आन्तरिक सघर्ष की अभिव्यक्ति के लिए विशिष्ट सवाद शैली को भी प्रयुक्त किया जाता है। यह सवाद शैली स्वगत कथन स थोडी भिन्न होती है। आन्तरिक सघर्ष से ग्रस्त पात्र एकान्त म स्वय स बोलने लगता है। उस समय अचानक उस अज्ञात आवाज सुनने को मिलती है। यह अज्ञात आवाज उस पात्र के विरोधी मन की आवाज होती है। इस प्रकार की सवाद-शैली का प्रयोग विष्णु प्रभाकर क

१ रवतीसरन शर्मा–चिराग की लौ–(पृ० ७१) प्रथम स० सितम्बर १९६२ ई०

२ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल–रक्त कमल (पृ० ३७) तृतीय स० सन् १९६६ ई०

'डाक्टर'[1] नाटक में किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्रभावशाली संघर्ष तत्व नाटक को विशिष्ट, मार्मिक, प्रभावकारी एवं रमणीय रूप प्रदान करता है। सारांश यह कि नाटक के विभिन्न तत्वों पर संघर्ष तत्व का विशिष्ट अपूर्व तथा मनोहारी प्रभाव पड़ता है।

५ संघर्ष के प्रकार

नाटक में मुख्यतः दो प्रकार का संघर्ष होता है—(१) बाह्य संघर्ष और (२) आंतरिक संघर्ष।

(अ) मनुष्य जब बाह्य बाधाओं से संघर्ष करता है तब बाह्य संघर्ष का आरम्भ होता है। मनुष्य जब अपनी अनिश्चयात्मक तथा दुविधाग्रस्त मनःस्थिति से संघर्ष करता है तब आन्तरिक संघर्ष का आरम्भ होता है।

मोहन राकेश के 'लहरों के राजहंस' में नन्द, विलासी तथा महत्वाकांक्षिणी सुन्दरी जीवन का निरंतर भोग करना चाहता है। लेकिन उसके भोग में एक बहुत बड़ी बाधा उपस्थित हुई है। कपिलवस्तु पर बुद्ध की विरक्ति का भयावह छाया छाया हुई है। पूरे नाटक में सुन्दरी अपनी आसक्ति की जीत तथा बुद्ध की विरक्ति की पराजय के हेतु उस भयावह छाया से संघर्ष करती है। यह हुआ बाह्य संघर्ष।

लेकिन इस नाटक में नन्द का संघर्ष आंतरिक संघर्ष है। क्योंकि नन्द अपनी दुविधाग्रस्त एवं अनिश्चयात्मक मनःस्थिति से संघर्ष कर रहा है। नन्द का मन कभी भोग की ओर खींचा जा रहा है तो कभी विरक्ति की ओर। वह निर्णय नहीं कर पा रहा है कि अपने जीवन में किसे स्वीकार किया जाना ठीक होगा — भोग को या विरक्ति को?

(आ) शेक्सपियर के 'हेमलेट' नाटक में एक ही व्यक्ति का बाह्य तथा आंतरिक संघर्ष है। प्रमुख पात्र हेमलेट एक ओर बाह्य विरोध से संघर्ष कर रहा है, तो उसी समय दूसरी ओर अपनी दुविधाग्रस्त मनःस्थिति से संघर्ष कर रहा है।[2] जयशंकर 'प्रसाद' के 'स्कन्दगुप्त' में भी नायक स्कन्दगुप्त की दशा हेमलेट जैसी ही है। स्कन्दगुप्त एक ओर नाटक के अंत तक अपनी अनिश्चयात्मक मनःस्थिति से संघर्ष कर रहा है तो दूसरी ओर वह देश रक्षा के हेतु आक्रामक हूणों तथा अपने ही परिवार के षड्यन्त्रियों से संघर्ष कर रहा है। इन दो नाटकों में बाह्य संघर्ष के

---

१ विष्णु प्रभाकर–डाक्टर (पृ० ८१, ८२, १२६) पाँचवाँ सं० सन १९६६ ई०

2 Thus Hamlet's conflict is a mental one but it is also a conflict with the king with Rosencrantz and Guildenstern with the Queen, with Laertes with Ophelia. (P 28)

—Milton Marx–The Enjoyment of Drama (Edition 1961)

कारण आन्तरिक सघष छिड गया है ।

बबर हूणो क आक्रमण के समय गहृकलह को देखकर स्कन्दगुप्त अपने अधिकार के प्रति उदास हो जाता है । ऐसी दशा म स्कन्दगुप्त निणय नही कर पाता कि दश की रक्षा के हतु उस क्या करना चाहिए । उस समय स्कन्दगुप्त का अपनी ही अनिणयात्मक मन स्थिति से सघष छिडता है ।

(इ) परिस्थिति विशेष म आन्तरिक सघष बाह्य सघष पर प्रभाव करता है। इससे बाह्य सघष प्रखर अथवा कमजोर हो सकता है । आन्तरिक सघष स ग्रस्त नन्द न सुन्दरी स सघष कर सकता है, न बुद्ध से । अत मोहन राकेश के "लहरों के राजहस' म प्रखर बाह्य सघष के बदले कमजोर बाह्य सघष है । ऐसी ही दशा डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के दपन' नाटक म प्रधान पात्र 'दपन' की है । आन्तरिक सघष ग्रस्त दपन प्रतिकूल परिस्थिति स प्रखर सघष नही कर सकती । परिणामत इस नाटक मे अत्यन्त कमजोर बाह्य सघष है ।

(ई) लेकिन जगदीशचन्द्र माथुर के 'कोणाक म अन्त म विशु का आन्तरिक सघष बाह्य सघष की प्रखरता को बढाता है । विशु को पता चलता है कि धमपद उसका पुत्र है उस समय विशु चालुक्य स धमपद के प्राणो की रक्षा की भीख मागने का विचार करता है । लेकिन धमपद विशु को वसा करने स रोकता है और कोणाक की रक्षा के लिए उत्तेजित करता है । इससे विशु म आन्तरिक सघष छिडता है । एक ओर पुत्र के प्राणो की रक्षा का प्रश्न है, तो दूसरी ओर कोणाक शिल्पी अर्थात कारीगर की कला—की रक्षा का प्रश्न है । क्षणभर विशु इन दो प्रश्नो म से किसी एक प्रश्न को चुनने का निणय नही कर पाता । लेकिन वही विशु क्षणभर के अनन्तर कोणाक को शिल्पी की पराजय का प्रतीक न बनने दने की काक्षा से प्रखर सघर्ष छडता है और कोणाक को गिराकर उसके नीचे विश्वासघातियों का अन्त कर देता है । इसस प्रतीत होता है कि आन्तरिक सघष कभी कभी प्रखर बाह्य सघष छेडता है ।

उपर्युक्त विवेचन स यह विदित होता है कि परिस्थिति विशेष म बाह्य सघष और आन्तरिक सघष परस्पर प्रेरक तथा परस्परपूरक होते हैं ।

(५) बाह्य सघष

(१) बाह्य सघष दो अथवा अनेक पक्षो म छिडता है । इनम से कोई दमनशील (Dominative) अथवा आक्रामक (Aggressive) होता है तो दूसरा रक्षणशील (Defensive) होता है । दमनशील पक्ष बुरे अथवा अच्छे हेतु को मन म लेकर अन्य पक्ष का दमन करता है । रक्षणशील पक्ष अपनी बुराई अथवा अच्छाई की रक्षा के हेतु सघष करता रहता है । 'स्कन्दगुप्त म अनन्तदेवी और हूणो का दमनशील पक्ष अपने दुष्ट हेतुओ की सफलता के लिए दमनशील बन गया है । इसके

विरुद्ध स्कन्दगुप्त का रक्षणशील पक्ष महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अर्थात् देश की रक्षा के लिए रक्षणशील बन जाता है। लेकिन डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के 'रक्तकमल' में कमल का पक्ष अच्छाई की स्थापना के हेतु दमनशील पक्ष बन जाता है तो महावीर का पक्ष प्रस्थापित बुराई की रक्षा के हेतु रक्षणशील पक्ष बन जाता है। अतः यह तथ्यपूर्ण है कि परस्पर विरुद्ध इच्छाओं तथा हेतुओं के कारण दमनशील पक्ष और रक्षणशील पक्ष के मध्य बाह्य संघर्ष छिड़ता है।

(२) कभी ऐसा भी हो सकता है कि कोई पक्ष जिस समय दमनशील होता है उसी समय रक्षणशील भी हो सकता है। 'लहरों के राजहंस' में महत्त्वाकांक्षिणी सुन्दरी का पक्ष जिस समय बुद्ध द्वारा प्रचलित विरक्ति मार्ग का दमन करने के हेतु दमनशील बन जाता है उसी समय वह अपने जीवन-संबंधी सिद्धान्तों के रक्षण और प्रसार के हेतु रक्षणशील भी बन जाता है।

(३) उक्त दो पक्षों में कभी स्थिति परिवर्तन होता है तो कभी बिल्कुल नहीं होता। कोई पक्ष नाटक के अन्त तक दमनशील पक्ष के रूप में ही रहता है तो कोई पक्ष रक्षणशील पक्ष के रूप में। 'स्कन्दगुप्त' में स्कन्दगुप्त का पक्ष अन्त तक रक्षणशील ही रहा है। ठीक इसके विरुद्ध अनन्तदेवी और हूणों का पक्ष अन्त तक दमनशील तथा आक्रामक रहा है। लेकिन अन्त में दमनशील पक्ष की पराजय और रक्षणशील पक्ष की जीत हुई है। 'कोणार्क' में भी विशु और धर्मपद के रक्षणशील पक्ष की जय और आक्रामक चालुक्य की हार हुई है। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के 'सूर्यमुख' में वज्र और साम्ब के पक्षों में से किसी की जीत नहीं होती, दोनों की भी हार होती है। इन दो पक्षों की यह भी विशेषता रही है कि कभी वज्र का पक्ष दमनशील रहा है तो कभी साम्ब का पक्ष। कभी वज्र का पक्ष रक्षणशील रहा है तो कभी साम्ब का पक्ष। इस प्रकार इन दोनों में स्थिति परिवर्तन होता रहा है।

(४) कभी कभी रक्षणशील पक्ष दमनशील तथा आक्रामक बन जाता है और नाटक के अन्त तक वह उसी रूप में रहता है। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के 'कर्फ्यू' में दृष्ट का रक्षणशील पक्ष आगे चलकर दमनशील तथा आक्रामक बन जाता है। जयशंकर प्रसाद के 'ध्रुवस्वामिनी' में भी ध्रुवस्वामिनी का रक्षणशील पक्ष दमनशील पक्ष बन जाता है और अन्त तक उसी रूप में रहता है।

(५) कभी कभी दो पक्षों में से किसी की भी हार जीत नहीं होती है। उपेन्द्रनाथ अश्क के 'अलग अलग रास्ते' में न रूढ़िवादी पक्ष की हार या जीत हुई है, न क्रान्तिकारी पक्ष की। मोहन राकेश के 'आधे अधूरे' में न पत्नी सावित्री के दमनशील पक्ष की हार या जीत हुई है न पति महेन्द्रनाथ के रक्षणशील पक्ष की। मन्नू भण्डारी के 'बिना दीवारों के घर' में पति अजित के दमनशील पक्ष और पत्नी

शोभा के 'रक्षणशील पक्ष' दोनो म से किसी भी पक्ष की न हार होती है, न जीत ।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि बाह्य सघप म कोई दमनशील पक्ष होता है तो कोई रक्षणशील पक्ष । बाह्य सघर्ष के विभिन्न प्रकारा म य दानो पक्ष विद्यमान होते हैं ।

(फ) बाह्य सघप के प्रकार

नाटक मे परिस्थिति विशेष के सदभ मे बाह्य सघर्ष के अनेक प्रकार दिखाई देत हैं ।

१ व्यक्ति और नियति अथवा भाग्य का सघप
२ व्यक्ति और प्रकृति का सघर्ष
३ व्यक्ति और व्यक्ति का सघर्ष
४ व्यक्ति और समुदाय का सघर्ष
५ समुदाय और समुदाय का सघप

१ व्यक्ति जब देखता है कि नियति अथवा भाग्य ने उसके लिए कोई माग बना रखा है तब व्यक्ति उस माग स मुक्त होन तथा अपनी इच्छा के अनुसार जीने के हेतु नियति अथवा भाग्य से सघप करने लगता है ।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल क सूयमुख म प्रद्युम्न और वनुरती अपने प्रेम को सफल बनाने के हेतु नियति स सघप कर रह हैं । कामदेव और रति के रूप मे प्रद्युम्न और वनुरती का प्रेम जन्म जन्मातर स चला आ रहा है । पर इस जन्म म नियति ने वनुरती को प्रद्युम्न की विमाता बनाया है । एसी स्थिति मे भी प्रदम्न और वेनुरती अपने प्रम के लिए नियति स सघप करत हैं ।

इस सघप के सदभ म ग्रीक नाटककार साफाक्लीज का 'ईडिपस द किंग' नाटक उल्लेखनीय है । इस नाटक मे नायक ईडिपस नियति द्वारा निर्धारित माग से मुक्त होकर अपनी इच्छा के अनुकूल जीने के हेतु नियति से सघप कर रहा है।[1]

२ व्यक्ति सुख समाधानपूवक जीने की इच्छा से प्रतिकूल प्राकृतिक परिस्थिति को अनुकूल बनाने के हेतु प्रकृति स सघर्ष छेडता है । हिन्दी नाटको म इस सघप का अभाव है । इसके अभाव का मुख्य कारण यह रहा हागा कि इसे रगमच पर दर्शाना बहुत परिश्रम का काम है । केवल जगदीशचन्द्र माथुर के 'पहला राजा' म कवष और उर्वी का प्रतिकूल प्रकृति स सघप उपलब्ध है । कवप और उर्वी जल के द्वारा ब्रह्मावत की भूमि को उपजाऊ बनाने के हेतु सरस्वती म विशाल नहर

1 'In Oedipus the King the conflict is between Fate which dominates men's lives, and Oedipus, who is trying to avoid what has been decided for him' (P 27)

—Milton Marx–The Enjoyment of Drama (Edition, 1961)

मानकर भूख, दरिद्रता को जीतने और बड़ी नहर, बाँध का निर्माण करने के लिए प्रकृति से संघर्ष कर रहे हैं। प्रस्तुत संघर्ष सुन्दर संघर्ष है।

३. परस्पर विरुद्ध इच्छाओं, भावनाओं तथा विचारधाराओं के कारण व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष छिड़ता है। उपेन्द्रनाथ अश्क के 'अलग अलग रास्ते' में रानी और पूरन का आन्तरिक संघर्ष उन व्यक्तियों से है जो समाज द्वारा निर्मित विघातक रूढ़ियों को सुरक्षित रखना चाहते हैं। यहाँ रानी और पूरन की सदाचारपूर्ण इच्छा का भावात्मक सम्बन्ध है अपने नारीत्व तथा पुरुषत्व से और निषेधात्मक सम्बन्ध है—समाज द्वारा निर्मित विघातक रूढ़ियों से। डा० लक्ष्मीनारायण लाल के 'रक्तकमल' में भी कमल का अपने उस बड़े भाई से संघर्ष है जो शासन शक्तियों का पालन कर स्वार्थपूर्ति के हेतु समाज में विषम अर्थ-व्यवस्था को सुरक्षित रखना चाहता है। यहाँ कमल की सदाचारपूर्ण इच्छा का भावात्मक सम्बन्ध समाज में सम अर्थव्यवस्था-स्थापन से है तो निषेधात्मक सम्बन्ध समाज में प्रचलित विषम अर्थ व्यवस्था विनाश से है। मोहन राकेश के 'आधे अधूरे' में प्रत्येक व्यक्ति अपना हित ध्यान में रखकर एक-दूसरे से संघर्ष कर रहा है।

४. व्यक्ति और समुदाय का संघर्ष तभी छिड़ता है जब विशिष्ट इच्छा से संघर्ष प्रवृत्त हुआ व्यक्ति विशिष्ट हेतु से संघर्ष प्रवृत्त हुए अनेक व्यक्तियों के समूह अथवा समुदाय से संघर्ष करता है। 'सूर्यमुख' में अकेले प्रद्युम्न का वज्र के नेतृत्व में संघर्ष प्रवृत्त हुई सेना से संघर्ष है। रामकुमार वर्मा के 'विजय पर्व' के प्रथम अंक में अकेले अशोक का अपने भाइयों के समुदाय से संघर्ष है। [illegible] के 'मास्टरजी' में अकेले मास्टर का गाँव के उन व्यक्तियों के समुदाय से संघर्ष है जो गाँव को अपने नियन्त्रण में रखने के लिए समाज विघातक रूढ़ियों को सुरक्षित रखना चाहते हैं।

५. किसी कारणवश समुदायों में समुदाय और समुदाय का संघर्ष छिड़ता है। दो अथवा अनेक दलों में छिड़े हुए संघर्ष का भी इसमें समावेश होता है।[1] धर्मों में, सम्प्रदायों में तथा राजनैतिक दलों में छिड़े हुए संघर्ष को भी इसमें समाविष्ट किया जा सकता। 'कोणार्क' में शिल्पियों का विश्वासघाती चालुक्य की सेना से संघर्ष है। धर्मपद के नेतृत्व में सभी शिल्पि कलाकार जाति तथा अत्याचारों के दमन के लिए प्रखर संघर्ष करते हैं।

सन् १९६२ में हुए भारत-चीन संघर्ष अथवा तदनन्तर सन् १९६५ में हुए भारत

---

1. A World War is a conflict between groups and other groups which has deep social implications (P 163)
—J. H. Lawson–Theory and Technique of Play Writing (Edition 1969)

पाकिस्तान संघर्ष सम्बन्धी नाटकों में समुदाय और समुदाय के संघर्ष को स्थान मिला है। डॉ० शिवप्रसादसिंह के 'घाटियाँ गूँजती हैं' में कुछ भारतीय कुछ चीनियों से संघर्ष करते हैं। ज्ञानदेव अग्निहोत्री के 'नफा की एक शाम' में भारतवासी देवल, नीमो मातई, गोगो आदि आक्रामक चीनी वागचू और उसके साथियों से संघर्ष करते हैं। ज्ञानदेव अग्निहोत्री के वतन की आबरू" में भारतीय कश्मीर के देशभक्त इला हीबख्श और उनकी पशमीना तथा रेशमा नामक लड़कियाँ आक्रामक पाकिस्तानियों से संघर्ष करती हैं। इन नाटकों की यह विशेषता है कि जो परस्पर विरुद्ध व्यक्ति संघर्ष कर रहे हैं वे अपने अपने देश अर्थात समुदाय के प्रतिनिधि हैं। ये व्यक्ति जब लड़ने लगते हैं, तब लगता है कि इनके रूप में वे देश अर्थात वे समुदाय लड़ रहे हैं जिनके ये व्यक्ति प्रतिनिधि हैं। अतः इस संदर्भ में किसी देश का कोई व्यक्ति दूसरे देश के किसी व्यक्ति से संघर्ष करता है, तो उसका समावेश 'समुदाय और समुदाय' के संघर्ष में ही किया जायगा।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'निस्तार' में मानवोचित अधिकारों को पाने तथा अत्याचारी के अत्याचार को मिटाने की तीव्र इच्छा से अस्पृश्यों का अत्याचारी स्पृश्यों से संघर्ष है।

इस प्रकार बाह्य संघर्ष के मूलभूत पाँच प्रकार हैं। लेकिन बाह्य संघर्ष के विभिन्न प्रकारों के सन्दर्भ में और एक तथ्य का निर्देश करना आवश्यक प्रतीत होता है। वह यह कि बाह्य संघर्षों के प्रकारों में कोई नपीतुली विभाजन रेखा नहीं है। अतः किसी बाह्य संघर्ष का अन्य अनेक प्रकारों में भी समावेश किया जा सकता है। इस कथन का तात्पर्य यह है कि किसी एक प्रकार का बाह्य संघर्ष अन्य अनेक प्रकारों में सम्मिलित किया जा सकता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क के 'अलग अलग रास्ते' में पूरन और रानी का पुराणमतवादियों से जो संघर्ष है वह पारिवारिक सामाजिक तथा दो मान्यताओं का संघर्ष है। अमृतराय के 'चिन्दियों की एक झालर' में नन्दन और मंगल का पिता पुत्र का जो संघर्ष है वह व्यक्ति व्यक्ति का संघर्ष है ही साथ ही पारिवारिक और सैद्धांतिक संघर्ष भी है। नन्दन के जीवन विषयक सिद्धांत अलग हैं तो मंगल के भी अलग हैं। डा० लक्ष्मीनारायण लाल के 'रक्तकमल' में कमल और महावीर का भाई भाई का जो संघर्ष है वह व्यक्ति व्यक्ति का भी है और वह वर्ग संघर्ष तथा आर्थिक संघर्ष भी है। जगदीशचन्द्र माथुर के 'कोणार्क' में शिल्पियों का अत्याचारी चालुक्य की सेना से जो संघर्ष है वह समुदाय समुदाय का संघर्ष तो है ही, साथ ही वह श्रमिकों का अत्याचारी सत्ताधारी से वर्ग संघर्ष है।

व्यक्ति और व्यक्ति का संघर्ष कभी वास्तविक दृष्टि से व्यक्ति और समुदाय का संघर्ष होता है। रेवतीसरन शर्मा के 'चिराग की लौ' में किशोर का अपनी पत्नी

विरोध उत्पन्न हुआ है। उसे इन दोनों में से किसी एक को चुनने स्वीकार करने का निर्णय करना है। लेकिन नन्द नाटक के अन्त तक कोई निर्णय नहीं कर पाता। क्योंकि नन्द का मन एक ओर बुद्ध के उपदेशों में रुचि रखता है तो दूसरी ओर वही मन सुन्दरी के रूप पाश में बन्दी बनकर जीवन का भोग करना चाहता है। अतः नन्द कोई निर्णय करने में अपने को असमर्थ पाता है और अपने पर ही खीजता रहता है। इससे उसका आन्तरिक संघर्ष तीव्र बन जाता है। उसकी समझ में नहीं आता कि किस समय पर उसे क्या करना होगा। वह इच्छा न होते हुए भी सुन्दरी और बुद्ध की आज्ञा का पालन करता रहता है और स्वयं पर खीझता भी रहता है। बुद्ध के आदेशानुसार नन्द के केश काटे जाते हैं। उस समय भी नन्द बुद्ध का विरोध नहीं कर सकता। फलतः नन्द का आन्तरिक संघर्ष और तीव्र बन जाता है। वह दुविधाग्रस्त तथा अनिर्णयात्मक मनःस्थिति से मुक्ति पाने के लिए वन की ओर चला जाता है और वहाँ व्याघ्र से लड़ता है। व्याघ्र से लड़ने पर भी वह न किसी निर्णय पर पहुँच पाता है, न मन को शान्त कर सकता है। इसलिए वह कहता है—

याघ्र से लड़कर भी मन को शान्ति नहीं मिली। लगता है अभी और लड़ना है, बहुत लड़ना है। ऐसे किसी से जिसके पास लड़ने के लिए भुजाएँ नहीं हैं।[1]

इस प्रकार नन्द का आन्तरिक संघर्ष किसी निर्णय पर सहजता से पहुँचने वाला नहीं है।

जो व्यक्ति सत्वर निर्णय कर अपने आन्तरिक संघर्ष से मुक्त नहीं होता, वह खुद पर तथा दूसरों पर खीजता रहता है। वह निराश तथा उदास नजर आता है। उपेन्द्रनाथ अश्क के 'कैद' में अप्पी (अपराजिता) आन्तरिक संघर्ष के कारण स्वयं पर अपने बच्चों तथा पति पर खीझती रहती है। वह सदा निराश तथा उदास नजर आती है। ठीक ऐसी ही दशा उपेन्द्रनाथ अश्क के 'भँवर' में प्रतिभा की, विष्णु प्रभाकर के 'डाक्टर' में डा० अनीला और दया प्रकाश सिन्हा के 'मन के भँवर' में डॉ० वशिष्ठ की है।

'मन के भँवर' में डा० वशिष्ठ न कोई निर्णय कर पाते हैं न आन्तरिक संघर्ष से मुक्त होते हैं। वे अपने अस्थिर मन को रमाने के लिए रोगियों की सेवा में अपना समय बिताते हैं और अपने व्यवसाय में प्रशंसनीय प्रगति कर लेते हैं। किसी निर्णय के अभाव के कारण उनका आन्तरिक संघर्ष समाप्त नहीं होता और उसमें ही उनका करुण अन्त होता है।

उपर्युक्त उदाहरणों में निर्दिष्ट व्यक्तियों के क्रिया व्यापार तथा बोलने के ढंग में कभी कभी विक्षिप्तता भी दिखाई देती है। इसका कारण उनमें छिड़ा हुआ आन्तरिक संघर्ष ही है। अतः आन्तरिक संघर्ष से ग्रस्त व्यक्ति की दशा विचित्र एवं

---

१ मोहन राकेश—लहरों के राजहंस (पृ० १४९) संस्करण सन १९६८ ई०

नाटक में जो सघर्ष है वह वास्तविक दृष्टि में 'व्यक्ति और समुदाय' का सघर्ष है। किशोर इन्कमटैक्स में लेक्चरर होते हुए भी आदर्शवादी व्यक्ति है। किशोर ने प्रतिज्ञा की है कि वह कदापि रिश्वत लेकर किसी का काम नहीं करेगा बल्कि रिश्वत देकर गुप्त काम करवाने वाले भ्रष्टाचारियों को पकड़कर सजा दिलाएगा। लेकिन सारा भ्रष्टाचारियों की चाल में फँसकर स्वयं भ्रष्टाचारी बन जाता है। फलत पति-पत्नी में सघर्ष छिड़ता है। यह सघर्ष एक ओर से व्यक्ति और व्यक्ति का सघर्ष है तो दूसरी ओर से व्यक्ति और समुदाय का सघर्ष है। क्योंकि किशोर का केवल तारा से नहीं, बल्कि भ्रष्टाचारियों के समुदाय से सघर्ष है

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि किसी एक प्रकार का बाह्य सघर्ष अन्य उनके प्रकारों में समाविष्ट किया जा सकता है।

(ब) आतरिक सघर्ष

आन्तरिक सघर्ष वहाँ पर मिलता है जहाँ नाटक व्यक्ति और उसके मानस पर केन्द्रित हुआ रहता है।[1] यह सघर्ष व्यक्ति और उसकी विशिष्ट मन स्थिति से सबद्ध होता है। इस दृष्टि से आतरिक सघर्ष वह सघर्ष है जो व्यक्ति और उसकी दुविधाग्रस्त एव अनिर्णयात्मक मन स्थिति के मध्य छिड़ा हुआ रहता है।

(१) परिस्थिति विशेष के सन्दर्भ में व्यक्ति के सामने चुनाव का, निर्णय करने की समस्या उपस्थित होती है। व्यक्ति की इच्छाओं प्रवृत्तियों में विरोध उत्पन्न होता है। व्यक्ति उनमें से किसी एक को चुनकर स्वीकार करने अथवा बाधाओं के सन्दर्भ का निर्णय करना चाहता है। लेकिन वह निर्णय नहीं कर पाता। क्योंकि उसका मन कभी इधर खींचा जाता है, कभी उधर। इससे व्यक्ति की मन स्थिति एकदम अस्थिर हो जाती है। वह इतनी असमजस में पड़ जाता है कि उसकी समझ में नहीं आता कि उसे क्या करना चाहिए क्या निर्णय करना चाहिए। ऐसी अवस्था में व्यक्ति कोई निर्णय सहज और सत्वर नहीं कर सकता। व्यक्ति को कोई निर्णय करने के हेतु अपनी ही दुविधाग्रस्त तथा अनिर्णयात्मक मन स्थिति से सघर्ष करना पड़ता है। यह सघर्ष किसी निर्णय तक पहुँचने में कम अथवा अधिक समय लेता है। वास्तव में अधिक समय लेने की ही सभावना रहती है। अत किसी निर्णय तक पहुँचने के हेतु व्यक्ति द्वारा अपनी ही दुविधाग्रस्त एव अनिर्णयात्मक मन स्थिति से किया जाने वाला सघर्ष ही आतरिक सघर्ष है।

'नरों के राजस्व' में नन्द का आन्तरिक सघर्ष अत्यत मर्मस्पर्शी है। नन्द के मानस में प्रवृत्ति और निवृत्ति में भोग और त्याग में आसक्ति और विरक्ति में

1 The classic example of this type of conflict is of course hamlet The main conflict in the play is in Hamlet, s mind

—Milton marx—The Enjoyment of Drama (P 28 Edition 1961)

विरोध उत्पन्न हुआ है। उसे इन दोनो मे से किसी एक को चुनने, स्वीकार करने का निर्णय करना है। लेकिन नन्द नाटक के अन्त तक कोई निर्णय नही कर पाता। क्योकि नन्द का मन एक ओर बुद्ध के उपदेशो मे रुचि लेता है, तो दूसरी ओर वही मन सुन्दरी के रूप पाश मे बन्दी बनकर जीवन का भोग करना चाहता है। अत नन्द कोई निर्णय करने मे अपने को असमर्थ पाता है और अपने पर ही खीझता रहता है। इससे उसका आन्तरिक संघर्ष तीव्र बन जाता है। उसकी समझ मे नही आता कि किस समय पर उसे क्या करना होगा। वह इच्छा न होने हुए भी सुन्दरी और बुद्ध की आज्ञा का पालन करता रहता है और स्वयं पर खीझता भी रहता है। बुद्ध के आदेशानुसार नन्द के केश काटे जाते हैं। उस समय भी नन्द बुद्ध का विरोध नही कर सकता। फलत नन्द का आन्तरिक संघर्ष और तीव्र बन जाता है। वह दुविधाग्रस्त तथा अनिर्णयात्मक मन स्थिति से मुक्ति पाने के लिए वन की ओर चला जाता है और वहाँ व्याघ्र से लडता है। व्याघ्र से लडने पर भी वह न किसी निर्णय पर पहुच पाता है न मन को शान्त कर सकता है। इसलिए वह कहता है—"व्याघ्र से लडकर भी मन को शान्ति नही मिली लगता है अभी और लडना है बहुत लडना है ऐसे किसी से जिसके पास लडने के लिए भुजाएँ नही है।"[1] इस प्रकार नन्द का आन्तरिक संघर्ष किसी निर्णय पर सहजता से पहुँचने वाला नहीं है।

जो व्यक्ति सत्वर निर्णय कर अपने आन्तरिक संघर्ष से मुक्त नही होता वह खुद पर तथा दूसरों पर खीजता रहता है। वह निराश तथा उदास नजर आता है। उपेन्द्रनाथ अश्क के 'कैद' में अप्पी (अपराजिता) आन्तरिक संघर्ष के कारण स्वयं पर, अपने बच्चो तथा पति पर खीझती रहती है। वह सदा निराश तथा उदास नजर आती है। ठीक ऐसी ही दशा उपेन्द्रनाथ अश्क के 'भँवर' मे प्रतिभा की, विष्णु प्रभाकर के 'डाक्टर' मे डा सुनीला और दया प्रकाश सिन्हा के 'मन के भँवर' मे डा वशिष्ठ की है।

'मन के भँवर' में डा० वशिष्ठ न कोई निर्णय कर पाते है न आन्तरिक संघर्ष से मुक्त होते है। वे अपने अस्थिर मन को रमाने के लिए रोगियो की सेवा मे अपना समय बिताते है और अपने व्यवसाय मे प्रगतिमान प्रगति कर लेते हैं। किसी निर्णय के अभाव के कारण उनका आन्तरिक संघर्ष समाप्त नही होता, और उसमे ही उनका करुण अन्त होता है।

उपर्युक्त उदाहरणो मे निर्दिष्ट व्यक्तियो के क्रिया व्यापार तथा बोलने के ढंग मे कभी कभी विक्षिप्तता भी दिखाई देती है। इसका कारण उनमें छिडा हुआ आन्तरिक संघर्ष ही है। अत आन्तरिक संघर्ष से ग्रस्त व्यक्ति की दशा विचित्र एवं

1 मोहन राकेश—लहरो के राजहंस (पृ० १४९) संस्करण सन १९६८ ई०

न का दपन नामक व्यक्तित्व विघातक घम रूढि का शिकार बन गया है, ता 'पूर्वी नामक व्यक्तित्व जीवन का भोग करने की अदम्य इच्छा से प्रेरित होकर विघातक घम रूढि से मुक्त होने के हेतु प्रयत्नशील ह । फलत दपन मे आतरिक सघप छिडता है । उक्त दो उदाहरणो से विदित होता है कि दुहरे व्यक्तित्व के कारण मानव म आतरिक सघप छिडता ह ।

(३) मनोविज्ञान यह भी मानता है कि मनुष्य मे चेतन और अचेतन मन का तथा अह और नतिक अह का सघप छिडा रहता ह । परिस्थिति विशेष मे अह (Ego) के बल पर व्यक्ति समाज द्वारा प्रणीत नीति नियमो की अवहेलना कर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखने के लिए प्रेरित होता है । उस समय समाज के नीति नियमो मे अटूट विश्वास करने वाला नैतिक अह (Super Ego) नीति अनीति को ध्यान मे रखकर अह की असमयनीय क्रियाओं का विरोध करने लगता है । फल स्वरूप अह और नतिक अह म सघप छिडता है और दोनो एक-दूसरे का दमन करने का भरसक प्रयास करते हैं ।

"लहरो के राजहस' नाटक मे सुदरी मे अह और नतिक अह का सघप छिडता है । क्षमा याचना के हेतु बुद्ध के पास जाने के पूव नन्द ने सुदरी को वचन दिया था कि वह सुन्दरी के माथे पर लगाया हुआ विशेषक (टीका) सूखने के पूव लौट आयगा । सुदरी न भी नन्द की बात पर विश्वास करते हुए कहा था कि वह नन्द के लौटने तक विशेषक को सूखने नही देगी । सुन्दरी प्रतीक्षा करती रहती है । लेकिन नन्द के लौटने म देर हो रही है । विशेषक सूखने लगता है । उस अवसर पर सुदरी का नतिक अह विशेषक को सूखने देना नही चाहता है । अत वह पानी से विशेषक को गीला करता रहती है । परतु नन्द के लौटने मे जस जस देर होने लगती है सुदरी में अह और नतिक अह का सघप छिडता है । सुन्दरी का अह सोचता है कि अब प्रतीक्षा करने का अथ है अपने को अपमानित करना । लेकिन नतिक अह और प्रतीक्षा करना चाहता है । परिणामत अह और नतिक अह म एसा सघप छिडता है, जिसम अह की जीत हो जाती है । इस पर प्रकाश डालते हुए सुदरी अलका से कहती है—'प्रतीक्षा नर रही होती, तो अपने माथ का विशेषक यह बिन्दु सूख जाने न देती । परन्तु जितना समय इसे गीला रखना चाहिए था उससे कही अधिक समय मैंने इसे गीला रखा । एक पहर दो पहर तीन पहर । हर बीतता हुआ क्षण मेरे प्रयत्न का उपहास उडाता था, फिर भी मैं अपने अन्दर के विरोध से लडती रही, मन के विद्रोह को किसी तरह समझाती रही । परन्तु एक क्षण आया जब वह प्रयत्न मन से हार गया । मेरा गीला हाथ माथे तक जाकर लौट आया और मैंने उसे फिर गीला नही किया । अब मुझे प्रतीक्षा नही है अलका । मैं अपने स्वाभिमान को

और नष्ट हो सकती ।[1] इससे प्रतीत होता है कि सुन्दरी में प्रेम और नैतिक मूल्यों का संघर्ष छिड़ गया था ।

(४) पतन और उत्थान मन का संघर्ष उपेन्द्रनाथ अश्क के 'भँवर' नाटक में है । प्रतिभा का पतन मन जब किसी से प्रतिभा का विवाह चाहता है उसी क्षण उसका उत्थान मन पतन मन से संघर्ष छेड़ता है । क्योंकि उत्थान मन की धारणा है कि प्रतिभा का ब्याह किसी योग्य व्यक्ति से हो । लेकिन प्रतिभा अनुभव करती है कि उसके उत्थान मन की आशाओं के अनुरूप कोई व्यक्ति मिलने की सम्भावना नहीं है । अतः प्रतिभा परवश अपने पतन मन के अनुसार किसी से समझौता तथा ब्याह करने को तत्पर होती है । लेकिन उसका उत्थान मन विरोध करता है । इससे प्रतिभा में एक आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है जो उसे किसी पुरुष से ब्याह करने का निर्णय नहीं करने देता ।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि वर्तमान युग के नाटकों में मनोविज्ञान के आधार पर आन्तरिक संघर्ष का उत्पादन किया जा रहा है । इससे आज का हिन्दी नाटक अधिक मार्मिक अधिक यथार्थ तथा आकर्षक प्रतीत होता है ।

(ग) आन्तरिक संघर्ष के प्रकार

आन्तरिक संघर्ष दो प्रकार का होता है । पहला भावनिक आन्तरिक संघर्ष होता है और दूसरा वैचारिक आन्तरिक संघर्ष होता है ।

१ विशिष्ट परिस्थिति में दो भावनाओं के मध्य विरोध उत्पन्न होने पर भावनिक संघर्ष छिड़ता है । भावनिक संघर्ष के दो प्रकार होते हैं ।

(अ) सद्भावनाओं का आन्तरिक संघर्ष

१ परिस्थिति विशेष में दो सद्भावनाओं में विरोध उत्पन्न होता है । व्यक्ति को समझ में नहीं आता कि किस सद्भावना को प्राधान्य दिया जाय ? निर्णय न कर पाने के कारण व्यक्ति कभी इस सद्भावना की ओर खींचा जाता है तो कभी उस सद्भावना की ओर । फलतः सद्भावनाओं में संघर्ष छिड़ता है । व्यक्ति निर्णय करने तक इस संघर्ष में उलझा रहता है । निर्णय के अनन्तर ही व्यक्ति इस संघर्ष से मुक्त हो जाता है । डॉ० गिरिजाशंकर मिश्र के 'पाखियाँ गूँजती हैं' नाटक में नीरू की दो सद्भावनाओं का आन्तरिक संघर्ष है । एक ओर पुत्र प्रेम की भावना है तो दूसरी ओर देश प्रेम की भावना है । नीरू की देश प्रेम की भावना उसे द्रोही पति को सजा देना चाहती है । पर उसकी पुत्र प्रेम की भावना विरोध करती है । फलतः नीरू में सद्भावनाओं का मार्मिक संघर्ष छिड़ता है । वह निर्णय नहीं कर पाती कि किस सद्भावना को प्राधान्य दिया जाय ? नाटक के अन्त में नीरू देश प्रेम की सद्भावना

---

१ मोहन राकेश—लहरों के राजहंस—(पृ० १० १-१) संस्करण सन् १९६८ ई०

को प्राधान्य देने का निणय करके देश द्रोही पुत्र की हत्या करता है।

(आ) परस्पर विरुद्ध भावनाओं का आन्तरिक सघष

परस्पर विरुद्ध (सद असद) भावनाओ के मध्य तब सघष छिडता है जब व्यक्ति निणय नही कर पाता कि सदभावना को प्राधा य दिया जाय या असदभावना को ? मोहन राकेश क 'लहरो के राजहस" मे न द निणय नही कर पाता कि त्याग (विरक्ति) की भावना को प्राधा य दिया जाय अथवा भोग की भावना को ? फल स्वरूप न द म हृदयस्पर्शी आ तरिक सघष छिडता है। प्रस्तुत सघष नाटक के अ त तक चलता रहता है।

२ वचारिक आन्तरिक सघष भी दो प्रकार का होता है।

(क) सद्विचारो का आन्तरिक सघष

विशिष्ट परिस्थिति मे व्यक्ति निणय नही कर सकता कि किस सदविचार को प्रधानता दी जाय ? फलत सदविचारा म सघष छिडता है। कोणाक" मे विशु के सामन निणय करने की समस्या उपस्थित होती है कि पुत्र रक्षा से सम्बद्ध विचार को कार्यान्वित किया जाय या कला रक्षा स सम्बद्ध विचार को ? परिणामस्वरूप निणय करने तक विशु में आ तरिक सघष चलता है।

(ख) परस्पर विरुद्ध विचारो का आन्तरिक सघष

परस्पर विरुद्ध विचारो म तब सघष छिडता है जब किसी एक को स्वीकार करने का निणय नहा किया जा सकता, 'डाक्टर नाटक मे अनीला जब तक निणय नही करती है तब तक प्रतिहिंसा से सबद्ध विचार और डाक्टर का कत्तव्य निभाने से सबद्ध विच र म सघष चलता है।

६ सघर्ष की श्रेणी और नाटक का मूल्य

(त) आन्तरिक सघष का महत्त्व

श्रेणी की दृष्टि से नाटक मे बाह्य सघष की अपेक्षा आन्तरिक सघष का अत्यधिक महत्त्वपूण स्थान होता है। आन्तरिक सघष नाटक को प्रभावी, चिंतनीय एव मनोज्ञ रूप प्रदान करता है। इस दृष्टि स जयशकर प्रसाद कृत "स्कन्दगुप्त , मोहन राकेशकृत आषाढ का एक दिन और 'लहरो के राजहस', जगदीशचन्द्र माथुर कृत 'कोणाक और पहला राजा' डा० लक्ष्मीनारायण लाल कृत "दपन और सूयमुख', विष्णु प्रभाकर कृत डाक्टर नाटक लक्षणीय हैं। इन नाटको मे क्रमश स्कन्दगुप्त और देवसेना मल्लिका और कालिदास न द, विशु पृथु प्रद्युम्न और वेनुरती तथा रुक्मिनी डा० अनीला इन सबका आ तरिक सघष हृदय को झक झोरने वाला है। परिणामस्वरूप उपयु क्त नाटक अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़े हैं।

आन्तरिक सघष मनुष्य और उसक भीतर उठे विरोध पर आधारित होता

है। यह भीतरी विरोध जीवन मूल्यों, मन प्रवृत्तियों भावनाओं कामनाओं इच्छाओं में उठा हुआ होता है। इसमें मनुष्य का चरित्र जीवनरूपी कसौटी पर कसता है।

(१) लेकिन जो आन्तरिक संघर्ष सद्भावनाओं सदिच्छाओं, सद्प्रवृत्तियों, सद्विचारों, सद् जीवन मूल्यों में आविर्भूत विरोध से संघटित होता है वह श्रेष्ठतम होता है। इसमें व्यक्ति की मानवता एवं महानता उद्भासित होती है। 'वत्सराज' के तृतीय अंक में शिल्पा विष्णु का आन्तरिक संघर्ष सदिच्छाओं में उत्पन्न विरोध से सम्बन्धित है। एक ओर पुत्र रक्षा की इच्छा है तो दूसरी ओर कला रक्षा की। विष्णु को इनमें से किसी एक की रक्षा करने का निर्णय करना है। लेकिन दुविधा ग्रस्त विष्णु निर्णय करने में अपने को असमर्थ पाता है। फलतः उसमें आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है। पुत्र धर्मपाल की धमकाने से विष्णु पुत्र रक्षा की इच्छा को त्याग कर कला रक्षा का निर्णय करता है। इस निर्णय से शिल्पी विष्णु के व्यक्तित्व की महानता का उद्घाटन होता है।

जयशंकर प्रसाद के स्कन्दगुप्त में भी स्कन्दगुप्त और देवसेना का आन्तरिक संघर्ष सम्भावनाओं में आविर्भूत विरोध से संघटित है। इनके एक ओर निजी प्रेम है तो दूसरी ओर देश प्रेम। इनमें से किसी एक को चुनने का निर्णय करने के सम्बन्ध में स्कन्दगुप्त तथा देवसेना में आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है। जब वे वैयक्तिक प्रेम का त्यागकर देश रक्षा का वरण करते हैं तब उनके व्यक्तित्व की महानता प्रकट होती है।

'आषाढ़ का एक दिन' में मल्लिका का आन्तरिक संघर्ष सम्भावनाओं में उत्पन्न विरोध सम्बन्धी है। एक ओर माँ की ममता है तो दूसरी ओर अपना प्रेम। इनमें से किसी एक के चुनाव के सम्बन्ध में मल्लिका का आन्तरिक संघर्ष हृदय वेधक है। सूर्यमुख में भी रुक्मिणी का आन्तरिक संघर्ष सद्भावनाओं सम्बन्धी विरोध से संघटित है। एक ओर पुत्र प्रेम है तो दूसरी ओर विनाश से द्वारिका की रक्षा का कर्तव्य है। इस नाटक में प्रद्युम्न और वनश्री के भी एक ओर अपने विलक्षण प्रेम को लेकर एक दूसरे का अपना बनाने की इच्छा है तो दूसरी ओर द्वारिका रक्षा की इच्छा है।

इस प्रकार इस आन्तरिक संघर्ष से व्यक्ति का व्यक्तित्व गौरवान्वित हो जाता है।

(२) जो आन्तरिक संघर्ष सद् असद् सुष्ट दुष्ट भावनाओं इच्छाओं प्रवृत्तियों, विचारों जीवन मूल्यों में उत्पन्न विरोध से सम्बद्ध होता है वह भी श्रेष्ठ श्रेणी का होता है। इसमें भी मनुष्य के व्यक्तित्व परिष्कृत होने एवं मनुष्यत्व के निखरने की सम्भावना होती है।

लहरों के राजहंस' में नन्द का आन्तरिक संघर्ष सुष्ट और दुष्ट इच्छाओं

में उत्पन्न विरोध सम्बन्धी है । एक ओर जीवन का निबन्ध भोग करने की इच्छा है, तो दूसरी ओर विरागी बनने की इच्छा है । नन्द इनमे से किसी एक को चुनने का निणय नही कर पाता । फलस्वरूप नाटक के अन्त तक नन्द का तीव्र आन्तरिक सघष है । "दपन" मे भी दपन का आन्तरिक सघष नन्द के आन्तरिक सघष से मिलता जुलता ह । "डाक्टर" मे डा० अनीला का आन्तरिक सघष भी सद और असद इच्छाओ के बीच उत्पन्न विरोध सम्बन्धी है । एक ओर डाक्टर का कत्तव्य निभाने की अर्थात रोगी के प्राण बचाने की इच्छा है, तो दूसरी ओर शत्रु से प्रतिशोध लेने की अर्थात रोगी के प्राण लेने की इच्छा है । अन्त मे वह कत्तव्य को निभाने का निणय कर लेती है । इससे डाक्टर अनीला के व्यक्तित्व का गौरव प्रकट होता है ।

उक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि नाटक मे आन्तरिक सघष का महत्त्वपूण स्थान होता है । इससे पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ का उदघाटन होता है, उनकी मनुष्यता का प्रकाशन होता है । इससे नाटक का मूल्य एव माहात्म्य सर्वधित होता है । फलस्वरूप नाटक प्रभावी, मार्मिक तथा श्रेष्ठ बन जाता है ।

(थ) विशेष सन्दभ मे बाह्य सघष का महत्त्व

वास्तव मे बाह्य सघष भी मनुष्य की आन्तरिक इच्छाओ से सम्बन्धित होता है । उसकी आन्तरिक इच्छा ही उसे सघष प्रवत्त करती है । अत बाह्य सघष भी, विशेष सन्दभ मे, नाटक मे श्रेष्ठ स्थान पाता है । इससे भी नाटक का गौरव सर्वधित होता है ।

(१) श्रेणी की दृष्टि से वह बाह्य सघष अधिक महत्त्व का होता है, जो सदिच्छाओं तथा सुष्ट जीवन मूल्यो को लेकर विभिन्न पक्षो मे छिड़ता है । इस प्रकार का सघष हिन्दी नाटको में बहुत कम उपलब्ध है । मोहन राकेश कृत "आषाढ का एक दिन" मे इस प्रकार का सघष विद्यमान है । एक ओर अम्बिका है जो कन्या की भलाई के हेतु मल्लिका के भावनात्मक प्रेम का विरोध कर रही है । दूसरी ओर मल्लिका है जो अपने उदात्त प्रेम के लिए माता के व्यावहारिक सिद्धान्तो का विरोध कर रही है । यहाँ सघषशील दोनो पक्ष अपनी अपनी सदिच्छा एव सदभावना को लेकर सघष कर रहे हैं । ये दोनो एक दूसरे के शत्रु नहीं हैं बल्कि हितैषी हैं। फलत इन दोनो के सघष से प्रस्तुत नाटक का माहात्म्य बढ गया है ।

डा० लक्ष्मी नारायण लाल कृत 'सूयमुख' मे भी रुक्मिनी और वनरती का सघष मनोरम है । एक ओर स रुक्मिनी द्वारिका की रक्षा के हेतु वेनुरती के प्रेम का विरोध कर रही है तो दूसरी ओर से वेनुरती अपने पवित्र प्रेम को सफल एव सार्थक बनाने के हेतु रुक्मिनी की समाज-संबधी नीति का विरोध कर रही है । इस सघष से नाटक अधिक मार्मिक बन गया है । जगदीशचन्द्र माथुर के "कोणार्क" में भी

कलाविषयक पृथक दृष्टिकोणों को लेकर पमदक और विन्दु के बीच छिड़ा हुआ संघर्ष मनोरम है। अतः निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नाटक में इस प्रकार के बाह्य संघर्ष का स्थान श्रेष्ठ होता है।

(२) श्रेणी की दृष्टि से वह बाह्य संघर्ष भी विचारणीय होता है जो सद् असद् गुप्त-प्रकट प्रवृत्तियों भावनाओं इच्छाओं, सिद्धान्तों जीवन मूल्यों को लेकर विभिन्न पक्षों में छिड़ा हुआ होता है। हिन्दी नाटक में इस प्रकार का संघर्ष विपुल है। 'कोणार्क' में धर्मपद और विन्दु अत्याचार की रक्षा की इच्छा से अत्याचारी चालुक्य से संघर्ष करते हैं। 'सूर्यमुख' में प्रद्युम्न भी द्वारिका की रक्षा के हेतु स्वार्थी एवं अत्याचारी बभ्रु से संघर्ष करता है। 'बकरी' में दुर्जन भी जन कल्याण के हेतु पाखण्डी अवधूत से संघर्ष करता है। 'धाटियाँ गूँजती हैं' नेता का एक नाम और वतन की आवरू में देश प्रेमी भारतवासी देश रक्षा के हेतु आक्रमणकारियों से संघर्ष करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि अनेक हिन्दी नाटकों में इस प्रकार के संघर्ष को महत्त्व का स्थान मिला है। इस संघर्ष से नाटक चित्ताकर्षक एवं चिन्तनीय बन जाता है। इससे सत्पात्रों का उन्नत चरित्र उजागर होता है। अतः नाटक में इस संघर्ष का भी स्थान महत्त्वपूर्ण होता है।

(३) श्रेणी की दृष्टि से वह बाह्य संघर्ष महत्त्व का नहीं होता जो असद् प्रवृत्तियों इच्छाओं वस्तुओं को लेकर विभिन्न पक्षों में छिड़ा हुआ रहता है। इस संघर्ष से नाटक महान एवं मार्मिक नहीं बन पाता। इससे नाटक का मूल्य नहीं बढ़ता। अतः बहुत कम हिन्दी नाटकों में इस संघर्ष को स्थान मिला है। 'सूर्यमुख' में स्वार्थ से प्रेरित होकर बभ्रु और साम्ब परस्पर संघर्ष करते हैं। 'पहला राजा' में स्वार्थ से प्रेरित हुए मुनियों का परस्पर संघर्ष है। 'शतुरमुर्ग' के अन्त में कपटी मन्त्रियों और कपटी राजा के मध्य छिड़ा हुआ संघर्ष इस कोटि का ही है। इस प्रकार के बाह्य संघर्ष से नाटक का मूल्य बढ़ने के बदले कम होने की संभावना अधिक होती है। अतः इस नाटक में विशिष्ट परिस्थिति में ही स्थान मिल सकता है।

(द) विशिष्ट इच्छा संघर्ष तथा नाटक की श्रेष्ठता का आधार

उपर्युक्त विवेचन के सन्दर्भ में प्रश्न यह उठता है कि नाटक को मूल्यवान बनाने वाला जो श्रेष्ठ संघर्ष होता है क्या वह विशिष्ट इच्छाओं के कारण छिड़ा हुआ रहता है? प्रस्तुत प्रश्न के उत्तर के रूप में कह सकते हैं कि विशिष्ट इच्छाओं के कारण छिड़ा हुआ श्रेष्ठ संघर्ष ही नाटक को मूल्यवान बनाता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि 'विशेष इच्छा' से छिड़ा हुआ संघर्ष श्रेष्ठ श्रेणी का बन जाता है और श्रेष्ठ श्रेणी के संघर्ष के बल पर नाटक भी श्रेष्ठ एवं मूल्यवान बन जाता है। इससे व्यंजित होता है कि संघर्ष की श्रेष्ठता 'विशिष्ट इच्छा' पर निर्भर है, तो नाटक की श्रेष्ठता 'श्रेष्ठ संघर्ष' पर अवलम्बित है।

विशिष्ट इच्छा की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए जे० एच० लासन कहते हैं कि वह जाग्रत इच्छा होती है जो प्रकार और परिणाम के अनुसार संघर्ष करती है।[1] इसका आशय यह हुआ कि संघर्ष की प्रखरता एवं तीव्रता जाग्रत इच्छा के परिणाम पर अवलम्बित होती है और संघर्ष की श्रेष्ठता जाग्रत इच्छा के प्रकार (गुणात्मक मूल्य) पर निर्भर होती है। इस तथ्य पर सर्वप्रथम फ्रेंच विवेचक ब्रुनेतिएर ने Law of the Drama' (सन् १८९४, ९५ ९६) लिखकर अपने मौलिक विचार प्रकट किये हैं। ब्रुनेतिएर का मौलिक दृष्टिकोण स्वीकार करता है कि नाटक का मूल्य जाग्रत इच्छा की गुण पूर्णता पर निर्भर है। इसलिए वे कहते हैं—

'And the *quality of will measures and determines, in its turn,* the dramatic value of each work in its species '[2]

निष्कर्ष निकालते हुए ब्रुनेतिएर स्वीकार करते हैं कि जिस नाटक में इच्छा अधिक परिणाम में कार्य करती है वह नाटक दूसरे नाटक से श्रेष्ठ होता है—

"And we will say in conclusion that one drama is superior to another drama according as the quantity of will exerted is greater or less as the share of chance is less and that of necessity greater '[3]

ब्रुनेतिएर के उक्त कथन में नाटक की श्रेष्ठता के लिए संघर्ष प्रवृत्त इच्छा के परिणाम पर अधिक बल दिया गया है। यहाँ नाटक की श्रेष्ठता के लिए अत्यावश्यक इच्छा की गुणपूर्णता की उपेक्षा हुई है। वास्तव में नाटक की श्रेष्ठता के लिए संघर्षशील इच्छा की गुणात्मकता के साथ ही पर्याप्त परिणाम भी अपेक्षित है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर जे० एच० लासन ने ब्रुनेतिएर के उक्त कथन की आलोचना करते हुए कहा है—

Brunetiere concluded that strength of will is the only test of dramatic value One cannot accept this mechanical formulation This is a matter of quantity as well as quality Our conception

---

1 This is not a matter solely of the use of the conscious will It involve, the kind and degree of conscious will exerted ' (P 163)

--J H Lawson Theory and Technique of Play writing (Edition 1969)

2 Barrett H Clark—European Theories of the Drama Second (Edition 1929)

3 Barrett H Clark--European theories of the Drama (P 409)

of the quality of the will and the quality of the forces to which it is opposed determines our acknowledgment of the depth and scope of the conflict '[1]

इससे ज्ञात होता है कि प्रखर तथा श्रेष्ठ संघर्ष के लिए संघर्षशील इच्छा की तीव्रता तथा गुणात्मकता अपेक्षित है। इस प्रकार के संघर्ष के बल पर ही कोई नाटक श्रेष्ठ, चिन्तनीय मूल्यवान, प्रभावशाली एवं रुचिकर बन सकता है।

'कोणार्क' में शिल्पियों का विश्वासघाती चालुक्य से जो प्रखर एवं श्रेष्ठ संघर्ष है उसका प्रमुख आधार धर्मपद की संघर्षशील इच्छा की तीव्रता प्रबलता एवं गुणात्मकता है। फलस्वरूप कोणार्क नाटक श्रेष्ठ मार्मिक एवं मनोज्ञ बन पड़ा है। 'कलंकी' में हरूप का पाखण्डी अवधूत से जो प्रखर एवं श्रेष्ठ संघर्ष है, उसका आधार हरूप की संघर्षशील इच्छा की तीव्रता, प्रबलता एवं गुणात्मकता है। 'रक्त कमल' में कमल का अपने पूँजीवादी भाई से जो प्रखर तथा श्रेष्ठ संघर्ष है उसका आधार कमल की संघर्षशील इच्छा की तीव्रता, प्रबलता एवं गुणात्मकता है। फलत उक्त तीनों नाटक उत्तम मननीय तथा मनभावन बन गये हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क कृत 'अलग अलग रास्ते' नाटक की भी श्रेष्ठता का कारण यह है कि क्रांतिकारी पूरन और रानी ने अपनी तीव्र, प्रबल एवं गुणात्मक इच्छा से परम्परावादियों के विरुद्ध छेड़ा हुआ प्रखर तथा मार्मिक संघर्ष।

आन्तरिक संघर्ष पर भी विचार करने पर ज्ञात होता है कि सदिच्छाओं अथवा सद्-असद् इच्छाओं में से उस इच्छा का तीव्र प्रबल एवं उत्कट होना आवश्यक है जो परिस्थिति विशेष के संदर्भ में अधिक गुणात्मक तथा औचित्यपूर्ण होगी। इससे आन्तरिक संघर्ष प्रखर एवं श्रेष्ठ रूप धारण करता है। फलत नाटक भी अत्यधिक मार्मिक मूल्यवान एवं मनोहर बन जाता है। 'कोणार्क' में परिस्थिति विशेष के संदर्भ में विशु की पुत्र रक्षा की अपेक्षा कला रक्षा की सदिच्छा तीव्र एवं प्रबल होने पर विशु का आन्तरिक संघर्ष चिन्तनीय तथा चित्ताकर्षक रूप धारण करता है। उस नाटक का वह अंश अत्यधिक मार्मिक एवं मनोहर बन पड़ा है। 'लहरों के राजहंस' में नन्द की विराग की इच्छा तीव्र एवं प्रबल बनने पर नन्द का आन्तरिक संघर्ष हृदयस्पर्शी बन गया है। इससे प्रस्तुत नाटक मर्मस्पर्शी बन गया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह प्रकट होता है कि नाटक को मूल्यवान एवं महत्त्वपूर्ण बनाने की दृष्टि से—

१ सदिच्छाओं तथा सद्-असद् इच्छाओं के कारण छिड़े हुए आन्तरिक संघर्ष

---

1 J H Lawson—Theory and Technique of play writing (Edition 1969)

का श्रेष्ठतर स्थान होता है ।

२ सदिच्छाओ अथवा सद असद इच्छाओ को लेकर विभिन्न पक्षो मे छिडे हुये बाह्य सघर्ष का श्रेष्ठ स्थान होता है ।

३ सघर्ष चाहे आतरिक हो अथवा बाह्य, वह जिन इच्छाओ के कारण छिडता है, उनमे से किसी एक का तीव्र, प्रबल एव अत्यधिक गुणात्मक होना अत्यावश्यक है ।

साराश यह कि तीव्र, प्रबल एव गुणात्मक इच्छा से छिडा हुआ सघर्ष श्रेष्ठ श्रेणी का होता है और श्रेष्ठ श्रेणी के सघर्ष से नाटक श्रेष्ठ, मूल्यवान, महत्त्वपूर्ण एव ममस्पर्शी बन जाता है । इससे यह भी विदित होता है कि जिस नाटक मे पात्र की तीव्र, प्रबल एव गुणात्मक इच्छा के सघर्ष का अभाव होगा वह अत्यन्त साधारण कोटि का नाटक होगा ।

७ सघर्ष के आधार पर नाटक के प्रकार

यह वस्तुस्थिति है कि नाटक का विशिष्ट स्वरूप सघर्षशील इच्छा के विशिष्ट स्वरूप पर, इच्छा द्वारा स्वीकृत सघर्ष के विशिष्ट स्वरूप पर तथा बाधा के विशिष्ट स्वरूप पर आधारित होता है । अत यह तथ्य भी नाटक के प्रकारो का एक मानदण्ड बन सकता है ।

सघर्षशील इच्छा का विशिष्ट स्वरूप उसकी तीव्रता अतीव्रता, प्रबलता अप्रबलता और गुणात्मकता अगुणात्मकता पर अवलम्बित है । लेकिन इच्छा का तीव्र अतीव्र, प्रबल अप्रबल और गुणात्मक-अगुणात्मक होना जितना व्यक्ति पर आश्रित है उतना ही उसके लक्ष्य के मार्ग म उपस्थित बाधाओ के स्वरूप पर भी आश्रित है ।

जगदीशचन्द्र माथुर के 'कोणाक' मे कोणाक को नष्ट भ्रष्ट करने, निरपराधी शिल्पियो को सजा देने और नरसिहदेव को बन्द करने के हेतु अत्याचारी चालुक्य आक्रमण करता है । साहसी एव न्यायी धर्मपद म निरपराधी शिल्पियो की, उनकी कला की तथा प्रजावत्सल नरसिहदेव की रक्षा करने की गुणात्मक इच्छा का उदय होता है । अन्य शिल्पियो मे भी इस गुणात्मक इच्छा का उदय होता है । लेकिन आरम्भ मे धर्मपद के अतिरिक्त अन्य किसी भी शिल्पी की इच्छा तीव्र एव प्रबल नही हो जाती । क्योकि वे जानते हैं कि चालुक्य की प्रबल सेना के सामने शिल्पियो की नही चलेगी । अर्थात सामने उपस्थित हुई बाधा साधारण नही है । यहाँ यह स्पष्ट होता है कि शिल्पियो की इच्छा की अतीव्रता तथा अप्रबलता उन्हीं पर आश्रित है ।

साहसी एव निर्भय धर्मपद का स्वभाव, किसी भी अवस्था मे अत्याचारी के अत्याचार को सहन करना नही चाहता है । उसे सम्मानहीन जीवन प्रिय नही है । अत उसे अत्याचारी को सजा देने म आनन्द मिलता है । फलस्वरूप अत्याचारी चालुक्य को सजा देने हेतु धर्मपद की इच्छा तीव्र एव प्रबल बन जाती है । यहाँ

स्वरूप पर आधारित है।

उपयु क्त विवेचन से निष्कष निकाला जा सकता है कि नाटक का विशिष्ट स्वरूप सघषशील इच्छा के स्वरूप पर, उससे स्वीकृत सघष के विशिष्ट स्वरूप पर और बाधा के विशिष्ट स्वरूप पर आधारित है।

इस निष्कष के आधार पर, स्थूलरूप मे निम्नलिखित नाटक प्रकारों को स्वीकार किया जा सकता है —

१ करुण गम्भीर दु खा त नाटक
२ करुण गम्भीर सुख-दु खा त नाटक
३ गम्भीर दु ख-सुखा त नाटक
४ दु खा त नाटक
५ सुखा त नाटक
६ हास्य विनोदमय नाटक
७ हास्य व्यग्यात्मक नाटक

१ करुण गम्भीर दु खान्त नाटक

इस नाटक मे तीव्र प्रबल एव गुणात्मक इच्छा अपने लक्ष्य तक पहुँचने के हेतु दुद्धर तथा दुर्जेय बाधा से प्रखर सघष छेडती है। फिर भी वह असफल रहती है। फलत नाटक करुण गम्भीर दु खा त बन जाता है। डा० लक्ष्मीनारायणलाल के सूयमुख' मे प्रद्युम्न रुक्मिणी का पुत्र है। वेनुरती रुक्मिणी की सौत है। फिर भी यहाँ प्रद्युम्न और वेनुरती परस्पर प्रम करते है। इनका प्रम समाज का दष्टि स अपवित्र तथा नाति बाह्य है। अत इन दोना के प्रेम माग मे दुद्धर बाधा के रूप म समाज-नीति उपस्थित हुई है। ऐसी दशा मे प्रद्युम्न और वनुरती अपन स्वाभाविक एव पवित्र प्रेम की सफलता के हतु दुद्धर समाज-नीति स प्रखर सघष छेडते हैं। लकिन उ ह सफलता मिलने के पूव ही उनका अ त हो जाता है। फलस्वरूप नाटक 'करुण गम्भीर दुखान्त' बन पडा है।

मोहन राकेश के 'लहरों के राजहस म न द के आ तरिक सघप को अत्य धिक महत्त्व का स्थान मिल गया है। इसमे न द की तीव्र एव प्रबल त्याग की इच्छा ने भोग की प्रबल इच्छा से प्रखर सघष छेडा है। लेकिन न द की गुणात्मक इच्छा सफल नहीं हो रही है। अत लहरा क राजहस नाटक करुण गम्भीर दु खा त बन गया है।

२ करुण गम्भीर सुख-दु खा त नाटक

इस नाटक मे तीव्र प्रबल एव गुणात्मक इच्छा अपने लक्ष्य तक पहुँचने के हेतु दुद्धर एव दुर्जेय बाधा से प्रखर सघष छेडती है। पर तु इस सघष म भारी हानि

उठाने के पश्चात गुणात्मक इच्छा की विजय होती है। फलतः नाटक 'करुण गम्भीर सुख-दुःखान्त' बन जाता है। इस कारण से ही जगदीशचन्द्र माथुर कृत 'कोणार्क' करुण गम्भीर सुख-दुःखान्त नाटक बन गया है। मानवेन्द्र अग्निहोत्री के नेफा की एक शाम में भी भारतीयों की तीव्र प्रबल एवं गुणात्मक इच्छा आक्रमणकारी चीनियों से संघर्ष छेड़ती है और भारी हानि उठाने के पश्चात् विजय पाती है। अतः प्रस्तुत नाटक भी 'करुण गम्भीर सुख दुःखान्त' बन गया है।

३ गम्भीर दुःख-सुखान्त नाटक

इस नाटक में तीव्र, प्रबल एवं गुणात्मक इच्छा उद्देश्य पूर्ति के हेतु दुर्धर बाधा से प्रखर संघर्ष छेड़ता है। इस संघर्ष में संघर्षशील इच्छा बाधा से भी अधिक प्रबल प्रमाणित होती है। अतः इस संघर्ष में कुछ कष्ट सहन के उपरान्त गुणात्मक इच्छा की ही विजय होती है। फलतः नाटक गम्भीर दुःख-सुखान्त बन जाता है। जयशंकर प्रसाद के ध्रुवस्वामिनी में ध्रुवस्वामिनी अपनी मर्यादा की रक्षा के हेतु प्रबल बाधा से संघर्ष छेड़ती है। इस संघर्ष में कुछ कष्ट सहने के उपरान्त ध्रुवस्वामिनी की विजय होती है। परिणामस्वरूप प्रस्तुत नाटक 'गम्भीर दुःख-सुखान्त' बन गया है।

विष्णु प्रभाकर के 'डाक्टर' नाटक में डा० अनीला का महत्त्वपूर्ण आंतरिक संघर्ष है। एक ओर डाक्टर का कर्तव्य निभाने की तीव्र इच्छा है तो दूसरी ओर अपमान का प्रतिशोध लेने की तीव्र इच्छा है। इस संघर्ष के कारण डा० अनीला को मानसिक कष्ट सहना पड़ता है। पर अंत में डाक्टर' का कर्तव्य निभाने की गुणात्मक इच्छा अधिक प्रबल होकर विरोधी इच्छा पर विजय पाती है। इससे प्रस्तुत नाटक गम्भीर दुःख-सुखान्त बन पड़ा है।

४ दुःखान्त नाटक

इस नाटक में प्राप्य को पाने की तीव्र एवं गुणात्मक इच्छा होती है परन्तु वह बाधा से साधारण संघर्ष छेड़ती है। फलतः प्रबल बाधा गुणात्मक इच्छा को सफल नहीं होने देती। इससे नाटक 'दुःखान्त नाटक' बन जाता है। 'सिन्दूर की होली' में चन्द्रकला के मन को रजनीकान्त ने मोह लिया है। उसमें रजनीकान्त को पाने की इच्छा का उदय हुआ है। परन्तु चन्द्रकला की इच्छा प्रबल बनकर रजनीकान्त को पाने के लिए प्रखर संघर्ष के बदले साधारण संघर्ष छेड़ती है। परिणामस्वरूप चन्द्रकला रजनीकान्त को पाने में तथा उसके (रजनीकान्त के) प्राणों की रक्षा करने में असफल रह जाता है। इससे नाटक दुःखान्त बन गया है। मोहन राकेश के आधे अधूरे में गृहस्वामी महेन्द्रनाथ परिवार की भलाई के हेतु अपनी मर्यादाहीन पत्नी को ठीक रास्ते पर लाना चाहता है। परन्तु महेन्द्रनाथ की तीव्र

इच्छा प्रबल बनकर पत्नी म प्रखर सघष नही छेडती । फलत पत्नी के सामने महेन्द्रनाथ की कुछ नही चलती । अत नाटक दुखान्त बन गया है ।

५ सुखान्त नाटक

इस नाटक मे गुणात्मक इच्छा बाधा से भी अधिक प्रबल होती है । वह बाधा को सहज मात दे सकती है । उसमे यह विश्वास होता है कि बाधा से उसकी विशेष हानि नही होगी । अत वह लक्ष्य तक पहुँचने के हेतु प्रखर अथवा कम प्रखर (सौम्य) सघष छेडती है और अपने लक्ष्य तक पहुँचने मे सफल होती है । इसमे उसे विशेष कष्ट नही सहना पडता । फलत नाटक सुखान्त बन जाता है । उपेन्द्रनाथ अश्क के "अलग अलग रास्ते म रानी और पूरन की गुणात्मक इच्छा परम्परावादियो के सामने झुकना पसन्द नही करती । अत वे दोनो अपने क्रान्तिकारी सिद्धान्तो की रक्षा के हेतु परम्परावादियो से प्रखर सघष छेडते हैं और अपने इच्छानुकूल माग को चुनने म सफल होते हैं । अत प्रस्तुत नाटक सुखान्त बन गया है ।

६ हास्य-विनोदमय नाटक

इस नाटक मे साधारण इच्छा साधारण बाधा से इस प्रकार का सघष छेडती है, जिसमे हास्य विनोद उत्पन्न होता है । इस सघष मे किसी को विशेष कष्ट नही सहना पडता । अत नाटक हास्य विनोदमय बन जाता है । चिरजीत के "घेराव" नामक नाटक म प्रधानपात्री शांति उसे चाहनेवालो स ऐसा सघष छेडती है जिससे हास्य विनोद उत्पन्न होता है । अत पूरा नाटक हास्य विनोदमय बन गया है । नाटक के अन्त म शांति को सघष म विजय मिलती है और वह जिसे चाहती है उसे पाती है ।

७ हास्य व्यग्यात्मक नाटक

इस नाटक म तीव्र, प्रबल एव गुणात्मक इच्छा लक्ष्य तक पहुँचने के हेतु बाधा से जो सघष छेडती है उसम हास्यजनक तथा मम पर प्रहार करने वाला व्यग्य शास्त्र का काम करता है । फलत नाटक हास्य व्यग्यात्मक' रूप धारण करता है । उपेन्द्रनाथ अश्क का "अलग अलग रास्ते' इसी कोटि का नाटक है । पूरन और रानी ने परम्परावादियो से जो सघष छेडा है उसम य दोनो प्रभावी शस्त्र के रूप मे व्यग्य का प्रयोग करते हैं । फलत प्रस्तुत नाटक हास्य व्यग्यात्मक बन पडा है । इस सन्दभ म ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुग' नाटक भी उल्लेखनीय है । उसम राजा और मन्त्रियो के मध्य जो सघष है वह सघष के रूप म नाटक के अत म प्रकट हुआ है । तब तक सघष हास्योत्पादक व्यग्य के माध्यम मे व्यक्त हुआ है । अत पूरा नाटक हास्य-व्यग्यमय बन गया है ।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि नाटक के विभिन्न भेद सघषशील

इच्छा के स्वरूप पर उसमें स्वीकृत संघर्ष के स्वरूप और बाधा के स्वरूप पर आधारित है। अतः इस सन्दर्भ में ब्रुनतिएर का यह कथन पर्याप्त नहीं लगता कि संघर्षशील इच्छा जिन बाधाओं से संघर्ष करती है उन बाधाओं के स्वरूप पर नाटक के भेद आधारित होते हैं।[1]

यहाँ पर इस तथ्य का निर्देश करना अनुचित न होगा कि दुर्बल इच्छा संघर्ष नहीं छेड़ सकती। वह अपनी जान के लिए बाधा से संघर्ष करने के बदले बाधा के साथ समझौते को स्वीकार करती है और विवशता तथा अपमान का जीवन जीती है। अलग अलग रास्ते में राज रानी इसी प्रकार का जीना जीना रहती है। वह भी समाज की विघातक परम्परा से मुक्त होना चाहती है। पर उसकी इच्छा प्रबल के बदले दुर्बल हो जाती है। परन्तु राज प्राप्त परिस्थिति को ही स्वीकार करती है। वह प्राप्य के लिए क्रान्तिकारी पूरन और रानी का साथ नहीं देता है। इससे विदित होता है कि व्यक्ति की दुर्बल इच्छा न संघर्ष छेड़ पाती है न नाटक का निर्माण कर सकती है। अतः नाटक का निर्माण उसकी तीव्र प्रबल एवं गुणात्मक इच्छा के बल पर होता है जो लक्ष्य तक पहुँचने के हेतु बाधाओं से संघर्ष छेड़ सकती है। इससे ध्वनित होता है कि संघर्ष नाटक का अनिवार्य तत्त्व है। जिस नाटक में संघर्ष का अभाव होगा वह नाटक नाटक के रूप में प्रभावहीन होगा।

८ पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में संघर्ष की उद्बोधक विवेचना

वस्तुतः प्रस्तुत अध्याय का मूलाधार पाश्चात्य नाट्यशास्त्र है। प्रस्तुत अध्याय में अब तक संघर्ष तत्त्व का जो भी विवेचन किया गया है उसके मूल में पाश्चात्य नाट्यशास्त्र ही काम कर रहा है। ऐसी दशा में पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में संघर्ष की चर्चा का दिग्दर्शन करना अनावश्यक प्रतीत होगा। परन्तु संघर्ष में भी क्यों न हो, इस बात का दिग्दर्शन करना उपयुक्त होगा। क्योंकि इससे प्रस्तुत अध्याय के प्रतिपाद्य की पुष्टि होगी।

पश्चिम में ग्रीक तत्ववेत्ता अरस्तू ने पोएटिक्स (Poetics) नामक काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थ का निर्माण किया। इस ग्रन्थ के रूप में पश्चिम में 'नाट्य शास्त्र' का उदय हुआ। इस ग्रन्थ का महत्त्व की विशेषता यह है कि इसमें अरस्तू ने ग्रीक नाटकों के गम्भीर अध्ययन के उपरान्त नाटक का सैद्धान्तिक विवेचन किया है जो आज भी मौलिक प्रतीत होता है। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ को नाट्यशास्त्र का ग्रन्थ कहा जाना समुचित है।

---

1 and the dramatic species are by the nature of the obstacles encountered by this will —F Brunetière Quoted by B H Clark —European Theories of the Drama P (408) (Edition 1929)

अनेक पश्चिमी मनीषियों ने "पोएटिक्स" और ग्रीक नाटकों का गहरा अध्ययन करने के पश्चात नाटक के लिए एक अनिवार्य तत्त्व के रूप मे संघर्ष को स्वीकार किया है । अरस्तू के "पोएटिक्स" मे ट्रेजडी की कथावस्तु के अन्तर्गत संघर्ष को महत्त्व का स्थान दिया गया है । इस बात का निर्देश करते हुए एस० एच० बुचर ने कहा है--

We may even modify Aristotle's Phrase and say that the dramatic conflict, not the mere plot, is the soul of a tragedy "[1]

ट्रेजडी के संदर्भ मे हगेल श्लेगल और कालरिज ने भी संघर्ष को अनिवार्य तत्त्व के रूप मे स्वीकार किया था । लेकिन फ्रेंच विवेचक फर्डिनेंड ब्रुनेतिएर ने सर्वप्रथम नाटक के सन्दर्भ मे संघर्ष तत्त्व का विचारणीय विश्लेषण कर सिद्ध किया कि संघर्ष केवल ट्रेजडी का ही नही, अपितु सभी प्रकार के नाटकों का एक अनिवार्य तत्त्व है । इस संदर्भ मे ब्रुनेतिएर का 'Law of the Drama' (सन १८९५-९६ मे प्रकाशित) सुविख्यात रहा है । इस पर लिखी गई ब्रान्डर मैथ्यूज की टिप्पणी दृष्टव्य है । इस टिप्पणी का निर्देश करते हुए बी एच क्लार्क लिखते हैं--

'In Brander Methews notes to the English translation of Brunetire s Law of the Drama, he says "the theory as finally stated by B unetiere is his own although it seems to have had its origin in the doctrine of the 'tragic conflict declared by Hegal and taken over by Schlgel and Coleridge The idea that tragedy must present a struggle is as ancient as Aristotle But Brunetie re goes beyond Hegel and Aristotle He subordinates the idea of struggle to the idea of volition And in so doing he broadens the doctrine to include not tragedy only but all the manifold forms of the drama Attention was first directed to it (the law) in the opening chapter on the 'Art of the Drama-tist' in the Development of the Drama by the professor Brander Math ews published in 1903 '[2]

उक्त टिप्पणी से ब्रुनेतिएर के संघर्ष विषयक मत की मौलिकता स्पष्ट हो रही है । इससे यह स्पष्ट हो रहा है कि संघर्ष सभी प्रकार के नाटकों का एक अनिवार्य

1 S H Butcher--Aristotle s Theory of Poetry and fine Ar (P 348) (American Edition-1951)

2 B H Clark-European Theories of the Drama-(P 402-403) (Second Edition-1929)

तत्त्व हैं। अपन मौ्लिक मत के अनुसार ब्रुनितिएर न नाटक क निमाण म सघप को और सघप के मूल म मानव की इच्छा का स्वीकार करत हुए कहा है 'नाटक, मानव की इच्छा का सघप म प्रस्तुतीकरण है।'[1] यह सघपशील इच्छा जिन बाधाओं स सघप करती है उन बाधाओं क स्वरूप के आधार पर नाटक क विभिन्न भेद बनते हैं।[2]

ब्रैंडर मथ्यूज भी नाटक म इच्छा के सघप को स्वीकार करत हुए कहत हैं-- कोइ एक केन्द्रीय पात्र किसी बात की इच्छा करता है और यही इच्छा काय व्यापार की प्रेरक शक्ति होता है। आधुनिक अथवा प्राचीन हर एक सफल नाटक म हम विरोधी इच्छाओं का सघप पायेंगे।[3] ब्रैंडर मथ्यूज यह भी स्वीकार करते हैं कि सघप तत्त्व क कारण ही कोइ नाटक स्मरणीय बन जाता है। इसलिय व कहते हैं--- कभी कभी कोई नाटक हमम म कुछ का चरित्र का सूक्ष्म अभिव्यजना और जीवन क रगपूण चित्रो क कारण रुचिकर लग सकता है परन्तु जो नाटक दीघकाल तक अनकों का मनोरजन करत रह हैं उनका आधार सघषतत्त्व ही रहा है।[4]

ब्रैंडर मथ्यूज न ब्रुनितिएर क मत का विवचन करन के उपरान्त अनक पाश्चात्य मनीषियों ने नाटक के स म्भ में सघप तत्त्व पर विचार प्रकट किये हैं। एच० ए० जो स स्वीकार करते हैं कि नाटक का उद्भव सघप स होता है।[5] ए० निकल भी नाटक का सैद्धान्तिक विश्लेषण करते हुए सघप तत्त्व क महत्त्व का

1 'Drama is a representation of the will of man in conflict'
Quoted by A Nicoll–The theory of Drama (P 29) –1969

2 'The general law of the theater is defined by the action of a will conscious of itself an the dramatic species are by the nature of the obstacles encountered by this will
--Ferdinand Brunetie re
Quoted by B H Clark--European Theories of the Drama (P 408) Edition 1929

३ ब्रैंडर मथ्यूज—अनु० इच्छा अवस्थी—नाटक साहित्य का अध्ययन (पृ ५३)
हिन्दी अनुवाद का प्रथम सस्करण सन १९६४ ई०

४ वही--पृ० ५६

5 Drama arises when any person or per ons in a play are consciously or unconsciously up against some antogonstic person or circumstances or fortune --Henry Arthur Jones
Quoted by--A Nicoll–The theory of Drama (P 26), 1969

विस्तारपूवक विवेचन करते हैं और लिखते हैं—'सभी नाटकों का उदभव सघष से ही होता है।'[1] एस० एच० बुचर भी कहते हैं—'नाटक का अथ यही नही है कि एक भाव सम्पूण और महत् काय के रूप मे किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख हो, उसमे सघष का समावेश भी होना चाहिये।'[2] इग्लैण्ड के विख्यात नाटककार बर्नार्ड शा ने भी नाटक मे सघष के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुये लिखा कि सघष नही तो नाटक नही।[3]

परन्तु रोनाल्ड पीकाक, विलियम आचर और हरमन आउल्ड ने नाटक मे सघष को उतना अनिवाय नही माना जितना कि उपयुक्त विद्वानों ने माना है। रोनाल्ड पीकाक ने नाटक मे कुतूहल और तनाव को अधिक महत्त्व देते हुये कहा कि इन दोनो को उत्पन्न करने वाला सघष ही नाटक मे स्थान पा सकता है।[4] कुतूहल और तनाव के सन्दभ मे भी क्यो न हो, रोनाल्ड पीकाक ने नाटक में सघष के महत्व को स्वीकार किया है।

---

1 'All drama ultimately arises out of conflict"
A Nicoll–The theory of Drama (P 93)–Indian Reprint, 1669

2 But the drama not only implies emotion and expressing itself in a complete and significant and tending towards a certain end, it also implies a conflict'
–S H Butcher–Aristotles Theory and Fine Art (P 349)
American (Edition 1951)

3 " for every drama must present a conflict The end may be reconcilation or destruction or as in life itself there may be no end, but the conflict is indispensable, no conflict no drama
(P vi)
–Bernard Shaw–Plays pleasant and unpleasant, 1937
volume Second Preface–(Pages vi)

4 It is commonly held that conflict makes drama but surprise and particularly tension, are the truer symptoms They both arise from conflict of course but not always and conflict is only dramatic when they do
–Ronald Peacock–The Art of Drama (P 160) First Edition
–उद्धत–डा० गिरिजासिंह–हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि (पृ० १४५)
प्र० स० सन १९७०

विलियम आर्चर ने ब्रुनतिएर के सिद्धान्त का विरोध किया है और नाटक के अनिवार्य तत्त्व के रूप में संघर्ष को नहीं स्वीकार किया है। उन्होंने नाटक में क्राइसीस को अधिक महत्त्व दिया है।[1] ऐसा होते हुए भी विलियम आर्चर विशिष्ट सन्दर्भ में संघर्ष को एक नाटकीय तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हैं।[2]

हरमन आउल्ड भी ब्रुनतिएर के सिद्धान्त का विरोध करते हुए कहते हैं कि इस प्रकार कहना असत्य है कि संघर्ष ही नाटक है। यह सत्य है कि संघर्ष भी अनेक तत्त्वों में से एक तत्त्व है। इस रूप में भी क्यों न हो हरमन आउल्ड भी संघर्ष तत्त्व के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान कर रहे हैं। क्योंकि वे संघर्षतत्त्व को एकदम अनावश्यक सिद्ध नहीं कर पाये हैं।[3] यही स्थिति रानाल्ड पीकॉक और विलियम आर्चर के दृष्टिकोण की रही है।

---

1 The essence of drama is crisis A play is a more or less rapidly developing crisis in destiny or cir umstance and a dramatic scene is a crisis within a cris s clearly furthering the ultimate event The drama may be called the art of cris s as fiction is the art of gradual development' (P 24)
–William Archer–Play Making (P 19 24) Dover Edition 1960)

2 Ibid "The plain truth seems to be that conflict is one of the most dramatic elements in life and that may dramas–perhaps most–do as a matter of fact truth upon strife of one sort or another (P 21)

3 (A) Perhaps the most persistently repeated dictum of all is that drama all drama is conflict Brunetiere was probably the first to utter it but it has been echoed over and over again by people who have n ver heard of that distinguished French Critic It is only a half truth (P 34)

(B) *Conflict is one of many elements in drama The most that* can be justly claimed is that conflict probably determines the course of more *plots* than any other single relationship but *it* would be as untrue to say that d ama cannot exist unless bas ed on *conflict as it would be maintain that all* conflict is drama (P 35)
–Herman Ould–The Art of the play–Second Edition–1948
First Edition – 1938

जे० एच० लासन ने ब्रुनेतिएर के सिद्धान्त का समर्थन करते हुये विलियम आचर के आक्षेप को अयथार्थ सिद्ध किया है। विलियम आचर ने अपने आक्षेप में सोफोक्लीजकृत "ईडिपस और इबसेनकृत "घोस्ट" में संघर्ष का अभाव दिखाते हुये कहा है कि ब्रुनेतिएर का सिद्धान्त इन दो नाटकों पर लागू नहीं हो सकता। लेकिन जे० एच० लासन ने विलियम आचर के आक्षेप को अयथार्थ सिद्ध करते हुये कहा है कि आचर ने इन दो नाटकों की शैलीगत विशेषता को ध्यान में नहीं लिया। इन दो नाटकों की शैलीगत विशेषता यह है कि इन दोनों का आरम्भ निर्णायक क्षण (crisis) से हुआ है। इसका आशय यह हुआ कि इन दो नाटकों का आरम्भ होने के पूर्व बहुत संघर्ष हुआ है। फलतः नाटक में जो संघर्ष है वह पूर्व-संघर्ष से ही सम्बन्धित है। इस संघर्ष की यह विशेषता है कि इसमें संघर्षशील इच्छा भावात्मक की अपेक्षा अभावात्मक रूप में अधिक कार्य कर रही है। 'ईडिपस' में "नियति की बात' को टालने के लिये राजा ईडिपस नियति में एवं परिस्थिति से संघर्ष कर रहा है। 'घोस्ट' में भी श्रीमती आल्विंग और ओस्वाल्ड पतक बुराई को टालने के लिये परिस्थिति से संघर्ष कर रहे हैं। इस प्रकार राजा ईडिपस श्रीमती आल्विग, ओस्वाल्ड ये तीनों अभावात्मक इच्छा से संघर्ष कर रहे होंगे लेकिन इनके संघर्ष का लक्ष्य सुस्पष्ट ही रहा है। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि इन तीनों के संघर्ष में भावात्मक इच्छा भी कार्य कर रही है। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि ये तीनों जाग्रत (उद्देश्य युक्त) इच्छाओं से संघर्ष कर रहे हैं। अतः इस प्रकार कहना उचित होगा कि उक्त दोनों नाटकों पर ब्रुनेतिएर का सिद्धान्त लागू हो सकता है।[1]

नाट्य समीक्षक मिल्टन मार्क्स और लाजस ईगरी ने भी नाटक के लिये संघर्ष को एक अनिवार्य तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है।[2] साहित्य-समीक्षक विलियम हडसन ने भी नाटक के तत्त्व के रूप में संघर्ष का स्वीकार किया

1 देखिये–J H Lawson–Theory and Technique of play writing (P 164–166) Seventh Drambook Edition–1969/ First Edition–1936

2 (a) "The essence of drama is conflict' (P 21)
–Milton Marx–The Enjoyment of Drama–Second Edition 1961/First Edition, 1940

(b) 'Conflict is the most vital part of a play' (P 186)
–Lajos Egri–The Art of Dramatic Writing Edition 1960/First Edition, 1942

है।[1] इस प्रकार अनेक पाश्चात्य मनीषियों ने नाटक के प्राणतत्त्व के रूप में संघर्ष को स्वीकार किया है और उस पर अपने मौलिक विचार प्रकट किये हैं।

रंगमंच और प्रेक्षक (सामाजिक) से घनिष्ठ संबंध होने के कारण नाटक का सामाजिक जीवन से अधिक प्रत्यक्ष और निकट का संबंध है। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर पाश्चात्य मनीषियों ने संघर्ष को नाटक के तत्त्वों में अनिवार्य तत्त्व के रूप में स्थान दिया है। साथ साथ यह भी स्वीकार किया गया है कि संघर्ष के बिना नाटक प्रभावी एवं रुचिकर नहीं बन पाता। अतः प्रेक्षक सम्पूर्ण नाटक में तभी रुचि लेगा जब कि उसमें अनिवार्य तत्त्व के रूप में संघर्ष को स्थान मिल गया होगा।[2]

यहाँ प्रश्न उठता है कि प्रेक्षक संघर्ष में क्यों रुचि लेता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि प्रेक्षक संघर्ष में अनुभव करता है कि अपनी ही इच्छा प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहा है। इस संवेदना के कारण प्रेक्षक संघर्ष के किसी पक्ष से एकात्म होता है और उस पक्ष की सफलता चाहते हुए संपूर्ण नाटक रुचिपूर्वक देखता है। इस वस्तुस्थिति के कारण जे० एच० लासन को लगा कि प्रेक्षक समाज सर्वथा संघर्ष में अधिक रुचि लेता है। अतः उन्होंने विशेष आग्रह के साथ कहा है कि नाटक के संघर्ष को सामाजिक संघर्ष ही होना चाहिए।[3]

---

1 Every dramatic story arises out some conflict–(p 199)
–W H Hudson–An Introduction to the study of Literature
–Twenty first Edition June 1958, First Ed March 1910

2 (A) Drama requires the eye of the beholder To see drama in something is both to perceive elements of conflict and to respond emotionally to these elements of conflict This emotional response consists in being thrilled in being struck with wonder at the conflict
–Eric Bentley–The life of the Drama Edition 1966 (P 4)
(B) The rarity of the exceptions proves the rule for the most part both tragic and comic interest is mainly sus-tained by conflict Without conflict we would not be moved enough to enjoy the play throughout
—Alan Reynolds Thompson The Anatomy of Drama (P 131
Edition 1946

3 Since the drama deals with social relationship a dramatic conflict must be a social conflict ' (P 163) अगले पृ० पर देखिए।

वस्तुत प्रत्येक सघष का किसी न किसी रूप मे समाज जीवन से सबध होता ही है। अत सघष सामाजिक हो अथवा वयक्तिक हो, प्रेक्षक सघष मे जो रुचि लेता है उसका प्रमुख कारण यह है कि वह किसी पक्ष की सघष शील इच्छा को अपनी सघषशील इच्छा के रूप मे अनुभव करता है। इसस यह स्पष्ट होना है कि सघषयुक्त नाटक प्रभावकारी एव रुचिकर होता है। अत सघष नाटक का अनिवाय तत्त्व है।

पाश्चात्य मनीषियो ने सघष तत्त्व की चर्चा करत समय उदाहरण के रूप म अनेक पाश्चात्य नाटककारो के नाटको के निर्देश किए ह। उल्लिखित नाटको म ग्राक कालीन एलिझाबीथन कालीन तथा आधुनिक कालीन नाटककारो के नाटकों का समावेश है।

ग्रीक नाटककार एस्किलस (Aeschylus) सोफाक्लीज (Sophocles) और युरिपिडाज (Euripides) न अपने नाटको म यथाथ और आदश की उपेक्षा न करते हुए बाह्य तथा आन्तरिक सघष को महत्त्व का स्थान दिया है। वस्तुत दु खपूण अन्त म ग्रीक ट्रेजडी की महत्ता नही है बल्कि सघष म है। इस तथ्य का निर्देश करन के हेतु नाटय समीक्षक डा० गो० के० भट कहते है–'ट्रेजडी की सामथ्य दु ख के चित्रण और नायक के अन्त पर अवलबित नही है। ट्रेजडी की सच्ची सामथ्य उसमे है जब वह (नायक) विरोधी शक्तिया से सवय सघष करता है और अपनी विनाश की स्थिति मे भी दिखाता है कि विरोधी शक्तियो की अपेक्षा वही महान है।'[1] ट्रेजडी की इस महत्ता को बनाये रखने के लिए ही सोफाक्लीज ने अपने नायक का कभी भाग्य के हाथो खिलौना नही बनने दिया।"[2] तभी तो इनके 'ईडिपस' नाटक का, ससार के श्रेष्ठ नाटको म सहज समावेश किया जाता है। इस नाटक के अन्त म राज ईडिपस का हृदयस्पर्शी आन्तरिक सघष है। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रीक नाटको मे बाह्य तथा आन्तरिक सघष को अत्यधिक महत्त्वपूण स्थान दिया गया है।

एलिझाबीथन कालीन सुविख्यात नाटककार शेक्सपीयर ने अपने नाटको म

–"The essential character of drama is social conflict"

–J H Lawson–Theory and Technique of play writing, 1969 (P 168)

१ 'ट्रजेडा चे सामथ्य दु खाचे चित्रण आणि नायकाचा अन्त यावर अवलबून नाही विरोधी शक्तीशी ज्या धर्याने त्याने झुज घेतली आणि स्वत चा नाश ओढवून घ्यावा लागला तरी विरोधी शक्तहून आपण अधिक महान असल्याचा जो प्रत्यय त्यान आणून दिला त्यात ट्रजेडीचे खरे सामथ्य आह।'–डा० गोविन्द केशव भट-संस्कृत नाटयसृष्टि (प० ५२) प्र० स० सन १९६४।

२ ब्रैडर मथ्यूज–अनु इन्दुजा अवस्थी–नाटक साहित्य का अध्ययन (पृ० ५८) सन् १९६४।

चना और समथन करते समय अनेक नाटका के निर्देश किए है। इन मनीषियों ने अपने विवेचन म सघष' शब्द के लिए पारिभाषिक शब्द के रूप म Conflict शब्द प्रयुक्त किया है । इस पारिभाषिक शब्द के लिए पर्यायी शब्द के रूप म clash collision, Encounter stripe struggle' शब्द प्रयुक्त किय जाते है। लेकिन इन शब्दो का प्रयाग विवेचन के अन्तगत ही किया जाता है न कि शीषक मे Conflict शब्द ही प्रयुक्त किया जाता है। उक्त पर्याया शब्दो म से Struggle शब्द सर्वाधिक रूढ़ है।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर निष्कष रूप मे कहा जा सकता है—

१ पाश्चात्य नाट्यशास्त्र मे सघष को नाटक का अनिवाय तत्व, प्राणतत्व माना गया है।

२ पाश्चात्य नाट्यशास्त्र म सघष तत्व पर अत्य त मौलिक विचारणीय एव चि तनीय चर्चा हुई भी है और हो भी रही है।

३ पाश्चात्य नाट्यशास्त्र म सघष के लिए पारिभाषिक शब्द के रूप म Conflict शब्द प्रयुक्त किया गया है।

४ पाश्चात्य नाटको म सघष को अत्य त महत्व का स्थान प्राप्त हुआ है। इन नाटकों में बहुत मार्मिक एव मनोज्ञ बाह्य सघष है ही पर उसस अधिक मार्मिक एव रुचिकर आन्तरिक सघष भी है। सघष के कारण अनेक पाश्चात्य नाटक श्रेष्ठ सिद्ध हुए हैं।

९ सस्कृत नाट्यशास्त्र मे सघष की चर्चा का अभाव

भारत मे आचाय भरतमुनि ने सवप्रथम नाट्यशास्त्र' का निमाण कर नाटय रचना और नाटयप्रदशन का विस्तारपूवक विवेचन किया है। उन्होने नाटक को एक ऐसी कला कृति क रूप मे स्वीकार किया जो निर्देशक तथा अभिनेताओ की सहायता स दशको की उपस्थिति म रगमच पर अभिनीत की जाती है। इससे सब लोगो का एक साथ मनोरजन होता है और सभी वण के लोग एकत्र आकर देख सकत हैं। उस समय उच्चवण वालो ने शूद्रो को वेद के अध्ययन की मनाई की थी।[१] परिणामत समाज म असतोष फैलने लगा। इस समस्या का सुलझान के लिए पचम वेद नाटक का निर्माण कर वेद व्यवहार को सावजनिक बनाने का प्रयास किया गया। इस प्रकार भरतमुनि के नाट्यशास्त्र म नाटक की उत्पत्ति की जो कथा आयी है उससे विदित होता है कि भारत म नाटक की उत्पत्ति एक तात्कालिक

१ न वद यवहारो य मश्र य शूद्रजातिषु। (नाटयशास्त्र अध्याय–१)
उद्धत–डॉ० दशरथ ओझा–हिन्दी नाटक उद्भव और विकास (पृ० ३६)
तृतीय सस्करण, सन् १९६१ ई०

दना, सस्कृत नाटककारों का अमा म सा था । परिणामस्वरूप सस्कृत नाटक म आतरिक सघष उपमित रहा है । इस तथ्य को दष्टि में रखकर ही डा० कीथ न कहा होगा नायक और नायिका क मन में उठन वाल अतद्व द्व की समावना का भी सस्कृत नाटक न बहिष्कार किया है ।' [१]

सघष की उपेक्षा क फलस्वरूप सस्कृत नाटक म नाट्यगुण की अपक्षा काव्य का अत्यधिक महत्त्वपूण स्थान दृष्टिगत होता है । इस विशषता का दृष्टि में रखकर ही फ्रेंच विवचक ब्रुनेतिएर न कहा है–

"The orientals have no drama, but they have novels I mean epics [२]

इस विषय में एस्० एच्० बुचर न भी कहा है–

''India has produced vast peems which pass under the name of dramas''

मराठी क विवचक वि० स० खाडकर भा स्वीकार करत हैं कि सघष की उपक्षा के कारण ही शाकुतल सराख जगविख्यात नाटयकृति में काव्य का अधिक उत्कष प्रतीत होता है न कि नाटय का । इन कथना स ज्ञात होता है कि सस्कृत नाटकों में सघष को विशष स्थान नहीं प्राप्त हुआ है ।

उपयुक्त विवचन स स्पष्ट होता है कि–

१ सस्कृत नाटयशास्त्र म स्पष्ट रूप म सघष का विवचन नहीं किया गया है । केवल ध्वनित होता है कि प्रयत्न नामक कार्यावस्था नियताप्ति तक सघष का रूप धारण कर सकती है ।

२ अत्यधिक आशावादी दृष्टिकोण क फलस्वरूप सस्कृत नाटकों म भी सघष को विशष स्थान नहीं मिला है । पर कुछ नाटकों म बाह्य सघष को लक्षणीय स्थान मिला है ।

३ सस्कृत नाटकों म आतरिक सघष का बहुत कम महत्त्व का स्थान मिला है ।

१ डॉ० कीथ–सस्कृत नाटक (प० २९५–२९६) प्रथम हिन्दी रूपातर सन् १९६५
२ उद्धत–B H Clark–European Theories of the Drama (P 409) Edition 1929
3 S H Butch r–Aristotle s Theory of poetry and Fine Art (I 366) 1951
४ "सामुग्र्य उत्कटता साम्या जगविख्यात नाटयकृतीत अधिक उत्कृष्ट आढलतो तो काव्याचा, नाट्याचा नव्हे ''–वि० स० खाडकर प्रास्ताविक पृ० १० डॉ० गो० के० भट–सस्कृत नाटयसृष्टी–प्र० स० १९६८ ई०

४ सस्कृत नाटकों में सघर्ष आनुषगिक रूप में प्रतीत होता है, न कि एक आवश्यक तत्व के रूप में।

१० हिन्दी नाट्य विषयक ग्रन्थो मे सघर्ष की नाममात्र विवेचना

वस्तुत जिसे हिन्दी नाट्यशास्त्र कहा जायगा इस प्रकार की प्रयत्नना नहीं हुई है। अब तक के हिन्दी नाटकों के स्वरूप को ध्यान में रखकर हिन्दी नाट्य शास्त्र का निर्माण नही हुआ है। कुछ विद्वानो ने सस्कृत तथा पाश्चात्य नाटयशास्त्र के अध्ययन के बल पर हिन्दी में नाटयशास्त्र लिखने के प्रयत्न किए हैं। लेकिन इससे 'हिन्दी नाटयशास्त्र' का निर्माण नही हो पाया है।

सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी में नाटक लिखने वालों को मार्गदर्शन करने के उद्देश्य से ईसवी सन् १८८३ मे 'नाटक' नामक निबन्ध लिखा। इस निबन्ध के आरम्भिक 'उपक्रम' में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखते हैं—"आशा है कि हिन्दी भाषा में नाटक बनाने वालों को यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी हो।"[1] इस उद्देश्य के अनुसार भारतेन्दु ने हिन्दी नाटक के प्रणयन के लिए सस्कृत नाटय प्रणाली के साथ पाश्चात्य नाटय प्रणाली को भी स्वीकार किया है। भारतेन्दु शेक्सपीयर की नाटय कला से प्रभावित हुए थे। उन्होंने आचार्य भरतप्रणीत नाटयशास्त्र का भी अध्ययन किया। अत भारतेन्दु विश्वास करने लगे कि हिन्दी नाटक के प्रणयन के लिए आचार्य भरत के 'नाटयशास्त्र' मे कहे हुए कुछ ही नियमो को स्वीकार करना होगा न कि सभी नियमों को। "क्योंकि प्राचीन लक्षण रखकर आधुनिक नाटकादि की शोभा सम्पादन करने से उलटा फल होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है। सस्कृत नाटकादि रचना के निमित्त महामुनि भरत जी जो सब नियम लिख गये हैं उनमे जो हिन्दी नाटक रचना के नितान्त उपयोगी हैं वे ही नियम यहाँ प्रकाशित होते हैं।"[2] इससे ध्वनित होता है कि भारतेन्दु हिन्दी नाटय प्रणाली को एक विशिष्ट रूप प्रदान करना चाहते थे। इसके लिए वे शेक्सपीयर की नाटय प्रणाली को भी अपनाने को कहते हैं। लेकिन 'भारतेंदु' के 'नाटक' नामक लघु ग्रथ मे 'सघर्ष तत्व' का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता।

महावीर प्रसाद द्विवेदी प्रणीत 'नाटयशास्त्र' (ई० स० १९०१), बलदेव प्रसाद मिश्र रचित 'नाटय प्रबन्ध' (ई० स० १९०३) मे भी सघर्ष तत्व का उल्लेख नहीं है। इन ग्रन्थों मे सबकुछ सस्कृत नाटयशास्त्र के आधार पर लिखा गया है।

---

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—नाटक (उपक्रम) प्रथम सस्करण सन् १९४१ ई० सपादक—दामोदरस्वरूप गुप्त।

२ वही पृ० १४।

श्यामसुन्दरदास और पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल रचित "रूपक रहस्य" (ई० स० १९३१) में पाश्चात्य नाटकों की नाट्यकला के संदर्भ में "संघर्ष तत्त्व" का उल्लेख किया गया है।[1] यहाँ संघर्ष के लिए विरोध शब्द का प्रयोग किया गया है। इस ग्रंथ में संघर्ष तत्त्व की चर्चा नहीं की गई है।

डॉ० एस० पी० खत्री रचित 'नाटक की परख' (१९४८) में तथा सीताराम चतुर्वेदी प्रणीत 'अभिनव नाट्यशास्त्र' के दूसरे संस्करण में पाश्चात्य नाट्यतत्त्वों के विवेचन में ब्रुनतिएर के संघर्ष विषयक सिद्धांत का उल्लेख किया गया है।[2][3] डॉ० रघुवंश ने भी 'नाट्यकला' (ई० स० १९६१) में संस्कृत तथा पाश्चात्य नाटकों के संदर्भ में संघर्ष तत्त्व का निर्देश किया है।[4] परन्तु इन ग्रंथों में भी संघर्ष तत्त्व का सैद्धान्तिक विवेचन नहीं हुआ है।

रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' लिखित 'प्रसाद की नाट्यकला' (द्वि० स० मार्च १९३०) नामक ग्रंथ नाट्य समीक्षात्मक ग्रंथ है। इसमें पाश्चात्य नाटकों तथा जयशंकर प्रसाद के नाटकों के संदर्भ में संघर्ष, द्वंद्व, अन्तर्द्वन्द्व शब्दों के उल्लेख प्राप्त हैं। इस ग्रंथ में संघर्ष तत्त्व के लिए संघर्ष शब्द का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं पर 'द्वंद्व' शब्द का प्रयुक्त हुआ है।[5] इससे ज्ञात होता है कि हिन्दी में नाटक के विवेचन के अन्तर्गत संघर्ष तत्त्व का निर्देश रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' द्वारा हुआ है। सम्भव है कि इसके पहले भी किसी ने संघर्षतत्त्व का निर्देश किया होगा। परन्तु लेखक को प्रयत्नपूर्वक जो हिन्दी में नाटक विषयक ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं उनके अध्ययन के आधार पर इस प्रकार कहा गया है।

ब्रजरत्नदास लिखित 'हिन्दी नाट्य साहित्य' (ई० स० १९३८) में भी जयशंकर प्रसाद के नाटकों के संदर्भ में संघर्ष तत्त्व का उल्लेख किया गया है। इस ग्रंथ के पश्चात हिंदी के अनेक नाट्य समीक्षात्मक तथा शोध प्रबन्धात्मक ग्रंथों में जयशंकर प्रसाद के नाटकों के संदर्भ में संघर्ष तत्त्व के उल्लेख किए गए हैं।[6] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों के संदर्भ में भी कई नाट्य समीक्षकों ने संघर्ष तत्त्व के

१ श्यामसुन्दरदास और पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल–रूपक रहस्य (पृष्ठ ८१)
द्वि० सं० सन् १९४० ई०

२ डा० एस० पी० खत्री–नाटक की परख (पृष्ठ २१-२२) द्वि० सं० सन १९५१ ई०

३ सीताराम चतुर्वेदी–अभिनव नाट्यशास्त्र (पृष्ठ १३२) १९६४ ई०

४ डा० रघुवंश–नाट्यकला–(पृष्ठ ६१-६५) प्रथम सं० सन १९६१ ई०

५ रामकृष्ण शुक्ल–शिलीमुख–प्रसाद की नाट्यकला (पृष्ठ ३१, ३८, ३९, ४१)
प्र० सं० मार्च १९३०

६ (अ) ब्रजरत्नदास–हिन्दी नाट्य साहित्य (पृ० १११)
चतुर्थ सं० सन् १९६३। प्र० सं० सन् १९३८।

निर्देश किए हैं ।[1] सन् १९५० के बाद लिखे गये नाट्य-समीक्षात्मक तथा शोध प्रबन्धात्मक ग्रन्थों में प्रसादोत्तर युग के नाटकों के सन्दर्भ में भी संघर्ष तत्व के उल्लेख किए गये हैं ।[2]

(आ) जगन्नाथ प्रसाद शर्मा–प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन (पृ० ३०३) तृतीय स० सन् १९४९ । प्र० स० सन् १९४३ ई०

(इ) डॉ० दशरथ ओझा–हिन्दी नाटक उद्भव और विकास (पृ० २५८ २६५) तृतीय स० सन् १९६१ ई० प्र० स० सन १९५४ ई०

(ई) जयनाथ नलिन–हिन्दी नाटककार (पृ० ७७–८४) द्वितीय स० सन् १९६१

(उ) डॉ श्रीपति शर्मा–हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव (पृ० १२९) प्रथम सस्करण सन् १९६१ ई०

(ऊ) डा० विश्वनाथ मिश्र–हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव (पृ० ११५) प्रथम स० सन १९६६ ई०

(ए) डा० बच्चनसिंह–हिन्दी नाटक (पृ० ६२ ६३, ८५–८७) द्वि० सस्करण सन् १९६७ ई०

1 (प) केसरीकुमार और रघुवंशलाल–भारतेन्दु और उनके नाटक–पृ० १२ १६ प्र० स० सन १९५६

(फ) डा० सोमनाथ गुप्त–हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास (पृ० ५१) चौथा स० सन १९५८ । (प्र० स० सन १९४८)

(ब) डा० दशरथ ओझा–हिन्दी नाटक उद्भव और विकास (पृ० १५६) तृ० सस्करण सन १९६१ ई०

(भ) डॉ० गोपीनाथ तिवारी–भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य (पृ० ३४०) भारतेन्दुकालीन नाटकों के सन्दर्भ में संघर्ष का उल्लेख (पृ० २८७ ८९) प्रथम स० सन १९५९ ई०

(म) जयनाथ नलिन–हिन्दी नाटककार (पृ० ४६–४७) द्वि० स० सन १९६१ ई०

(य) डा० श्रीपति शर्मा–हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव (पृ० ६७) प्र० स० सन १९६१ ई०

(र) डा० विश्वनाथ मिश्र–हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव (पृ० ६६) प्र० स० सन १९६६ ई०

2 निम्नलिखित तथा अन्य अनेक ग्रन्थों के कई पृष्ठों पर संघर्ष तत्व का उल्लेख—

इस दिशा में डा० प्र० रा० भुपटकर का प्रयत्न उल्लेखनीय है। इन्होंने केवल तटस्थ रूप में संघर्ष तत्व का उल्लेख नहीं किया है। इन्होंने अपने शोध प्रबन्ध में स्पष्ट रूप में संघर्ष को अत्यन्त महत्वपूर्ण नाट्य तत्व के रूप में स्वीकार किया है। इसलिए वे विश्वासपूर्वक कहते हैं— नाटक का ध्येय होना है, अन्य मानवों तथा शक्तियों का प्रतिकार करने वाले मानव की आशाएं, महत्वाकांक्षाएं, संघर्ष आदि को प्रत्यक्ष में अंकित करें।' इस विश्वास को लेकर डा० भुपटकर ने अपने शोध प्रबन्ध में हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की कथावस्तु के विवेचन में संघर्ष तत्व का भी निर्देश किया है। इन्हीं नाटकों के चरित्र चित्रण के विवेचन में भी चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्व का निर्देश किया गया है।[2] इससे ज्ञात होता है कि डा० प्र० रा० भुपटकर संघर्ष को एक महत्वपूर्ण नाट्य तत्व के रूप में स्वीकार करते हैं।

वस्तुतः यह स्पष्ट है कि–

(१) पाश्चात्य नाट्य सिद्धान्तों के अध्ययन के फलस्वरूप हिन्दी में नाट्य तत्वों तथा नाटकों के विवेचन में संघर्ष तत्व का उल्लेख किया गया है और किया भी जा रहा है।

(२) हिन्दी में नाट्यतत्व के रूप में संघर्ष को स्वीकार किया जा रहा है।

(३) लेकिन हिन्दी के नाट्य विषयक ग्रन्थों में संघर्ष तत्व का व्यवस्थित रूप में सांगोपांग सैद्धान्तिक विश्लेषण नहीं हुआ है।

हिन्दी नाटकों में संघर्ष : एक निर्देश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हुआ है कि पाश्चात्य प्रभाव के परिणामस्वरूप हिन्दी नाटकों में संघर्ष तत्व ने प्रतिष्ठित स्थान पाया है। इस प्रभाव का आरम्भ 'भारतेन्दु युग' से हुआ है और जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में इसका समुचित

(त) डा० गिरिजासिंह–हिन्दी नाटकों का शिल्पविधि–प्र० सं० सन १९७० ई०

(थ) डॉ० कमलिनी मेहता–नाटक और यथार्थवाद–प्र० सं० सन १९६८ ई०

(द) डा० मान्धाता ओझा–हिन्दी समस्या नाटक–प्र० सं० सन १९६८ ई०

(ध) डा० विनयकुमार–हिन्दी के समस्या नाटक–प्र० सं० सन् १९६८ ई०

(न) डा० गिरीश रस्तोगी–हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन–
(इस सन्दर्भ में उपर्युक्त क्रमों में से इस क्रम के ग्रन्थ भी दर्शनीय हैं इ ई उ ऊ, ए)

१ डा० प्र० रा० भुपटकर–हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक तुलनात्मक विवेचन (पृ० ३०१) प्र० सं० सन १९७० ई०

२ वही–कथावस्तु के सन्दर्भ में (पृ० ८५–३३९)
–चरित्र चित्रण के सन्दर्भ में (पृ० ३६५–३७३)

विकास किया है। स्वयं भारतेन्दु और उनके समकालीन अन्य नाटककारों के नाटकों में संघर्ष तत्त्व ने उल्लेखनीय स्थान पाया है। परन्तु इन नाटकों मे बाह्य संघर्ष को ही विशेष स्थान मिला है।

जयशंकर प्रसाद के नाटकों मे बाह्य संघर्ष के साथ आन्तरिक संघर्ष को भी महत्त्व का स्थान दिया गया है। संघर्ष तत्त्व को महत्त्वपूर्ण स्थान देने के कारण ही इनके स्कन्दगुप्त और 'ध्रुवस्वामिनी' नाटकों ने नाटक साहित्य में उच्चकोटि का स्थान पाया है। बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष के कारण इनके कुछ पात्र युग विशेष से सम्बन्धित होते हुए भी सार्वयुगीन बन गये हैं। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि हिन्दी नाटकों में संघर्ष को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप मे स्थान देने का श्रेय जयशंकर प्रसाद को है। प्रसाद के इस कार्य पर शेक्सपीयर के नाटकों का प्रभाव लक्षित होता है।

प्रसादोत्तर युग के नाटककारों ने भी इब्सेन, बर्नार्ड शा आदि पाश्चात्य नाटककारों से प्रभावित होकर अपने नाटकों मे बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष को समीचीन स्थान दिया है। इस दृष्टि से उदयशंकर भट्ट गोविन्दवल्लभ पन्त, सेठ गोविन्ददास हरिकृष्ण प्रेमी उपेन्द्रनाथ अश्क रामकुमार वर्मा आदि के नाटक उल्लेखनीय हैं।

इस युग के लक्ष्मीनारायण मिश्र एक ऐसे नाटककार हैं जिन्होने 'प्रसाद' युग मे नाटक लिखना आरम्भ किया और प्रसादोत्तर युग के एक प्रमुख नाटककार बन गये। दि० १५ और १६ अक्टूबर १९७० को मुझे वाराणसी मे लक्ष्मीनारायण मिश्र के शारदा पीठ' भवन पर उनसे मिलने का सुअवसर मिला। बहुत देर तक हम मे बातचीत होती रही। वार्तालाप में उन्होंने प्रकट किया कि वे पाश्चात्य नाट्यप्रणाली से प्रभावित नहीं हैं। पाश्चात्य नाटकों मे हिंसा प्रतिहिंसा स्वार्थ पर आधारित संघर्ष तत्त्व को स्थान मिला है जिसे भारतीय संस्कृति ने निषिद्ध माना है। अतः इन्होने अपने नाटकों मे ऐसे संघर्ष को स्थान देना अनुचित माना और संस्कृत नाट्य प्रणाली के अनुसार (जैसे शूद्रक के मुद्राराक्षस नाटक में निःस्वार्थ भाव से कर्त्तव्य बुद्धि से दो मेधावी व्यक्तियों–चाणक्य और राक्षस–में राजनीतिक कूटबुद्धि का संघर्ष है) अपने नाटकों मे अनासक्त कर्म के रूप में संघर्ष को स्वीकार किया।

इस धारणा का परिणाम यह हुआ है कि लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों मे बाह्य संघर्ष की तुलना में आन्तरिक संघर्ष ने बहुत कम महत्त्व का स्थान पाया है। यहाँ इस प्रकार कहना अयोग्य न होगा कि किसी भी रूप में क्यों न हो लक्ष्मी नारायण मिश्र ने भी अपने नाटकों मे संघर्ष तत्त्व को स्थान दिया है।

आजकल के नाटकों मे तो संघर्ष तत्त्व को इतना महत्त्व का स्थान दिया गया है कि यदि इन नाटकों में से संघर्ष को निकाल दिया **जाय तो** वे प्राणहीन प्रतीत

होंगे । अभिप्राय यह कि संघर्ष इन नाटकों का प्राणतत्त्व बन गया है । इस सन्दर्भ में यह भी निर्देशनीय है कि इन नाटकों में संघर्ष मनोविकार पर आधारित है । फलत इन नाटकों का आन्तरिक संघर्ष अत्यन्त मर्मस्पर्शी बन पड़ा है । इस दृष्टि से उपेन्द्रनाथ अश्क, डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, जगदीशचन्द्र माथुर, रवीन्द्र शर्मा, विष्णु प्रभाकर, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, विनोद रस्तोगी, ललित सहगल, डॉ० शिवप्रसाद सिंह, अमृतराय आदि के नाटक अवलोकनीय हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से विदित होता है कि हिन्दी नाटक में संघर्ष ने उत्तरोत्तर अनिवार्य तत्त्व के रूप में महत्त्व का स्थान पाया है ।

११ निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्याय में नाटक और संघर्ष सम्बन्धी की गई सम्पूर्ण विवेचना को ध्यान में रखकर निष्कर्ष रूप में इस प्रकार कहना बुद्धिसंगत प्रतीत होता है कि—

१ नाटक और संघर्ष का परस्पर अभिन्न एवं महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है ।

२ संघर्ष नाटक का अनिवार्य तत्त्व है ।

दूसरा अध्याय

प्रसादपूर्व तथा प्रसादकालीन नाटक और संघर्ष तत्त्व

(ईसवी सन् १८६७–१९३३)

प्रस्तुत अध्याय मे प्रसादपूर्व तथा प्रसादकालीन नाटको के सन्दर्भ में संघर्ष तत्त्व का विहगमावलोकनात्मक विवेचन अपेक्षित है। इससे यह विदित होगा कि हिन्दी नाटक में संघर्ष ने कब और क्यो स्थान पाया ? साथ साथ यह भी ज्ञात होगा कि हिन्दी नाटक साहित्य मे संघर्ष को एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित स्थान प्रदान करने का कार्य जयशकर प्रसाद ने किस प्रकार किया है।

विवेचन की सुविधा को दृष्टि म रखकर प्रस्तुत अध्याय में निम्नलिखित पद्धति को स्वीकार किया गया है–

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटको मे संघर्ष तत्त्व।
२ भारतेन्दु युग मे लेकर प्रसाद युग तक के नाटककारों के नाटको म संघर्ष तत्त्व।
३ जयशकर प्रसाद के नाटको मे संघर्ष तत्त्व।
४ प्रसादकालीन नाटककारों के नाटको में संघर्ष तत्त्व।

प्रस्तुत विवेचन म भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को अग्रस्थान देने का महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि उन्होने सर्वप्रथम हिन्दी नाटक को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्वरूप प्रदान किया है। इस सन्दर्भ म डा० गिरीश रस्तोगी का कथन दृष्टव्य है। उन्होने अपने कथन म कहा है–

अपनी समसामयिक सामाजिक आर्थिक राजनीतिक एव साहित्यिक गतिविधि के प्रति पूर्णत सचेत रहकर उन्होने अभिव्यजना का सर्वोत्कृष्ट माध्यम नाटक को चुना। राष्ट्रीय चेतना जनजीवन की समस्याओं के चित्रण भारतीय रगमच की स्थापना हिन्दी नाटक का स्वरूप निर्धारण उसकी प्रयोजनीयता तथा कला का परिष्कार आदि ऐसे गुण है जो तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ म उनके वैशिष्ट्य को स्पष्ट करते हैं। वे प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार के साथ साथ सुधारक प्रचारक

लिखते हैं 'इस प्रकार बाह्य द्वन्द्व के साथ अन्तर्द्वन्द्व का प्रदर्शन उनका (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का) लक्ष्य है। विचारधारा की इस नवीनता का कारण तत्कालीन समाज, उसकी आवश्यकताएँ, अंग्रेजी सभ्यता और साहित्य का सम्पर्क एवं मनोविज्ञान का अधिक युक्तिसंगत अध्ययन आदि है।'[1] इससे ज्ञात होता है कि हरिश्चन्द्र के नाटकों में संघर्षतत्त्व को महत्त्व का स्थान दिया गया है।

(आ) भारतेन्दु हरिश्चन्द के संघर्षयुक्त नाटक

परन्तु भारतेन्दु के कुछ ही नाटकों में संघर्ष तत्त्व ने महत्त्वपूर्ण स्थान पाया है। इस दृष्टि से सत्य हरिश्चन्द्र विद्यासुन्दर तथा मुद्राराक्षस' विशेष उल्लेखनीय हैं।

इनके पौराणिक नाटकों में से सत्य हरिश्चन्द्र' संघर्ष की दृष्टि से सराहनीय है। इसीलिए ही डा० चन्द्रूलाल दुबे कहते हैं—'सत्य हरिश्चन्द्र में तो उसका पूरा जीवन ही संघर्ष से भरा है जिससे राजा हरिश्चन्द्र का व्यक्तित्व बहुत ही मुखर हो उठा है।'[2] राजा हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा करने वाले विश्वामित्र का दृढ़ प्रतिज्ञ, सत्यप्रिय संघर्षशील हरिश्चन्द्र के सामने हार खानी पड़ती है। राजा हरिश्चन्द्र के आदर्श की विजय हो जाती है।

इस नाटक में कहीं कहीं पर परिस्थिति विशेष में राजा हरिश्चन्द्र के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का भी प्रकाशन हुआ है। इस पर प्रकाश डालते हुए डा० श्रीपति शर्मा लिखते हैं– पश्चिमी शैली के अनुसार उत्सुकता तथा मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के अनेक उदाहरण इसमें उपस्थित हैं। मरघट के दृश्य में हरिश्चन्द्र के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण है। राजा हरिश्चन्द्र की रानी शैव्या रोहिताश्व के शव को लिए हुए घाट पर आती है। बिजली के कौंधने से हरिश्चन्द्र उसे पहचान लेते हैं। उनके मन में अपार दुख होता है। कर्त्तव्य और भावना के बीच महान संघर्ष उनके मन में छिड़ जाता है। इस प्रकार की मानसिक स्थिति शेक्सपीयर के हैमलेट से मिलती जुलती है– हा वज्र हृदय, इतने पर भी तू क्या नहीं फटता ? अरे नेत्रों ! अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब भी खुले हो। इससे पूर्व कि किसी से सामना हो प्राण त्याग करना ही उत्तम बात है। (पेड़ के पास जाकर फांसी देने योग्य डाली खींचकर उसमें दुपट्टा बांधता है) धैर्य ! मैंने अपने जान सब अच्छा ही किया।

१ डा० सोमनाथ गुप्त–हिन्दी नाटक साहित्य का विकास (पृ० ५१) चौथा सं० सन् १९५८ ई०

२ डॉ० चन्द्रूलाल दुबे–हिन्दी नाटकों का रूप विधान और वस्तु विकास (पृ० ६०) प्रथम संस्करण सन् १९७० ई०

(दुरन्त की पत्नी रूप में रखना चाहता है कि एक साथ चौंककर) धिक्कार ! धिक्कार ! यह मैंने क्या अधम अनर्थ विचारा । मेरा शुभ नाम का अपने शरीर पर क्या अधिकार था कि मैंने प्राणत्याग करना चाहा ।' इससे ज्ञात होता है कि राजा हरिश्चन्द्र में कर्तव्य पालन का दृढ़ प्रबल है । तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र का बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष चित्ताकर्षक है । इससे प्रस्तुत नाटक प्रभावोत्पादक एवं मूल्यवान बन गया है । साथ ही राजा हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र का संघर्ष एक ओर से व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष है तो दूसरी ओर से दो जीवन निष्ठाओं का संघर्ष है ।

भारतेन्दु का ऐतिहासिक नाटक नीलदेवी संघर्ष की दृष्टि से उत्तम है । यह ऐतिहासिक घटना पर लिखा नाटक आरम्भ से अन्त तक संघर्ष से भरा है ।[1] इसमें दो राष्ट्रों के बीच हिन्दू मुसलमानों के बीच धर्म-संस्कृति में तथा समूहों में बाह्य संघर्ष है । पंजाब का राजा सूर्यदेव अपने देश तथा मान की रक्षा के लिए अब्दुश्शरीफ़ खाँ के सैनिकों से अन्तिम दम तक संघर्ष करता है । उसकी वीरगति के उपरान्त रानी नीलदेवी अपने देश के स्वातन्त्र्य तथा अपने पातिव्रत्य की रक्षा के लिए और शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए बड़ी चातुरी तथा वीरता से अमीर अब्दुश्शरीफ़ को हत्या कर डालती है । उसी समय नीलदेवी का पुत्र सोमदेव अपने सैनिकों के साथ मुसलमानों पर टूट पड़ता है और विजय प्राप्त करता है । इस प्रकार प्रस्तुत नाटक आदि से अन्त तक संघर्ष से व्याप्त है । इसमें सूर्यदेव, नीलदेवी और सोमदेव की देश-रक्षा का प्रबल इच्छा के कारण बाह्य संघर्ष तथा नाटक प्रभावी बन पड़ा है ।

भारतेन्दु के प्रेम प्रधान नाटक विद्यासुन्दर में बाह्य संघर्ष का उल्लेख करते हुए डॉ० गिरीश रस्तोगी लिखते हैं—"बंगला नाटक के छायानुवाद विद्यासुन्दर में नवीन और प्राचीन विवाह पद्धतियों का संघर्ष प्रमुख है ।"[3] इसमें व्यक्ति का प्रचलित परम्परा के विरुद्ध संघर्ष है । क्योंकि नायिका विद्यावती और नायक सुन्दर प्रचलित प्रथा के विरुद्ध स्वेच्छानुसार गान्धर्व विवाह कर लेते हैं । डॉ० दशरथ ओझा ने इस बात पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है और यह भी सूचित किया है कि इसमें नायक और नायिका में अन्तर्द्वन्द्व भी है । क्योंकि नवीन विचार के अनुसार विद्या और सुन्दर विवाह तो कर लेते हैं किन्तु चिरकाल प्रचलित परम्परा की छाया के कारण उनमें अन्तर्द्वन्द्व भी उत्पन्न हो जाता है । नाटककार ने इस संघर्ष का बड़ा

1 डॉ० श्रीपति शर्मा—हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव (पृ० [illegible]–६८) प्रथम संस्करण सन् १९६१ ।
2 डॉ० गोपीनाथ तिवारी—भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य (पृ० २८०) प्रथम संस्करण सन् १९५९ ।
3 डॉ० गिरीश रस्तोगी—हिन्दी नाटक सिद्धांत और विवेचन (पृ० ७२) प्रथम संस्करण, सन् १९६७ ई० ।

पण शैली में दिखाया है।[1] इससे स्पष्ट होता है कि इस नाटक में बाह्य संघर्ष के साथ साथ आन्तरिक संघर्ष का भी अस्तित्व है।

'मुद्राराक्षस' में परस्पर विरुद्ध सिद्धान्तों के कारण कूटनीतिज्ञ चाणक्य और राक्षस में राज्य के लिए चन्द्रगुप्त और नन्द में, बाह्य संघर्ष है। यह व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष है। 'इतक पाखण्ड विडम्बन' में अपने अपने स्वार्थों को लेकर मदोन्मत्त कापालिक और अन्य दुराचारी साधुओं में संघर्ष है। 'कर्पूर मंजरी' में राजा चन्द्रपाल और रानी विचक्षणा में 'गृह कलह' के रूप में बाह्य संघर्ष है। 'भारत-दुर्दशा' में भारत के देशभक्तों का अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष है। लेकिन इन नाटकों में संघर्ष को विशेष महत्त्व का स्थान नहीं मिल गया है।

सारांश यह कि पाश्चात्य नाटक प्रणाली के प्रभाव के कारण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के विभिन्न नाटकों में संघर्ष को कम अधिक रूप में, महत्व का स्थान प्राप्त हुआ है।

२ भारतेन्दु युग से लेकर प्रसाद युग तक के नाटककारों के नाटकों मे संघर्ष तत्त्व (ई० सन् १८७३–१९१२)

भारतेन्दु युग से लेकर प्रसाद युग तक कुछ नाटककार उल्लेखनीय हैं। इसका श्रेय भारतेन्दु को है। क्योंकि भारतेन्दु जी ने स्वयं नाट्यरचना की ही अपने मित्रों को भी नाट्यनिर्माण और नाट्याभिनय के लिए प्रेरणा दी। उनके व्यक्तित्व और प्रोत्साहन से आकर्षित होकर तत्कालीन सभी प्रसिद्ध लेखक उनके सम्पर्क में आए।'[3] इस प्रकार से उल्लेखनीय नाटककारों में—लाला श्रीनिवासदास, राधाकृष्ण दास, राधाचरण गोस्वामी, प० बालकृष्ण भट्ट, प० प्रतापनारायण मिश्र प० केशव राम भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी अयोध्यासिंह उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन देवकीनन्दन त्रिपाठी प० अम्बिकादत्त व्यास, लाला शालिग्राम वैश्य, ज्वालाप्रसाद मिश्र, बाबू काशीनाथ खत्री खड्गबहादुर मल्ल, गोपालराम गहमरी प० जगतनारायण शर्मा, लाला रुद्रनाथ आदि नाटककारों का समावेश होता है।

इन नाटककारों की यह विशेषता रही है कि इनमें से किसी ने भी संस्कृत नाटकों के नियमों का पूर्ण रीति से अनुसरण न करते हुए पाश्चात्य नाटक प्रणाली को स्वतन्त्र रीति से अपनाया है। अतः स्वच्छन्दता तथा स्वतन्त्रता की इसी प्रवृत्ति के कारण हिन्दी में एक नवीन नाट्य परम्परा का निर्माण इस युग में हुआ, जो भविष्य में अधिक विकास को प्राप्त हुई।"[2] अर्थात् प्रसाद युग में वह अधिक विकसित हो गई।

[1] डॉ दशरथ ओझा—हिन्दी नाटक उद्भव और विकास (पृ० १५६) तृतीय संस्करण सन १९६१ ई०। [2] वही, (पृ० १९०)

[3] डा श्रीपति शर्मा—हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव (पृ० १९) प्र० सं० सन् १९६१ ई०।

नवीन नाट्य परम्परा के अनुसार नाटककार अपने नाटक के कथानक तथा चरित्र के सन्दर्भ में संघर्ष को स्थान देने लगे। इस तथ्य को प्रकाश में लाते हुए डा० गोपीनाथ तिवारी लिखते हैं "भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने भी संघर्ष को अपनाया है और नाटकों में उच्चासन पर बिठाया है। संघर्ष के दोनों रूप बाह्य संघर्ष एवं अन्तःसंघर्ष नाटकों में चित्रित हैं। अधिकांश नाटककारों ने कथा और पात्र के निर्वाचन में संघर्ष को दृष्टि में रखकर ही निर्वाचन किया है। सभी प्रकार के नाटकों में यह तथ्य दिखलायी देता है।"[1] इससे विदित होता है कि उपर्युक्त नाटककारों के सभी प्रकार के नाटकों में संघर्ष तत्त्व ने विचारणीय स्थान पाया है।

उपर्युक्त नाटककारों ने विषय की दृष्टि से पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक (राष्ट्रीय चेतना से युक्त) तथा प्रेमप्रधान नाटकों के साथ साथ समाज विघातक प्रथाओं, अन्धविश्वासों, आर्थिक विषमताओं पर प्रकाश डालने वाले हास्यव्यंग्यपूर्ण प्रहसन भी लिखे हैं।

(इ) पौराणिक नाटकों में संघर्ष

संघर्ष की दृष्टि से पौराणिक नाटकों में से अनेक पौराणिक नाटक उल्लेखनीय हैं। जैसे रुक्मिणी-परिणय, मोरध्वज, प्रद्युम्न विजय, कल्पवृक्ष, अभिमन्यु आदि। इन नाटकों में बाह्य संघर्ष को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। इनमें भी अलौकिक शक्तियों देवों और दानवों के बीच संघर्ष है। इसका उल्लेख करते हुए डा० भानुदेव शुक्ल लिखते हैं—"स्पष्ट है देवों एवं मानवों, अलौकिक शक्तियों के संघर्ष में देव पक्ष की विजय अवश्यम्भावी है। परिणामस्वरूप सत्य की विजय एवं आत्मा में बाधक शक्तियों की पराजय होकर आत्मा का उत्कर्ष ही इन नाटकों का अंतिम परिणाम होता है।"[2] इससे विदित होता है कि पौराणिक नाटकों में सृष्ट और दुष्ट, सत और असत पक्षों में संघर्ष होता है और उसमें सत्पक्ष की विजय होती है।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय के प्रद्युम्न विजय नाटक में सत्य पक्ष का प्रद्युम्न असत्य पक्ष के दैत्य निकुम्भ से संघर्ष करता है, उसे हराता है और ब्राह्मण कन्याओं को छुड़ा लाता है। इन्हीं के रुक्मिणी परिणय और देवकीनन्दन त्रिपाठी के 'रुक्मिणीहरण' में रुक्मिणी की इच्छानुसार रुक्मिणी का हरण करते हुए श्रीकृष्ण को रुक्मी तथा शिशुपाल से संघर्ष करना पड़ता है। लाला शालिग्राम वैश्य के 'मोरध्वज' में कृष्णभक्त राजा मोरध्वज का पुत्र पाण्डवों के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को रोक लेता है

१ डा० गोपीनाथ तिवारी—भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य (पृ० २८७) प्र० सं० सन १९६१ ई०।

२ डा० भानुदेव शुक्ल—भारतेन्दु युगीन नाटक साहित्य—(पृ० २२३) प्र० सं० सन १९६२।

और अर्जुन से संघर्ष करता है-अर्जुन तथा उसके साथियों को परास्त करता है। लाला खड्गबहादुर मल्ल के कल्पवृक्ष में श्रीकृष्ण और इन्द्र का संघर्ष है। लाला शालिग्राम वैश्य के अभिमन्यु में वीर अभिमन्यु का विपक्ष से वीरतापूर्वक संघर्ष है। कुन्नीलाल के श्रीहरिश्चन्द्र और रामभजन मिश्र के 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटकों में लाला श्रीनिवासदास, मोहनलाल विष्णु पण्ड्या और जगन्नाथशरण के प्रल्हाद चरित्र' नामक नाटकों में राजा हरिश्चन्द्र और भक्त प्रल्हाद अपने आदर्शों के लिए संघर्षरत हैं। बाबू कन्हैयालाल का शील सावित्री ईशराज का सावित्री नाटक गजराजसिंह का द्रौपदी वस्त्राहरण, देवकीनन्दन त्रिपाठी तथा बद्रीदीन दीक्षित के 'सीताहरण' नाटक भी संघर्ष की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। क्योंकि इन में सती स्त्रियाँ का अपने सतीत्व के लिये संघर्ष है।

सभी प्रकार के पौराणिक नाटकों में संघर्ष का विवेचन करते हुये डा० गोपीनाथ तिवारी लिखते हैं—' पौराणिक नाटकों में इनका ध्यान उन्हीं कथाओं की ओर गया जहाँ पात्र संघर्ष में रत हैं। यदि संघर्ष थोड़ा था तो उसे विस्तार दिया गया। नाटककारों के पौराणिक पात्र आदर्श के लिये संघर्षरत हैं। राजा हरिश्चन्द्र आरम्भ से अन्त तक संघर्ष में लगे हुए हैं। यह संघर्ष बिलकुल अन्त में जाकर ही शान्त होता है। प्रल्हाद मोरध्वज अभिमन्यु सब ऐसे ही पात्र हैं जो संघर्ष में ही पनपते हैं। पुरुष ही नहीं पौराणिक स्त्रियाँ भी संघर्ष संयुक्त हैं।[1] इसके साथ साथ डॉ० गोपीनाथ तिवारी ने लाला शालिग्राम वैश्य के अभिमन्यु, प० देवकीनन्दन खत्री के 'रुक्मिणी हरण' आदि नाटकों के आन्तरिक संघर्ष के स्थलों का भी उल्लेख किया है। जैसे अभिमन्यु नाटक में अभिमन्यु प्रियतमा से विदा हो रणस्थल की ओर जाता है तो मन झूलने लगा। कभी वह प्राणेश्वरी के चन्द्रमुख का ध्यान करने लगा तो कभी रणस्थली के रणसिंघे का। अभिमन्यु के मरणोपरान्त महाराज युधिष्ठिर के हृदय में आँधी उठ खड़ी हुई कि युद्ध जारी रखा जाय या नहीं।[2] इस प्रकार पौराणिक नाटकों में बाह्य संघर्ष के साथ साथ आंशिकरूप में आन्तरिक संघर्ष का भी स्थान प्राप्त हुआ है।

(ई) ऐतिहासिक नाटकों में संघर्ष

इस युग के ऐतिहासिक नाटक तो संघर्षरहित हैं ही नहीं। इतिहास से उन्हीं पात्रों को चुना है जो संघर्ष में डूबे हुए हैं विशेषकर मुसलमानों के विरोध में।[1] अतः इस युग के अनेक ऐतिहासिक नाटक उल्लेखनीय हैं—राधाकृष्णदास के

१ डा० गोपीनाथ तिवारी—भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य (पृ० २८८) प्र० स० सन १९५९।

२ वही, (पृ० २८९)

३ वही, (पृ० २८८)

'महारानी पद्मावती' और 'महाराणा प्रतापसिंह' दोनों नाटकों में वीर राजपूतों का अपने देश की स्वाधीनता तथा अपनी आन बान मान मर्यादा की रक्षा के लिए आक्रामक मुसलमानों से प्रखर संघर्ष है। महारानी पद्मावती में वीर तथा मानी राजपूतों का लालची एवं आक्रामक अलाउद्दीन से संघर्ष है। अतः इस नाटक में आदि से अन्त तक संघर्ष है।

महाराणा प्रताप में तो संघर्ष से ही कथा का आरम्भ होता है। इसमें वीर महाराणा प्रताप अपनी जन्मभूमि चित्तौड़ की स्वाधीनता के लिए मुगल बादशाह अकबर से जीवनपर्यन्त वीरतापूर्वक संघर्ष करते हैं। उन्हें इस संघर्ष के कारण अपने वनों व जंगलों में बाल बच्चों के साथ विपन्नावस्था में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। फिर भी वे अपने संघर्ष को स्थगित नहीं होने देते। महाराणा प्रताप का प्रबल संघर्षशील व्यक्तित्व से नाटक रोचक बन गया है।

राधाचरण गोस्वामी के 'अमरसिंह राठौर' में वीर राजपूत अमरसिंह मुगलों का प्रतिकार करने की इच्छा से बादशाह शाहजहाँ के दरबार में पहुँच जाता है। वहीं उसे रोष दिखाना पड़ता है। अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए मानी अमरसिंह सरदार सलावत खाँ का सिर तलवार से उड़ा देता है। भयंकर संघर्ष छिड़ जाता है। उसी संघर्ष में वीर अमरसिंह अपने प्राणों का अर्पण कर देता है।

पं० प्रतापनारायण मिश्र के 'हठी हम्मीर' तथा लाला रुद्रनाथ के 'वीर हम्मीर' में रणथम्भौर के राजा हम्मीरसिंह अपना राजपूती आन का निर्वाह तथा शरणार्थी की रक्षा करने के लिए आक्रमक अलाउद्दीन से वीरतापूर्वक संघर्ष करता है।

काशीनाथ खत्री के 'सिन्धु देश की राजकुमारियाँ' नाटक में अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए सूरज और परमल दोनों राजकुमारियों का आक्रामक मुहम्मद बिन कासिम से संघर्ष है। इस संघर्ष की परिणति कासिम की हत्या से हो जाती है। काशीनाथ खत्री के 'गन्नौर की रानी' में अपने सतीत्व की रक्षा के लिए गन्नौर की रानी का दुष्ट मुसलमान सरदार वास्खाँ से संघर्ष है। वह उसकी हत्या करने में सफल हो जाती है।

राधाचरण गोस्वामी के 'सती चन्द्रावली' में भी एक हिन्दू नारी अपने सतीत्व की रक्षा के लिए दुष्ट आततायियों से निर्दयता से संघर्ष करती है और उसी संघर्ष में ही अपनी आहुति देती है। इस बात का गौरव के साथ उल्लेख करते हुए डॉ० दशरथ ओझा लिखते हैं—"इस चरित्र प्रधान नाटक में एक वीर नारी का चरित्र दिखाया गया है, जो राजपूत की लड़की अपने धर्म पर आरूढ़ रहती है और धर्म रक्षा के लिए युद्ध करते हुए शरीर त्याग देती है।"[1] इस नाटक की कथा

१ डॉ० दशरथ ओझा—हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास—(पृ० २०३) तृ० सं० सन् १९६९ ई०।

नक औरंगजेब के शासनकाल से सम्बन्ध रखता है । "अशरफ खाँ पानी भरने गयी हुई चन्द्रावली को जबरदस्ती पकड़कर अपने खेमे मे भेज देता है और उसके साथ निकाह करना चाहता है । परन्तु वह सती बड़े साहस के साथ उसका विरोध करती है । इस घटना का समाचार पाकर हिन्दू रईस औरंगजेब के पास चन्द्रावली को छोड़ देने के लिये प्रार्थना करने हैं परन्तु उन्हे निराश लौटना पड़ता है । इस पर हिन्दू जनता उत्तेजित होकर विद्रोह कर देती है और अशरफ खाँ का मकान लूट लिया जाता है । इस पर औरंगजेब कत्ल आम का हुक्म देता है । अन्त मे चन्द्रावली व्यर्थ का रक्तपात रोकने के लिये आत्महत्या कर देती है ।"[1] इस प्रकार इस नाटक मे व्यक्ति व्यक्ति के संघर्ष के साथ सामूहिक संघर्ष भी है और यह संघर्ष अपनी मान मर्यादा तथा स्वाधीनता रक्षा की इच्छा से हिन्दुओं का मुसलमानों से है ।

हिन्दू मुस्लिम संघर्ष का और भी एक कारण है । वह है मुसलमानों द्वारा गो वध । हिन्दू गोवध का निषेध करते हैं । फलत दोनों मे संघर्ष छिड जाता है । इस संघर्ष को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रखकर सुलझाने का प्रयास रत्नचन्द्र के न्याय सभा नाटक, प० देवकीनन्दन त्रिपाठी के 'गोवध निषेध' जगतनारायण के 'अकबर गोरक्षा न्याय' और प० अम्बिकादत्त व्यास के 'गोसंकट' इन नाटकों में हुआ है ।'[2]

अन्य नाटकों में से बाबू गोपालराम गहमरी का 'बनवीर नाटक', लाला शालिग्राम वैश्य का 'पुरु विक्रम नाटक' उल्लेखनीय हैं । 'पुरु विक्रम' में पुरु का अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिए आक्रामक सिकन्दर से संघर्ष है ।

इस युग के ऐतिहासिक नाटकों में बाह्य संघर्ष के साथ कहीं कहीं पर आंतरिक संघर्ष भी है । विशेषत बाबू राधाकृष्णदास के 'महाराणा प्रताप' नाटक मे कई स्थानों पर मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के बड़े सुन्दर चित्र रखे गये हैं । 'उदाहरण के लिए जङ्गल वाले दृश्य में महाराणा प्रताप की कई दिन की भूखी लडकी के हाथ से, जब बिलाव रोटी लेकर भाग जाता है और वह तड़पकर पिता की ओर, क्षुधातुर नेत्रों से देखकर क्रन्दन कर उठती है उस समय प्रताप के मन में कर्तव्य देशभक्ति तथा सन्तान प्रेम के बीच का अन्तर्द्वन्द्व हैमलेट के समान दिखाया गया है ।'[3]

इस प्रकार ऐतिहासिक नाटकों में बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष को महत्त्व का स्थान प्राप्त हुआ है ।

---

१ डा वेदपाल खन्ना–हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन (पृ० ७२) प्रथम संस्करण सन १९५८ ई० ।

२ डा धनञ्जय–हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्त्व–(पृ० ११४) प्रथम स० सन १९७० ई० ।

३ डा श्रीपति शर्मा–हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव–(पृ० ७०) प्रथम स० सन १९६९ ई० ।

(उ) प्रेमप्रधान नाटकों में संघर्ष

इस युग के प्रेमप्रधान नाटकों में भी संघर्ष का अस्तित्व है। इस दृष्टि से लाला श्रीनिवासदास का रणधीर प्रेममोहिनी नाटक उल्लेखनीय है। इसमें संघर्ष को पर्याप्त स्थान प्राप्त हुआ है। इस पर शेक्सपियर के 'रोमियो एण्ड जूलियट' का प्रभाव होने के कारण इसमें दो परिवारों के बीच संघर्ष दिखाया गया है। प्रेमी नायक रणधीर को अपनी प्रियतमा प्रेममोहिनी के लिए विपक्ष से संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्ष में दोनों प्रेमी जान से हाथ धो उठते हैं।

किशोरीलाल गोस्वामी के मयंक मञ्जरी में मन्त्री की पुत्री मयङ्क और राजकुमार वीरेन्द्रसिंह को अपने प्रेम को स्वान्तर विवाह करने में के लिए विरोधी राजकुमार बसन्तक से संघर्ष करना पड़ता है। उदाहरण के रूप में इन दो नाटकों को देखने के उपरान्त प्रेमप्रधान नाटकों में संघर्ष की दृष्टि से डॉ० चन्द्रलाल दुबे का एक कथन द्रष्टव्य है। इस युग के नाटकों का उपर सामान्य विवेचन और मूल्यांकन करते हुए उन्होंने लिखा है-- वस्तुतः संघर्ष के कारण भी वर्गी है। संघर्ष दो व्यक्तियों के बीच या दो जातियों के बीच ही संघर्ष होता है। कभी कभी दैवी विपत्ति के कारण भी नायक पर कोई विपत्ति आयी है या दैवी घटनाओं से संघर्ष बढ़ता है। रणधीर प्रेममोहिनी में प्रेममोहिनी के पिता यह नहीं चाहते कि कन्या का विवाह रणधीर के साथ हो यही संघर्ष का कारण बन जाता है। यहाँ दो व्यक्तियों के बीच संघर्ष है। वैसे ही मयङ्क मञ्जरी कमलमोहिनी भँवरसिंह में भी दैवी शक्तियों के कारण नायक का जीवन संघर्षमय बन जाता है।[1] इससे विदित होता है कि प्रेमप्रधान नाटकों में भी संघर्ष को स्थान प्राप्त है।

(ऊ) सामाजिक, राजनीतिक नाटकों तथा प्रहसनों में संघर्ष

इस प्रकार के नाटकों में भी संघर्ष को स्थान दिया गया है। देवकीनन्दन खत्री के प्रचण्ड गोरक्षण में गाय के वध के प्रश्न पर हिन्दू मुस्लिम संघर्ष दिखाया गया है। प० बद्रीनाथ भट्ट के चुंगी की उम्मेदवारी या मेवरी का धूम प्रहसन में चुनाव लड़ने वाले दो उम्मीदवारों—सेठ मुगनचन्द और प० कृष्णलाल वकील में संघर्ष है। इस प्रकार राजनीतिक तथा सामाजिक नाटकों एवं प्रहसनों में भी संघर्ष है। इस सम्बन्ध में डॉ० गोपीनाथ तिवारी का मत द्रष्टव्य है— राजनीतिक एवं सामाजिक नाटकों का आधारशिला ही संघर्ष है। इन नाटकों में व्यक्ति समाज राज्यशक्ति या दुर्गुण के विरुद्ध संघर्ष दिखाया गया है।[2]

---

१ डा० चन्द्रलाल दुबे–हिन्दी नाटकों का रूप विधान और वस्तु विकास प्र० सं० सन १९७० (पृ० ५४)

२ डा गोपीनाथ तिवारी–भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य (पृ० २८८) प्र० सं० सन १९५९ ई०।

इस प्रकार अब तक के विवेचन मे 'प्रसाद' युग तक के अन्य नाटककारों के नाटकों के सदभ म बाह्य तथा आतरिक सघष का निर्देश किया गया है। इन नाटकों में बाह्य सघष के साथ साथ आतरिक सघर्षों के अनेक स्थलों का उल्लेख डॉ० गोपीनाथ तिवारी तथा डॉ० चन्द्रूलाल दुब ने किया है।[1] इससे स्पष्ट होता है कि स्वय भारतेन्दु तथा भारतेन्दु युग स लेकर प्रसाद युग तक के अन्य नाटककारों के नाटकों में सघष तत्व ने सम्मान का स्थान पाया है।

३ जयशकर "प्रसाद' के नाटको मे सघर्ष तत्व

(ईसवी सन १९१२–१९३३)

(क) स्वच्छ द नाटक–प्रणाली मे सघर्ष का महत्वपूर्ण स्थान

स्वय मूल्यवान नाटको का निर्माण कर प्रतिभावान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और जयशकर प्रसाद' ने हिन्दी नाटक को उत्थान की ओर बढ़ाया है। ऐसा करते हुए जयशकर 'प्रसाद ने हिन्दी नाटक को स्वच्छ द नाटक प्रणाली की क्रातिकारक देन दी। इसी देन के बल पर हिन्दी नाटक अनेक मोडो से होकर आग बढ़ता रहा और अब भी नय-नये मोडो को अपनात हुए आग बढ रहा है। इसी के ही परिणामस्वरूप आज के नाटक न एक ऐसा सघष प्रधान रूप धारण किया है जो उसकी श्रेष्ठता का एक महत्वपूण अग बन गया है।

जयशकर प्रसाद सस्कृत तथा पाश्चात्य नाटको से भलीभाँति परिचित थ। उन्होंने कालिदास आदि के सस्कृत नाटको के साथ साथ शेक्सपीयर आदि पाश्चात्य नाटककारो के नाटक भी पढ़े थे। इसके अतिरिक्त बगला नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर के भी नाटक उन्होंने पढे थ। इसका विशिष्ट परिणाम उनकी नाटक प्रणाली पर हुआ। अत उन्होंने अपन नाटक साहित्य क निर्माण मे सम व यात्मक प्रवृत्ति का परिचय दिया। सस्कृत के नाटको के रस सिद्धा त का पूणतया समथन किया। साथ ही साथ पाश्चात्य नाटको के अन्त सघष, बाह्य सघष तथा शील

---

१ (अ) 'सभी प्रमुख नाटको म अ त सघष पात्रो के जीवन म घुला मिला है। दुखान्त नाटको में यह अधिक स्थान घरे हैं।

—डा० गोपीनाथ तिवारी–भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य–पृ० २८९

(आ) "पात्रों के चरित्र चित्रण मे अन्त सघष विशेष महत्त्व का है। इस समय के नाटकों मे एसे स्थल भी काफी हैं जहाँ अन्त सघष अभिव्यक्त हुआ है। दो व्यक्तियों के बीच के वार्तालाप की अपेक्षा स्वगत कथन में ही विशेष रूप से मन के विचारों का सघष देखन को मिलता है।

—डा० चन्द्रूलाल दुब–हिन्दी नाटको का रूप विधान और वस्तु विकास प्र० स० सन् १९७१ ई० (पृ० ५९)।

वचित्र्य की परम्परा को शेक्सपीयर से अपना कर उसी की भांति स्वच्छन्दतावादी कला का अनुसरण किया।''[1]

वस्तुत प्रसाद' के नाटकों पर शेक्सपीयर के स्वच्छन्दतावादी नाटकों का अधिक प्रभाव हुआ है। शेक्सपीयर ने अपने नाटकों में संघर्ष को महत्वपूर्ण स्थान देकर अपने नाटकों को मानवता की स्थायी निधि बनाया। यह देखकर प्रसाद ने भी अपने नाटकों में संघर्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान देकर अपने नाटकों को मानवता की स्थायी निधि बनाने का सफल प्रयत्न किया। इस सदर्भ में डा० विश्वनाथ मिश्र लिखते हैं— शेक्सपीयर के स्वच्छन्दतावादी नाटकों का मूलतत्व संघर्ष है और उसकी अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में बाह्यद्वन्द्व आंतर और बाह्य के द्वन्द्व तथा अन्तर्द्वन्द्वों के रूपों में हुई है। प्रसादजी ने भी द्वन्द्व के इन सभी प्रकारों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है।''[2]

प्रसाद ने यह भी देखा कि पाश्चात्य नाटककारों तथा पंडितों ने नाटक में 'संघर्ष सक्रियता और समष्टि प्रभाव को स्वीकार किया है। फलस्वरूप पाश्चात्य नाटकों ने विशेष रूप धारण किया है। तब सोच समझकर अपने नाटकों में इस बात का निर्वाह 'प्रसाद ने बड़ी कुशलता से किया है। स्कन्दगुप्त चन्द्रगुप्त एवं 'ध्रुवस्वामिनी' रूपकों में उक्त तीनों बातों का समावेश वर्तमान है। आद्यन्त संघर्षमयी स्थितियों की सृष्टि, सक्रियता का वेग और समष्टि प्रभाव स्थापना की प्रवृत्ति मिलती है। साथ ही पात्रों के द्वन्द्वमूलक चरित्र वचित्र्य के उद्घाटन की जो प्रवृत्ति विदेशी नाटककारों में दिखाई पड़ती है उसका चित्रण भी प्रसाद' ने यथास्थान अपने नाटकों में किया है। बिम्बासार वासवी स्कन्दगुप्त देवसेना चाणक्य इत्यादि पात्रों में इसी प्रवृत्ति का प्रसार दिखाई पड़ता है। द्वन्द्वमयी चरित्रांकन पद्धति प्रसाद की अपनी एक विशेषता है। इस आधार पर उन्होंने अद्भुत पात्रों की सृष्टि करके भी उन्हें मानव जगत से पृथक नहीं होने दिया है।''[3]

उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि जयशंकर प्रसाद' ने स्वच्छन्द नाट्य प्रणाली को अपना कर अपने नाटकों में संघर्ष को एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्व के रूप में स्थान देकर अपने नाटकों को स्मरणीय रूप प्रदान किया है।

---

१ डा० श्रीपति शर्मा–हिंदी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव (पृ० १२९)
प्र० सं० सन् १९६१ ई०।

२ डा० विश्वनाथ मिश्र–हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव–(पृ० २१५)
प्र० सं० सन् १९६६ ई०।

३ जगन्नाथप्रसाद शर्मा–प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन–(पृ० २०८)
छठा सं० सन् १९६४।

(ख) "प्रसाद" के संघर्ष-युक्त नाटक

सन १९२६ में लिखा गया 'जनमेजय का नागयज्ञ' जयशंकर 'प्रसाद' का पौराणिक नाटक है। इसमे आरम्भ से अंत तक आर्यों और नागों म, व्यक्ति व्यक्ति में, तो समूहों मे संघर्ष है। इस संघर्ष का अंत आर्यों और नागों मे समझौता होने में होता है। इस नाटक में महत्वाकांक्षा, प्रतिहिंसा एवं प्रतिशोध की प्रेरणा से संघर्ष ने प्रसर, रूप धारण किया है। इस संघर्ष म आर्यों का नेतृत्व इन्द्रप्रस्थ के पाण्डववंशी सम्राट जनमेजय और नागजाति का नेतृत्व उसके राजा तक्षक ने किया है। इसके साथ ही प्रेम एवं विश्वबन्धुत्व को महत्व देने वाली आर्य नारी सुरमा और प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसा को महत्व देने वाली नागनारी मनसा म भी बाह्य संघर्ष है। काश्यप, उत्तंक, तक्षक वासुकि आदि पात्रों म प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसा की भावनाएँ विद्यमान हैं। इन्हीं भावनाओं के कारण आर्यों और नागों में संघर्ष छिड जाता है। एक ओर से यह संघर्ष ब्राह्मण क्षत्रिय के संघर्ष का भी रूप धारण करता है।

धुकुरवंशीय यादवी सुरमा ने एक सच्ची प्रेमिका के रूप में नागजाति के वासुकि को वरण किया है। नाग वासुकि की बहन मनसा ने आर्य ऋषि जरत्कारु से विवाह किया है। मनसा परिणीता हो जाती है। आर्यों के प्रति उसके मन म प्रतिशोध एव प्रतिहिंसा के भाव जागत हो जाते हैं। अतः संघर्ष का आरम्भ हो जाता है। वह नागों के गौरव को पुन पाने के लिए नागों को आर्यों से युद्ध करने के लिए उकसाती है। उधर जनमेजय का ब्राह्मण पुरोहित काश्यप नागों का पक्षपाती और आर्य क्षत्रियों से द्वेष करने वाला है। वह आर्य क्षत्रियों से द्वेष करने म मनसा की सहायता करता है और नागों को युद्ध के लिए उकसाता है। परन्तु दूसरा ब्राह्मण उत्तंक जनमेजय का पक्ष लेता है और जनमेजय को नागों से युद्ध करने के लिए उकसाता है। उस समय जनमेजय ने अश्वमेध व पूर्व नागयज्ञ करने की प्रतिज्ञा की। नागराज तक्षक ने भी पौरवों का नाश तथा अपने पर ब्राह्मणों का नियन्त्रण स्वीकार न करने की प्रतिज्ञा की। सुरमा ने तक्षक के विचारों का विरोध किया, तब काश्यप ने सुरमा को मारने की आज्ञा तक्षक को दी। परन्तु भाग्य से सुरमा सुरक्षित रह जाती है। आर्य-नाग संघर्ष उस समय चरम सीमा पर पहुँच जाता है जब कि नाग अश्वमेध के अश्व को रोकते हैं। नागों से जनमेजय के सैनिकों का घोर युद्ध होता है और नाग पराजित हो जाते हैं। उस समय मनसा अपने प्रतिशोध तथा प्रतिहिंसा के भावों को त्याग कर पश्चात्ताप करने लगती है। अन्त म आर्य सम्राट जनमेजय का नागराज तक्षक की कन्या मणिमाला से विवाह सम्बन्ध निश्चित किया जाता है और इस संघर्ष को मिटाया जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में परस्पर विरुद्ध व्यक्तियों की इच्छाएँ संघर्षरत हैं। इससे नाटक रोचक बन गया है।

राज्यश्री (सन् १९१५) 'प्रसाद का पहला ऐतिहासिक नाटक है। इसमें आदि से अन्त तक संघर्ष का वातावरण है। अनुपम सुन्दर राज्यश्री कान्यकुब्ज नरेश मौखरी गृहवर्मा की पत्नी है। मालवनरेश देवगुप्त राज्यश्री को पाने के लिए गौडाधिपति शशांक की सहायता लेकर कान्यकुब्ज पर आक्रमण करता है। इसके प्रतिकार में कान्यकुब्ज नरेश गृहवर्मा की मृत्यु हो जाती है और राज्यश्री बन्दिनी बन जाती है। स्थाणीश्वर राज्यवर्धन बहिन राज्यश्री की मुक्ति के लिए सेना सहित आ जाता है और मालवसेना को पराजित कर देता है। देवगुप्त की मृत्यु होती है। इस संघर्ष के समय राज्यश्री कैद से भाग निकलती है। शशांक राज्यवर्धन को मंत्री के कुचक्र में फँसाकर उसकी हत्या करता है और कान्यकुब्ज पर अपना अधिकार स्थापित करता है। उस समय हर्षवर्धन अपने भाई के हत्यारे को दण्ड देने और राज्यश्री की खोज करने निकलता है। उसे अपने कार्यों में सफलता मिलती है। इस प्रकार इस नाटक का आरम्भ विरोध (संघर्ष) से हुआ और अन्त तक विरोध ही विरोध चलता रहा। विरोध ही इस रूपक का व्यापक भाव है।"[1] इसमें बौद्धों और वैदिक धर्मानुयायियों में भी संघर्ष है।

विशाख (सन् १९२१) प्रसाद का दूसरा ऐतिहासिक नाटक है। इसमें भी व्यक्ति-व्यक्ति का और समूह का संघर्ष है। इसमें चन्द्रलेखा के सम्बन्ध में विशाख और महापिंगल में संघर्ष है। इस संघर्ष में महापिंगल का वध होता है। काश्मीर का क्षत्रिय राजा नरदेव चन्द्रलेखा को चाहता है। उस समय नाग जनता विरोधात्मक प्रतिकार करती है राजमहल में आग लगा देता है। चन्द्रलेखा और विशाख सुरक्षित रह जाते हैं। नरदेव चन्द्रलेखा से क्षमा प्रार्थना करता है। संघर्ष मिट जाता है।

अजातशत्रु' (सन् १९२२) इस ऐतिहासिक नाटक में भी विविध बाह्य संघर्ष के साथ बिंबसार आदि के आन्तरिक संघर्ष का चित्रण हुआ है। 'पूरा नाटक विरोध (संघर्ष) मूलक है। विरोध से ही आरम्भ होता है विरोध का ही विस्तार दिखाया गया है और अन्त में विरोध की समाप्ति तथा शमन है। अन्तर्द्वन्द्व और बहिर्द्वन्द्व से सारा नाटक भरा है। प्रधान घटनास्थल तीन हैं—मगध, कोसल और कौशाम्बी। जो विरोधाग्नि मगध में प्रज्वलित हुई उसकी प्रचण्डता कोसल में दिखाई पड़ी और उसकी लपट कौशाम्बी तक पहुँच गयी।[2] इससे स्पष्ट होता है कि इस नाटक में संघर्ष ही संघर्ष है।

(१) मगध में महत्त्वाकांक्षी माता छलना और गौतम के प्रतिद्वन्द्वी देवदत्त से मंत्रणा पाकर अजातशत्रु राज्यसत्ता पाने के लिए पितृद्रोह करता है। राज्य सत्ता पाने में सफल हो जाता है।

---

१ जगन्नाथप्रसाद शर्मा—प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन—(पृ० २०) छठा सं० सन् १९६४।

२ वही, (पृ० ५१)

(२) मगध और कोशल मे सघर्ष हो जाता है । अजातशत्रु बन्दी बनाया जाता है । प्रसेनजित की कन्या वाजिरा से उसका विवाह हो जाता है ।

(३) कोशल में प्रसेनजित और विरुद्धक में सघर्ष छिड जाता है । प्रसेनजित विरुद्धक को युवराजपद से तथा उसकी माता शक्तिमती को राजमहिषी पद से वचित कर देता है । माता से प्रेरणा पाकर विरुद्धक एक ओर पिता से सघर्ष करने और दूसरी ओर माता के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए शाक्यो का सहार करने तयार होता है ।

(४) कौशाम्बी नरेश उदयन और कोशलनरेश प्रसेनजित मिलकर अजातशत्रु और विरुद्धक के एकत्र दल स लडने की तयारी करत हैं ।

(५) उक्त सघर्षों के साथ इसम पति पत्नी का तथा सौतो का भी सघर्ष है । बिम्बसार और छलना मे उदयन और माग धी मे माग धी और पदमावती म व्यक्ति यक्ति का सघर्ष है । बौद्धो और वदिक धर्मानुयायियो म भी सघर्ष है ।

(६) कही कही पर सम्राट बिबसार और रानी वासवी म आ तरिक सघर्ष है । राज्य त्याग किया जाय या न किया जाय-इस समस्या को लकर आ तरिक सघर्ष चलता है ।

इस प्रकार इस नाटक म महत्त्वाकाक्षा प्रतिशोध, राज्यलोभ, मत्सर आदि का प्रेरणा स बाह्य सघर्ष का निर्माण हुआ है । साथ हा साथ लोभ और त्याग की समस्या क स दभ म सम्राट बिबसार और रानी वासवी का आ तरिक सघर्ष भी है।

स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य (सन १९२८) प्रसाद का बाह्य तथा आ तरिक सघर्ष की दष्टि स सर्वोत्तम एतिहासिक नाटक है । इसम अनेको की इच्छाए महत्त्वाकाक्षाएँ परस्पर टकराती है और सघर्ष को उत्पन्न करती हैं । इसकी सबस बडी विशषता यह है कि इसम आदि स अ त तक बाह्य तथा आ तरिक सघर्ष दोनो एक साथ चलत हैं और एक दूसरे को प्रभावित भी करते है । बाह्य सघर्ष का अ त सुखद होता है । यह भा इस नाटक की महत्त्वपूर्ण विशेषता है ।

(१) 'गुप्तकुल के अ यवस्थित उत्तराधिकार नियम स लाभ उठाकर महत्त्वाकाक्षी अन तदवी अपने पुत्र पुरगुप्त का सिंहासन पर बिठान क लिए सपत्नी देवकी और स्क दगुप्त के विरुद्ध अनेक षडयन्त्र रचती है । परिणामस्वरूप गृह कलह' का आरम्भ हो जाता है ।

(२) मगध राज्य के अ तगत सघर्ष स लाभ उठान क लिए शक और हूण की सम्मिलित वाहिनी के मालव तथा मगध पर आक्रमण होते हैं । महत्त्वाकाक्षी अन तदेवी और भट्टार्क अपना स्वार्थ साधन के लिए हूणो स 'गुप्तसधि' करत हैं ।

(३) पर्णदत्त और अपने हितो की रक्षा क लिए ब्राह्मणो और बौद्धो म सघर्ष होता है । हूण इससे लाभ उठाना चाहते हैं ।

स्वरूप को भी इस नाटक में प्रगट किया है। यह नये प्रकार का संघर्ष चाणक्य और राक्षस के बुद्धि कौशल के द्वन्द्व में अभिव्यक्त हुआ है।"[1] इस प्रकार इस नाटक में अपनी महत्त्वाकांक्षा तथा कर्त्तव्य भावना पूर्ति के लिए पुरु और सिकन्दर में, चन्द्रगुप्त और सिकन्दर में, चाणक्य और नन्द में, चाणक्य और राक्षस में, सिंहरण और यवन सैनिकों में, चन्द्रगुप्त और सिल्यूकस में अलका और आम्भीक में, कल्याणी और पर्वतेश्वर आदि में बाह्य संघर्ष है। साथ ही साथ चन्द्रगुप्त कल्याणी और मालविका में प्रसंग विशेषण में आन्तरिक संघर्ष भी है।

ध्रुवस्वामिनी-(सन १९३३)—इस नाटक में भी आरम्भ से लेकर अन्त तक संघर्ष है। इसमे एक ओर गृह कलह है तो दूसरी ओर शकों का, विदेशी आक्रमण है। ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त दुविधा में फँस गये हैं। रामगुप्त के अन्तःपुर में आने के बाद ध्रुवस्वामिनी को लगता है कि उसका दम घुटता जा रहा है। वहाँ का पूरा वातावरण उसे असह्य होता है। वहाँ के वातावरण के प्रति तिरस्कार व्यक्त करते हुए ध्रुवस्वामिनी कहती है— 'इस राजकुल मे एक भी सम्पूर्ण मनुष्यता का निदर्शन न मिलेगा क्या ? जिधर देखो कुबड़े, बौने, हिजड़े, गूँगे और बहरे।"[2] दुर्भाग्य से ध्रुवस्वामिनी को चन्द्रगुप्त के बदले रामगुप्त की पत्नी बनना पडा था। विलासी, स्वार्थी, सुख लोलुप, लंपट दुराचारी पथभ्रष्ट रामगुप्त के प्रति ध्रुवस्वामिनी के मन में थोडा भी प्रेम नही है। परन्तु प्रतापी, शक्तिशाली कर्त्तव्य दक्ष चन्द्रगुप्त के बारे में उसके मन मे प्रेम ही प्रेम है। वह कुमार चन्द्रगुप्त को नहीं भूल सकता है। उसका पति रामगुप्त हमेशा विलासिनियो के साथ मदिरा मे उन्मत्त रहता है। छोटा पुत्र होने के कारण चन्द्रगुप्त ने पिता का दिया हुआ स्वत्व और राज्याधिकार छोड दिया है। साथ साथ ध्रुवस्वामिनी को भी छोड देना पडा है। चन्द्रगुप्त को अपने बाहुबल पर विश्वास है। रामगुप्त अपने छोटे भाई चन्द्रगुप्त से ईर्ष्या व द्वेष करता है।

उधर शकों ने आक्रमण किया है। शकों ने इनके शिविर को चारों ओर से घेर रखा है। शकराज ने रामगुप्त के पास प्रस्ताव भेजा कि रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को उसको सौंप दें और अपने सामन्तों के लिए भी मगध के सामन्तों की स्त्रियों को भेज दें। ऐसा करने से वह उन्हें मुक्त कर देगा। इस पर डरपोक रामगुप्त और धूर्त शिखरस्वामी ध्रुवस्वामिनी को शकराज के पास भेजने का विचार करते हैं। ध्रुवस्वामिनी निर्भीकता से पति का विरोध करने लगी। उसने रामगुप्त और शिखरस्वामी से दृढ़तापूर्वक कहा— मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों

१ डा० विश्वनाथ मिश्र-हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव (पृ० २५२)
प्र० सं० सन् १९६६।

२ जयशंकर प्रसाद-ध्रुवस्वामिनी (तेईसवाँ संस्करण सन् १९७०) पृ० २७

नारियों को अपनी पशु सम्पत्ति समझ कर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो। हाँ तुम लोगों को आपत्ति से बचाने के लिए मैं स्वयं यहाँ से चली जाऊँगी।"[1] इसके पश्चात रामगुप्त न राजा का कर्तव्य निभाने तत्पर होता है न पति का। वह बड़ी निर्लज्जता से ध्रुवस्वामिनी से कहता है–"तुम मेरी रानी? नहीं, नहीं। जाओ, तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्यों आपत्ति हो?

ध्रुवस्वामिनी–(खड़ी होकर रोष से)—निर्लज्ज। मद्यप। क्लीव। ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? (ठहरकर) नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी।"[2] यहीं पर पति-पत्नी का संघर्ष चरमसीमा पर पहुँच जाता है। तब ध्रुवस्वामिनी अपनी तथा कुल की मर्यादा की रक्षा करने के लिए आत्महत्या करने वाली हो थी कि चन्द्रगुप्त ने आकर उसे वैसा नहीं करने दिया। चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी तथा अपने सामन्तों के साथ बड़ी युक्ति से शक शिविर में पहुँच गया और उसने धोखे से शक राज का वध किया। तब चन्द्रगुप्त के सामन्तों ने शक-सामन्तों को परास्त कर विजय पायी। यह सब रामगुप्त से देखा नहीं गया। उसने चन्द्रगुप्त की हत्या का प्रयास किया परन्तु इतने में एक सामन्त कुमार ने रामगुप्त की हत्या की। अन्त में ध्रुवस्वामिनी का चन्द्रगुप्त से पुनर्विवाह होता है। वैसे तो ध्रुवस्वामिनी पहले से ही चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता वधू थी। परन्तु परिस्थितिवश उसका विवाह रामगुप्त से हो गया था।

व्यक्तिगत दृष्टि से चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी के सामने यह समस्या थी कि वे दोनों एक दूसरों को चाहते हुए भी नहीं अपना सकते हैं। इसी समस्या के कारण ध्रुवस्वामिनी में और चन्द्रगुप्त में आन्तरिक संघर्ष चल रहा था। इस प्रकार इस नाटक में बाह्य संघर्ष के साथ आन्तरिक संघर्ष भी है। बाह्य संघर्ष व्यक्ति-व्यक्ति के संघर्ष के रूप में भाई-भाई (रामगुप्त और चन्द्रगुप्त) का तथा पति-पत्नी (रामगुप्त और ध्रुवस्वामिनी) का है और चन्द्रगुप्त और शकराज का भी द्वन्द्व है। साथ ही चन्द्रगुप्त और शकराज की सेनाओं में समूह-समूह का संघर्ष है।

इस प्रकार जयशंकर प्रसाद ने अपने पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों में बाह्य संघर्ष के साथ साथ आन्तरिक संघर्ष को भी उच्चतम स्थान दिया है। इससे उनके नाटक अधिक मार्मिक एवं मनोहर बन पड़े हैं। क्योंकि उन्होंने (प्रसाद ने) अपने पात्रों को अधिक से अधिक सहानुभूति दी और उनके अन्तर्द्वन्द्वों और बाह्य

१ जयशंकर प्रसाद–ध्रुवस्वामिनी (तईसवाँ संस्करण सन १९७०) पृ० १४

२ वही, पृ० २८

संघर्षों को अत्यन्त मार्मिक ढंग से चित्रित किया है ।"[1]

४ "प्रसाद" कालीन नाटककारों के नाटकों में संघर्ष तत्त्व (ईसवी सन् १९१२–१९३३)

(त) पौराणिक नाटकों में संघर्ष

'प्रसाद' कालीन अन्य नाटककारों ने भी पौराणिक नाटक लिखे हैं। इनके नाटकों में भी संघर्ष को स्थान दिया गया है। लेकिन इन सब में संघर्ष की दृष्टि से 'कृष्णार्जुन युद्ध" (१९१८ प० माखनलाल चतुर्वेदी) नाटक उल्लेखनीय है। इसमें गंधर्वराज चित्रसेन की भूल के कारण संघर्ष पैदा होता है। महर्षि गालव का पक्ष लेकर श्रीकृष्ण चित्रसेन को दण्ड देने तत्पर हो जाते हैं। उधर मित्र चित्रसेन की प्रार्थना से अर्जुन श्रीकृष्ण के विरुद्ध युद्ध करने तैयार हो जाता है। दोनों में युद्ध हो जाता है। अर्जुन घायल हो जाता है। अन्त में श्रीकृष्ण विचार ठीक कर देते हैं। महर्षि गालव चित्रसेन को क्षमा कर देते हैं।

कौरव पाण्डव के प्रसिद्ध संघर्ष को आधार बनाकर कुछ नाटक लिखे गये हैं। पाण्डव प्रताप या युधिष्ठिर (१९१७, हरिदास माणिक), पूर्व भारत, उत्तर भारत (१९२०, १९२३—मिश्रबन्धु) बहन्नला (१९१५–बालकृष्ण भट्ट) प्रवीन (१९२८ जगन्नाथशरण) इन नाटकों में कौरव पाण्डव संघर्ष को स्थान प्राप्त हुआ है।

तिलोत्तमा (१९१६, मैथिलीशरण गुप्त) में देव और दानवों के बीच संघर्ष चलता है। इसमें देवों की विजय होती है। परन्तु विजय पाने के पूर्व देवों को अनुपम सुन्दरी 'तिलोत्तमा' के द्वारा सुन्द और उपसुन्द दो दैत्यों में संघर्ष करवाना पड़ता है जिसमें दैत्यों का नाश होता है।

'बेन चरित्र' (१९२१, प० बद्रीनाथ भट्ट) और क्रूरबेन (१९२४, हरिप्रसाद जालान) नाटकों में बेन के जीवन से सम्बन्धित राजा और प्रजा में संघर्ष है। इस संघर्ष में अत्याचारी बेन के विरुद्ध प्रजा की जीत होती है और प्रजा ने प्रजातन्त्र की स्थापना कर बेन के पुत्र पृथु को प्रजातन्त्र राज्य का प्रधान बनाया जाता है।

'अंजना (१९२२, सुदर्शन) में अंजना और पवनञ्जय की प्रेम कहानी से सम्बन्धित बाह्य संघर्ष को स्थान मिला है।" वरमाला (१९२५, गोविन्दवल्लभ पन्त) में कथा का प्रारम्भ संघर्ष से होता है। विवाह के समय अवीक्षित और वैशालिनी में मतभेद हो जाने के कारण अवीक्षित स्वयंवर से ही वैशालिनी को लेकर भाग जाता है। उसे राजा विशाल की सेना से भयंकर संघर्ष करना पड़ता है। इसके

---

१ डा० बच्चन सिंह–हिन्दी नाटक (पृ० ६२) द्वितीय संस्करण, सन् १९६७

वनालीनी की रक्षा के लिए एक राक्षस से भी संघर्ष करना पड़ता है। राक्षस को मारा जाता है। अवीक्षित और वनालीनी का विवाह हो जाता है। 'असत्य संकल्प' (१९२५ बलदेव प्रसाद मिश्र) में अपने आत्मा की रक्षा के लिए प्रह्लाद का पिता हिरण्यकश्यपु से संघर्ष है।

इस प्रकार प्रसादकालीन अन्य नाटककारों ने भी अपने पौराणिक नाटकों में संघर्ष को स्थान दिया है।

(घ) ऐतिहासिक नाटकों में संघर्ष

अधिकांश ऐतिहासिक नाटकों में ऐसे पात्रों से सम्बन्धित कथानकों को चुना गया है जिनके जीवन में संघर्ष है। चन्द्रगुप्त (१९१५, प० बद्रीनाथ भट्ट), भारत गौरव अथवा सम्राट चन्द्रगुप्त (प० जितेन्द्रप्रसाद माथुर १९२२), चक्रवर्ती चन्द्रगुप्त (१९२५, दुर्गाप्रसाद गुप्त) चन्द्रगुप्त मौर्य (१९३१ उदयशंकर भट्ट) इन नाटकों में स्वदेशरक्षा तथा साम्राज्य स्थापना की इच्छा से चन्द्रगुप्त, चाणक्य पुरु सिंहरण आदि का सिकन्दर से तथा नन्द से संघर्ष है।

अन्तःपुर का छिद्र (१९२५ में लिखा गया और १९३१ में प्रकाशित हुआ गोविन्द वल्लभ पन्त) में राजा उदयन की दो रानियों का संघर्ष है। बुद्ध ने कभी मागधिना से विवाह करने से इन्कार कर दिया था। अतः वह प्रतिशोध की अग्नि में जलती है। वह पद्मावती से द्वेष करती है, क्योंकि पद्मावती में बुद्ध के प्रति श्रद्धा है। अतः प्रतिशोध लेने के लिए मागधिना पद्मावती तथा बुद्ध के विरुद्ध षड्यन्त्र रचती है राजा उदयन को भड़काती है। परन्तु षड्यन्त्र में मागधिनी का ही अन्त होता है। राजा उदयन को सब कुछ मालूम हो जाता है और सब ठीक हो जाता है।

सम्राट अशोक (१९२३ चन्द्रराज भण्डारी) और अशोक (१९२८ लक्ष्मी नारायण मिश्र) नाटकों में सम्राट अशोक के जीवन से सम्बन्धित संघर्ष है। लक्ष्मी नारायण मिश्र के अशोक नाटक में कथा का प्रारम्भ संघर्ष से होता है। अत्याचारी बिन्दुसार पराक्रमी पुत्र अशोक को मरवाने के असफल प्रयत्न करता है। अशोक सभी से संघर्ष करते हुए पाटलिपुत्र का सम्राट बन जाता है। बिन्दुसार की मृत्यु होती है। अशोक को कलिंग से भी संघर्ष करना पड़ता है।

'दाहर अथवा सिंधपतन' (१९३३–उदयशंकर भट्ट) में सिंध देश का वीर राजा दाहर आक्रामक मुहम्मद बिन कासिम से संघर्ष करता है। परन्तु इस संघर्ष में दाहर का अन्त होता है और उसका देश पराधीन हो जाता है। मुहम्मद बिन कासिम उपहार के रूप में दाहर की कन्याओं—सूर्यदेवी और परमालदेवी—को खलीफा के पास भेजता है। इन दो कन्याओं के हृदय में प्रतिशोध की अग्नि जल रही थी। अतः वे खलीफा को भड़काने तथा उसके द्वारा मुहम्मद बिन कासिम का

मरवाने मे सफल होती हैं। इस सफलता के उपरान्त दोनो भी आत्मनाश कर लेती हैं।

"उत्सग' (१९२९ चतुरसेन शास्त्री) म वीर राजपूत चित्तौराधिपति जयमल की वीर पत्नी का पति की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए बादशाह अकबर स सघष है। "महाराणा प्रताप' (१९१५, नरोत्तमदास तथा गुप्तबन्धु), "प्रताप प्रतिज्ञा" (१९२९ जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द') चित्तौड की देवी' (१९३१, दशरथ ओझा) नाटकों मे अदम्य स्वातन्त्र्याकाक्षा को लेकर महाराणा प्रताप का स्वाधीनता की रक्षा के लिए अकबर से सघष है। जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' के नाटक म महाराणा प्रताप और भाई शक्तिसिंह के बीच भी सघष है। "दुर्गावती' (१९२५, बद्रीनाथ भटट) नाटक म वीर राजपूत रानी दुर्गावती का अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिए बादशाह अकबर के सरदार से सघष है। इस सघष मे रानी वीर गति पाती है।

"महाराणा राजसिंह' (१९१८ बाबू परमेष्ठीलाल जन), 'महामाया' (१९२४, दुर्गाप्रसाद गुप्त) वीर दुर्गादास (१९२७, लाला छोटेलाल लघु) नाटको मे वीर राजपूतो का अत्याचारी औरगजब स सघष है। 'वीरकुमार छत्रसाल (१९२३, भँवरलाल सोना) वीर ज्योति' (१९२५ दुर्गाप्रसाद गुप्त) नाटको मे वीर बुन्देलो का औरगजेब से सघष है। आदश वीर या गुरु गोविन्द सिंह (१९२२, अमरनाथ कपूर) नाटक म पिता की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए वीर गुरु गोविन्द सिंह का अत्याचारी औरगजेब से सघष है। अमर राठौर या अमरसिंह' (१९३३, चतुरसेन शास्त्री) नाटक मे अपनी राजपती आन बान की रक्षा के लिए वीर अमरसिंह का बादशाह शाहजहाँ से सघष है। इस प्रकार इन नाटको म अपनी मान मर्यादा तथा स्वाधीनता रक्षा की इच्छा से हिन्दुओ का मुसलमानो से प्रखर सघष है।

उदयशकर भटट क विक्रमादित्य' (१९३३) नाटक मे विक्रमादित्य और सोमेश्वर का सघष है। दोनो भाई भाई हैं। वे कल्याण राज्य के चालुक्य वश के राजा आहवमल्लदेव के राजपुत्र हैं। विक्रमादित्य सोमेश्वर तथा चेंगीराजा के विरुद्ध लडकर चोल राज्य की रक्षा करता है।

"महात्मा ईसा' (१९२२, बेचन शर्मा 'उग्र') में भी दुष्ट राजा हेरोद से महात्मा ईसा का सघष है।

इस प्रकार इस युग के अन्य नाटककारो के ऐतिहासिक नाटकों में सघष को स्थान प्राप्त हुआ है।

(द) सामाजिक नाटको मे सघष

प्रसादकालीन अन्य नाटककारो ने हास्य-व्यग्य से पूण अनेक मौलिक प्रहसनो

का निर्माण किया है और समाज, परिवार, राजनीति तथा धर्म की विभिन्न कुरीतियों का विरोध किया है।[1] ऐसा करते हुए कभी-कभी ही उन्होंने बाह्य संघर्ष को हास्य-व्यंग्य का आधार बनाया है। जैसे कि जी० पी० श्रीवास्तव ने 'गड़बड़झाला' प्रहसन में एक सुन्दर युवती नलिनी को पाने के लिए विवाहित पुत्र कम्बख्तलाल और पिता मनहूसलाल में ऐसा संघर्ष दिखाया है जिससे हास्य भी पैदा होता है और पुरुषों की वासना, भोग लिप्सा तथा दुराचार पर प्रकाश भी पड़ता है।

समाज की राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं (दहेज-प्रथा, अछूतोद्धार, हिन्दू मुस्लिम एकता आदि) को लेकर कुछ सामाजिक नाटक भी लिखे गये हैं।[2] इन नाटकों में भी कहीं बाह्य संघर्ष तो कहीं आंतरिक संघर्ष मिलता है। घनानन्द बहुगुणा के 'समाज' नाटक में छुआछूत की समस्या को लेकर सुधारवादी विशुद्धानन्द और रूढ़िवादी धनदास में संघर्ष है। सुधारवादी नायक ज्ञानप्रकाश और उसके रूढ़िवादी पिता में भी संघर्ष है। ज्ञानप्रकाश पिता की इच्छा के विरुद्ध एक अछूत कन्या कालिन्दी से प्रेम भी करता है, विवाह भी करता है। इस प्रकार इसमें समाज की एक प्रचलित प्रथा से भी संघर्ष है।

सेठ गोविन्ददास के 'विश्वप्रेम' (१९१७ में लिखा गया) में व्यक्तिप्रेम तथा विश्वप्रेम में अन्तर दिखाते हुए विश्वप्रेम का महत्त्व स्पष्ट किया गया है। ऐसा करते हुए पात्रों में संघर्ष भी दिखाया गया है। नायक मोहन और जमादार नूरखान की कन्या कालिन्दी में प्रेम होता है। यह देखकर जमादार नूरखान संघर्ष उत्पन्न करता है। मोहन उनके यहाँ पला हुआ निर्धन युवक है अतः वह कालिन्दी से उसका विवाह करना नहीं चाहता है। वह मोहन को घर से निकाल देता है। मोहन भी

---

१ • बद्रीनाथ भट्ट—चुंगी की उम्मीदवारी (१९२६), विवाह विज्ञापन (१९२७), मिस अमेरिकन (१९२९)
 • जी० पी० श्रीवास्तव—दुमदार आदमी (१९१९), गड़बड़झाला (१९१९), मरदानी औरत (१९२०), नाक में दम (१९२०)
 • बेचन शर्मा 'उग्र'—चार बेचारे (१९२९)
 • सुदर्शन—आनरेरी मजिस्ट्रेट (१९१९)

२ • मिश्रबन्धु—नेत्रोन्मीलन (१९१५)
 • जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी—मधुर मिलन (१९२३)
 • घनानन्द बहुगुणा—समाज (१९३०)
 • लक्ष्मणसिंह—गुलामी का नशा (१९२४)
 • सेठ गोविन्ददास—विश्वप्रेम (१९१७ में लिखा गया)
 • लक्ष्मीनारायण मिश्र—संन्यासी (१९३१), राक्षस का मन्दिर (१९३१), मुक्ति का रहस्य (१९३२)

व्यक्ति प्रेम से विश्व प्रेम को श्रेष्ठ मानकर त्याग और सेवा के मार्ग को अपनाता है। उधर कालिन्दी पिता की बातो का विरोध करती है और किसी दूसरे स विवाह नही करती। वह बालिका आश्रम की स्थापना करती है। परन्तु दुष्ट चन्द्रसन बालिका आश्रम को आग लगाता है जिससे कालिन्दी आहत होकर मरती है। मोहन आजीवन सेवाव्रत लेता है।

सघप की दृष्टि से लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक विचारणीय हैं। इनके नाटकों में बाह्य तथा आन्तरिक सघप विद्यमान है। इनका पहला ही समस्या प्रधान नाटक 'सन्यासी' आदि स अन्त तक बाह्य सघप स युक्त है। परिस्थिति विशेष म अनेक पात्रो के बीच बाह्य सघप है। साथ ही साथ विश्वकान्त का आन्तरिक सघप भी है। विश्वकान्त और मालती एक ही कालेज मे पढ़ते हैं। विश्वकान्त होनहार युवक है। धनी बाप की बेटी मालती विश्वकान्त पर अनुरक्त है। विश्वकान्त भी उसस प्रेम करता है। इस सन्दभ म प्रो० रमाशकर और विश्वकान्त मे सघप उत्पन्न होता है। प्रो० रमाशकर मन-ही मन में मालती को चाहता है। अत ईर्ष्यावश विश्वकान्त को सताता है बदनाम करता है उसे दो वप के लिए कालेज स निकलवाता है।

देश सवक तथा स्थानीय पत्र के सम्पादक मुरलीधर की प्रेरणा से विश्वकान्त देश-सेवा का व्रत लेता है और अपने काय म बाधा न पडे इसलिए विवाह न करने की प्रतिज्ञा करता है। अत वह मालती स प्रेम करता है पर विवाह नही करता। परन्तु मालती का विवाह किसी दूसरे के साथ होने वाला है, ऐसा जानने पर विश्वकान्त उद्विग्नता मे मालती को पत्र लिखता है। उस पत्र म विश्वकान्त की निममता को देखकर मालती मे प्रतिशोध का भाव पैदा होता है। अत वह विश्वकान्त के प्रतिद्वन्द्वी रमाशकर स विवाह कर लेता है।

पत्नी किरणमयी और पति प्रो० दीनानाथ मे भी सघप है। इसके दो कारण हैं—(१) प्रो० दीनानाथ अवस्था की दृष्टि स प्रौढ़ व्यक्ति हैं। अत किरणमयी और उनका विवाह अनमल विवाह है। (२) किरणमयी विवाह के पूव मुरलीधर की प्रमिका रही है। परन्तु उसका विवाह उसस नहीं होता है। वह अब भी मुरलीधर को चाहती है। दीनानाथ मुरलीधर से द्वेष करने लगता है। परिणामत पति पत्नी म सघप बढता ही है। इन दोनो म बात बात पर इस प्रकार नोक झोक चलती है—

दीनानाथ— तुम्हारा इधर सारा प्रेम बनावटी था। तुमने खद्दर पहन लिया। उस बदमाश की तसल्ली के लिए।

किरणमयी—मैं बराबर खद्दर पहनूँगी।

दीनानाथ—सारी दुनिया मे तुम्हें यही मिला।

किरणमयी—सारी दुनिया मे जैसे तुम मिले, वसे ही

दीनानाथ—मैं नहीं मिलता तो यही होता किसी मजदूर के पास तब यह पाते।

किरणमयी—जो मजदूर बुड्ढा नहीं होता तो बिना किसी नाते के सुखी रहती।[1]

०० ०० ००

दीनानाथ— विवाह का नाता स्वाभाविक नहीं है ?

किरणमयी—सब का स्वाभाविक नहीं होता। जैसे चीजों का मिलना स्वाभाविक नहीं होता। मैं भी विधवा होती और मेरी अवस्था भी चालीस की होती तो हम लोगों का विवाह स्वाभाविक होता।[2]

इस प्रकार इन दोनों का संघर्ष मुरलीधर की मृत्यु तक चलता है। इनके संघर्ष से इनके जीवन की असफलता प्रकट होती है और उसके साथ साथ हास्य भी पैदा होता है।

मुरलीधर का क्रान्तिकारिता के द्वारा स्वाधीनता के लिए अंग्रेजों से संघर्ष है। तभी तो वह पकड़ा जाता है और जेल में रखा जाता है। वहीं तपेदिक के कारण उसकी मृत्यु होती है।

उक्त बाह्य संघर्ष के साथ साथ विश्वकान्त तथा किरणमयी का आन्तरिक संघर्ष महत्त्व का है। विश्वकान्त में तब आन्तरिक संघर्ष पैदा होता है जब वह मुरलीधर के आग्रह के कारण देश सेवा का व्रत लेता है और आजीवन अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा करता है। वह जैसे ही मालती को देखता है उसमें अन्तर्द्वन्द्व का तूफान उठता है। एक ओर देश सेवा का कर्तव्य है तो दूसरी ओर मालती से प्रेम। दोनों ही उसे अपनी-अपनी ओर खींचते रहते हैं। एक बार वह इसी तूफान में फँसकर मालती को अपनी ओर खींचकर बाँहों में भरने का प्रयत्न करता है, परन्तु मालती वैसा नहीं होने देती। उस समय विश्वकान्त का अन्तर्द्वन्द्व और बढ़ जाता है और वह इससे मुक्ति पाने के लिए विदेश चला जाता है। वहाँ रहकर देश सेवा करने का प्रयत्न करता है। परन्तु जैसे ही उसे मालूम होता है कि मालती रमाशंकर से विवाह करने वाली है उसका अन्तर्द्वन्द्व भड़कता है, वह भयंकर रूप धारण करता है। उसका विवेक शान्ति काम नहीं देता। ऐसी अवस्था में वह देशहित के लिए किए गए संघर्ष संगठन पर भी लात मारने का निश्चय कर लेता है।

किरणमयी में भी अन्तर्द्वन्द्व है। एक ओर युवा प्रेमी है तो दूसरी ओर प्रौढ़ पति है। उसकी समझ में नहीं आता कि उसे क्या करना होगा। इस कारण वह

१ संन्यासी—(तृतीय संस्करण सन् १९६१) लक्ष्मी नारायण मिश्र (पृ० १०५–१०६)

२ वही, पृ० (१०७ १०८)

मुरलीधर को मृत देखकर वहीं गिर जाती है।

इस प्रकार "संन्यासी" नाटक में बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है।

'राक्षस के मंदिर' में अपने उद्धार के लिए अश्गरी नामक एक वेश्या का संघर्ष है। एक खल के रूप में अश्गरी ने बूढ़े रामलाल के जीवन में प्रवेश किया है। वहाँ उसे भौतिक ऐश्वर्य मिलता है। परन्तु शरीर की भूख अधूरी ही रहती है। अतः वह रामलाल के पुत्र रघुनाथ की ओर मुड़ती है। रघुनाथ मन ही मन में अश्गरी को चाहता है। परन्तु प्रकट रूप में अश्गरी का साथ नहीं देता है। एक बार तो विरोध प्रकट करने वाले रघुनाथ के साथ अश्गरी की छीना झपटी होती है। रामलाल देखता है। क्रोध में आकर रघुनाथ को घर से निकालता है। रघुनाथ के चले जाने पर अश्गरी शरीर की भूख की तृप्ति के लिए मुनीश्वर (मनोहर) की ओर मुड़ती है। मुनीश्वर ने अपने माता पिता, पुत्र पत्नी सब को छोड़ दिया है। कामुक, महत्त्वाकांक्षी, पक्का स्वार्थी मुनीश्वर धर्म अधर्म, नीति अनीति को नहीं मानता। वह राक्षस जैसा निर्मम है। अतः अश्गरी को भी और गिराकर राक्षसिनी बनाना चाहता है। इसके चंगुल में फँसकर अश्गरी रामलाल को विष देना चाहती है। परन्तु उससे वैसा नहीं होता। इन दोनों के सम्बन्ध को देखकर रामलाल अश्गरी को घर से निकालता है।

अश्गरी अपने को ऊपर उठाने का भरसक प्रयास करती है। वह शालिग्राम की पूजा करने लगती है। आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अध्यापिका का काम करती है। परन्तु मुनीश्वर अपने द्वारा स्थापित वेश्या सुधार आश्रम में अश्गरी को जबरदस्ती से ले जाने का प्रयास करता है। उस समय रघुनाथ और मुनीश्वर में संघर्ष होता है। क्रुद्ध रघुनाथ मुनीश्वर को मार डालने ही वाला था, परन्तु रघुनाथ की प्रेमिका ललिता वैसा नहीं होने देती। ललिता अश्गरी को मुसलमान समझकर अपने घर से निकालती है। इस घटना को लेकर रघुनाथ और ललिता में संघर्ष होता है।

सभी ओर से निराश्रित हुई अश्गरी बिना किसी के सहयोग से उत्थान की ओर अग्रसर होने का निश्चय करती है। वह निर्भीकता से मुनीश्वर का साथ देती है और नारी जाति के उत्थान के लिए स्वयं मातृ मंदिर की व्यवस्थापिका बनती है। वह सेवा व्रत ग्रहण करती है। इस प्रकार उसे अवनति के गर्त से निकलने के हेतु समाज के राक्षस से संघर्ष मोल लेना पड़ता है।

अपने प्रेम को लेकर रघुनाथ में अन्तर्द्वन्द्व चलता है। वह किसी एक निश्चय पर नहीं पहुँच सकता। अन्त में इससे मुक्त होने के लिए, ललिता से विवाह करता है। इस प्रकार इस नाटक में भी बाह्य संघर्ष के साथ आन्तरिक संघर्ष है।

इनके 'मुक्ति का रहस्य' नाटक में बाह्य संघर्ष का स्थान अत्यंत गौण है। प्रमुख पात्र आशादेवी का आंतरिक संघर्ष का प्रधान स्थान है। आशादेवी पढ़ी लिखी है। गर्ल-स्कूल में अध्यापिका रही है। परंतु अविवाहित है। अतः वह एक आदर्श व्यक्ति उमाशंकर के जीवन में प्रेमिका के रूप में प्रवेश करती है। उमाशंकर पर एकाधिकार पाने के लिए आशादेवी डॉ० त्रिभुवननाथ की सहायता से उमाशंकर की पत्नी को विष देती है। उसकी हत्या करती है। इस बात को छिपाकर रखा जाता है, परंतु आशादेवी के मन में अन्तर्द्वन्द्व की आँधी चलती है। इस अन्तर्द्वन्द्व से ही नाटक का आरम्भ होता है। उसकी तीव्र इच्छा है कि उमाशंकर का पुत्र उसे 'माँ' कहकर पुकारे। परन्तु बालक मनोहर भूलकर भी उसे माँ कहकर नहीं पुकारता। परिणामस्वरूप आशादेवी में सत् असत् का संघर्ष बढ़ता ही रहता है। उसका अन्तर्द्वन्द्व बढ़ने का और भी एक कारण है डॉ० त्रिभुवननाथ आशादेवी की विवशता से लाभ उठाकर उसका कौमार्य भंग करना चाहता है। आशादेवी विरोध करती है। परन्तु हत्या का रहस्य प्रकट न होने देने के लिए आशादेवी डाक्टर की इच्छा पूरी करती है। इस घटना से उसका अन्तर्द्वन्द्व और बढ़ता है। उमाशंकर जैसे आदर्श व्यक्ति के साथ धोखे का व्यवहार करना, इसे सालता रहता है। इस स्थिति से मुक्ति पाने के लिए वह विष खाती है। परन्तु डाक्टर उसे बचाता है। आशादेवी उमाशंकर पर पूरा रहस्य प्रकट करती है। उमाशंकर क्षमा करता है। आशादेवी डा० त्रिभुवननाथ से विवाह करना स्वीकार करती है। यहाँ पर आशादेवी के अन्तर्द्वन्द्व की समाप्ति के साथ ही नाटक भी समाप्त होता है।

इस प्रकार लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने सामाजिक नाटकों में बाह्य तथा आंतरिक संघर्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। प्रायः बाह्य संघर्ष व्यक्ति व्यक्ति में चलता है। और आंतरिक संघर्ष सुष्ट और दुष्ट प्रवृत्तियों में चलता है।

५. निष्कर्ष

इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में किये गये विश्लेषणात्मक विवेचन से विदित होता है कि—

(१) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों में बाह्य संघर्ष को उल्लेखनीय स्थान प्राप्त हुआ है। परिस्थिति विशेष में आंतरिक संघर्ष के भी दर्शन होते हैं।

(२) भारतेन्दु युग से लेकर प्रसाद युग तक के अन्य नाटककारों के नाटकों में भी बाह्य तथा आंतरिक संघर्ष के दर्शन होते हैं।

(३) विशेषतः पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों में ही संघर्ष को उल्लेखनीय स्थान प्राप्त हुआ है।

(४) जयशंकर प्रसाद के नाटकों में बाह्य संघर्ष के साथ-साथ आंतरिक संघर्ष को अत्यधिक महत्त्व का स्थान प्राप्त हुआ है।

(५) 'प्रसाद'' के समकालीन नाटककारो के नाटको मे भी संघर्ष के दर्शन होते हैं।

(६) 'प्रसाद'' के नाटको की सबसे निराली विशेषता यह है कि उनके नाटको मे आदि से अन्त तक बाह्य संघर्ष के साथ आन्तरिक संघर्ष भी होता है। इनके प्रधान पात्रो के चारित्रिक विकास का प्रमुख आधार आन्तरिक संघर्ष ही है। इस कारण से ही उनके 'स्कन्दगुप्त', देवसेना, "ध्रुवस्वामिनी" आदि पात्रों ने अधिक सजीव, प्रभावक्षम, स्मरणीय तथा सार्वकालिक रूप धारण किया है। इस विशेषता के दर्शन "प्रसादपूर्व तथा प्रसादकालीन' नाटककारो मे से लक्ष्मीनारायण मिश्र को छोड़कर किसी के भी नाटको मे नही होते हैं। इस दृष्टि से प्रसाद' का प्रयास मननीय है।

(७) लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भी अपने सामाजिक नाटकों मे बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष को उचित स्थान देकर अपने पात्रों को अधिकाधिक यथार्थ बनाने का प्रयास किया है।

अन्त मे इस प्रकार कहना उचित प्रतीत होता है कि प्रसादपूर्व तथा प्रसाद युग के नाटको मे संघर्ष तत्त्व ने महत्त्व का स्थान पाया है।

तीसरा अध्याय

"प्रसादोत्तर पौराणिक नाटक और संघर्ष तत्त्व"

अध्याय प्रवेश

प्रस्तुत अध्याय में जिन नाटकों के संदर्भ में पौराणिक विशेषण का प्रयोग किया जा रहा है उन नाटकों का निर्माण जिस सामग्री के आधार पर किया गया है उस सामग्री की विशेषतायें उल्लेखनीय हैं।

(१) इस सामग्री में पुराणप्रसिद्ध घटनायें समाविष्ट की गई हैं। इन घटनाओं में अतिप्राकृतिक तथा अतिमानवीय घटनायें भी सम्मिलित हैं।

(२) इन घटनाओं का सम्बन्ध पुराणप्रसिद्ध अवतारों, देवी-देवताओं, असुरों तथा अन्य व्यक्तियों से है। इन घटनाओं और इनसे सम्बन्धित पात्रों का पुराण (हिन्दुओं के प्राचीन धर्मग्रंथ) से अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

(३) इन घटनाओं और इनसे सम्बन्धित पात्रों में यह सामर्थ्य भी रहता है कि वे प्रतीकात्मक रूप में रह कर के किसी भी युग के प्रतिनिधि बनकर उस युग के जीवन की व्याख्या कर सकते हैं। इस दृष्टि से इन घटनाओं और पात्रों का सम्बन्ध जीवन के किसी भी युग से स्थापित हो सकता है।

तीसरी विशेषता से यह ध्वनित होता है कि पौराणिक नाटकों में भी पाठक या प्रेक्षक के समसामयिक जीवन का स्वर दृष्टिगत होता है। पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पौराणिक नाटक पढ़ते या देखते समय पाठक या प्रेक्षक पूर्णरूपेण अपने ही युग का अनुभव कर रहा होगा। वास्तव में पौराणिक नाटक के संदर्भ में नाटक अथवा प्रेक्षक की निरन्तर मानसिक धारणा बनी रहती है।

पहली और दूसरी विशेषताओं से यह सूचित होता है कि पौराणिक नाटकों का निर्माण वर्तमान युग तथा ऐतिहासिक युग से अतिशय दूर के अतिप्राकृतिक तथा अतिमानवीय युग के आधार पर किया गया है। ऐसी स्थिति में पौराणिक नाटक पढ़ते अथवा देखते समय पाठक अथवा प्रेक्षक में यह भाव विद्यमान नहीं होता कि मैं अपने युग अथवा ऐतिहासिक युग में जी रहा हूँ। ठीक इसके विरुद्ध पाठक

या प्रबन्ध में यह भाव विद्यमान होता है कि मैं किसी अति दूर के, अतिप्राकृतिक तथा अतिमानवीय युग में मग्न हो रहा हूँ। इस वास्तविकता को ध्यान में रखकर ही प्रस्तुत अध्याय में विवेच्य नाटकों के संदर्भ में 'पौराणिक' विशेषण का प्रयोग किया गया है।

विशिष्ट उद्देश्यों से पौराणिक नाटकों का निर्माण

(क) समसामयिकता के प्रति जागरूकता

प्रसादोत्तर युग में विशिष्ट उद्देश्यों से पौराणिक नाटकों का निर्माण किया गया है। इस युग में नाटककार समसामयिक समाज जीवन तथा व्यक्ति जीवन की समस्याओं को लेकर नाटकों की रचना करने में रुचि ले रहे हैं। वे पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से भी समसामयिक जीवन की विवेचना कर रहे हैं। जैसे, जगदीशचन्द्र माथुर कृत 'पहला राजा' और 'कोणार्क' में हुआ है। पौराणिक नाटक लिखने वाले कुछ नाटककार नाटक के द्वारा लोगों को वर्तमान जीवन का स्वरूप बताने की प्रेरणा देना चाहते हैं। इस उद्देश्य से कुछ नाटककारों ने पौराणिक घटनाओं और पात्रों के आधार पर समसामयिक समाज जीवन तथा व्यक्ति जीवन की समस्याओं की मीमांसा की है।

गौरीशंकर मिश्र के 'शबरी अछूत' में अछूत समस्या पर प्रकाश डाला गया है। साथ साथ उसका समाधान भी सूचित किया गया है। नाटककार ने इस समसामयिक समस्या को प्रदर्शित करने के हेतु पौराणिक घटनाओं और मतंग ऋषि के चरित्र में अनुकूल एवं बुद्धिसंगत परिवर्तन किया है। अतः मतंग ऋषि ईश्वर भक्ति में 'छुआछूत' को नहीं मानते। वे रामभक्त शबरी को ऋषियों के आश्रम के पास आश्रय देते हैं। यह बात अन्य प्रतिक्रियावादी ऋषियों को अखरने लगती है। अतः वे मतंग ऋषि से संघर्ष छेड़ते हैं। यह संघर्ष तब मिटता है जब राम प्रतिक्रियावादी ऋषियों को समझाते हैं– "महात्माओं को भेदभाव का कीचड़ उछालना छूत-अछूत का अवैदिक तथा अस्वाभाविक वितण्डवाद खड़ा करना और मिथ्याभिमान का पटाटोप पहनाना शोभा नहीं देता।[1] अछूतपन अवैदिक है। अछूत किसी को कहना महापाप है।[2] इस प्रकार इस नाटक में समस्या के साथ साथ समाधान भी सूचित किया गया है।

कन्हैयालाल वर्मा के 'ललित विक्रम' में भी छुआछूत की समस्या को समाधान के साथ, प्रदर्शित किया गया है। उच्च वर्णियों के अत्याचारों से उत्पीड़ित

---

१ गौरीशंकर मिश्र–शबरी अछूत–पृ० ७१ (प्र० सं० सन् १९६२)
२ वही पृ० ७४

शूद्र कपिंजल को धौम्य ऋषि अपने आश्रम में आश्रय देते हैं। उसे धीरज बँधाते हुए कहते हैं– मेरे लिए किसी राजा की आज्ञा या अनुमति की अपेक्षा नहीं है। तुम्हारी योग्यता का निरीक्षण करने के उपरान्त तुमको शिक्षा दूंगा। ऊपर उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है।[1] शूद्र कपिंजल धौम्य ऋषि से शिक्षा पाकर तप के बल पर ऋषि बन जाता है। गोविन्ददास के 'कर्ण' में नीच कुलोत्पन्न के उद्धार की समस्या है। राम जी लाल ... अगस्त्य और लक्ष्मीनारायण मिश्र के नारद की वीणा में अन्य अनार्य समन्वय के द्वारा ... किया गया है आज के जाति पाँति में विभक्त समाज जीवन में समता की स्थापना का प्रयास किया जाय। तभी समाज का और देश का भला होगा। उदयशंकर भट्ट के विद्रोहिणी अम्बा' में 'नारी सम्मान' की समस्या व्यक्त हुई है। नारी को गौरव की दृष्टि से न देखने वाले पुरुषों से अपमानित हुई अम्बा अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए विद्रोहिणी बन जाती है। वह जब तक अपमान का प्रतिशोध लेने में सफलता नहीं पाती तब तक चैन की साँस नहीं लेती। वह विद्रोहिणी एवं तेजस्विनी नारी के रूप में आज की नारी का प्रतिनिधित्व कर रही है। चतुर्भुज के भीष्म प्रतिज्ञा में भी अम्बा का विद्रोह उभरा है।

जगदीशचन्द्र माथुर के 'पहला राजा' में अनेक समसामयिक समस्याओं का विश्लेषण किया गया है। इसमें आर्य अनार्य में समन्वय साधन के रूप में वर्ण संकर की समस्या को अन्नोत्पादन की समस्या को जमीन को समतल और उपजाऊ बनाने की समस्या को जल उपलब्धि के लिए नदी के प्रवाह को मोड़ने और बाँध के निर्माण की समस्या को शासक द्वारा प्रजाहित की समस्या को प्रधान स्थान मिल गया है। ये सभी समस्यायें आज के जीवन की हैं। इन समस्याओं को उजागर करने के उद्देश्य से ही जगदीशचन्द्र माथुर ने प्रस्तुत नाटक में इन एलिगोरी-आधुनिक अन्योक्ति के रूप में लिखा है। इस सम्बन्ध में स्वयं नाटककार इस नाटक की प्रस्तावना में लिखते हैं–– हरेक नाटककार को अपने अनुभव के दायरे में से ही समस्यायें और परिस्थितियाँ चयन करता है और उन्हें उजागर करने के लिए वह पात्र और प्रसंग खोजता है। उन्हें ही वह मंच की परिधियों में बैठाता है। यही मैंने इस नाटक में किया है। वैदिक और पौराणिक साहित्य पुरातत्त्व एवं इतिहास लोकगाथा और बोलचाल–इन सभी में मुझे प्रतीकों के उपकरण मिले हैं उन समस्याओं को प्रकट करने के लिए जिनसे मैं इस नाटक में जूझता रहा हूँ। वे समस्याएँ सर्वथा आधुनिक हैं वे उलझनें मेरी भोगी हुई यथार्थ हैं।[2] इससे सूचित होता है कि 'पहला राजा' में नाटककार ने अपनी बुद्धिवादी दृष्टि से पौराणिक घटनाओं और पात्रों से इस

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा– ललित विक्रम पृ० २१ (तृ० सं० सन् १९५८)

२ जगदीशचन्द्र माथुर–पहला राजा–पृ० ५–६ (प्र० सं० सन् १९६९)

प्रकार लाभ उठाया है जिसमें समसामयिक समस्याओं का विश्लेषण भी हुआ है और वर्तमान जीवन की असंगतियों का प्रकाशन भी। इस प्रकार इन नाटकों में समसामयिकता के प्रति जागरूकता को विचारणीय स्थान मिल गया है।

(ख) आदर्श की प्रतिष्ठापना

कुछ नाटककारों ने लोगों को आदर्श से परिचित कराने के हेतु पौराणिक नाटक लिखे हैं। डा० गोविन्ददास ने 'कर्तव्य' नाटक के द्वारा 'कर्तव्य पालन' का आदर्श लोगों के सम्मुख उपस्थित किया है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'वत्सराज' में, लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'चित्रकूट' में और सीताराम चतुर्वेदी ने 'पादुकाभिषेक' में भरत का आदर्श बन्धुप्रेम प्रकट किया है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'चक्रव्यूह' और 'अपराजित' में मुख्य पक्ष के रूप में कौरव पक्ष का और अजेय तथा आत्मवीर के रूप में अश्वत्थामा का चित्रण किया है। इस आदर्श दृष्टिकोण के अनुसार इन दोनों नाटकों में दुर्योधन के लिए सुयोधन शब्द का प्रयोग हुआ है। 'चक्रव्यूह' में तो सुयोधन पुत्र लक्ष्मण की वीरगति से उतना व्याकुल नहीं होता जितना कि अभिमन्यु की वीरगति से होता है। यहां तक कि वह वीरगति प्राप्त अभिमन्यु का सिर अपनी गोद में लेकर शोक करता है। शोक विह्वल सुयोधन अर्जुन से कहता है— अब हम लोग नाटक नहीं हैं किरीटी। अभिमन्यु और लक्ष्मण ने अपनी बलि देकर शत्रुता की उस अग्नि को बुझा दिया है। हम तो अब केवल लोक के रंगमंच पर अपने कर्म का अभिनय करना है। युद्ध नहीं रुकता।[1] इससे मालूम होता है कि आदर्श पात्र के रूप में सुयोधन का चित्रण हुआ है। गोविन्द वल्लभ पंत ने भी 'ययाति' में अपनी उद्दाम वासनाओं पर नियंत्रण पाने का प्रयास करने वाले ययाति का आदर्श अंकित किया है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने 'सूर्यमुख' में प्रद्युम्न और वनुरती के आदर्श प्रेम को उजागर करते हुए प्रद्युम्न द्वारा सूचित किया गया है कि प्रेम दण्डनीय नहीं होता। जो मानवीय है सहज है वह दण्डित नहीं होता।[2] इस प्रकार इन नाटकों में आदर्श की प्रतिष्ठापना पर भी ध्यान दिया गया है।

(ग) बुद्धिसंगत परिवर्तन

उपर्युक्त विवेच्य नाटकों के नाटककारों ने नवीन दृष्टिकोणों से पुराणान्तर्गत घटनाओं और पात्रों को नया है परखा है। उनमें नये नये अर्थों को खोजा है। अतः नाटककारों ने विशिष्ट उद्देश्यों के अनुसार नाटकों का निर्माण करते समय पुराणोक्त

---

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र—चक्रव्यूह—पृ० १२३ (सन १९५८ का संस्करण)

२ डा० लक्ष्मीनारायण लाल—सूर्यमुख—पृ० २० (प्र० सं० सन १९६८)

गत घटनाओं और पात्रों के चरित्र में बुद्धिसंगत तर्क सम्मत और अर्थपूर्ण परिवर्तन किए हैं। कुछ नाटककारों को अवतारी तथा अन्य पौराणिक पात्रों को मानव का रूप देने में बहुत सफलता मिली है। 'कर्तव्य' में राम का, 'कर्ण' में कर्ण और कुंती का, 'विद्रोहिणी अम्बा' में अम्बा का, 'रावण' और 'त्रेता' में रावण का, 'चक्रव्यूह' और 'अपराजित' में दुर्योधन अश्वत्थामा और कर्ण के साथ-साथ अन्य सभी पात्रों का, 'सूर्यमुख' में प्रद्युम्न, अनुरुद्ध और रुक्मिणी के साथ अन्य सभी पात्रों का और 'पहला राजा' में पृथु के साथ सभी पात्रों का मानव के रूप में मनोवैज्ञानिक पद्धति से उद्घाटन हुआ है। इस दृष्टि से डॉ० गोविन्ददास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, जगदीशचन्द्र माथुर और लक्ष्मीनारायण लाल का कृतित्व सराहनीय है।

पौराणिक नाटकों का वर्गीकरण

प्रसादोत्तर युग में रचित पौराणिक नाटकों में संघर्ष को विचारणीय स्थान मिला है। लेकिन कुछ नाटकों में संघर्ष की उपेक्षा की गई है। अतः इस युग के पौराणिक नाटकों के सम्बन्ध में संघर्ष का विश्लेषण प्रस्तुत अध्याय का विवेच्य विषय है।

उक्त विवेच्य विषय का विवेचन करने से पूर्व और एक बात पर ध्यान देना आवश्यक है। इस युग के पौराणिक नाटकों में राम सम्बन्धी और कृष्ण सम्बन्धी घटनाओं को लेकर लिखे गये नाटकों की संख्या अधिक है। अतः विवेचन की सुविधा के सन्दर्भ में प्रश्न उठता है कि घटनाओं और पात्रों के आधारों को लेकर इस युग के पौराणिक नाटकों का किस प्रकार वर्गीकरण करना संगत होगा? क्या तो इस प्रकार का वर्गीकरण किया जा सकता है –

१ रामायण (कथा) पर आधारित नाटक
२ महाभारत (कथा) पर आधारित नाटक
३ अन्य पुराण (कथा) पर आधारित नाटक

लेकिन यह वर्गीकरण ग्रहण करने की दृष्टि से अधिक उपयुक्त नहीं है। इसके कारण का प्रतिपादन करते हुए डॉ० दशरथ ओझा ने कहा है–

किन्तु इस वर्गीकरण में एक कठिनता आती है। एक चरित्र की कथा कई पुराणों में है। उदाहरणार्थ शकुन्तला की कथा महाभारत में भी, पद्मपुराण में भी है कृष्ण की कथायें श्रीमद्भागवत, महाभारत, हरिवंशपुराण आदि में मिलती हैं स्वयं रामकथा महाभारत में भी है, नहुष की कथा ययाति की कथा तथा अन्य कई कथाएँ महाभारत, मत्स्यपुराण तथा अन्य पुराणों में प्राप्त होती हैं। इन पौराणिक कथानकों के आधार पर लिखे गये नाटकों को प्रकार ऐसा है कि यह बताना अत्यन्त कठिन है कि नाटककार ने किस पुराण को विशेष ध्यान में रखकर नाटक की रचना की है। ऐसी स्थिति में डॉ० सोमनाथ गुप्त द्वारा किए गए पौराणिक नाटकों के

वर्गीकरण को उचित समझा गया। अधिकतर हिन्दी पौराणिक नाटको के रचयिताओ को राम कृष्ण के चरित्र ने ही प्रभावित किया है भले ही वे रामायण से लिए गए हो महाभारत से लिए गए हो अथवा अन्य पुराणो से लिए गए हो। इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन में पौराणिक नाटको की तीन श्रेणियाँ स्वीकार की गई हैं--

१ रामचरिताश्रित पौराणिक नाटक
२ कृष्णचरिताश्रित पौराणिक नाटक
३ अन्य चरिताश्रित पौराणिक नाटक [1]

उक्त अवतरणमे डॉ० देवर्षि सनाढ्य ने जिन योग्य कारणो का उल्लेख करते हुए जो वर्गीकरण निश्चित किया है उसे ग्रहणकरने में कोई आपत्ति नही दिखती। क्योकि वह अन्य वर्गीकरणो की अपेक्षा अधिक सगत, अधिक निर्दोष लगता है। चरित' में किसी के जीवन की विशेष घटनाओ का सयोजन होता है। इस सयोजन मे किसी घटना के विशेष सन्दर्भ मे किसी अन्य घटना और उस घटना से सम्बन्धित पात्र को स्थान मिल जाता है। अभिप्राय यह कि मुख्य चरित के सहारे पर अन्य चरित को भी स्थान मिल सकता है। अत "चरिताश्रित" शब्द अधिक सगत लगता है। दूसरी बात यह है कि 'रामचरित' को लेकर लिखे गए नाटको की घटनाएँ रामायण और अन्य पुराणो पर भी आधारित हो सकती हैं। 'कृष्णचरित" से सम्बन्धित नाटको की घटनाएँ महाभारत और अन्य पुराणो पर भी आधारित हो सकती हैं। अन्य चरित सम्बन्धी नाटको की घटनाएँ किसी एक अथवा अनेक पुराणो पर आधारित हो सकती हैं। अत डॉ० देवर्षि सनाढ्य द्वारा प्रस्तुत किया हुआ वर्गीकरण अन्य वर्गीकरणो की अपेक्षा अधिक सगत और स्वीकार्य लगता है।

अन्त में और एक बात का स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है। वह यह कि "कृष्णचरिताश्रित' नाटको के अन्तर्गत कौरव पाण्डव से सम्बन्धित नाटको को भी समाविष्ट किया जा सकता है। क्योकि इन नाटको मे कृष्ण की उपस्थिति अटल और महत्त्व की है। अत इन नाटको को 'कृष्णचरिताश्रित नाटको मे रखना उचित लगता है।

१ रामचरिताश्रित पौराणिक नाटक और सघर्ष तत्त्व

प्रसादोत्तर युग मे प्रभु राम के जीवन की अनेक अथवा विशिष्ट घटनाओ के आधार पर रचे गये नाटको में से कुछ ही नाटको मे सघर्ष को महत्त्व का स्थान मिला है कुछ नाटककारों ने अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के अनुसार नाटको की रचना करते समय सघर्षानुकूल परिस्थितियो से लाभ नही उठाया है। परिणामस्वरूप उनके नाटको मे सघर्ष को स्थान नही मिला है।

---

१ डॉ० देवर्षि सनाढ्य-हिन्दी के पौराणिक नाटक-पृ० १०१ (प्र०स० सन् १९६१)

२ रामचरिताश्रित जीवनी-सदृश नाटकों मे संघर्ष

अयोध्या-नरेश दशरथ के पुत्र प्रभु राम के सम्पूर्ण जीवन की अनेक घटनाओं को लेकर लिखे गये नाटकों में डा० गोविन्ददास कृत "कर्तव्य (पूर्वार्ध), चतुरसेन शास्त्री कृत श्रीराम नाटक ब्रजनन्दनदास कृत आत्माराम और सिद्धनाथ सिंह कृत राम राज्य' का समावेश होता है। सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाओं पर आधारित होने से इन नाटकों का स्वरूप जीवनी-सदृश बन गया है। संघर्ष की दृष्टि से डा० गोविन्ददास का कर्तव्य (पूर्वार्ध) अन्य तीन नाटकों की अपेक्षा अधिक विचारणीय है। इसमें कर्तव्यपालन के सन्दर्भ में राम के आन्तरिक संघर्ष का उद्घाटन हुआ है।

डा० गोविन्ददास का कर्तव्य नाटक विशेष उद्देश्य से लिखा गया है। इसका पूर्वार्द्ध प्रभु राम से सम्बन्धित है तो उत्तरार्द्ध भगवान कृष्ण से। इन दो खंडों के द्वारा नाटककार ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम और लीला पुरुषोत्तम कृष्ण के कर्तव्य पालन की पद्धति में अन्तर दिखाया है। कर्तव्य पालन के सन्दर्भ में राम की मनःस्थिति द्वन्द्वात्मक है तो कृष्ण की एकदम निर्द्वन्द्व। अतः 'कर्तव्य (पूर्वार्द्ध) में अपने कर्तव्य का पालन करते समय विशिष्ट परिस्थिति में राम का आन्तरिक संघर्ष दिखाई देता है। नाटक के आरम्भ में ही राम का अस्थिर उद्विग्न और असमंजस में उलझा हुआ मन दिखाई देता है।

राम का राज्याभिषेक होने जा रहा है परन्तु राम में सन्देह पैदा होता है कि उनसे प्रजा हित के लिए अपने कर्तव्य का पालन न जाने कहाँ तक ठीक होगा? यह सन्देह राम के सामने निर्णय करने की समस्या उपस्थित कर उनके मन में आन्तरिक संघर्ष छेड़ता है। अतः राम निर्णय नहीं कर पाते कि राज्य सत्ता को स्वीकार किया जाय अथवा नहीं? वे इस आन्तरिक संघर्ष से तब मुक्त होते हैं जब उन्हें वनवास जाने की दी गई राजाज्ञा ज्ञात होती है। राम वनगमन की तैयारी तुरन्त करते हैं।

परन्तु राम वनगमन के समय देखते हैं कि प्रजा सविनय विरोध कर उनको वन की ओर जाने से रोक रही है। तब राम के मन में फिर आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है। वे निर्णय नहीं कर पाते कि क्या प्रजा की बात को मानकर राजाज्ञा के विरुद्ध सिंहासनासीन हो जाय अथवा राजाज्ञा का पालन कर वनवास को चला जाय? इस द्वन्द्वात्मक मनःस्थिति के कारण राम मौन धारण कर बैठते हैं। विरोध करने वाली प्रजा को गुरु वशिष्ठ समझाते हैं और सफलता भी पाते हैं।

अत्याचारी बालि का वध करते समय भी राम का मन अन्तर्द्वन्द्व में फँसता

है। वे निर्णय नहीं कर पाते कि वालि का वध करने में अधर्म की सहायता ली जाय अथवा नहीं ? इधर राम निर्णय नहीं कर पा रहे हैं और उधर दुष्ट वालि सुग्रीव के प्राण लेने का प्रयास कर रहा है। लक्ष्मण द्वारा उत्तेजित किये जाने पर राम सुग्रीव के प्राणों की रक्षा के लिए बाण चलाते हैं जिससे बालि का वध होता है। इस प्रकार यहाँ भी राम स्वतः किसी प्रकार का निर्णय नहीं करते हैं।

रावण के वधोपरान्त साध्वी सीता को ग्रहण करते समय भी राम के मन में आन्तरिक संघर्ष का तूफान उठता है। उनका मन अनिर्णय की स्थिति में फँस जाता है। उनके सामने समस्या है कि पर-गृह में रही सीता का ग्रहण करना धर्म के अनुकूल होगा या प्रतिकूल ? राम का एक मन सीता की शुद्धता पर विश्वास करता है, उसे स्वीकार करना चाहता है। परन्तु दूसरा मन लोगों में तरह-तरह के अपवाद न फैल जाएँ इसलिए शुद्धता की परीक्षा लेकर ही सीता का स्वीकार करना चाहता है। अतः राम तभी सीता को ग्रहण करते हैं जब सीता अपनी शुद्धता सिद्ध करने अग्नि-परीक्षा के लिए तत्पर होती है।

निःशस्त्र तपस्वी शम्बूक का वध करते समय भी राम के मन में धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय का आन्तरिक संघर्ष छिड़ जाता है। वे द्वन्द्वग्रस्त मन स्थिति में ही शम्बूक का वध करते हैं।

इस प्रकार कर्त्तव्य (पूर्वार्द्ध) में परिस्थिति विशेषों के सन्दर्भ में राम के आन्तरिक संघर्ष का प्रकाशन हुआ है। यह संघर्ष धर्म-अधर्म का, न्याय-अन्याय का है। इससे राम की ऐसी कर्त्तव्य तत्परता प्रकट होती है जिसमें प्रजा और धर्म का हित होगा। परिणामतः नाटक गम्भीर दुःखान्त बन पड़ा है।

परन्तु इस नाटक में राम के आन्तरिक संघर्ष संयुक्त दृश्यों की अपेक्षा संघर्ष हीन दृश्यों की ही भरमार है। पाँच अंकों के कुल पच्चीस दृश्यों में से केवल अंक एक के दृश्य एक और तीन में अंक दो के दृश्य पाँच में, अंक तीन के दृश्य पाँच में और अंक चार के दृश्य पाँच में राम का आन्तरिक संघर्ष प्रकट हुआ है। अन्य दृश्यों में राम के आन्तरिक संघर्ष का नितान्त अभाव रहा है। अतः प्रभाव में बाधा उत्पन्न हुई है।

इस नाटक में कुछ घटनायें इस प्रकार की हैं कि जिनके सन्दर्भ में बाह्य संघर्ष छिड़ने की सम्भावना थी परन्तु वैसा नहीं हुआ है। अंक एक के दृश्य तीन में अयोध्या निवासी नर-नारी वनवास को निकले हुए राम को रोकने के लिए सविनय विरोध करते हैं। वे राजाज्ञा को अनुचित मानते हैं। उस समय प्रजा और राजा का संघर्ष छिड़ने की सम्भावना थी। लेकिन गुरु वशिष्ट के समझाने पर लोग विरोध को छोड़ते हैं राम को वनवास जाने देते हैं। परिणामतः प्रजा का विरोध संघर्ष का रूप धारण नहीं करता।

अंक एक के दृश्य पाँच में राम लक्ष्मण के संवाद के द्वारा बालि और सुग्रीव का द्वन्द्व-युद्ध सूचित हुआ है। अंक तीन के दृश्य दो में राक्षसों के संवादों द्वारा और दृश्य चार में वानरों के संवादों द्वारा राम रावण का युद्धात्मक संघर्ष निवेदित हुआ है। अतः नाटक में इन संघर्षों का प्रत्यक्षीकरण नहीं हुआ है।

अंक तीन के दृश्य पाँच में रावण के वधोपरान्त सीता को ग्रहण करते समय अन्तर्द्वन्द्व में उलझे हुए राम का लक्ष्मण द्वारा विरोध किया जाता है। सीता-त्याग के सन्दर्भ में भी लक्ष्मण राम का विरोध करते हैं। परन्तु राम के समझाने पर लक्ष्मण विरोध का त्याग देते हैं। फलस्वरूप लक्ष्मण द्वारा किया गया विरोध संघर्ष का रूप धारण नहीं करता।

इस प्रकार इस नाटक में बाह्य संघर्ष को विशेष स्थान नहीं मिला है। केवल आंतरिक संघर्ष को अन्तर्द्वन्द्व को स्थान मिला है। इस आंतरिक संघर्ष के सन्दर्भ में लोकोत्तर राम का चरित्र लौकिक स्वाभाविक और मानव के समान जीवन्त लगता है। इस दृष्टि से डा० गोविन्ददास का कला कौशल सराहनीय है।

उपर्युक्त अन्य तीन नाटकों में राम के वनगमन से लेकर पुनः अयोध्या लौटने तक की अनेक घटनाएँ हैं। नाटककारों ने बड़ी श्रद्धा के साथ अपने नाटकों में धीरोदात्त राम के जीवन का साक्षात्कार कराया है। इन नाटकों में बाह्य अथवा आन्तरिक संघर्ष को विशेष स्थान नहीं दिया गया है।

७ रामचरिताश्रित विशिष्ट घटनाओं पर आधारित नाटकों मे संघर्ष

प्रभु राम के जीवन की कुछ विशिष्ट घटनाओं पर आधारित नाटकों में 'राम भरत' की भेंट को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भरत के निःस्वार्थ स्वभाव और निष्काम बन्धुप्रेम को उजागर करना ही इन नाटकों का उद्देश्य रहा है। इस दृष्टि से इन नाटकों में चित्रकूट में बन्धु राम से भरत की भेंट होने तक की घटनाओं को स्थान दिया गया है। विशिष्ट उद्देश्य के फलस्वरूप इन नाटकों में बाह्य अथवा आंतरिक संघर्ष को स्थान प्राप्त नहीं हुआ है। अतः तुलसीदास शर्मा 'दिनेश' कृत 'बन्धु भरत', लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत 'चित्रकूट' और सीताराम चतुर्वेदी कृत 'पादुकाभिषेक' में संघर्ष का अभाव है।

वस्तुतः इन नाटकों में संघर्षानुकूल परिस्थिति पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। यदि ऐसा न किया जाता तो निःस्वार्थ भरत और स्वार्थी कैकयी में संघर्ष छिड़ जाता। कैकयी की स्वार्थी वृत्ति का पता चलने पर भरत क्रोध में आकर कैकयी को धिक्कार करते हैं —

राम वन को और राज भरत को करने वाली जान क्यों नहीं उड़ जाती।[1]

---

१ तुलसीदास शर्मा 'दिनेश' – बन्धु भरत – पृ० ६ (प्र० सं० सन् १९३८)

"अरी, भरत को राज्य गद्दी के लिए राम को चौदह वर्ष का वनवास ? कुलकल किनि या क्यों नहीं कह देती कि पहले वर म भरत का मुँह काला और दूसरे मे उसे अगणित कल्पों तक नरक निवास।"[1] परन्तु भरत द्वारा किया गया विरोध सघष का रूप धारण नही कर पाता। क्योंकि कैकेयी भी भरत के विरोध का विरोध नहीं करती और गुरु वसिष्ठ के समझाने पर भरत भी शा त हो जाते हैं। परिणामत प्रस्तुत नाटक म भरत और कैकेयी मे सघष नही छिड जाता।

जिनमें बाह्य सघष को विशष स्थान प्राप्त हुआ है ऐसे नाटकों मे "राम रावण युद्ध सम्बन्धी नाटकों का अ तर्भाव किया जा सकता है। इस दृष्टि से देवराज दिनेश कृत 'रावण", अम्बिकाप्रसाद 'दि य" कृत लकेश्वर' च द्रप्रकाश शर्मा कृत "त्रेता' चतुर्भुजकृत मेघनाद' और चतरसेन शास्त्री कृत 'मेघनाद' उल्लेखनीय नाटक हैं।

देवराज दिनेश के 'रावण' नाटक में एक दुष्ट पात्र के रूप में रावण का चरित्राकन हुआ है। राम-लक्ष्मण द्वारा किया गया शूपणखा का घोर अपमान भाई रावण को साल रहा है। इससे उसम प्रतिशोध की आग भडकती है— मेरे रहते हुए उसका अपमान मेरी यह कितनी दुर्बलता मानी जायगी।[2] यह प्रतिशोध की आग रावण को सघष के लिए उत्तेजित करती है। वह सीता का हरण करता है। वह इस बात पर गर्व करता है— 'मुझ गर्व हो रहा है भविष्य म कोई भाई अपनी बहनों पर किये गये अत्याचारों को देखकर शा त स नही बठगा। चाहे उस इसम कितनी क्षति क्यों न उठानी पडे।[3] इस प्रकार इधर रावण का प्रतिशोध भाव धीरे धीरे सघष की ओर बढ रहा है तो उधर भी सीता मुक्ति के लिए राम सघष की तयारियाँ कर रहे हैं। विभीषण और मदोदरी सभा य सघष को टालने के लिए रावण को समझाने की भरसक कोशिश करते हैं परन्तु उ हें सफलता नही मिलती। रावण मदोदरी से स्पष्ट कह देता है— मैं उनसे जीवन म कभी भी स धि नही कर सकता।[4] अत प्रस्तुत नाटक में रावण राम से जो सघष छेडता है उसका प्रधान कारण है बहन के अपमान का प्रतिशोध लेने की इच्छा। रावण के मन मे सीता अथवा राम के प्रति कोई दुष्ट भाव नही है।

च द्रप्रकाश शर्मा न त्रेता' नाटक मे राम रावण सघष को दो विचार धाराओ के सघष के रूप मे उपस्थित किया है। इस सघष क स दभ म रावण मदोदरी से कहता है— सीताहरण तो एक उपलक्ष्य मात्र है प्रिये। यह दो विचार

१ तुलसीदास शर्मा दिनेश'–वधुभरत–पृ० ८ (प्र० स० सन १९३८)
२ देवराज दिनेश–रावण–पृ० ४ (प्र० स० सन १९४८ ई०)
३ वही–पृ० ११।
४ वही–पृ० ५८।

धाराओं का संघर्ष है। उत्तरापथ का अभिजात्य-संस्कृति का विजय घोष सुनते सुनते दक्षिण म्रियमाण हो चुका है। सीता-स्वयंवर में जनकराज ने मिथिला में लंकेश्वर को आमंत्रित क्यों न किया? क्या वह वैचारिक अछूत न था। उस क्षण जनक नन्दिनी का उसका प्रवेश समझ में न हुआ। वह अपना अपूर्ण स्वप्न लंकेश्वर ने आज पूर्ण कर लिया। सीता नहीं उत्तरापथ का समृद्धि और गौरव इस क्षण लंका में बंधन में है। मेरा प्रतिशोध पूर्ण है।[1] वह तो प्रतिशोध के अन्य मार्ग भी थे पर लंकेश्वरी शूर्पणखा के अपमान को प्रथम कम विस्मृत किया जाता। नारी अपमान दोनों ही पक्षों को सहन करना पड़ा। अतः राम से प्रतिशोध लेने की कामना से रावण अंतिम श्वास तक राम से युद्ध करता है। परन्तु वस्तुस्थिति कुछ निराली है। ऊपर से राम से युद्ध करने वाला रावण हृदय से राम का भक्त है। मरने से पूर्व रावण ने राम पर रहस्य प्रकट किया— निश्चय हो श्रीराम। मेरा और आपका संघर्ष दो विचार धाराओं का, दो आदर्शों का, दो जीवन-लक्ष्यों का संघर्ष है। श्रीराम! देवी माता मेरी आराध्या और आप मेरे आराध्य हैं। आप चकित हों! यह मर्म केवल एक लंकेश्वर ही छोड़ अन्य कोई नहीं जानता। पर यह केवल विलक्षण सत्य है।[2] इस प्रकार राम रावण का संघर्ष दो मुख्य व्यक्तियों की भिन्न विचार धाराओं का, भिन्न आदर्शों का और भिन्न संस्कृतियों का संघर्ष है। अतः प्रस्तुत नाटक मननीय बन पड़ा है।

अम्बिका प्रसाद दिव्य ने लंकेश्वर नाटक में रावण का चरित्रांकन अन्य चारी नायक के रूप में किया है। इसमें सीता-स्वयंवर में अपमानित रावण के मन में उत्पन्न प्रतिशोध की इच्छा संघर्ष का कारण बन गया है।

चतुर्भुज रचित मेघनाद और चतुरसेन रचित मेघनाद में राम रावण युद्ध के सन्दर्भ में मेघनाद और लक्ष्मण के संघर्ष का प्राधान्य लिया गया है। इस संघर्ष में लक्ष्मण की जय और मेघनाद की मृत्यु हो जाती है।

उपर्युक्त नाटकों में रावण का भी पक्ष प्रबल है और राम का पक्ष भी। लेकिन रावण का पक्ष आक्रमणकारी है तो राम का पक्ष रक्षणात्मक। अंत में राम के रक्षणशील पक्ष की विजय हुई है।

३ राम चरिताश्रित फुटकर घटनाओं पर आधारित नाटकों में संघर्ष

कुछ फुटकर घटनाओं के आधार पर लिखे गये नाटकों में से गौरीशंकर मिश्र के शबरी अछूत में संघर्ष को विशेष स्थान मिला है। इसमें अछूत समस्या के

---

१ चन्द्रप्रकाश वर्मा—नेता-पृ० २२ २३ (प्र० सं० सन १९६२ ई०)

२ वही पृ० २३

३ वही, पृ० ११७

सदम मे मतग ऋषि और अन्य ऋषियो का सघर्ष दिखाया गया है। मतग ऋषि छुआ छूत को नही मानते। वे सभी मे ईश्वर के दर्शन करते हैं। अत वे रामभक्त शबरी को अपने आश्रम के पास रहने की जगह देते हैं। यह अन्य ऋषियो को अच्छा नहीं लगता। परिणामस्वरूप मतग ऋषि और अन्य ऋषियो के बीच सघर्ष छिड़ता है। यह सघर्ष राम के उपदेशों से मिटता है।

फुटकर घटनाओं पर आधारित नाटकों म से सीताराम चतुर्वेदीरचित 'शबरी', सर्वेदान दरचित 'भूमिजा", चतुरसेन शास्त्री रचित 'श्रीराम' सदगुरुशरण अवस्थी रचित 'मझली महारानी" और पथ्वीनाथ शर्मा रचित 'उर्मिला' म सघर्ष को विशेष स्थान नही दिया गया है।

उपयुक्त विवेचन से प्रतीत होता है कि राम रावण युद्ध सबधी कुछ नाटकों में सघर्ष को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान मिल गया है।

२ कृष्ण चरिताश्रित पौराणिक नाटक और सघर्ष तत्त्व

कृष्ण चरिताश्रित नाटक कृष्ण के जीवन की अनेक अथवा विशिष्ट घटनाओ पर आधारित हैं। विशिष्ट घटनाओ पर आधारित नाटकों म सघर्ष ने उल्लेखनीय स्थान पाया है। कृष्ण तथा कौरव पाण्डव सम्बन्धी घटनाओ को लेकर रचे गये नाटकों में भी सघर्ष का स्थान महत्त्व का है।

(अ) १ कृष्ण चरिताश्रित जीवनी सदृश नाटक मे सघर्ष

डा० गोविन्ददास प्रणीत 'कर्त्तव्य' (उत्तरार्ध) नाटक कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन की अनेक घटनाओ पर आधारित है। इसमें कृष्ण के बचपन से लेकर मृत्यु तक की अनेक घटनाएँ हैं। इस नाटक का विशेष उद्देश्य यह रहा है कि कर्त्तव्य पालन के सन्दर्भ मे कृष्ण की निर्द्वन्द्व मन स्थिति को दिखाना। इस उद्देश्य के परिणामस्वरूप प्रस्तुत नाटक मे आन्तरिक सघर्ष को स्थान नही मिल गया है। इस नाटक मे बाह्य सघर्ष भी दृष्टिगोचर नही होता है। केवल अक चार के चौथे दृश्य मे भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध है।

(अ) २ कृष्ण चरिताश्रित विशिष्ट घटनाओ पर आधारित नाटको मे सघर्ष

विशिष्ट दृष्टिकोण से विशिष्ट घटनाओ को आधारशिला बनाकर लिखे गये नाटकों म सघर्ष तत्त्व को उल्लेखनीय स्थान मिल गया है। रघुवीर शरण 'मित्र' के बालवीर कृष्ण और अबिका प्रसाद दिव्य' के भोजनदन कस म कृष्ण और कस का सघर्ष है। 'बालवीर कृष्ण' नाटक मे कृष्ण अपने बालसखाओं को सघटित कर प्रतिज्ञा करते हैं- मैं अत्याचारो को मिटाने के लिए पैदा हुआ हूँ और उनको मिटाकर रहूँगा।'[1] इस दृढ आस्था के साथ कृष्ण अत्याचारी कस म सघर्ष करते हैं। इसमे कृष्ण बलराम और प्रलम्ब कृष्ण और शखचूड कृष्ण और कस के पहलवानों

१ रघुवीरशरण मित्र' बालवीर कृष्ण-पृ० ८ (प्र०स० सन १९५६)

का संघर्ष है। अन्त में कृष्ण और कंस का प्रत्यक्ष संघर्ष है। इस संघर्ष में कंस की मृत्यु और कृष्ण की विजय होती है। प्रस्तुत संघर्ष दुष्ट व्यक्ति से शिष्ट व्यक्ति का है। ठीक इसी प्रकार का संघर्ष अम्बिका प्रसाद दिव्य के 'भावनन्द धर्म' में है।

चतुर्भुज के 'श्रीकृष्ण' नाटक का आरम्भ जरासन्ध द्वारा मथुरा पर आक्रमण करने की योजना से हो गया है। कृष्ण द्वारा कंस के वधोपरान्त कंस की पत्नी अस्ती पिता-(जरासन्ध) के पास आयी हुई है। उससे जरासन्ध को ज्ञात हो गया कि कृष्ण ने कंस का वध कर उग्रसेन को मथुरा के सिंहासन पर बिठाया है। अस्ती ने जरासन्ध से यह भी बताया कि— मैं अपने पति की मृत्यु का प्रतिशोध लूँगा।''[1] अस्ती से उत्पन्न प्रतिशोध की इच्छा जरासन्ध को कृष्ण से लड़ने के लिए उत्तेजित कर देती है। अतः वह कृष्ण से प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा करता है और सेनापति शिशुपाल को साथ में लेकर मथुरा पर आक्रमण करता है। परन्तु सत्रह बार आक्रमण करने पर जरासन्ध को प्रत्येक बार हार खानी पड़ती है। अब अठारहवीं बार जरासन्ध यवन राजा कालयवन को साथ में लेकर मथुरा पर आक्रमण करने का निश्चय करता है।

उधर कृष्ण और बलराम भी युद्ध की तैयारी करते हैं। परन्तु इस बार कृष्ण भयंकर नाश को टालने के लिए युद्ध से भाग कर दिखाना चाहते हैं कि जरासन्ध उन्हें हरा सकता है। जब जरासन्ध को ऐसा लगेगा तब वह मथुरा पर आक्रमण करने की बात को छोड़ देगा।

कृष्ण और कालयवन में तलवार का द्वन्द्व युद्ध होता है। कृष्ण कालयवन से लड़ते-लड़ते सौराष्ट्र के पार पहुँचते हैं और समुद्र के बीच द्वारका बसाते हैं।

कृष्ण के भाग जाने से कालयवन बड़ा घमण्डी बन जाता है। वह अस्ती से प्रेम याचना करता है। अस्ती विरोध करती है। कालयवन जबर्दस्ती करने का प्रयास करता है। अस्ती विष की कटार से कालयवन की हत्या करती है और बाद में उसी कटार से आत्मघात कर लेती है।

इधर रुक्म रुक्मिणी की इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह शिशुपाल से करने का प्रबन्ध करता है। परन्तु कृष्ण रुक्मिणी के इच्छानुसार विवाह से पूर्व ही रुक्मिणी का हरण करते हैं। इस समय कृष्ण और रुक्म में तलवार का द्वन्द्व युद्ध होता है। उसमें रुक्म को हार खानी पड़ती है।

कृष्ण की योजना के अनुसार भीम और जरासन्ध में मल्लयुद्ध होता है। इसमें जरासन्ध की मृत्यु हो जाती है।

राजसूय यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण होने पर पाण्डव उत्सव मनाते हैं। इस समय शिशुपाल कृष्ण की बहुत निन्दा करता है। कृष्ण सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का वध

१ चतुर्भुज—श्रीकृष्ण—पृ० ९ (प्र० सं० सन् १९५६)

करते हैं। उक्त सघर्षों के कारण प्रस्तुत नाटक आकषक बन बडा है।

वीरेन्द्रकमार गुप्त के "सुभद्रा परिणय" नाटक मे आन्तरिक तथा बाह्य सघष को महत्त्व का स्थान प्राप्त हुआ है। आन्तरिक मघष का सम्बन्ध सुभद्रा से है। सुभद्रा अपनी अनिर्णयात्मक मन स्थिति से सघष कर रही है।

अर्जुन और सुभद्रा परस्परानुरक्त हैं। परन्तु बलराम सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से करना चाहते हैं। इसमे सुभद्रा के सामने निणय करने की समस्या उपस्थित होती है। सुभद्रा अर्जुन को चाहती है। परन्तु वह बडे भाई बलराम की इच्छा की उपेक्षा भी नही कर सकती। उसका मन विद्रोह करन लगता है। वह रुक्मिणी और सत्या स कहती है "भाभी। अगर बलपूवक मेरा विवाह दुर्योधन के साथ किया गया तो मडप में ही यह छुरी उसकी छाती म घुसड दूँगा और स्वय वेदी की ज्वाला म कूद पड़ूँगी।"[1] 'सत्या मैं विद्रोह करूंगी।'[2] परन्तु इतना कहने के बाद भी सुभद्रा किसी एक निणय पर नही पहुँच पाती। वह आन्तरिक सघष म उलझती है—"मैं क्या करू, भाई और पिता से विद्रोह करके अपने हृदय का अनुसरण करूँ या उसे ठुकराकर अपने को कुचलकर बडे भया की आना को मानूँ।"[3]

सुभद्रा इस आन्तरिक सघष से तब मुक्त होती है जब वह अर्जुन स विवाह करने का दृढ़ निश्चय करती है। अत दुर्योधन जब सुभद्रा से प्रेम याचना करता है, सुभद्रा उस धिक्कारती भी है और लक्ष्य बाँधकर इस प्रकार बाण छोडती है जिससे दुर्योधन के रथ की ध्वजा कटकर धूल म गिर जाती है। अपमानित दुर्योधन प्रतिशोध लेने की प्रतिना करता है। परन्तु कृष्ण बडी चतुराई से ऐसी योजना बनात हैं जिसके अनुसार अर्जुन सुभद्रा का हरण करता है। उस समय अर्जुन का दुर्योधन, दुशासन, शकुनि और कण स सघष हो जाता है। इसमे अर्जुन की जीत हो जाती है। अर्जुन स सुभद्रा का विवाह होन पर सुभद्रा की मनोकामना पूण हो जाती है।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का 'सूयमुख' बाह्य तथा आन्तरिक दोनो सघर्षों की दृष्टि से उत्तम नाटक है। इसम व्यक्ति-व्यक्ति का समूह समूह का तीव्र बाह्य सघप भा है और प्रद्युम्न, वनुरती तथा रुक्मिनी का हृदयस्पर्शी आन्तरिक सघष भी।

जरा बहेलिया द्वारा पर म बाण लगन स कृष्ण का मृत्यु हुई है। गत सात वर्षों स द्वारिका की दुदशा हो रही है। दक्षिण दिशा से उत्तरोत्तर समुद्र बढ़ता चला आ रहा है द्वारिका के एक एक भाग को निगल रहा है। इससे बेघर बन लोग भिखारी बनकर अन्न के लिए तरस रहे हैं। कृषि विकास पर किसी का ध्यान नही है। द्वारिका को उजाडन वाल समुद्र का रोकन का प्रयास नहा हो रहा है। निरा

1 वीरेन्द्रकुमार गुप्त—सुभद्रा परिणय—पृ० ५६ (प्र० स० सन् १९५२)

2 वही, पृ० ७०

3 वही, पृ० ७०

जरा को य बमुक्त करता है जिसे बभ्रु राजपद पाने या एक साधन बनाने के लिए यत्रणा द रहा था। नगर मे भोज विष्णि और निनि, तीनो वशा मे परस्पर युद्ध छिडता है। उस समय प्रद्युम्न लोगा के अन्धविश्वास स और अमर्याद बने सागर से लडने नगर क तट पर जाता है और वाण से काल समुद्र को रोकन म सफलता पाता है। अचानक महाराजा उग्रसेन की मत्यु होती है और सिंहासन क लिए छिडा हुआ बभ्रु और साम्ब का सघर्ष भीषण रूप धारण करता है। सघर्ष चरम सीमा पर पहुँच जाता है। दगपाल की प्रेरणा से प्रद्युम्न बभ्रु और साम्ब को परास्त करन और राजमुकुट पाने म सफल हो जाता है। विजयी प्रद्युम्न राजमुकुट पहनकर वनुरती के रगमहल म आता है। लकिन वनुरती को वहाँ न पाकर विक्षिप्त वन जाता है। रुक्मिनी यदुवश का सभी स्त्रियो को वेनुरती को भी लेकर अर्जुन के साथ हस्तिनापुर की ओर निकल पडा है। विक्षिप्त प्रद्युम्न राजमुकुट रगमहल मे छोडकर वेनुरती को खोजने चला जाता है।

रुक्मिनी पथ मे एक स्थान पर सभी स्त्रियो के साथ ठहरती है। साम्ब राजमुकुट लेकर आता है और रुक्मिनी को सौंप देता है। वहा व्यासपुत्र और साम्ब का सघर्ष हाता है। साम्ब कृपाण स व्यासपुत्र का वध करता है। साम्ब प्रद्युम्न को खोजने चला जाता है। प्रद्युम्न वहाँ पहुँचता है और वनुरता स उसका मिलन होता है। उस समय बभ्रु सनिको के साथ आता है और प्रद्युम्न का वध कर राजमुकुट का ले जाने का पतरा लता है। बभ्रु और प्रद्युम्न म कृपाण युद्ध छिडता है। प्रद्युम्न बभ्रु से लडता है। वेनुरती भी बभ्रु के सनिको स लडती है। वेनुरती घायल हो जाती है। प्रद्युम्न बभ्रु और उसके सनिको को भगाता है। लनिक जिनका शरीर और हृदय घायल हुआ है ऐसे प्रेमी प्रद्युम्न और वनुरती का हृदय द्रावक अन्त हाता है। इस प्रकार निस्वार्थ निरपेक्ष वीर प्रद्युम्न और स्वार्थी दुष्ट बभ्रु म जो सघर्ष छिडता है उसकी परिणति प्रद्युम्न और वेनुरती के अन्त मे हो जाती है।

प्रद्युम्न और वेनुरती के आश्चर्यजनक प्रेम को लेकर रुक्मिनी और वेनुरती का भी बाह्य सघर्ष है। वेनुरती को रुक्मिनी की कटुता सहनी पडती है। रुक्मिनी क्रोध में आकर व्यग्य वाण चलाती है और वेनुरती के हृदय को घायल कर लेती है। तब वेनुरती भी मुँहतोड जवाब देती है। रुक्मिनी चुप होकर तिलमिलाती रहती है। रुक्मिनी की तिक्त बात स आहत हुई वेनुरता ने प्रतिक्रिया मे कहा--

वेनु--प्रद्युम्न मेरे लिए एक अनिवार्य मनुष्य था केवल मनुष्य, जसे मैं उसके लिए केवल एक स्त्री थी।

रुक्मिनी--(घृणा स) और तेरे पति कृष्ण क्या थे?

वेनु-- मेरा यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि मेरा पति वही होगा जो मेरा प्रियतम हो।

रुक्मिनी—मेरे स्वामी क्या अपनी सोलह हजार रानियों और सात पटरानियों के प्रियतम नहीं थे ?

बनु— सोलह हजार और सात, यह निर्मम सत्य मुझ से मत कहलाओ महारानी। यह निर्गुण कृष्ण के प्रति अपमान होगा।

रुक्मिनी—तू मेरे अपमान से डरती है ?

बनु— मैंने तुम्हारे पुत्र से प्रेम किया है।[1]

रुक्मिनी जानती थी कि युद्ध में प्रद्युम्न की विजय होगी। अतः वह बनुरती को द्वारिका की महारानी बनने का अवसर नहीं देना चाहती। वह बनुरती को बलात् अपने साथ ले जाती है। साथ में बनुरती विद्रोह करती है। वह न कुछ खाती है न पीती है। वहाँ से भागकर प्रद्युम्न के पास चली जाने का प्रयास करती है। प्रद्युम्न के आते ही रुक्मिनी के सामने ही बनुरती अपनी बाहों में प्रद्युम्न को भर लेती है। प्रद्युम्न के अंक में निश्चेष्ट हो जाने तक बनुरती अपने निर्मल प्रेम के लिए सभी से संघर्ष करती रहती है।

सचमुच बनुरती और प्रद्युम्न का प्रेम जितना सहज और स्वाभाविक है उतना ही विलक्षण है, जितना लौकिक है उतना ही अलौकिक है, जितना विषय युक्त है, उतना ही उदात्त और कम प्रखर है। यह प्रेम जन्म से जन्मान्तर से चला आ रहा है। लेकिन इस जन्म में विपरीत-सम्बन्ध के कारण इन दोनों को बाह्य तथा आंतरिक प्रतिरोधों से संघर्ष करना पड़ रहा है।

द्वारिका के द्वेष, ईर्ष्या और आपसी संघर्षों से विषाक्त बने वातावरण में प्रद्युम्न और बनुरती का प्रेम एक क्रान्तिकारी प्रक्रिया है। स्वार्थ से आपसी संघर्ष में उलझे साम्ब को दुर्वासा बताता है— "कृष्ण अब अतीत हैं। वर्तमान अब तुम हो। और वह प्रद्युम्न भविष्य है। वह नया है। सूर्यमुख है वह। उसने इस अंधकार में प्रेम का एक नया मन्वन्तर प्रारम्भ किया है।"[2] "सोचता हूँ क्रांति ही जीवन की रक्षा है और यह प्रेम बड़ी क्रांति है। यही है इस अंधकार का सूर्यमुख।"[3] बनुरती पर असत्य अभियोग लगाने वाली रुक्मिनी से दुर्वासा पूछता है—"मैं पूछता हूँ पिछले कितने वर्षों से मृत्यु और हत्या के अतिरिक्त इस नगर में किसी ने प्रेम भी किया है ? हत्यारा वही है जिसने अपने प्रेम बोध की हत्या की हो। इससे सूचित होता है कि द्वारिका में प्रेम का अभाव होने के कारण ही लोग पशु जैसा व्यवहार कर रहे हैं जिससे द्वारिका की दुर्दशा हो रही है। ऐसी स्थिति में अपने प्रेम के कारण ही प्रद्युम्न द्वारिका की रक्षा के लिए निःस्वार्थ भाव से संघर्ष करता है।

वास्तव में इस प्रेम के कारण ही प्रद्युम्न जीवित है — विश्वास करो बनु

---

१ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल – सूर्यमुख – पृ० ६८ ६९ (प्र० सं० सन् १९६८ ई०)
२ वही – पृ० १३ ३ वही – पृ० १४ ४ वही – पृ० ६०

इस जीवन मे यदि तुम्हें न देखा होता तो मैं भी वही यदुवंशी था, जो द्वारिका म आये हुए ऋषियों का अपमान करता घूमता था यदि मुझे तुम न मिली होती, तो मैं महाभारत के युद्ध से लौटकर यहाँ न आता और प्रभास क्षेत्र के युद्ध म मैं ।" कहते कहते वेनु के वक्ष म अपना मुख गाड देता है।

जरा वहेल्यिा की बातें सुनकर प्रदुम्न के मन म सन्देह पैदा होता है कि वेनुरती कृष्ण से भी प्रेम करती रही और मुझे धोखे म रखती रही। वह क्रोध मे आकर उसे विश्वासघातिनी कहता है। तब वेनुरती विश्वास दिलाती है— विश्वास करो, तुम्हीं केवल, तुम्ही मर प्रथम और अन्तिम हो । मरी ओर देखो। इस महल में पाँव रखते ही, घूघट उठाते ही सबसे पहले मैंने तुम्ही को देखा था। उस क्षण कृष्ण के हाथ का वह कमल सहसा नीचे गिर गया था, तुमने तब किस शक्ति और विश्वास से उस कमल को उठाकर मेरी वेणी म गूथ दिया था।'' यह प्रसंग वेनुरती की अत्यन्त मधुर स्मृति है। इसलिए ही वह परिचारिका स कह देती है— वेसा श्रृंगार उसी एक दिन हुआ था, जब उन्होंने मेरी वेणी म अपने हाथ से वह कमल गूथा था।" इस प्रेम के कारण वह वेनुरती प्रदुम्न पर मन्त्र की तरह छायी रहती है। अत अत्यन्त अस्थिर और द्वन्द्वात्मक अवस्था म प्रदुम्न माँगता है मुझे शक्ति दो वेनु। मुझे शक्ति दो विश्वास दो । तुम्हे लेकर मैं इस नये धर्म को ढूँढना चाहता हूँ जो इस द्वारिका की रक्षा करेगा और इस अन्धकार को वेधकर चमकेगा। उस एक नय के लिए मैंने सब कुछ त्यागा है।" इस प्रेम के कारण ही कृष्ण ने प्रदुम्न से संघर्ष किया था। प्रदुम्न जरा को बताता है— कृष्ण ने वेनुरती के लिए मेरे साथ निर्लज्ज संघर्ष किया था। जो व्रज मे भगवत प्रेम के प्रतीक थे, उसी कृष्णने साधारण मनुष्य की तरह मुझसे वेनुरती के लिए युद्ध बनाया था। एक ओर कृष्ण का मनुष्य, दूसरी ओर मैं और बीच में वेनुरती। अपशब्द कहते हुए उन्होंने मुझ पर आक्रमण किया था मेरे अंक से वेनुरती को छीनने के लिए।'' इसका तात्पर्य यह हुआ कि इन दोनो को अपने प्रेम के लिए दुनिया से संघर्ष करना पड़ा है।

लेकिन बाह्य संघर्ष के साथ साथ इनके अन्तस में भी संघर्ष छिड गया था। इस सन्दर्भ में वेनुरती और परिचारिका का सम्भाषण दृष्टव्य है—

वेनु (परिचारिका से)—मैं युग युगान्तर से उन्ही के लिए जन्म लेती हूँ। एक जन्म

---

१ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल सूर्यमुख पृष्ठ ६० (प्र० स० सन १९६८ ई०)
२ वही पृष्ठ ४१ ४२
३ वही, पृ० ५३
४ वही, पृ० ४३
५ वही, पृ० ३६

गाति के लिए दान बाँटने के लिए राजमहल से बाहर निकलती है तब भूखे भिखारी भी उसके हाथ से दान को अस्वीकार करते हैं और अत्यधिक तीव्र ताने कसते हैं— 'अधर्मी की माँ के हाथ का दान कौन लेगा ।' यह उसकी माँ नहीं, उसकी जननी है। माँ तो वह वनुरती है—जिस इसके बेटे ने अपनी प्रिया बनाया । ' इस प्रकार निष्ठुरता से छूटे व्यग्य बाणों से घायल होती हुई रुक्मिणी मन में छिडे सघर्ष को न किसी पर प्रकट कर पाती है, न ठोस निर्णय कर पाती है। अत उसे अपनी आँखों के सामने प्रिय पुत्र को मरते हुए देखना पडता है। उसके हृदय पर बडा आघात होता है। इस आघात के कारण ही वह द्वारिका लौटने का निश्चय करती है।

इस प्रकार 'सूयमुख' नाटक में तीव्र बाह्य सघर्ष के साथ-साथ अत्यन्त हृदय स्पर्शी आन्तरिक सघर्ष भी है। दोनों सघर्षों का अस्तित्व नाटक के आरम्भ से लेकर अन्त तक है।

(अ) ३ कृष्ण चरिताश्रित फुटकर घटनाओं पर आधारित नाटकों में सघर्ष

फुटकर घटनाओं को लेकर लिखे गए नाटकों में से भारतसिंह यादवाचार्य के 'श्रीकृष्ण जन्म' और प्रेमनारायण टण्डन के 'कृष्ण जन्म' में कृष्ण जन्म सम्बन्धी घटनाओं को महत्त्व का स्थान दिया गया है। 'कृष्ण जन्म' नाटक में अत्याचारी कस के नाश के हेतु ब्रज के लोग बालक कृष्ण को सुरक्षित स्थान पहुँचाने का सफल प्रयत्न करते हैं। इस सन्दर्भ में ब्रज निवासियों का सघर्ष सम्बन्धी भावना प्रकट हो गई है।

किशोरीदास वाजपेयी के 'द्वापर की राज्यक्रान्ति' नाटक में सुदामा का पीडित प्रजा की भलाई के हेतु अत्याचारी राजा से सघर्ष है। इस सघर्ष में जनहित कारी कृष्ण, सुदामा का पक्ष लेते हैं और अत्याचारी को पराजित करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से विदित होता है कि कृष्ण सम्बन्धी नाटकों में बाह्य सघर्ष तथा आन्तरिक सघर्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान मिल गया है। इस दृष्टि से 'सूयमुख' सर्वोत्कृष्ट नाटक है। वह प्रभावशाली सघर्ष के कारण अत्यधिक मार्मिक एव मनोरम बन पडा है।

(आ) कृष्ण तथा कौरव-पाण्डव-सम्बन्धी नाटकों में सघर्ष

कृष्ण तथा कौरव-पाण्डव सम्बन्धी घटनाओं को लेकर लिखे गये नाटकों में कौरव पाण्डव के नेतृत्व को महत्त्व का स्थान मिल गया है। इन नाटकों में कौरव पाण्डव के नेतृत्व और सघर्ष के सन्दर्भ में ही कृष्ण की उपस्थिति महत्त्वपूर्ण है। कौरव पाण्डव से सम्बन्धित नाटक घटनाओं की दृष्टि से दो प्रकार के हैं —

१ डा० लक्ष्मीनारायण लाल—सूयमुख—पृ० ३ (प्र० स० सन १९६८ ई०)

१ अनेक घटनाओं पर आधारित नाटक

२ कुछ विशिष्ट घटनाओं पर आधारित नाटक

(आ) १ अनेक घटनाओं पर आधारित नाटकों में चतुरसेन शास्त्री के 'गांधारी' और डा० गोविन्ददास के 'कर्ण' नाटक का समावेश होता है।

'गांधारी' नाटक में धृतराष्ट्र के साथ हुए गांधारी के विवाह से लेकर कौरव पाण्डव के युद्धात्मक संघर्ष में पाण्डवों की विजय तक की अनेक घटनाएँ सम्मिलित हुई हैं। इस नाटक में कौरव-पाण्डव के बीच संघर्ष छिड़ने से पूर्व कौरवों द्वारा पाण्डवों को नष्ट करने के लिए रचे गये अनेक षड्यन्त्र हैं। परिणामस्वरूप कौरव पाण्डवों का क्रमशः संघर्ष की ओर बढ़ना है और एक दिन संघर्ष छिड़ने में उसकी परिणति होती है। इस प्रकार इस नाटक में बाह्य संघर्ष है।

डा० गोविन्ददास लिखित 'कर्ण' नाटक में कौरव पाण्डव के बाह्य संघर्ष के साथ साथ श्रेष्ठवीर, उदारहृदयी, असीम साहसी कर्ण का हृदयस्पर्शी आंतरिक संघर्ष भी है। इस नाटक के निर्माण के सम्बन्ध में डा० गोविन्ददास ने लिखा है "कर्ण के चरित्र की जिस बात ने मेरे मन पर सबसे अधिक असर डाला वह थी उसकी लगातार द्वन्द्वात्मक भावनाएँ तथा कृतियाँ। "महाभारत में कर्ण द्वारा उच्च से उच्च कृतियाँ होती हैं और निकृष्ट भी। एक ही व्यक्ति एक दूसरे से ठीक विरोधी कृतियाँ कैसे कर सकता है? यह मेरे चिन्तन का विषय हो गया।"[1] फलतः कर्ण की सृष्टि हो गई। इससे ज्ञात होता है कि प्रस्तुत नाटक में नाटककार का ध्यान कर्ण के आन्तरिक संघर्ष के उद्घाटन पर अधिक रहा है। वास्तव में कर्ण के आंतरिक संघर्ष के कारण ही प्रस्तुत नाटक अधिक प्रभावशाली और स्वाभाविक बन गया है। कर्ण के हृदय में जो पुण्य और दुष्ट प्रवृत्तियों में संघर्ष का तूफान उठता है, उससे कर्ण एकदम पुण्य अथवा एकदम दुष्ट नहीं लगता अपितु एक जीता जागता हम जैसा मानव लगता है। अतः प्रस्तुत नाटक में बाह्य संघर्ष की अपेक्षा कर्ण का आन्तरिक संघर्ष श्रेष्ठ श्रेणी का है।

जब जब दुर्योधन पाण्डवों को अपमानित कर यन्त्रणा देने अथवा उनका नाश करने का षड्यन्त्र रचता है और उसमें कर्ण का सहयोग लेता है तब-तब कर्ण में आन्तरिक संघर्ष छिड़ जाता है। उसका मन डावाँडोल हो जाता है। वह अनिर्णय की स्थिति में फँस जाता है। वह देर तक निर्णय नहीं कर पाता कि दुर्योधन का साथ दे या न दे? लेकिन पाण्डवों द्वारा किए गए अपने अपमान का स्मरण होते ही कर्ण, इच्छा हो अथवा न हो, पाण्डवों के विनाश के लिए दुर्योधन का साथ देने को तत्पर हो जाता है। इतना ही नहीं वह अपनी वीरता के बल पर दुर्योधन का

---

१ डा० गोविन्ददास—कर्ण—निवेदन पृ० क्र० १ (द्वि० सं० सन् १९६४ ई०)

न्याय अधिकार की माँग करने वाले पाण्डवों से युद्ध करने को भी भड़काता है। लेकिन इतना करने पर भी, एकान्त में कर्ण का मन अस्थिर उद्विग्न हो जाता है। वह अनुभव करता है कि उसका पतन हो रहा है और वह अपने पतन को रोक नहीं पा रहा है। कर्ण अपने अन्त तक अपनी अनिर्णयात्मक मन स्थिति से संघर्ष करता रहता है।

सूर्योपासक कर्ण ने स्वप्न में सूर्य के द्वारा अपने जन्म का रहस्य जान लिया है। कर्ण शस्त्र विद्या में अर्जुन से भी श्रेष्ठ वीर है। परन्तु पाण्डव कर्ण को सूत पूत कहकर जहाँ तहाँ अपमानित करते हैं। कर्ण में इस अपमान का प्रतिशोध लेने की इच्छा प्रबल बनती है। वह धूर्त दुर्योधन की कृपा को स्वीकार करता है और अंगदेश का राजा बनकर दुर्योधन का अभिन्न मित्र बन जाता है।

दुर्योधन के उपकार के कारण कृतज्ञ कर्ण दुर्योधन के हरेक कार्य में सहयोग देता है। परन्तु उसमें उसे सन्तोष नहीं मिलता है। वह देखता है कि पाण्डवों को सताने के लिए नित्य नये षडयन्त्र रचे जाते हैं। जब द्यूत के खेल में प्रवीण शकुनि से पाण्डवों के साथ द्यूत खेलने का षडयन्त्र रचा जाता है। इसमें कर्ण का हृदय सहयोग देना नहीं चाहता है। लेकिन वह अपनी दुविधा को दुर्योधन पर प्रकट भी नहीं कर सकता। दुविधाग्रस्त कर्ण अपनी पत्नी रोहिणी से कहता है— 'जब मैं शांति से सोचता हूँ उस समय मुझे षडयन्त्र जितने बुरे लगते हैं, उतने उस समय नहीं जब इनका विचार किया जाता है। उस समय तो मैं इन षडयन्त्रों में भी सुयोधन का सहायक हो जाता है। सुयोधन के सम्मुख तो मुँह से इन षडयन्त्रों का भी विरोध नहीं होता।'[1] वह झगडा को निपटाने के लिए षडयन्त्रों की अपेक्षा सरल युद्ध मार्ग का अवलम्ब करना चाहता है। वह रोहिणी को बताता है— मैंने सुयोधन से कहा था कि अकेला मैं सब पाण्डवों को परास्त करने की क्षमता रखता हूँ, पर वे सीधा पथ छोड़ टेढ़े मार्गों से चलते हैं और इन टेढ़े मार्गों में उनकी सहायता करता हूँ। (कुछ रुककर) सहायता तो करता हूँ प्रिये पर फिर यही सहायता मेरे दुःख, मेरी उद्विग्नता का कारण हो जाती है।[2] इस प्रकार दुविधाग्रस्त कर्ण इच्छा न होते हुए भी पाण्डवों के विरुद्ध दुर्योधन के दुष्ट कर्मों में बिना सहयोग दिए नहीं रह सकता।

दुर्योधन न्याय के अनुसार पाण्डवों का राज्य देने के बदले कर्ण के बल पर पाण्डवों से युद्ध करने का निश्चय करता है। कृष्ण और कुन्ती कर्ण को पाण्डवों का पक्ष लेने के लिए प्रवृत्त करने का प्रयत्न करते हैं पर सफलता नहीं पाते। कर्ण दुर्योधन का विश्वासघात करना नहीं चाहता। परिणामस्वरूप अपनी मृत्यु तक कर्ण आन्तरिक संघर्ष में ही उलझा रहता है।

---

१ डा० गोविन्ददास–कर्ण–पृ० १७ (द्वि० सं० सन १९६४ ई०)

२ वही, पृ० १८

आ २ — कुछ विशिष्ट घटनाओं पर आधारित नाटकों में लक्ष्मीनारायण मिश्र के दो नाटक उल्लेखनीय हैं (१) चक्रव्यूह और (२) अपराजित।

चक्रव्यूह में कौरव पाण्डव के युद्धारम्भ होने के सन्दर्भ में बड़े-बड़े विरोधी योद्धाओं से अभिमन्यु का साहस और वीरता से संघर्ष चित्रित हुआ है। अभिमन्यु द्रोणाचार्य द्वारा रचित अभेद्य चक्र-व्यूह का भेदन कर अन्दर प्रवेश करता है और शत्रु पक्ष के अनेक महारथियों से अकेला लड़ता है। वह लड़ते लड़ते गर्भगृह में पहुँच जाता है। कर्ण, द्रोण, कृप, दुःशासन, अश्वत्थामा मिलकर अभिमन्यु से लड़ते हैं परन्तु अभिमन्यु को पराजित करने में असमर्थ रहते हैं। उस समय अभिमन्यु और दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण का युद्ध होता है। दोनों गदा-युद्ध के प्रहारों से घायल हो जाते हैं और मर जाते हैं। जयद्रथ वीरगति प्राप्त अभिमन्यु के सिर को ठुकराता है। अर्जुन अभिमन्यु की मृत्यु का समाचार मिलने पर प्रतिज्ञा करता है कि वह दूसरे दिन सूर्य डूबने से पहले जयद्रथ का वध करेगा। इस प्रकार इस नाटक में बाह्य संघर्ष को महत्त्व का स्थान दिया गया है।

इस नाटक की रचना में नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र का उद्देश्य अभिमन्यु की वीरता दिखाना तो है ही, साथ साथ अभिमन्यु और लक्ष्मण की मृत्यु से सुयोधन की विचलित मनःस्थिति को भी दिखाना है। लड़ते-लड़ते मरे हुए बालकों को देख सुयोधन भावमग्न हो जाता है। वह मानता है कि इन बालकों की मृत्यु से हमारे मन का मैल धुल गया। अब हमें घोर नरसंहार को रोकना चाहिए। परन्तु सुयोधन उस समय यह भी अनुभव करता है कि अब युद्ध को रोकना असम्भव है। वह तो एक विशिष्ट बिन्दु पर पहुँच कर ही समाप्त होगा। अतः इच्छा होते हुए भी सुयोधन युद्ध को नहीं रोक पाता। इस प्रकार नाटककार ने इस विशिष्ट घटना के सन्दर्भ में पश्चात्ताप में लीन सुयोधन को दिखाया है।

इस नाटक में आन्तरिक संघर्ष को विशेष स्थान नहीं दिया गया है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपराजित में कौरव पाण्डव के संघर्ष के सन्दर्भ में विशिष्ट दृष्टिकोण से अश्वत्थामा का चरित्र चित्रण किया है। इसमें दिखाया गया है कि कोई भी अपने पराक्रम से अश्वत्थामा को पराजित नहीं कर सकता। वह कौरव-पक्ष के एक अजेय योद्धा के रूप में जीवित है। अतः वह मानता है कि *पाण्डवों द्वारा जब तक उसकी पराजय नहीं होती तब तक कौरव अपराजित हैं।*

इस नाटक में प्रथम अंक के आरम्भ में कृपाचार्य और कृपी में कौरव-पाण्डव के युद्ध को लेकर सम्भाषण हो रहा है। इस सम्भाषण से मालूम होता है कि जब से द्रोणाचार्य कौरवों के सेनापति बन गये हैं युद्ध में पाण्डवों को भारी हानि उठानी पड़ रही है। इस हानि से बचने के लिए कृष्ण द्रोणाचार्य से एक रहस्य जानने में सफलता पाते हैं। द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा को बताते हैं कि कृष्ण ने बड़ी चालाकी से

अपनी मृत्यु के रहस्य को जाना है । कृष्ण की धूर्तता से आकर द्रोणाचार्य ने कृष्ण को बता दिया है कि उनकी मृत्यु पुत्र शोक में होगी । यह सुनकर अश्वत्थामा अस्थिर हो जाता है । उसे लगता है अब कृष्ण असत्य कपट छल की आड में पिता द्रोण को मारने का प्रयास करेगा । उस समय विश्वास दिलाते हुए द्रोणाचार्य अश्वत्थामा से कहते हैं— 'जब तक पुत्र जीवित रहेगा, इन्द्र, वरुण के मारे मैं न मरूँगा ।'[१]

लेकिन दूसरे अंक में देखते हैं कि कुरुक्षेत्र में हो रहे युद्ध में युधिष्ठिर असत्य का आश्रय लेते हैं और व्याकुल द्रोण से कहते हैं कि अश्वत्थामा मारा गया है, पर तु नर या कुंजर पता नहीं । योग्य समाचार न मिलने के कारण पुत्र शोक में द्रोण की मृत्यु हो जाती है । अश्वत्थामा को पिता की मृत्यु का पता लगते ही वह असत्यवादी, कपटी, छली पाण्डवों से पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने का निश्चय करता है । क्रुद्ध अश्वत्थामा और भीम में संघर्ष होता है । भीम का हार खानी पडती है । अश्वत्थामा और अर्जुन का भी संघर्ष होता है । किसी की हार जीत नहीं होती ।

तीसरे अंक में देखते हैं कि अश्वत्थामा वन में युद्ध के वेश में बैठा है । उसके मन में कृष्ण और पाण्डवों के प्रति घृणा पैदा हुई है । क्योंकि उन्होंने इस युद्ध में पराक्रम की अपेक्षा छल और कपट का बहुत आश्रय लिया है । युद्ध में सभी कौरव मारे गये हैं । अब अश्वत्थामा को भी मारने के हेतु कृष्ण भीम, अर्जुन वहाँ आ जाते हैं । अर्जुन और अश्वत्थामा में युद्ध छिड जाता है । उस समय अश्वत्थामा अर्जुन के हृदय को वेधने वाली बात कहता है—- सुनो अर्जुन ! द्रौपदी की प्रेरणा से तुम लोग एस दारुण नरसंहार के कारण बने । राज्य के अधिकारी तुम नहीं थे । पाण्डु के औरस पुत्र तुम पाँच में एक भी नहीं हो । कोई धर्म का कोई वायु का कोई इन्द्र का कोई अश्विनीकुमार का, पर पाण्डु का कोई नहीं । इन्द्र का, वायु का, धर्म या अश्विनीकुमार का पुत्र कुरु सिंहासन का भागी किस विधि से बनता ?'[२] इस प्रश्न का उत्तर अर्जुन नहीं दे सकता । लेकिन कृष्ण देते हैं—- इसी विधि के निर्माण के लिए यह समर हुआ गुरु पुत्र ।'[३] तब अश्वत्थामा इन लोगों के छल और कपट को धिक्कार करता है और गर्व के साथ युद्ध के लिए ललकारते हुए कहता है- कुरुराज पराजित नहीं है उनका प्रतिनिधि मैं तुम्हारे सामने खडा हूँ ।'[४] इस ललकार पर अश्वत्थामा और अर्जुन में ब्रह्म अस्त्रों का युद्ध छिड जाता है । कृष्ण भयंकर परिणामों

१ डा० लक्ष्मीनारायण मिश्र अपराजित—पृ० ५६ (तृ० सं० सन् १९६४)
२ वही, पृ० ३७
३ वही, पृ० १३७
४ वही, पृ० १४३

को टालने के लिए इस युद्ध को रोकने का प्रयास करते हैं। उन्हें इस प्रयास में कुछ सफलता भी मिलती है। परन्तु कौरव-पक्ष का प्रतिनिधि अश्वत्थामा अपराजित ही रह जाता है। वह किसी के पराक्रम से पराजित नहीं होता है।

इस प्रकार लक्ष्मीनारायण मिश्र ने कौरव-पाण्डव के युद्धात्मक संघर्ष के साथ-साथ संजय और अश्वत्थामा के चरित्र का विशिष्ट दृष्टिकोण से चित्रण किया है। इस नाटक में समूह-समूह के संघर्ष के अन्य व्यक्ति-व्यक्ति के संघर्ष को महत्त्व का स्थान मिला है। इस नाटक में जितना भी युद्धात्मक संघर्ष है नेपथ्य में होता है।

रमाशंकर बहादुर के 'वचन का मोल' में दिखाया गया है कि मय सभा भवन में हुए अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए दुर्योधन पुनः और कपटी शकुनि मामा के द्वारा युधिष्ठिर को द्यूत खेल में हराता है और फिर अपमानित होकर पाण्डवों को वनवास जाना पड़ता है। वसन्त अग्रवाल के "शान्ति दूत" में और यावलि सूर्यनारायण मूर्ति के 'महानाश की ओर' में दिखाया गया है कि कृष्ण और कुन्ती द्वारा शान्ति-स्थापना के प्रयत्न करने पर भी दुर्योधन की उद्दंडता और अदूरदर्शिता के कारण कौरव-पाण्डव में महाविनाशकारी युद्धात्मक संघर्ष अटल बन जाता है। इन तीन नाटकों में युद्धात्मक-संघर्ष से पूर्व घटनाओं को स्थान मिला है।

अवधभूषण मिश्र के 'कुरुक्षेत्र' में भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध के रूप में व्यक्ति व्यक्ति का संघर्ष व्यक्त हुआ है। रांगेय राघव के 'स्वर्ग भूमि का यात्री' में युद्ध की समाप्ति से लेकर स्वर्ग में नरक-यातना भोगने वाले पाण्डवों के उद्धार तक की अनेक घटनाओं को स्थान मिला है। इस नाटक में संघर्ष को विशेष स्थान नहीं मिल पाया है।

उपर्युक्त विवेचन से पता चलता है कि कौरव पाण्डव के शत्रुत्व और युद्धात्मक संघर्ष से सम्बन्धित नाटकों में से केवल 'कर्ण' नाटक में बाह्य संघर्ष के साथ-साथ आंतरिक संघर्ष को महत्त्व का स्थान मिला है। अन्य नाटकों में से कुछ नाटकों में बाह्य संघर्ष है और कुछ नाटकों में संघर्ष का अभाव है। 'कर्ण' नाटक में आंतरिक संघर्ष को महत्त्व का स्थान मिलने से वह सबसे अधिक प्रभावशाली लगता है। 'चक्रव्यूह' और 'अपराजित' में विशिष्ट दृष्टिकोण से बाह्य संघर्ष को स्थान दिया गया है। अतः दोनों नाटक विचारणीय बन गये हैं। इन दोनों में दुष्ट पक्ष के रूप में नहीं अपितु पुष्ट सत्य और अनुपम पक्ष के रूप में कौरवों का चित्रण हुआ है। इससे दोनों नाटक स्मरणीय बन गये हैं।

'कर्ण', 'चक्रव्यूह' और 'अपराजित' नाटकों के समान अन्य नाटकों में न प्रतिभा की मौलिकता है न कल्पना की नूतनता है, न बुद्धि की सूझबूझ है। अतः उन नाटकों में उसी ढंग से घटनाएँ घटती हैं जिस ढंग से महाभारत में घटती हैं।

पात्रो के चरित्र चित्रण मे भी कोई विशेषता दिखाई नही देती । अत उन नाटको में उपलब्ध सघष प्रभावक्षम नही है ।

३ अन्य चरिताश्रित पौराणिक नाटक और संघर्ष तत्व

पुराणा मे राम और कृष्ण के अतिरिक्त अन्य अनेक व्यक्तियो से सम्बन्धित कथाओ को स्थान मिला है। इनमे से कुछ व्यक्तियो की कथाओ को लेकर हिन्दी नाटककारो ने विशिष्ट दृष्टिकोण से नाटक लिखे हैं। कुछ नाटको मे सघष का महत्त्वपूण स्थान है।

उदयशकर भटट और चतुभु ज ने काशीराज कन्या अम्बा के विद्रोह को लेकर क्रमश 'विद्रोहिणी अम्बा" और "भीष्म प्रतिज्ञा" नाटक लिखे हैं। इन नाटको मे दिखाया गया है कि पुरुष द्वारा अपमानित अम्बा अपने अपमान का प्रतिशोध लेने लेन का आकाक्षा से भीष्म स सघष छेडती है। यह सघष भीष्म की मत्यु तक चलता है।

उदयशकर भटट कृत "विद्रोहिणी अम्बा' म भीष्म काशीराज की कन्याओं के स्वयवर म उपस्थित रह जात हैं और सभी युवराजो से लडकर तीनो राज कन्याओं का अपहरण करते हैं। अम्बिका और अम्बालिका का विवाह विचित्रवीय स हो जाता है। लेकिन अम्बा को उसकी इच्छा के अनुसार युवराज शाल्व की ओर जाने की अनुमति दी जाती है। शाल्व अम्बा को अपमानित कर अपने भवन से निकालता है। अपमान से घायल तथा क्रुद्ध हुई अम्बा अपनी विचित्र दशा का मूल कारण भीष्म को मानने लगती है—'सब अपराध भीष्म, क्रूर भीष्म का है जिसने ब्रह्मचय के शिखर पर खडे होकर आत्म गौरव को उकसाते हुए मुझे नीचे ठीक नीचे, अपमान की खाई मे धकेल दिया है।'[1] अम्बा भीष्म से प्रतिशोध लेने का दृढ़ सकल्प करती है। वह भीष्म को हराने के लिए परशुराम के पास जाती है। परशुराम भीष्म को समझाते हैं कि भीष्म अपनी ब्रह्मचय की प्रतिज्ञा को छोडकर अम्बा स विवाह करें। लकिन भीष्म अपनी प्रतिज्ञा को त्याग देना नही चाहते। परिणाम स्वरूप परशुराम और भीष्म मे धनुष बाण का युद्ध होता है। परशुराम को हार खानी पडती है।

तत्पश्चात अम्बा शिवोपासना करती है और प्रसन्न हुए शिव से वर पाती है और अगले जन्म म शिखण्डी बनकर भीष्म की मृत्यु का कारण बन जाती है। विद्रोहिणी अम्बा प्रतिशोध लेकर ही चन की सांस लेती है। ठीक इसी प्रकार का सघष "भीष्म प्रतिज्ञा' नाटक में है।

गोविन्दवल्लभ पन्त के 'ययाति' म उस समय सघष का आरम्भ होता है जब पुरु की देह म ययाति की आत्मा प्रवेश करती है और ययाति की देह मे पुरु

१ उदयशकर भट्ट–विद्रोहिणी अम्बा–पृ० ७८ (द्वि० स० सन् १९६४ ई०)

बहुपत्नीवाली आर्यो से परास्त होना पडा। उन्हें अपने महेन्द्रज तथा हरपत्र जैसे सुदर नगरो का नाश देखना पडा। पूर्वजो की इस भूल को सुधारने के लिए तथा अपनी सस्कृति को प्रतिष्ठापित करने के लिए महर्षि नारायण आत्मज्ञान के साथ शस्त्र ज्ञान को भी स्वीकार करते हैं। वे वैष्णवपथी द्रविड राजा प्रह्लाद से कहते हैं— प्रकृति मे तप और युद्ध साथ साथ लगे हैं। प्रकृति म जो केवल युद्ध देखते हैं—हिंसक हैं और जो केवल तप देखते हैं कायर हैं। हमने प्रकृति मे केवल तप देखा इसलिए ये यायावर आज हमारे प्रभु बन रहे हैं। पूर्वजो की इस भूल का फल हमने भोग लिया।" राजर्षि मेरा विधान वही है जो प्रकृति का है। सघर्ष और तप म ही यह प्रकृति पूर्ण है और प्रकृति के पूर्ण होने म ही हम भी पूर्ण हैं।"[२]

द्रविड राजा प्रह्लाद को आचार्य उपाध्याय और स्नातको का शस्त्र धारण करना अच्छा नही लगता। महर्षि नारायण राजा प्रह्लाद को समझाते हैं कि आत्म रक्षा प्रकृति का धर्म है। अत आत्मरक्षा के लिए और आततायियो का दमन करने के लिए ऋषियो का शस्त्र धारण करना अत्यावश्यक है। ऋषि कायर नही, अपितु वीर होते हैं। लेकिन उनके शस्त्र ग्रहण मे घृणा क्रोध अथवा अहकार नही होगा अपितु प्रेम ही होगा।

महर्षि नारायण के विचार राजा प्रह्लाद को अच्छे नही लगते। वे युद्ध के लिए महर्षि नारायण को ललकारते हैं। तब महर्षि नारायण की अनुमति से आचार्य नर और राजा प्रह्लाद मे धनुष बाण से घोर द्वन्द्व युद्ध होता है। युद्ध म भी आचार्य नर तथा महर्षि नारायण के निर्वैर भाव को देखकर राजा प्रह्लाद युद्ध को रोकता है और महर्षि नारायण से क्षमा प्रार्थना करता है।

वस्तुत महर्षि नारायण और राजा प्रह्लाद दोनो भी वैष्णवपथी हैं। महर्षि नारायण ने एक आश्रम की स्थापना की है जिसमे आर्य कुमार कुमारी तथा द्रविड कुमार-कुमारी मिल जुलकर विद्याध्ययन करते है। उस आश्रम का नियम विधान महर्षि नारायण का है। महर्षि नारायण शस्त्र विजयी आर्यो को अपनी सस्कृति से पराजित करना चाहते हैं। वे उनका शस्त्र गुरु भी बनना चाहते हैं। वे आर्यो की कुछ विधियो को इसलिए स्वीकार करते हैं कि आर्य निर्वैर भाव से उनके आश्रम मे आकर द्रविडो की विद्या को अपनाने का प्रयत्न करें। इस दृष्टि से आर्य जनपदो से कई कुमार-कुमारियाँ महर्षि नारायण के आश्रम म विद्याध्ययन के हेतु आये है। आश्रम की स्थापना के मूल मे महर्षि नारायण का जो हेतु है, उस पर प्रकाश डालते हुए आचार्य नर कहते हैं— शरीर और प्रकृति के उद्धत इन श्वेत जन समूहो को

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र-नारद की वीणा-पृ० ९८ (तृ० स० सन १९६० ई०)

२ वही पृ० ९८

देना नहीं चाहते हैं। अत वे पृथु की मुनीथा से भेंट होने से पहले ही पृथु को ब्रह्मा वन का शासक बनने के लिए प्रवृत्त कर देते हैं। पृथु को शासक बनाने के लिए मुनि एक ऐसा बहाना बनाते हैं। जिससे कवष को वेन का ज्येष्ठ पुत्र और पृथु को वेन का भुजा पुत्र घोषित कर 'पहला राजा'[1] के रूप में सभी स्वीकार करते हैं। मुनीथा और गांवों के मुनियों को पता ही नहीं चलता कि कवष मुनीथा का पौत्र है। वे तो मुनियों के बाल से इतना ही जानते हैं कि मुनियों के मत वेन की दाहिनी जंघा मथने से वेन के मन के मन्थन ने कवष का रूप धारण किया है और दाहिनी भुजा मथने से वेन के तेज ने पृथु का रूप धारण किया है। अत सभी वेन के मन से अर्थात् कवष से घृणा करते हैं और तेज को अर्थात् पृथु को 'राजा' के रूप में स्वीकार करते हैं। इससे मुनियों ने कवष को दूर रखा और एक ऐसे शासक को भी पाया जो उनके हाथ में कठपुतली जैसा खिलौना बनकर रहेगा उनके इशारों पर नाचता भी रहेगा और लोगों का प्रिय भी कहलाता रहेगा। इसलिए तो मुनि कई शर्तें मनवाकर पृथु को सदा अपनी मुट्ठी में बनाकर रखने का प्रबन्ध करते हैं। तभी तो बाद में भाग्य कोशिश करने पर भी इस कुटिल एवं मायावी जाल से पृथु की मुक्ति नहीं होती। मुक्ति के लिए पृथु को मुनियों से संघर्ष मोल लेना पड़ जाता नहीं होता। अत पृथु दुविधा में अधिकाधिक उलझता रहता है। उसके अन्तस में आन्तरिक संघर्ष सुलगता है जो उसे बेचैन कर देता है।

निर्द्वन्द्व पृथु के मन में आन्तरिक संघर्ष छिड़ना आरम्भ होता है जब मुनि उसे ब्रह्मावर्त का शासक बनने के लिए निमन्त्रण के रूप में चुनौती देते हैं। क्योंकि मुनि नहीं चाहते कि ब्रह्मावर्त पर एक वर्ण संकर राज्य करे। अत वे देवप्रस्थ के प्रतिष्ठित आर्यकुल में उत्पन्न पृथु को ही चुनौती देते हैं। पृथु को गुरु अंग के आदेश का स्मरण होता है। उसने गुरु अंग से वायदा किया था कि वह कवष को मुनीथा को सौंप देगा और उसे ब्रह्मावर्त का शासक बनाएगा। लेकिन यहाँ तो पृथु को ही शासक बनने की चुनौती मिल गया है। क्षण भर वह निर्णय नहीं कर पाता कि वायदे और चुनौती के बीच किस वरे। क्षणोपरान्त पृथु निर्णय करता है और मुनियों को बताता है कि वह शासक बनेगा पर कवष को अपने साथ रखेगा। पृथु के निर्णय को सुनकर मुनि आगे के प्रबन्ध के लिए जाते हैं। पृथु विचार में लीन हो जाता है। इतने में कवष वहाँ आ जाता है। पृथु में घबराहट पैदा होती है। क्योंकि वह अपने गुरुत्व को तथा गुरुबन्धु कवष को धोखा दे रहा है। अत वह कवष से बातचीत करते समय पोल न खुल जाए इसलिए बड़ी सावधानी बरतता है। फिर भी वह अर्थ अधूरे ही वाक्य बोलता रहता है। इससे कुछ बात कवष की समझ में आ जाती है। कवष अनुभव करने लगता है कि अब पृथु और

---

[1] जगदीशचन्द्र माथुर—पहला राजा पृ० २८ (प्र० सं० सन १९६९)

त्रिगत की ओर नहीं लौटेगा। कवष को भी उसके साथ यहां रहना होगा। वह कवष को इस प्रकार मानता है—

"पृथु—तुम मेरे साथ रहोगे न? चाहे जहां हो? चाहे मैं मैं, तुमसे धोखा भी करूँ?

कवष—यह दूसरा बेढगा सवाल तुम्हारे मुँह से आज निकला है। पृथु! आओ, हम लोग चलें।

पृथु—नहीं। लौटने की राह बन्द है! हमें बहुत कुछ करना है! लो, तुम्हें बताता हूँ।"

यहाँ पृथु में संघर्ष चल रहा है कवष के साथ धोखा करना अच्छा है या उसे वास्तविकता की जानकारी कराना?

लेकिन सत्ता का मोह पृथु को सत्य कहने नहीं देता। अत वह सुनीथा, कवष तथा उर्वी को धोखे में रखता है। मुनियों के षड्यन्त्र में अटककर ब्रह्मावर्त का 'पहला राजा' बन जाता है। पृथु का राजा" बनाये जाते ही स्तुतिपाठक सूत और मागध पृथु के पराक्रम का गुणगान करने लगते हैं। झूठी प्रशंसा से पृथु उकता जाता है—

"पृथु—बन्द कीजिए यह शब्दाडम्बर अभी तो मैंने राजा होकर रत्ती भर काम नहीं किया। अभी से स्तुति कैसी? (सब लोगों को सम्बोधित करते हुए) सुनिए मुनिगण, सुनिए माता सुनीथा, सुनिए ब्रह्मावर्त के निवासियों। आपने मुझे राजा बनाना स्वीकार किया। इसके लिए मुझे स्तुति नहीं आपका सहयोग चाहिए। वाणी का विलास नहीं, कर्म का उल्लास चाहिए। बिना मेहनत के तारीफ मुझे इतनी ही अशोभनीय लगती है जितनी बिना बुराई के निन्दा।"

पृथु ने कर्मयोग की बात बड़ी उन्माद से कही लेकिन उसे क्या पता था कि यहाँ जो भी करना होगा, मुनियों द्वारा किये गये विधान के अनुकूल करना होगा। वह उस विधान की अवहेलना कर मन का नहीं कर सकता। मुनियों की कुटिल राजनीति और घोर स्वार्थी-वृत्ति से अनभिज्ञ पृथु राज्य संकट बलात समय परामर्श पाने के लिए मुनियों का ही मन्त्रिमण्डल बनाता है। शुक्राचार्य को पुरोहित मन्त्री, गर्ग को ज्योतिष मन्त्री और अत्रि को अमात्य नियुक्त करता है। ऐसी स्थिति में पृथु गुरुबन्धु कवष की महत्त्वपूर्ण बातों पर ध्यान नहीं देता। साथ साथ त्रिगत में प्रिय लगने वाली दस्युकन्या उर्वी से विवाह सम्बन्ध जोड़ने को भी अस्वीकार करता है। उसमें पहले के अपनेपन स्थान को दुराव ले रहा है। पृथु ने बताया कि अब वह

१ जगदीशचन्द्र माथुर—पहला राजा पृ० ३१ (प्र० सं० सन् १९६९ ई०)

२ वही, पृ० ४६

निपुण शुक्राचार्य कहते हैं ।

नहीं गर्ग ! नहीं ! राजा की हत्या की मुझे इतनी चिन्ता नहीं जितनी उसके बच जाने की । मुझे डर है कि भृगुवंश और अत्रिवंश ही नहीं, सभी मुनियों का स्वार्थ खतरे में पड़ने वाला है ।[1] इस आपत्ति से बचने के लिए मुनि पृथु की बढ़ी हुई आकांक्षाओं और शक्ति को किसी दूसरे पथ पर मोड़ने का कुचक्र रचते हैं ।

कुपित जनता को शान्त करने में पृथु को सफलता मिलती है । वह हर्षावेग में तथा क्रोध में मुनियों से कहता है—

'पृथु—तूफान के आगे डैने फैलाकर उड़ान लेने समय चील को जैसा लगता है वैसा ही तो मुझे लगा । मेरे अंग अंग में स्फूर्ति है । सारी उदासी गायब हो चुकी है । आपको आश्चर्य होगा, अत्रिमुनि, मुझे मुझे एक अद्भुत आह्लाद का अनुभव हो रहा है ।

अत्रि—आह्लाद !

पृथु—हाँ आह्लाद ! और (स्वर बदलते हुए) क्रोध भी जनता की जिस भीड़ को मैं शान्त करके आ रहा हूँ, उसके दुख दर्द की कथाएं सुनकर मुझे करुणा नहीं आई, गुस्सा आया । मैं पूछता हूँ आप लोगों से क्या मैंने आप को जो वचन दिए थे कुशा की इस रस्सी की गाँठें बाँधकर, वे पूरे किए या नहीं ?

गर्ग—आपने सब वचन पूरे किए ।

पृथु—तो फिर मेरे राज्य में अकाल क्यों है ?"[2]

लेकिन पृथु का इस प्रकार मुनियों से संघर्ष करना निष्फल हो जाता है । क्योंकि मुनिवर शुक्राचार्य बड़ी चतुराई से पृथु को गुमराह कर देते हैं । वे पृथु को सूखा पड़ने का कारण बताते हैं कि सरस्वती पार किसी खण्डहर में भूचण्डी (नंगी नारी मूर्ति, जिसकी कुक्षि में से एक वृक्ष निकल रहा है) की दस्युओं के द्वारा पूजा हो रही है । इस पूजा के कारण भूचण्डी ब्रह्मावर्त की धरती पर चढ़ बैठी है । परिणामतः धरती ने सारा रस अन्दर खींच लिया है और अकाल पड़ा है । अतः ब्रह्मावर्त की धरती को अकालमुक्त करना हो तो दस्युओं के खण्डहरों में होने वाले उस भयंकर पूजन को नष्ट करना होगा, जिसका रक्षक कवष है । यह सुनते ही पृथु में प्रजाहित के लिए ऐसी आग भड़क उठी जो दस्युओं के साथ कवष को भी नष्ट करने को उतावली हो जाती है ।

भूचण्डी का वध करने आये क्रुद्ध पृथु की उर्वी से भेंट हो जाती है । उर्वी

1 जगदीशचन्द्र माथुर—पहला राजा—पृ० ६५ (प्र० सं० सन १९६९ ई०)
2 वही, पृ० ६७

गुमराह पृथु को ठीक रास्ते पर लाते हैं। वह पृथु को जमीन को समतल बनाकर उपजाऊ बनाने की प्रेरणा देती है।

समृद्धि के दो वर्षों के बाद पृथु में फिर आन्तरिक संघर्ष दिखता है। पृथु ने धरती को समतल तथा उपजाऊ बनाया है। ब्रह्मावर्त का जीवन समृद्ध हुआ है। सरस्वती की सूखी धारा में जो छोटी-सी नहर कवष ने शुरू की थी, उसका विस्तार हो रहा है और नाना हो आश्रमों के सैकड़ों लोगों को काम मिला है। नहर वहाँ तक सुदना जहाँ दृषद्वती की धारा से सरस्वती का संगम था। इस बरसात में पहले अगर दृषद्वती की धारा को मोड़ने वाला बाँध तैयार हो जाये तो पृथु का सोचा स्वप्न पूरा हो जायगा। तब वह एक नये प्रकार का चक्रवर्ती बनेगा। पृथु के सामने समस्या है कि हिमालय में वर्षा के समाचार मिले हैं। बाँध का थोड़ा हो हिस्सा बनने को रहा है। अतः उधर तीन सौ किसान मजदूर भेजने की आवश्यकता है। लेकिन पृथु के आने पर भी न आत्रेय आश्रम से लोग भेजे जाते हैं, न भृगु आश्रम से। क्योंकि उन्हें चिन्ता है कि कहीं बाँध बन गया तो पृथु पर हमारा नियन्त्रण नहीं रहेगा। अतः वे बाँध को बह जाना चाहते हैं। पृथु का उद्योगवीर बनना उन्हें खल रहा है।

पृथु स्वयं कंधे पर कुदाल लेकर चलने को तत्पर होता है। पृथु का यह रूप देखकर अनेक किसान और मजदूर उधर चलने को तैयार होते हैं। यह देखकर चकित हुए मुनियों को पृथु बताता है— हाँ मेरे कंधे पर धनुष नहीं कुदाल है। इस समय यही मेरा राजचिह्न है, क्योंकि मेरी सैकड़ों प्रजा ने मुझे इसी रूप में स्वीकार किया है।[1] लेकिन दुर्भाग्य से उस समय समाचार मिलता है कि भारी बाढ़ के कारण बाँध टूट गया है, उर्वी और कवष बाढ़ में बह गये हैं, दृषद्वती यमुना की ओर मुड़ गयी है और नहर सूखी पड़ी है। बाँध के निर्माण की प्रतिमा उर्वी और कवष के साथ बह गयी। अतः भविष्य में बाँध के निर्माण की सम्भावना नहीं रही। इस समाचार से पृथु का हृदय विदीर्ण होता है। लेकिन कुटिल मुनियों को आनन्द होता है। अतः वे अर्चना को आज्ञा देकर चले जाते हैं कि पृथु के कंधे से कुदाल उतारो धनुष तूणीर खड्ग ये शस्त्र पहनाओ। अर्चना वैसा ही करती है। तब विवशता के भँवर में फँसे पृथु का आन्तरिक संघर्ष आप ही फूट पड़ता है—

पृथु—(धनुष पर हाथ फेरता हुआ) ठीक ही तो है। मैं आदिराज पृथु आर्यों का पहला राजा। मेरा यही स्वरूप तो सदियों बाद याद किया जायगा, धनुष बाण से सुसज्जित लहू सने खड्ग की चमक से मण्डित मुख, नगरों का उल्लंघन वाला धार स्वर का विधायक, पराक्रमी विजेता, दस्युओं का विनाशक प्रजा का नायक मुनियों का पालक पृथु!! लोग कहेंगे पृथु अवतार

---

1 जगदीशचन्द्र माथुर—पहला राजा—पृष्ठ ९४-९५ (प्र० सं० सन् १९६९ ई०)

था। अवतार! लेकिन इस मुखौटे के नीचे मेहनत के पसीने से चमकता चेहरा कौन जानेगा? इन हाथों में कुदाली की पकड़ को कौन समझेगा? किसे किसे ध्यान होगा कि धरती को समतल बनाकर उसे दोहन वाले हाथ कौन से थे? पृथ्वी! पृथु की पृथ्वी! कौन समझेगा इन शब्दों को?"[1]

अंतर्द्वन्द्वग्रस्त पृथु की यह दयनीय दशा उस पिंजड़े के पंछी जैसी है, जो देख रहा है कि पिंजड़े का द्वार खुला है, अतः मुक्ति के लिए वहाँ से उड़ने की जी तोड़ कर कोशिश भी कर रहा है, पर परों में उड़ानें भरने के लिए पर्याप्त क्षमता न होने से वहीं का वहीं बैठा रहता है तड़पता रहता है।

पृथु को छोड़ अन्य पात्रों में आंतरिक संघर्ष का अभाव है। एक स्थान पर उर्वी की दुविधा व्यक्त हुई है। वह अर्चना से कहती है—

'यह भी एक खोज है। मेरे मन का भेद दो तालों के दपनों में झाँकता है।"[2] इसका अभिप्राय यह है कि वह निर्णय नहीं कर पा रही है कि पृथु से प्रेम किया जाय या कवष से? लेकिन आगे चलकर, कहीं भी उर्वी का अंतर्द्वन्द्व दिखाई नहीं देता। उसने निर्णय कर लिया है कि कवष के साथ प्रतिकूल प्रकृति से संघर्ष करना।

इस नाटक में प्रतिकूल प्रकृति को अनुकूल करने के लिए मानव का प्रकृति से संघर्ष है। प्रतिभासम्पन्न कवष जानता है कि सरस्वती नदी के सूखने के कारण आर्य और अनार्य में संघर्ष है। अतः वह इस संघर्ष को मिटाने का निश्चय करता है। वह पृथु को भी आह्वान देता है— चलो पृथु मैं, तुम और उर्वी सरस्वती की धारा को फिर से बहाने की तदबीरें खोजें और यों इस झगड़े की जड़ ही दूर कर दें।[3] 'हमें एक और युद्ध भी लड़ना है। सरस्वती की धारा को घेरने वाले रेगिस्तान के विरुद्ध।'[4] इस प्रकार कवष और उर्वी ब्रह्मावर्त की समृद्धि के लिए प्रतिकूल प्रकृति से संघर्ष करते हैं। उसमें ही उनकी आहुति हुई।

इसमें विशिष्ट परिस्थिति के सन्दर्भ में स्वार्थी, कुटिल, धर्म के नाम पर मनमानी करने वाले मुनियों के आपसी संघर्ष भी हैं। इसलिए मुनि अत्रि आत्रेय आश्रम की ओर शुक्राचार्य भृगु आश्रम की स्थापना करते हैं। एक दूसरे से ईर्ष्या भी करते हैं। लेकिन पृथु को अपने नियन्त्रण में रखने के लिए फिर संघटित होते हैं।

निष्कर्ष

प्रसादोत्तर पौराणिक नाटकों का पर्यवेक्षण करने से ज्ञात होता है कि बहुसंख्य पौराणिक नाटकों में संघर्ष को स्थान दिया गया है। पर कुछ ही नाटकों में संघर्ष का निर्वाह व्यवस्थित हुआ है। कुछ नाटकों में संघर्ष के निर्वाह पर ध्यान नहीं दिया गया है।

१ जगदीश चन्द्र माथुर–पहला राजा–पृ० ९७ (प्र० सं० सन् १९६९ ई०)
२ वही, पृ० ३७ ३ वही, पृ० ५० ४ वही, पृ० ५१

१. डॉ० गोविन्ददास के 'कर्तव्य' (पूर्वार्द्ध) में केवल आंतरिक संघर्ष को स्थान मिला है। जिनमें केवल आंतरिक संघर्ष को स्थान मिला है ऐसे नाटकों का नितान्त अभाव है। 'कर्तव्य' (पूर्वार्द्ध) में भी कुछ ही दृश्यों में आन्तरिक संघर्ष को स्थान मिला है। अन्य दृश्यों में संघर्षशून्य दृश्यों की ही भरमार है। अतः प्रभाव में व्यतिक्रम उत्पन्न होता है।

२. मुद्रा-परिणय, सुखमुख, दाग' और पहला राजा इन नाटकों में आन्तरिक तथा बाह्य दोनों संघर्षों को महत्त्वपूर्ण स्थान मिल गया है। लेकिन मुद्रा-परिणय' में संघर्ष का स्वरूप क्षीण है। अन्य तीन नाटकों में दोनों संघर्ष नाटक का प्राण बन गये हैं। अतः इन नाटकों की उत्कृष्टता का सबसे बड़ा कारण संघर्ष है।

३. वस्तुतः बाह्य संघर्ष की अपेक्षा आंतरिक संघर्ष अधिक मर्मस्पर्शी और प्रभावशाली होता है। इसके अस्तित्व से नाटक मानवता की दृष्टि से, मूल्यवान तथा हृदयग्राही बन जाता है। लेकिन बहुसंख्य पौराणिक नाटकों में इसकी उपेक्षा ही हुई है।

४. अनेक नाटकों में केवल बाह्य संघर्ष को स्थान मिला है। रावण', त्रेता', लक्ष्मीश्वर, मेघनाद', 'मेघनाद', चक्रव्यूह', अपराजित", विद्रोहिणी अम्बा", भीष्म प्रतिज्ञा। नारद की वीणा' इन नाटकों में तीव्र बाह्य संघर्ष है। इस कारण से ये नाटक प्रभावोत्पादक तथा मार्मिक बन गये हैं। शबरी अछूत', बालवीर कृष्ण भारतनन्दन भरत', कुरुक्षेत्र' ययाति, तीन पर्व", शक्ति-पूजा अस्थिदान' इन नाटकों में संघर्ष को मध्यम स्थान मिला है। लेकिन शबरी, कर्तव्य (उत्तरार्द्ध) सागर विजय श्यामतनु ललित विक्रम द्वापर की राज्य क्रांति, स्वर्गभूमि का यात्री—इन नाटकों में अत्यधिक क्षीण संघर्ष है। इनमें संघर्ष शून्य दृश्यों की भरमार है।

५. जीवन्त सदृश नाटकों में, कहीं कहीं पर, संघर्ष दिखाई देता है। इन नाटकों में कई संघर्षशून्य दृश्य है। इनमें संघर्ष का निर्वाह ठीक तरह से नहीं हो पाया है।

६. कुछ नाटकों में सूक्ष्म-सूक्ष्म भी संघर्ष है, तो कुछ नाटकों में सूक्ष्म-स्थूल भी।

७. पौराणिक पात्रों का मानव के रूप में अधिक चित्रण होने के कारण इस युग के पौराणिक नाटकों में से केवल तीन—शक्तिपूजा, अस्थिदान, श्रावस्ती-नाटिका में सुर असुर का और सुर-सुर का संघर्ष व्यक्त हुआ है।

युद्धात्मक संघर्ष कभी नेपथ्य में होता है तो कभी प्रत्यक्ष भी।

९. कहीं पर व्यक्ति का व्यक्ति से संघर्ष है, तो कहीं व्यक्ति का समूह से और समूह का समूह से। लेकिन सुखमुख में व्यक्ति का नियति से भी संघर्ष है। नियति

न जन्म जन्मान्तर से पति पत्नी के सम्बन्ध को 'पुत्र माता' का विपरीत सम्बन्ध बनाया है। हाँ, इतना हुआ है कि पुत्र को सगा नहीं, अपितु सौत का पुत्र बनाया है। फिर भी समाज की दृष्टि से इन दोनों का प्रेम अपराध और दण्डनीय होगा। लेकिन प्रद्युम्न और वेनुरती अपना प्रेम कितना विशुद्ध है, दण्डनीय नहीं है यह सिद्ध करने के लिए नियति से तथा समाज से संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष में उनका अन्त हो जाता है। नाटक करुण, गम्भीर दुःखान्त बन गया है।

इस प्रकार इस युग के पौराणिक नाटकों में संघर्ष को उल्लेखनीय स्थान मिल गया है। लेकिन ऊपर उल्लिखित नाटकों के अतिरिक्त शेष पौराणिक नाटकों में संघर्ष का अभाव है।

चौथा अध्याय

प्रसादोत्तर ऐतिहासिक नाटक और संघर्ष तत्त्व

अध्याय प्रवेश

प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक नाटक प्रचुर मात्रा में रचे गये हैं। इन नाटकों का निर्माण भारतीय इतिहास से आवश्यक सामग्री लेकर किया गया है। इन नाटकों के विभिन्न अंगों (कथा, पात्र, कथोपकथन, भाषा और वातावरण) में ऐतिहासिकता के दर्शन होते हैं। इन नाटकों को पढ़ते या देखते समय पाठक अथवा प्रेक्षक का मन अतीत युग में संक्रमण करता है। मन अतीत युग से सम्बद्ध व्यक्तियों के जीवन का अनुभव करने लगता है। इस विशेषता को ध्यान में रखकर प्रस्तुत अध्याय में विवेच्य नाटकों के लिए 'ऐतिहासिक' विशेषण का प्रयोग किया गया है।

विवेच्य ऐतिहासिक नाटकों के कथानक अति विस्तृत काल से सम्बन्धित विराट एवं विविध इतिहास पर आधारित हैं। अतः जिस प्रकार इतिहास विराट, विस्तृत और विविध होता है उसी प्रकार उस इतिहास पर आधारित नाटक भी विविध प्रकार के होते हैं।[1] इस वस्तुस्थिति के आधार पर ऐतिहासिक नाटक का वर्गीकरण कई प्रकार का हो जायगा।

परन्तु प्रस्तुत अध्याय में विवेचना की सुविधा की दृष्टि से विवेच्य नाटकों में स्वीकृत इतिहासकाल के आधार पर विशिष्ट वर्गीकरण को स्वीकार किया गया है। इतिहासकाल के विभाजन को आधार बनाकर ऐतिहासिक नाटकों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

१ प्राचीन युग से सम्बद्ध ऐतिहासिक नाटक (ई० स० पूर्व से ७१० ई०)
२ मध्ययुग से सम्बद्ध ऐतिहासिक नाटक (ई० स० ७११ से १७१३ ई०)
३ आधुनिक युग से सम्बद्ध ऐतिहासिक नाटक (ई० स० १७१४ से १८५८)

१ प्राचीन युग से सम्बद्ध ऐतिहासिक नाटक और संघर्ष तत्त्व

प्राचीन युग से सम्बद्ध ऐतिहासिक नाटकों में स्वीकृत इतिहासकाल का आरम्भ

---
१ डॉ० प्र०रा० भुपटकर—हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक : तुलनात्मक विवेचन—पृ० १३ (प्र० सं० सन् १९७०)

बुद्ध-युग से हुआ है और अन्त आद्य शंकराचार्य के युग से। इस इतिहासकाल से सम्बन्धित विभिन्न व्यक्तियों, घटनाओं एवं संघर्षों को लेकर अनेक नाटकों का प्रणयन किया गया है।

वस्तुतः ऐतिहासिक नाटक में उसी इतिहास युग को उठाया जाता है, जिसमें व्यक्ति का पौरुष घटनाओं को अभीष्ट मोड़ देने में समर्थ होता है। इस दृष्टि से हिन्दी नाटककार प्राचीन युग से सम्बद्ध प्रभावशाली व्यक्तियों के विशिष्ट व्यक्तित्वों की ओर आकृष्ट हुए हैं। इन नाटककारों का ध्यान विशेषकर सिद्धार्थ बुद्ध नन्द सुन्दरी, आम्रपाली (आम्बपाली) अजातशत्रु, वत्सराज उदयन, पञ्चनदनरेश पुरू, सिकन्दर, सम्राट चन्द्रगुप्त, आचार्य चाणक्य (विष्णु गुप्त), सम्राट अशोक सेनापति पुष्यमित्र सम्राट समुद्रगुप्त, गन्धर्वसेन (गर्दभिल्ल), कालकाचार्य, विक्रमादित्य, कालिदास, यशोधर्मन (विष्णुवर्धन), हर्ष और आद्य शंकराचार्य के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं एवं विविध प्रकार के संघर्षों पर केन्द्रित हुआ है।

हिन्दी नाटककारों ने विविध प्रकार के उद्देश्यों को सम्मुख रखकर प्राचीन युग से सम्बद्ध विषयों, व्यक्तियों, घटनाओं तथा संघर्षों को आधारशिला बनाकर नाटकों का सर्जन किया है। इस सर्जन कार्य में नाटककारों की वह दृष्टि कार्य कर रही है, जो समसामयिक जीवन को हितकारी सन्देश एवं प्रेरणा देना चाहती है।

(अ) हिन्दी नाटककारों के विविध प्रकार के उद्देश्यों में यह एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य रहा है कि महापुरुषों के मानवतावादी एवं लोकमंगलकारी दृष्टिकोणों तथा कार्यों से परिचित कराना। इस दृष्टि से सिद्धार्थ बुद्ध और सम्राट अशोक से सम्बन्धित नाटक उल्लेखनीय हैं।

(आ) अनेक नाटककारों ने स्वाधीनता तथा भारत की अखण्डता की रक्षा के उद्देश्य को सम्मुख रखकर ऐतिहासिक नाटक रचे हैं। इस सन्दर्भ में पुरू, आचार्य चाणक्य, सम्राट चन्द्रगुप्त और सम्राट समुद्रगुप्त से सम्बन्धित नाटक दर्शनीय हैं।

(इ) कुछ नाटक समाज-सुधार तथा धर्म-सुधार के उद्देश्य से लिखकर समाज सुधार तथा धर्म-सुधार की प्रेरणा दी गयी है। इस सन्दर्भ में 'सिंहलद्वीप', "धर्म-विजय' और 'कलकी' नाटक विचारणीय हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्राचीन युग से सम्बद्ध ऐतिहासिक नाटकों का निर्माण विशिष्ट उद्देश्यों से किया गया है।

(१) 'प्रसादोत्तर युग में 'सिद्धार्थ बुद्ध' के जीवन पर आधारित जीवनी स्वरूप नाटकों का निर्माण हुआ है। उदयशंकर भट्ट कृत 'मुक्तिदूत' स्वातन्त्र्यपूर्व काल में लिखा गया है। अन्य नाटक स्वातन्त्र्यप्राप्ति के अनन्तर लिखे गये हैं। 'सिद्धार्थ का गृहत्याग' नाटक छोड़कर अन्य सभी नाटक घटना प्रधान हैं। इन नाटकों में बुद्ध के लोकमंगल कार्य का सोद्देश्य प्रदर्शन हुआ है। **इनमें श्रद्धा के स्**

'लहरों के राजहंस' में नन्द तो प्रतीकात्मक पात्र है ही, साथ ही साथ सुन्दरी भी प्रतीकात्मक पात्र है। मोहन राकेश ने नन्द और सुन्दरी की प्रतीकात्मकता प्रदान कर उनके द्वारा यह सूचित किया है कि किसी भी युग के किसी भी स्थान के स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध में भोग और त्याग आसक्ति और विरक्ति राग और विराग प्रवृत्ति और निवृत्ति की शाश्वत समस्या का बना रहना और किसी एक के चुनाव के सम्बन्ध में आन्तरिक संघर्ष का छिड़ना जीवन को असन्तुलित एवं अनिश्चित बना रहना सामान्य तथा मनोवैज्ञानिक सत्य है। इस सामान्य तथा मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन करने के हेतु ही प्रस्तुत नाटक में आदि से अन्त तक नन्द और सुन्दरी के पारस्परिक सम्बन्ध में उद्भूत आसक्ति और विरक्ति की समस्या और उसमें से किसी एक के चुनाव को निर्णय करने में छिड़े हुए आन्तरिक संघर्ष को प्रधानता दी गयी है।

नन्द की पत्नी सुन्दरी अप्रतिम सुन्दर और स्वभाव से विलक्षण चतुर अहं-कार महत्त्वाकांक्षा, मान, काम, गर्व कला और अधिकार जताने वाली है। अपने अपूर्व सौन्दर्य पर गर्व करती हुई सुन्दरी स्त्री यशोधरा को हीन दृष्टि से देखती है। वह विश्वास करती है कि स्त्री यशोधरा का साधारण सौन्दर्य राजकुमार सिद्धार्थ को अपने साथ में नहीं बाँध सका। परिणामस्वरूप राजकुमार सिद्धार्थ बुद्ध बन गये। इस सम्बन्ध में सुन्दरी की दृढ़ धारणा है— "नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है, तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।"[1] इस धारणा को लेकर सुन्दरी नन्द को अपने रूप-पाश में उलझाने का भरसक प्रयास करती है, भोग-विलास में डुबाती रहती है। वह जीवन का अर्थ भोग करना चाहती है। वह जीवन में कामनापूर्ति को अतिशय महत्त्व देती है। अतः वह नन्द को अपनी कामना-पूर्ति का एक साधन मानती है। उसका दृढ़ विश्वास है कि अपने रूप-पाश से नन्द का मुक्त होना और बुद्ध का अनुचर बन जाना असम्भव है। इस विश्वास के साथ-साथ सुन्दरी के मन के कोने में यह भय भी छिपा हुआ है कि यदि कुछ ऐसी बात हो गई कि जिसके कारण नन्द परिव्रज्या ग्रहण कर बुद्ध का अनुचर बन गया तो वह सुन्दरी की घोर पराजय होगी। स्वगर्विता सुन्दरी किसी भी अवस्था में ऐसी हार नहीं चाहती। अतः वह नन्द की भाव-भावनाओं को, आशा-आकांक्षाओं को रत्तीभर भी विचार न करते हुए उसे अपने वश में प्रभुत्व से रखने का प्रयास करती है। इस कार्य में सुन्दरी बड़ी चतुराई का प्रयोग करती है। वह यक्षिणी के समान अपने (रूप के) जादू से नन्द को चलाती है। अतः नन्द की दशा बड़ी विचित्र है।

विवश नन्द बड़ा भोला-भाला, मारा-मारा है। वह किसी से न द्वेष करता

---

१ मोहन राकेश — लहरों के राजहंस—पृ० ६१ (सन १९६८ का संस्करण)

है, न ईर्ष्या । वह देवी यशोधरा और गौतमबुद्ध का आदर करता है । उसे देवी यशोधरा और गौतमबुद्ध के प्रति सुदरी की ईर्ष्या अप्रिय लगती है । लेकिन सुदरी को समझाने की क्षमता न द मे नही है । यह न द की बडी दुबलता है । यह दुबलता ही न द के आतरिक सघष का कारण बन जाती है । सु दरी की किसी बात का विरोध करने का साहस न द मे नही है । वह सु दरी के मन म छिपे हुए भय को जानता है । वह यह भी जानता है कि उसी भय के कारण सुदरी के जीवन मे भोग विलास और कामना पूर्ति का अतिरेक है । इस अतिरेक स न द का मन उचटता है । इस उकताहट के कारण न द का मन भीतर ही भीतर विद्रोह करता है । लेकिन न द क मन का विद्रोह कभी प्रकट नही हो पाता, भीतर ही भीतर दबा रहता है । इसस न द म आन्तरिक सघष छिडता है । उसका भोगप्रिय मन सुदरी के साथ भोग विलास म रमना चाहता है, तो त्यागप्रिय मन सुदरी के रूपाकषण से मुक्त होकर बुद्ध के विराग को ग्रहण करना चाहता है । इस दुविधा के कारण न द के सामन चुनाव की समस्या खडी रहती है । लकिन वह किसी एक के चुनाव का निणय नही कर पाता । अत नाटक क आरम्भ स लकर अ त तक न द का हृदयग्राही अ तद्व द्व है । अ तद्व द्व ग्रस्त न द का मन स्थिति लहरा क राजहस जसी ह ।

सुदरी दख रही है कि कपिलवस्तु के निवासी बुद्ध के उपदशा स प्रभावित हो रहे हैं । कल सवेर दवी यशोधरा भिक्षुणी बनने वाली है । यह स्थिति मानो सुदरा के लिये चुनौती है । इस चुनौती का सामना करन के निश्चय से सुदरी कामोत्सव का आयोजन करती है । कामात्सव के निमित्त सु दरी कपिलवस्तु निवासियो का भोग विलास म निमज्जित कर दना चाहती है । वह सोचती है यदि इसमें उस सफलता मिल गयी तो कोई (विशेषकर न द) भी बुद्ध के विराग की ओर आकर्षित नही होगा ।

लेकिन न द को कामोत्सव का आयोजन अखर रहा है । उसक मन म अनक प्रश्न उठ रह हैं । वर्षो क बाद आज ही कामोत्सव का आयोजन क्यों किया गया है ? क्या कल सवेरे भिक्षुणी बनने वाली देवी यशाधरा को चिढ़ान के लिए ? क्या बुद्ध क उपदेशा का उपहास करन क लिए ? लकिन इन प्रश्नो के उठने पर भी न द सु दरी को पराक्त नही कर सकता, क्योकि उतना साहस उसम नही है । लकिन उसक सामने यह कठिनाई है कि मन म इन प्रश्नों का लेकर वह कामोत्सव क प्रबध मे सु दरी की सहायता भी नही कर सकता । अत न द कामोत्सव क प्रबन्ध म सहायता करने के बदले आखेट क लिए वन का आर चला जाता है । इस पलायन स न द और उद्विग्न हा जाता है । वह अनिणयात्मक स्थिति मे अपन ही स जूझता रहता है । इस सघष क कारण अस्थिर न द मृग का शिकार भी नही कर पाता ।

कामोत्सव मे किसी क भी सम्मिलित न हान स सु दरी अत्य त उद्वग्न म

कामोत्सव स्थगित कर देती है और नन्द के सामने ही अत्यधिक मदिरापान कर बेसुध हो जाती है। नन्द अपनी दुर्बलता के कारण सुन्दरी को मदिरा पीने से रोक नहीं सकता। अतः वह अपने पर ही खीझकर रातभर जागता रहता है। इसी अनिश्चयात्मक स्थिति से मुक्त होने का कोई रास्ता दिखाई नहीं देता। मानो श्यामांग के ज्वर प्रलाप के रूप में नन्द का ही द्वन्द्वग्रस्त मन रात भर कह रहा है—'कोई स्वर नहीं है कोई किरण नहीं है सब कुछ सब कुछ अँधकार में डूब गया है। कोई उपाय नहीं है—कोई मार्ग नहीं है इन लहरों पर से इन लहरों पर से यह छाया हटा ना मुझ से मुझ से यह छाया नहीं हटाई जाती।'[1] यह छाया नन्द के मन में बसा बुद्ध (विराग) का आकर्षण है जो ऐसी अवस्था में नन्द को अपनी ओर बहुत अधिक आकृष्ट करता है। लेकिन नन्द की दुविधा यह है कि वह अपनी विलासिनी को सहज नहीं त्याग पा सकता। अतः वह भटकता और खिंचता रहता है—सुन्दरी (विलासिनी) की ओर भी और बुद्ध (विराग) की ओर भी।

अपना विश्वास बनाने के लिए सुन्दरी नन्द के हाथ में दर्पण थाम देती है। भिक्षु और भिक्षुणी का समवेत स्वर सुनते ही नन्द के हाथ से दर्पण छूट जाता है। वस्तुतः यह नन्द के द्वन्द्वग्रस्त मन का चित्र जाता है। वह समवेत स्वर कम हो पास आकर खो जाता है, हाथ से छूटकर दर्पण जमीन पर गिर जाता है उसके टूटकर टुकड़े हो जाते हैं। इससे ध्वनित होता है कि उस क्षण तक नन्द का अन्तर्द्वन्द्व कितना तीव्र हुआ होगा। ठीक उसी समय पर अलका से पता होता है कि स्वयं गौतमबुद्ध नन्द के द्वार पर आये थे पर बिना भिक्षा पाये ही लौट गये। नन्द अत्यधिक अस्थिर हो जाता है। वह सुन्दरी की अनुमति लेकर क्षमा याचना के लिए गौतमबुद्ध के पास जाता है।

गौतमबुद्ध के पास पहुँचने पर नन्द को प्रव्रज्या ग्रहण करनी पड़ती है। उसके केश काट जाते हैं। उस समय नन्द प्रत्यक्ष रूप में कुछ विरोध नहीं कर सका। लेकिन उसका मन विद्रोह हो जाता है। वह वहाँ से बन की ओर जाता है। व्याघ्र से लड़ता है। उसका शरीर क्षत विक्षत हो जाता है[2]। वस्तुतः यह लड़ाई नन्द के त्यागप्रिय और भोगप्रिय मनों का लड़ाई है।

नन्द भिक्षु आनन्द के साथ अपने घर लौटता है। वह भिक्षु आनन्द से अनेक प्रश्न पूछता है। लेकिन भिक्षु आनन्द नन्द के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देते हैं— जो व्यक्ति तुम्हारे किसी भी प्रश्न का उत्तर दे सकता है वह मैं नहीं हूँ। उत्तर किसी भी प्रश्न का तुम्हें केवल एक ही व्यक्ति से मिल सकता है और उस व्यक्ति का नाम है नन्द। भिक्षु आनन्द उसे समझाते हैं कि केवल [illegible]

१ मोहन राकेश—लहरों के राजहंस—पृ० ७८ (सन् १९६८ का संस्करण)

२ वही, पृ० १३६

उसके अन्तर की व्याकुलता शान्त नहीं हो सकती। नन्द को तभी शान्ति मिल सकती है जब वह आसक्ति पर विजय पा सकता है। इस बात को सुनकर नन्द क्रुद्ध हो जाता है और भिक्षु आनन्द से कहता है—'मैं तथागत के सामने कह चुका हूँ और अब फिर से कह देता हूँ कि वह दिशा मेरी नहीं है कदापि नहीं है।'[1]

सचमुच, अब भी नन्द में भोगासक्ति प्रबल है। यह सोयी हुई सुन्दरी की सुन्दरता को निहारते हुए कहता है—'मेरे हृदय में तुम्हारे लिये अब भी वही अनुराग है आखों में तुम्हारे रूप की अब भी वही छाया है।'[2] लेकिन नन्द के इस आकर्षण को जबरदस्त धक्का लग जाता है जब सुन्दरी नन्द की मुण्डित आकृति को देखती है और हताश हो जाती है। सुन्दरी अपनी पराजय को देखकर अत्यन्त व्याकुल हो जाती है। वह अलका से कहती है—'वे नहीं आये अलका। जो लौटकर आया है, वह व्यक्ति कोई दूसरा ही है।'[3]

सुन्दरी के इस वाक्य में नन्द का विश्वास चूर चूर हो जाता है। वह अपने से पूछता है—'तो क्या सचमुच मैं कोई दूसरा ही हूँ? भिक्षु ने यही कहा था तुम भी अब यही कह रही हो। परन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि मैं कोई दूसरा कैसे हूँ? मात्र इसलिए कि किसी ने हठ से मेरे केश काट दिए हैं?' यहाँ नन्द की समझ में नहीं आ रहा है कि उसके परिव्रज्या ग्रहण करने से सुन्दरी के सिद्धान्तों पर, सुन्दरी की कामनाओं पर कितना आघात हुआ है। नन्द यही समझता है कि सुन्दरी मेरे केशों को चाहती है जो मेरे सौन्दर्य का एक अंग है। अब केशों के न होने से सुन्दरी मुझे कोई दूसरा व्यक्ति समझ रही है। अतः नन्द केश काटने वालों पर क्षुब्ध होता है। वह अनुभव करता है—'तब नहीं लगा था पर अब लगता है कि केश काटकर उन्होंने मुझे बहुत अकेला कर दिया है। घर से और अपने आपसे भी अकेला। जिस सामर्थ्य और विश्वास के बल पर जी रहा था उसी के सामने मुझे असमर्थ और असहाय बनाकर फेंक दिया गया है।'[4] परन्तु मैं इस असहायता की स्थिति में नहीं रह सकता। तब प्रश्न उन्होंने पूछे थे अब मुझे जाकर उनसे कई कई प्रश्न पूछने होंगे। जीने की इच्छा को कितने कितने प्रश्नों ने एक साथ घेर लिया है। व्याघ्र से लड़कर भी मन को शान्ति नहीं मिली लगता है अभी और लड़ना है बहुत लड़ना है ऐसे किसी से जिसके पास लड़ने के लिए भुजाएं नहीं हैं।'[5] इस प्रकार नन्द का आन्तरिक संघर्ष चरम सीमा पर पहुँच जाता है। वह मानता है

१ मोहन राकेश—लहरों के राजहंस—पृ० १३५ (सन १९६८ का संस्करण)
२ वही, पृ० १४०।
३ वही, पृ० १४८।
४ वही, पृ० १४८।
५ वही, पृ० १४९।

श्यामाग कभी विरक्ति की ओर आकृष्ट होता है, तो कभी आसक्ति की ओर । निणय न कर पाने के कारण श्यामाग का आ तरिक सघष तीव्र बन जाता है । फलत श्यामाग अधविक्षिप्त बन जाता है । वास्तव मे श्यामाग का आ तरिक सघष न द के आतरिक सघष का ही प्रतीक है ।

(३) वैशाली की विख्यात नतकी अम्बपाली (आम्रपाली) के जीवन की अनक घटनाओं को लेकर जो नाटक लिखे गए हैं उनम बाह्य सघष का स्थान मिला है ।

रामवक्ष बनीपुरी कृत 'अम्बपाली' (१९४७) नाटक मे अनेक घटनाओ को स्थान दिया गया है । इस घटनाप्रधान नाटक के अक तीन म बाह्य सघष विद्यमान है। अजात शत्रु की महत्त्वाकाक्षा के कारण मगघ और वैशाली के बीच सघष छिड़ता है ।

अक तीन का आरम्भ मगध सम्राट अजातशत्रु और उसके प्रधान मत्री वत्सकार के षड्यत्र से होता है । अजातशत्रु वैशाली को जीतने तथा अम्बपाली को पाने की काक्षा से वैशाली पर आक्रमण करन का षटयत्र रचता है । लेकिन वशाली पर विजय तब तक नही मिल सकती जब तक वैशाली के सगठित नागरिको मे फूट का बीज नहीं पनपता है । अत वत्सकार वैशाली का मित्र बनकर वशाली मे आश्रय पाता है और ऐसा षड्यत्र रचता है जिमस वैशाली के नागरिक आपस मे लडना आरम्भ कर दते हैं । इस अवसर स लाभ उठाने के लिए अजातशत्रु वैशाली पर आक्रमण करता है । दोनो राज्यो के सनिको म युद्ध होता है । पर अजातशत्रु की ही विजय होती है । वह अम्बपाली को मगघ ले जाने की चेष्टा करता है । अम्बपाली उस सम्राट बिम्बसार का चित्र दिखाती है । अजातशत्रु वैशाली छोड़कर लौट जाता है ।

प्रस्तुत नाटक का बाह्य सघष अत्यत स्थूल सघष है । अजातशत्रु की राज्य विस्तार विषयक दुष्ट आकाक्षा वैशाली पर सघष लादती है । वैशाली के नागरिक रक्षणशील पक्ष के रूप म स्वाधीनता रक्षा के लिए आक्रमणशील पक्ष का प्रतिकार करते हैं । प्रस्तुत सघष दो देशो के सघष व रूप म समुदाय समुदाय के सघष का रूप घारण करता है । इस सघष मे आक्रमणशील पक्ष की जीत हो जाती है । प्रस्तुत सघष साधारण कोटिका सघष है । ठीक इसी प्रकार का सघष कृष्णचन्द्र शर्मा भिक्खु लिखित रूपलक्ष्मी अम्बपाली (१९५८) नाटक म है । इस नाटक म भी अजातशत्रु की ही जीत होती है । प्रस्तुत सघष अति साधारण कोटि का सघष है ।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द के जय जननय (१९६७) म आम्रपाली और सम्राट बिम्बसार अपन प्रम सम्ब ध क बल पर सम्भाव्य सघष को टालकर वशाली और मगध में चिरस्थायी मित्रता की स्थापना का प्रयास करत हैं । अत इस नाटक

में सूक्ष्म वैचारिक संघर्ष को महत्व का स्थान मिला है।

प्रस्तुत नाटक में जनतंत्र की महत्ता का प्रतिपादन हुआ है। इस उद्देश्य से ही इस नाटक का निर्माण हुआ है। नर्तकी आम्रपाली की वैशाली के जनतांत्रिक गणराज्य के प्रति अटूट श्रद्धा है। वह सखी वासिता से कहती है—"मैं अपने गानों और नृत्यों से प्रतिदिन अपने सभाभवन या सध्या की सांस्कृतिक सभाओं में जो गीत गात लिच्छवि वीरों को प्रमुदित और प्रोत्साहित करती हूँ वह केवल इसलिए कि वे अपने प्रिय वैशाली गणतंत्र की अपने मूल्यवान जनतंत्र की रक्षा और उन्नति के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करें तो उत्साह आह्लाद और स्वाभिमान अपने अन्तर अक्षय, अजय और अमर बनाए रहें।"[1] इससे सूचित होता है कि आम्रपाली ने अपने जनतंत्र की रक्षा के लिए अपने वैयक्तिक जीवन की बलि चढ़ायी है।

परन्तु एकान्त क्षणों में आम्रपाली अपने को त्रस्त और अभिशप्त अनुभव करती है। उसे लगता है जिस जनतंत्र ने मुझे गृहस्थ जीवन के स्वाभाविक सुख से वंचित कर दिया है उस जनतंत्र की रक्षा मैं क्यों करूं? इस प्रश्न के उठने पर आम्रपाली में आंतरिक संघर्ष चलता है। वह वासिता से कहती है—"यह अभिशाप नहीं तो क्या है कि मेरे केवल सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी समझी जाने के कारण मेरे गणराज्य ने अपनी परंपरा के अनुसार, मुझे व्यक्तिगत विवाहित गृहस्थ-जीवन के नैसर्गिक स्वाभाविक सुख से सदा के लिए वंचित करके केवल सार्वजनिक संगीत कला प्रदान के कर्तव्यपाश में आबद्ध कर दिया।"[2] ऐसी अस्थिर मन स्थिति में प्रव्रज्या ग्रहण करने की उसे इच्छा होती है। इससे आम्रपाली का आंतरिक संघर्ष तीव्र रूप ग्रहण करता है। एक ओर प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा है तो दूसरी ओर जनतंत्र की रक्षा और उन्नति के लिए कर्तव्य पालन की इच्छा। क्षणभर निर्णय नहीं कर पाती कि किस इच्छा को कार्यान्वित किया जाय? लेकिन जल्द ही वह अनुभव करती है कि वैशाली गणतंत्र साम्राज्यवादी मगध के कारण असुरक्षित है वह प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा को त्याग देती है—और निर्णय करती है—जब तक मगध के सम्राट बिम्बसार के द्वारा वैशाली गणराज्य पर आक्रमण की सम्भावना है तब तक मैं प्रव्रज्या ग्रहण नहीं कर सकती। अपने गणतंत्र के वीर तरुणों को नीरस निराश निरुत्साह, निर्बल और निष्प्राण नहीं बना सकती। जब सम्राट बिम्बसार के आक्रमण की आशंका से मुक्ति पा लूंगी मैं अपने जनगण की अनुमति लेकर, अवश्य ही बौद्धभिक्षुणी बन जाऊंगी। यह मेरा दृढ़ निश्चय है। मैं सर्वथा मुक्त होने का यत्न तभी कर सकती हूँ जब किसी प्रकार सम्राट बिम्बसार की साम्राज्य लिप्सा शान्त

---

१ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द—जय जनतंत्र—पृ० ८ (प्र० सं० सन् १९६७ ई०)

२ वही, पृ० ५–६

हो।"[1] अपने इस दृढ निश्चय के अनुसार आम्रपाली उस समय बिम्बसार से प्रेम सम्बन्ध जोडती है जब वे गुप्त मार्ग से आम्रपाली के भवन मे आते हैं और प्रेम की याचना करते हैं।

आम्रपाली अपने प्रेम के बल पर बिम्बसार को आक्रमण की भावना से विरत करने मे सफलता पाती है। सम्राट बिम्बसार आम्रपाली को आश्वासन देते हैं कि वे कभी वैशाली पर आक्रमण नही करेंगे वैशाली और मगध म मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करेंगे। वचनबद्ध बिम्बसार धूर्त वर्षकार और उद्दण्ड अजातशत्रु को वैशाली पर आक्रमण करने से रोकते हैं।

प्रस्तुत नाटक की विशेषता यह है कि इसमे स्थूल सघर्ष के बदले सूक्ष्म वैचारिक सघर्ष को महत्त्व का स्थान दिया गया है। आम्रपाली प्रेम तथा सदविचारो के बल पर सम्राट बिम्बसार को आक्रमण की भावना से विरत करने मे सफलता पाती है।

आम्रपाली का आन्तरिक सघर्ष भी सदविचारो का सूक्ष्म सघर्ष है। एक ओर वैयक्तिक सुख का आकर्षण है तो दूसरी ओर जनतन्त्र की रक्षा की तीव्र इच्छा है। परिस्थिति विशेष म दोनो विचार योग्य है। लेकिन जनतन्त्र रक्षा को प्राधान्य देना अधिक उचित है। इस दृष्टि से आम्रपाली का आन्तरिक सघर्ष उच्च श्रेणी का है। क्योकि वह वैयक्तिक सुख की अपेक्षा जनतन्त्र के हित को प्राधान्य देने का निर्णय करती है और आन्तरिक सघर्ष से मुक्त हो जाती है।

(४) उमाशकर बहादुर के 'वर्षकार' (१९५०) नाटक म युवराज अजातशत्रु स्वार्थ साधन की महत्त्वाकाक्षा के अनुसार लिच्छवियो पर किसी भी तरह विजय पाने के लिए प्रयत्नशील हो जाता है। नगरवधू आम्रपाली का आकर्षण अजातशत्रु को वज्जिसघ के सहार और वैशाली विजय के लिए और उत्तेजित करता है। अजातशत्रु मानता है— सघर्ष ही पुरुष जीवन का उद्देश्य है।[2] इस मान्यता को लेकर अजातशत्रु महामत्री वर्षकार की सहायता से ऐसा षडयन्त्र रचता है जिससे वैशाली पर विजय पाने म उसे सफलता मिल ही जाती है।

रत्नाकर प्रसाद के 'कुणाल' (१९५१) नाटक म भी उक्त सघर्ष का ही प्रदर्शन हुआ है। इसके साथ साथ कोसल नरेश प्रसनजित और विरुद्धक म विरुद्धक और कपिलवस्तु के शाक्यो म भी सघर्ष दिखाया गया है। स्वय अजातशत्रु वैशाली पर आक्रमण करता है और विरुद्धक को भी कपिलवस्तु पर आक्रमण करने को उकसाता है।

रांगेय राघव के 'विरुद्धक' (१९६६) नाटक म भी आदि से अन्त तक बाह्य

१ जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द—जय जनतन्त्र—पृ० ८ (प्र० स० सन् १९६७)

२ उमाशकर बहादुर—वर्षकार—पृ० ३५ (सन् १९५० का सस्करण)

संघर्ष है। इसमें घटनाओं तथा पात्रों की भरमार के साथ साथ बाह्य संघर्ष भी है।

कोसलनरेश प्रसेनजित की आज्ञा के अनुसार विरूढक विद्रोही अजातशत्रु को हराता है और उसे पकड़कर लाता है। यहाँ अजातशत्रु की सौतेली माँ कोसलकन्या और कोसलदेवी के साथ प्रसेनजित अजातशत्रु को क्षमा कर देते हैं। विरूढक को यह अच्छा नहीं लगता। फिर भी वह इस बात को स्वीकार करता है और अजातशत्रु से स्नेह सम्बन्ध जोड़ता है। दोनों मिलकर स्वार्थपूर्ति के हेतु शाक्यों के गणतन्त्रों को नष्ट करना चाहते हैं। कोसल का सेनापति दीर्घकारायण भी शाक्यों के गणतन्त्र को नष्ट कर ब्राह्मण धर्म की स्थापना करना चाहता है। अतः वह विरूढक को शाक्यों से लड़ने के लिए उत्तेजित करता है। प्रसेनजित शाक्यों से संघर्ष नहीं चाहता है। अतः दीर्घकारायण वहीं श्रावस्ती में राजा प्रसेनजित की हत्या कराता है और विरूढक के साथ शाक्यों के गणतन्त्र पर भीषण आक्रमण करता है।

उपर्युक्त दोनों नाटकों में अत्यन्त स्थूल तथा अत्यन्त साधारण श्रेणी का बाह्य संघर्ष है। इन नाटकों में अजातशत्रु, वर्षकार और विरूढक की राज्य विस्तार सम्बन्धी भयंकर आकांक्षा ने संघर्ष छेड़ा है। इस संघर्ष में वैशाली तथा लिच्छवी के सुप्त एवं रणशील पक्ष को पराभूत होना पड़ता है।

(५) लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'वैशाली में वसन्त' (१९ ५) में अम्बपाली को आधार बनाकर के भूतपूर्व दण्ड या सेनापति वीरभद्र के पुत्र रोहित और उसकी पत्नी रम्भा से सम्बन्धित घटनाओं को नाटक का स्थान दिया गया है और दिखाया गया है कि जनतन्त्र में व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन की उपेक्षा नहीं होना चाहिए। प्रस्तुत नाटक में परस्पर विरुद्ध धारणाओं के कारण वैचारिक संघर्ष को महत्त्व का स्थान मिला है।

रोहित की पत्नी रम्भा ब्राह्मण कन्या है। इस बात से रोहित और वैशाली के वज्जिसंघ में संघर्ष छिड़ने की सम्भावना दिखाई देती है। इस पर प्रकाश डालते हुए गांधार-पुत्री कहती है— 'रोहित ब्राह्मणकन्या को पत्नी बना लाया है यह बात संघ के सदस्यों में आठ कुल के जन जन में विष सा व्याप्त हो रहा है।'[1] वज्जिसंघ के सदस्य सोच रहे हैं कि यहाँ के विधान के अनुसार रोहित को वज्जिसंघ की किसी क्षत्रिय कन्या से विवाह करना ही होगा नहीं तो वह अविवाहित ही माना जायगा। इससे संघर्ष न छिड़ जाय इसलिए वैशाली का सेनापति सोम अपनी पुत्री उदन्ती को रोहित से विवाह कराना चाहता है। पर रोहित अस्वीकार कर देता है। तब संघर्ष छिड़ने के लिए और अधिक अनुकूल वातावरण बन जाता है।

एक दिन समाचार मिलता है कि रोहित और रम्भा ने बड़ी चतुराई से आक्रामक अजातशत्रु को पराजित किया है। इस घटना से भी संघर्ष छिड़ने की सम्भावना दिखाई देती है। क्योंकि इन दोनों ने इस कार्य के लिए संघ की अनुमति

---

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र—वैशाली में वसन्त—पृ० ३४ (द्वि० सं० तिथि अनुल्लिखित)

नही ली थी । अत उनके कृत्य से सघ के विधान का भग हुआ । जो सघ के विधान का भग करता है वह अपराधी होता है । अपराधी का दण्ड मिलना स्वाभाविक है । इस बात पर विचार विमश करन के लिए बुलायी गयी बठक मे वाद विवाद आरम्भ होना है और दो दलो मे वचारिक सघप छिड जाता है । कुछ सदस्य रोहित के कृत्य का समयन करते हैं, क्योकि उससे देश की रक्षा हुई है । लेकिन कुछ सदस्य यक्ति के अधिकार की अपेक्षा सघ के अधिकार को अधिक महत्त्व देते हैं और कहते हैं कि रोहित को सजा मिलनी ही चाहिए । अ त मे सभी सदस्य इस निणय पर पहुँच जाते हैं कि रोहित को दण्ड देन के बदले उसका अभिन दन किया जाय, क्योकि उसने और उसकी पत्नी ने प्राणो पर खेलकर देश की रक्षा की है । प्रस्तुत निणय तक व्यक्ति के अधिकार और सघ के अधिकार को लेकर वचारिक सघप चलता है । इस सघप को टालने के लिए रोहित के अभिन दन का निणय किया जाता है ।

(६) कौशाम्बी नरेश, वत्सराज उदयन के जीवन की घटनाओ को लेकर लिखे गये नाटका म से लक्ष्मीनारायण मिश्र क 'वत्सराज' (१९५४) म राजा उदयन का आ तरिक सघप है । राजा उदयन बुद्ध के तत्त्वज्ञान का विरोधी है । ऐसी स्थिति म राजा उदयन को मालूम होता है कि उसका इकलौता पुत्र बौद्ध धम म दीक्षित हुआ है । इसस राजा उदयन मे आ तरिक सघप छिडता है । उसे निणय करना है कि क्या कुमार को त्याग दिया जाय या उसे बौद्ध धम की दीक्षा से मुक्त किया जाय? राजा उदयन 'कमयोग के सिद्धा तानुसार मानता है कि गहस्थाश्रम के पश्चात् स यास ग्रहण किया जाना उचित है न कि कौमारावस्था मे । अत वह पुत्र को स यास स मुक्त कर स्वय स यास ग्रहण करन का निणय करता है । राजा उदयन का आ तरिक सघप दो विचारो का सघप है । एक विचार पुत्र के हित से सम्बन्धित है तो दूसरा विचार बुद्ध का आदर करन स सम्बन्धित है । राजा उदयन अत्य त समझदारी स पुत्र को स यास स मुक्त करने का निणय करता है । प्रस्तुत सघप श्रेष्ठ श्रेणी का सघप है ।

गोवि द वल्लभ प त के 'अत पुर का छिद्र (१९५४) नाटक म वत्सराज उदयन की दो पत्नियो मे सघप दिखाया गया है । मागधिनी पद्मावती के प्रति ईर्ष्या, द्वेष रखती है । इसके दो कारण हैं—(१) राजा उदयन पद्मावती से अधिक प्रेम करता है । (२) पद्मावती उस बुद्ध मे श्रद्धा रखती है जिसन एक बार मागधिनी से विवाह करने को अस्वीकार किया था । अत मागधिनी के मन म बुद्ध के प्रति प्रतिशोध का भाव है । इन दो कारणो से मागधिनी पद्मावती को कष्ट देती है । वह राजा उदयन का पद्मावती तथा तथागत क विरुद्ध भडकान का प्रयास करती है । जिस समय राजा उदयन उसकी बातो में आ जाता है उस समय मागधिनी की अपने ही षड्यन्त्र से मृत्यु हो जाती है । राजा उदयन बुद्ध की शरण लता है । इस नाटक

में संघर्ष ने प्रखर रूप धारण नहीं किया है।

रामकुमार वर्मा के 'कला और कृपाण' (१९५८) नाटक में वत्सराज उदयन का बुद्ध से विरोध दिखाया गया है। यह विरोध धीरे धीरे संघर्ष का रूप धारण करता है। उदयन और बुद्ध के सिद्धांतों में महदन्तर है।

इस अन्तर के कारण उदयन को तथागत का धर्म अच्छा नहीं लगता। इसी कारण से ही उदयन को अपनी पत्नी समावती की बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा भी अच्छी नहीं लगती। ऐसी अवस्था में कौशाम्बी में भगवान बुद्ध का आगमन होता है। इस आगमन से राजा उदयन उद्विग्न होकर कहता है— 'और इसी समय जब मैं वनकवता पर आक्रमण करने जा रहा हूँ। (सिर पकड़कर) आह तथागत! अहिंसा का उपदेश इसी समय करना था जब मैं नगर निवासियों के समक्ष दिग्विजय का आदर्श रखने जा रहा हूँ।'[1] अब उदयन को तथागत का राजधानी में निवास अच्छा नहीं लगता। उसके मन में भय है कि युद्ध वीरों को भिक्षु बना देंगे। वह तथागत का स्वागत करना भी अच्छा नहीं मानता। 'माता वृद्ध निरपराध पत्नी को छोड़कर जो वनयोग में भागे, वे किस अहिंसा का उपदेश देंगे। अपने अबोध शिशु पर भी जिन्हें दया नहीं आयी वे किस शांति का उपदेश करेंगे? कायर शाक्य कुमार! तुम क्षत्रिय होकर युद्ध में आमन्त्रित नहीं हो सके।'[2] वह उद्विग्नता में ही कहता है कि 'राजप्रासाद के पथ में तथागत धर्मोपदेश कर रहे हैं। सब प्रभावित हो रहे हैं। मैं देख रहा हूँ। तथागत ही मेरे आक्रमण के मार्ग में हैं।'[3] 'ज्ञात होता है आज कौशाम्बी में सम्राट उदयन की सत्ता नहीं रह गई। तथागत ही यहाँ के सम्राट हैं।'[4] क्रोध के आवेश में राजा उदयन धनुष-बाण हाथ में लेता है। वातायन से तथागत को लक्ष्य कर निशाना लगाता है और कहता है— 'मेरे राज्य के लिए जो अभिशाप है उसका विनाश करना ही होगा। जिस समावती को मैं प्राणों की भाँति प्रिय समझता हूँ वही समावती तथागत को प्राणों से अधिक मानती है। इस तथागत को आज मैं बाणों का लक्ष्य बनाऊँगा। बाण तो तथागत के हृदय में लगेगा, किन्तु पीड़ा समावती को होगी।'[5] जैसे ही बाण धनुष से छूटता है महाश्वेता वासवदत्ता की प्रमुख सहचरी मंजुघोषा के कंठ में घुस जाता है और तथागत सुरक्षित रहते हैं। इससे राजा उदयन अशान्त हो जाते हैं। संघर्ष चरम सीमा पर पहुँच जाता है। उस समय तथागत प्रभु उस बाण को शांत कर उदयन की रक्षा करते हैं। उदयन बुद्ध की

---

१ रामकुमार वर्मा—कला और कृपाण—पृष्ठ ५९ (तृतीय संस्करण सन् १९६२)
२ वही पृ० ६१।
३ वही पृ० ६२।
४ वही, पृ० ६६।
५ वही, पृ० ६९।

धारण म जाता है। इस प्रकार इस नाटक म दो भिन सिद्धाता का सघष दिखाया गया है। यह सूक्ष्म तथा वचारिक संघर्ष है। इस सघष म बुद्धि के सदविचारो की जीत होती है। वह उच्च श्रेणी का सघष है।

(७) डा० गोवि ददास का 'भिक्षु से गृहस्थ और गहस्थ स भिक्षु' नाटक बुद्ध कालीन व्यक्तियो को लेकर लिखा गया है। इसम आरम्भ स अ त तक परस्पर विरुद्ध विचारो के स दभ म आ तरिक सघष को महत्व का स्थान प्राप्त हुआ है। इस सघष के कारण नाटक म मार्मिकता आ गयी है।

कुमारायन के माता पिता नहा चाहते कि अपना इकलौता पुत्र बौद्ध धम मे दीक्षित हो जाय। परन्तु कुमारायन की वाछा है कि बौद्धधम म दीक्षित होकर भिक्षु बन जाय। वह माता पिता क कहने पर ध्यान नहा दता। वह अपन मन की करना चाहता है। लेकिन जस ही वह भिक्षु बनन का कदम उठाता है, उसमे सासारिक सुखा क माह और कष्टप्रद भिक्षु जीवन स भय उत्पन्न होता है। एसी स्थिति म वह निणय नही कर पाता कि किसे स्वीकार किया जाय ? तब अ तद्व द्व ग्रस्त कुमारायन गौतमबुद्ध की विशाल मूर्ति के सम्मुख बठकर मूर्ति स कहता है— यह मानसिक सघष, तथागत, अब अब तो चरम सामा की पराकाष्ठा का पहुच गया है। आठो पहर चौसठा घड़ी चन नहा, पलमात्र का भी तो चन नही। एक ओर दव, राज्य क मुख्य कमचारी का पीढी दर पीढी स प्राप्त एक विशिष्ट परम्परा वाला वभव शाला, महान् वभव शाली, सुखमय परम सुखमय जीवन है और दूसरी ओर अकिचा दर दर भटकान वाला शीत ऋतु म कँपकँपान वाली शीत ग्रीष्म म झुलसा। वाली ताप और वर्षा म सिर पर मूसलाधार वर्षा को सहन कराने वाला कष्टप्रद महान कष्टप्रद भिक्षु का जीवन।"[1] इतना कहने पर वह विलासी जीवन के मोह को त्यागने और बुद्ध क माग का अनुसरण करने का निणय करता है। और बौद्ध भिक्षु बन जाता है। वह कूची के राजगुरुपद का भी स्वीकार करता है।

लेकिन उस समय उसके सामने फिर ऐसी स्थिति आती है जिससे उसम आ तरिक सघष का आरम्भ हाता है। वहाँ युवती जीवा और भिक्षु कुमारायन पर स्पर अनुरक्त हो जाते हैं। जीवा कुमारायन का अपना सवस्व समर्पित करती है। वह अद्वितीय सु दर भ है आर बुद्धिमान भी। एक ओर सु दरी का आकषण तो दूसरी ओर विरक्त भिक्षु जीवन। किस स्वीकार कर ? इस प्रश्न को लेकर कुमारायन म अ तद्व द्व चलता है। वह जीवा क प्रेम का अस्वीकार नहीं कर सकता। अत वह भिक्षु जीवन को छोडकर जीवा स विवाह करने का निणय करता है और विवाहोपरा त एक पुत्र की प्राप्ति के बाद दोनो भी बौद्ध धम मे दीक्षित होकर भिक्षु

---

१ डा० गोवि ददास--भिक्षु से गृहस्थ और गृहस्थ से भिक्षु--प० ४ (सन १९५७ का सस्करण)

एक और दो म दोनो ओर सघर्ष की तयारियाँ चल रही हैं । अक तीन मे पुरू और सिकन्दर का वितस्ता के तटपर सघर्ष दिखाया गया है ।

इस नाटक के कथा सकेत (प्रस्तावना) म मिश्र जी लिखते हैं-- इस नाटक का आधार वितस्ता के तट पर यवन सेना का पहुँचना, चोरी से वितस्ता पार करना और केकय वीर पुरू के साथ उसका युद्ध है ।" लकिन यह युद्धात्मक सघर्ष केवल राजकीय सघर्ष नही है । यह और एक प्रकार का सघर्ष है । इसलिए ही 'कथासकेत" म मिश्र जी लिखते हैं-- वितस्ता के तट पर दो विभिन्न जातियो और सस्कृतियो की टक्कर हुई थी जो अपने विधि विधान और जीवन दर्शन मे एक दूसरी के विपरीत थीं । यवन सनिकों म विजय का उन्माद था तो पुरू और केकय जनपद के नागरिको म देश के धर्म और पूवजो के आचरण की रक्षा का भार ।'[1] इससे प्रतीत होता है कि प्रस्तुत नाटक म राजकीय सघर्ष के साथ-साथ सास्कृतिक सघर्ष भी है जिसका आधार दो भिन्न जीवन दर्शन हैं । भारतीय अपने धर्म के अनुसार स्त्री को आदर की दृष्टि से देखते हैं उसे कर्म की प्रेरणा, पुरुष की शक्ति और धर्म का आधार मानते हैं । अत भारतीय शत्रु की स्त्री के साथ भी आदर का व्यवहार करते हैं । शत्रु के साथ भी शील और विनय का व्यवहार करते हैं । लेकिन यवनो के सस्कार एकदम भिन्न हैं । यवनो मे शील और विनय का अभाव है । वे दिया हुआ वचन तोडकर धोखे की नीति को अपनाते हैं । वे सुरा सुन्दरी के परम उपासक हैं । शरीर तृप्ति करना आधार नारी को मानते हैं । अत पराई स्त्री से निर्दय व्यवहार करते है । इस प्रकार वितस्ता के तटपर दो भिन्न सस्कृतियो का सघर्ष छिडता है । इस सघर्ष मे बर्बर यवनो को उदात्त भारतीय सस्कृति के सामने झुकना पडता है ।

प्रस्तुत नाटक म राजकीय वचारिक तथा सास्कृतिक सघर्ष है । इस सघर्ष म भारतीय सस्कृति की विजय होती है । प्रस्तुत सघर्ष क्रमश प्रखर बनकर तीसरे अक म चरम सीमा पर पहुँचता है और समाप्त होता है ।

(९) आचार्य चाणक्य और सम्राट चन्द्रगुप्त से सबधित अनेक घटनाओ को लेकर अनेक नाटक लिखे गये हैं । इन नाटको मे अकिंचन शर्मा कृत 'गुरुदेव चाणक्य' डा० गोविन्ददास कृत 'शशिगुप्त (१९४२), जनार्दनराय नागर कृत आचार्य चाणक्य (१९५३) रामबालक शास्त्री कृत 'चाणक्य (१९५८) लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत 'धरती का हृदय (१९६१) श्याम सुन्दर सुमन कृत 'चाणक्य महान (१९६२) सीताराम चतुर्वेदी कृत आ० विष्णुगुप्त (१९६५) लक्ष्मणस्वरूप कृत चन्द्रगुप्त मौर्य (१९४६) रामवृक्ष बेनीपुरी कृत विजेता (१९५६) हरिकृष्ण प्रेमी कृत

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र--वितस्ता की लहरें-पृष्ठ ३ (चतुर्थ स० सन १९६२)
२ वही पृष्ठ ५ ।

मे होती है । यह मित्रता आचाय चाणक्य को अखरने लगती है । क्योंकि इसी मित्रता के बलपर अदूरदर्शी पुरू मगध सम्राट बनन का सपना देखता है । इससे आचाय चाणक्य की योजना सफल होने म बाधा उत्पन्न होगी । अत आ० चाणक्य चन्द्रगुप्त को मगध का सम्राट बनाने के काम मे बडी धतता स पुरू का उपयोग कर लने की योजना बनात है ।

आचाय चाणक्य की योजना के कारण सिकन्दर पचनद से आग नही बढ सकता । वह विवश होकर ग्रीस लौटता है । परन्तु फिलिप्स को क्षत्रप के रूप म यही छोड जाता है । तब आ० चाणक्य के निर्देशन म चन्द्रगुप्त इस अवसर से लाभ उठाता है और क्षत्रप फिलिप्स से युद्ध कर यनानियो पर विजय पाता है ।

इस विजय के उपरान्त चन्द्रगुप्त तथा पुरू आ० चाणक्य के माग दशन म मगध पर आक्रमण करत हैं । नन्द की हत्या होती है । उस समय आ० चाणक्य बडी धूतता से, चन्द्रगुप्त का चक्रवर्ती सम्राट बनाने के लिए योजना पूवक, पुरू की हत्या करात हैं । चन्द्रगुप्त सम्राट बन जाता है । उसी समय उत्तरापथ पर यूनानी सेनापति सेल्यूकस का आक्रमण होता है । सम्राट चन्द्रगुप्त आक्रामक सेल्यूकस से युद्ध करता है । इसम चन्द्रगप्त की जीत होती है । इस युद्धात्मक सघप की परिणति सम्राट चन्द्रगुप्त और सेल्यूकस म मित्र सम्बन्ध की स्थापना मे होती है । सम्राट चन्द्रगुप्त का विवाह सेल्यूकस की कन्या हेलन स होता है ।

हरिकृष्ण प्रेमी के अमृत पुत्री मे कठ गणराज्य के प्रमुख की पुत्री कणिका को अधिक महत्त्व का स्थान दिया गया है । सिकन्दर न कठ गणराज्य पर आक्रमण किया था । इस आक्रमण का प्रतिकार करत हुए कठ गण राज्य के प्रमुख का देहान्त हुआ है । अत कणिका देश की स्वाधीनता तथा पिता क वध का प्रतिशोध लन के लिए यूनानियो का नाश चाहती है । इसलिए वह विष कन्या का रूप धारण करती है । आचाय चाणक्य क माग दशन म और चन्द्रगुप्त के सरक्षण म कणिका पुरू के प्रासाद में फिलिप्स के सामन नत्य करत समय कचुकी म स कटार निकाल कर फिलिप्स क कलेजे मे भोंक दती है । इस प्रकार कणिका यूनानियो स प्रतिशोध लती है और अपन गण राज्य को स्वाधीन करन की इच्छापूर्ति म सफलता पाती है । यही पर बाह्य सघष समाप्त होता है ।

जनार्दनराय नागर के आचाय चाणक्य म कौमुदी महोत्सव के सन्दभ म सम्राट चन्द्रगुप्त और आ० चाणक्य के मध्य सघष होता है । सम्राट चन्द्रगुप्त मगध पर पायी गई विजय के उपलक्ष्य म कौमुदी महोत्सव मनाना चाहता है, पर आ० चाणक्य विरोध करत हैं । सम्राट चन्द्रगुप्त को आ० चाणक्य का विरोध असह्य होता है । वह अपने स कहता है--- मैं सब कुछ सह सकता हूँ परन्तु उपालम्भ मैं सह नहीं सकता । आचाय मुझे कठपुतली समझते हैं । मुझे कठपुतली कर

रहा है। (तहा होकर) हम विजयी होकर राजधानी में आये हैं और आचार्य श्मशान की सी शान्ति चाहते हैं। कौमुदी उत्सव नहीं मनाया जायगा क्या? मैं पूछता हूँ क्यों नहीं?[1] चन्द्रगुप्त अन्तर्द्वन्द्व में उलझता है। सोचने पर कौमुदी उत्सव मनाने का निश्चय करता है और राजाज्ञा की आज्ञा देता है कि जो भी विरोध करेगा उसे दण्ड दिया जाय। चन्द्रगुप्त का निश्चय ज्ञात होते ही आ० चाणक्य चन्द्रगुप्त के पास आते हैं और उसे कहते हैं—

चाणक्य—पाटलिपुत्र को अभी किसी भी उत्सव की आवश्यकता नहीं।

चन्द्रगुप्त—आचार्य प्रत्येक स्थिति की सीमा और प्रत्येक बात की हद होती है। चरम सीमा किसी की अच्छी नहीं। कौमुदी महोत्सव होगा।

चाणक्य—(हँसकर) नहीं चन्द्रगुप्त नहीं। तुम महा अज्ञान, तुम नहीं समझते।

आ० चाणक्य वहाँ से चले जाते हैं। सम्राट् चन्द्रगुप्त कौमुदी महोत्सव मनाता है। उस समय सम्राट् चन्द्रगुप्त की हत्या का प्रयत्न होता है जो सफल नहीं होता। तब चन्द्रगुप्त को ज्ञात होता है कि आ० चाणक्य का विरोध ठीक था। वह पछताता रहता है।

उपर्युक्त सभी नाटकों में बाह्य संघर्ष का स्थूल रूप में प्रदर्शन हुआ है। इन संघर्ष में वीर तथा दूरदर्शी भारतीय भारत की स्वाधीनता तथा अखण्डता की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इस संघर्ष में वीर भारतीयों की विजय होती है।

(१०) मगध सम्राट अशोक के जीवन की अनेक घटनाओं को आधार बना कर लिखे गए नाटकों में बाह्य संघर्ष को अत्यधिक महत्त्व का स्थान दिया है। इसका प्रधान कारण यह है कि सम्राट अशोक का जीवन बहुत संघर्षमय रहा है। इस संघर्ष की परिणति अशोक के हृदय-परिवर्तन में और अहिंसावादी बौद्ध धर्म के स्वीकार में होती है।

सम्राट् अशोक का प्रारम्भिक जीवन एक योद्धा और विजेता का जीवन है। उद्दण्ड साहसी महत्त्वाकांक्षी अशोक पिता के पश्चात् मगध का सम्राट बनना चाहता है। इस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वह भाइयों से तथा अन्य विरोधियों से डटकर संघर्ष करता है और सफल भी होता है। तत्पश्चात् कलिंग को अपने शासन में लाने के लिए वह कलिंग से युद्ध करता है और कलिंग पर विजय भी पाता है। उस संघर्ष को लेकर अनेक नाटक लिखे गये हैं। कुछ नाटकों में बाह्य संघर्ष के साथ आन्तरिक संघर्ष को भी स्थान मिला है। कुछ नाटकों का स्वरूप जीवनी जैसा है। क्योंकि उनमें अशोक के जीवन की अनेक घटनाओं को आधार बनाया गया है। लेकिन कुछ नाटक कलिंग पर चढ़ाई से ही सम्बन्धित हैं।

---

१ जनार्दनराय नागर—आचार्य चाणक्य—पृ० १५४ (प्र० सं० सन १९५३)

२ वही, पृ० १५८।

चन्द्रगुप्त विद्यालकार का 'अशोक' (१९३५) नाटक ऐतिहासिक जीवनी नाटक है। इसमें अशोक का (१) तक्षशिला के विद्रोहियो मे सघर्ष है (२) अपने भाइयो से सघर्ष है। (३) तथा कलिंग से सघर्ष है।

अपनी स्वाधीनता के लिए मगध सम्राट बिन्दुसार के विरुद्ध विद्रोह कर उठी तक्षशिला की प्रजा स साहसपूर्वक सघर्ष कर अशोक ने विजय पायी और वहाँ की प्रजा म विश्वास पैदा किया कि मगध साम्राज्य म रहकर ही उनकी स्वाधीनता सुरक्षित रह सकती है। इस प्रकार महत्त्वाकाक्षी अशोक तक्षशिला का शासक बन जाता है।

उधर वद्ध सम्राट बिन्दुसार राज्य कारोबार की भावी व्यवस्था की दृष्टि से युवराज सुमन को 'साम्राज्य का प्रधान सहकारी' के पद पर नियुक्त कर देते हैं। यह ज्ञात होते ही महत्त्वाकाक्षी अशोक सीमाप्रान्त की सेना सहित पाटलिपुत्र पर आक्रमण करता है। अशोक का सेनापति चण्डगिरी घोख से सुमन का वध करता है। तब अशोक की बहन चित्रा और सुमन की वाग्दत्ता वधू शीला क्रूर अशोक के विरुद्ध प्रजाजन को विद्रोह करने के लिए उत्तजित करती हैं। प्रजा अशोक से सघर्ष करने को तयार होती है। सघर्ष चरम सीमा पर पहुँच जाता है। इस गह कलह को शान्त करने के लिए भिक्षु उपगुप्त शीला के हृदय म भडक उठी प्रतिहिंसा की ज्वाला को शान्त कर देते हैं। परिणामस्वरूप प्रजा अशोक को सम्राट के रूप मे स्वीकार करती है।

सम्राट अशोक कलिंग पर चढाई करता है। घोर रक्तपात के बाद अशोक की जीत होती है। इस भयकर सघर्ष से अशोक का हृदय परिवर्तन होता है। वह प्रतिज्ञा करता है— अब मैं निश्चिन्त होकर अपना जीवन अपने महान गुरु महात्मा बुद्ध के सन्देश को पूरा करने में व्यय कर सकूगा। अब इस राज्य का उद्देश्य विश्व भर म धर्म, दया और मनुष्यत्व का प्रचार करना है।[1] इस प्रकार इस नाटक म अशोक की महत्त्वाकाक्षाओं के कारण आदि से अन्त तक सघर्ष है। लेकिन इस नाटक म सघर्ष का निर्वाह ठीक रीति म नहीं हो पाया है। प्रस्तुत सघर्ष अत्यन्त स्थूल तथा साधारण श्रेणी का है।

डॉ० गोविन्ददास के 'अशोक' नाटक म भी बाह्य सघर्ष के साथ साथ सम्राट अशोक का आन्तरिक सघर्ष भी है। अशोक सोचता है कि सुसीम के समान पुरुषार्थ हीन भाई के हाथ मे मगध साम्राज्य की सत्ता जाने स साम्राज्य नष्ट होगा। अतः महत्त्वाकाक्षी अशोक साम्राज्य की रक्षा के लिए स्वय सम्राट बनना चाहता है। वह सोचता है— यदि भारतीय साम्राज्य मेरे हाथ म आया तो भारत के एकीकरण मे जो कसर पितामह चन्द्रगुप्त के समय म भी रह गया है उसे मैं पूर्ण करूँगा। ऐसा

१ चन्द्रगुप्त विद्यालकार—अशोक—पृ० १ ६ (प्र० स० सन १९३५)

साम्राज्य होगा ऐसा उसका प्रयत्न होगा, जैसा इस देश के इतिहास में कभी नहीं हुआ।"[1] भीषण संघर्ष के पश्चात् अशोक मगध का सम्राट बन जाता है।

जिस समय राज सत्ता पाने के लिए भीषण गृह कलह छिड़ा था उस समय अशोक के अन्तस में भी संघर्ष चल रहा था। इस आन्तरिक संघर्ष के बारे में अर्हा मित्रा को अशोक बताता है—

"मेरे मन में आजकल एक संघर्ष चल रहा है।[2] जिस मार्ग पर मैं चल रहा हूँ वह ठीक मार्ग है या नहीं? हिंसा से राज्य विस्तार, आमोद प्रमोद, विहार यात्रायें ये ठीक हैं या अहिंसात्मक संयम ग्रहण करना।"[3] ऐसी दशा में भी एक तरफ एक ओर राज्य के लिए रक्तपात होता है तो दूसरी ओर बौद्ध धर्म का उपासक बन जाता है और पाटलिपुत्र में अशोकाराम बनाता है। तब तो उसका मानसिक संघर्ष और बढ़ जाता है।— अब तो मानसिक संघर्ष बढ़ता ही जाता है। तुम लोगों को जो मैं असमंजस जान पड़ता हूँ वह इसी मानसिक संघर्ष के कारण। मेरे मन में अब बार बार एक बात आती है।'[4] इस संघर्ष से मुक्त होने के लिए वह भिक्षु होना चाहता है परन्तु वह भिक्षु नहीं हो पाता है। जब पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा भिक्षु भिक्षुणी बन जाते हैं तब अशोक अपनी अनिर्णयात्मक अवस्था को प्रकट करता है— मैं स्वयं किसी निर्णय पर पहुँचने में असमर्थ हूँ और तुम दोनों भिक्षु भिक्षुणी होकर जा रहे।"[5] ऐसी दशा में अशोक अपने साम्राज्य विस्तार के लिए कलिंग पर आक्रमण करने के बारे में निर्णय नहीं कर पाता है। राधागुप्त की उत्तेजना से वह कलिंग पर आक्रमण करता है पर घोर रक्तपात को देखकर वह हिंसा की बातों का त्याग कर अहिंसा मार्ग बौद्ध धर्म को स्वीकार करता है। तब उसका मानसिक संघर्ष शान्त हो जाता है।

अशोक का आन्तरिक संघर्ष परस्पर विरुद्ध विचारों का संघर्ष है। इस संघर्ष से अशोक के वास्तविक व्यक्तित्व का उद्घाटन होता है। वह सद्विचारों की प्रधानता के बल पर निर्णय करता है और संघर्ष से मुक्त हो जाता है। इस आन्तरिक संघर्ष में अशोक के भावुकतावादी विचार की जीत होती है। अतः अशोक का आन्तरिक संघर्ष सूक्ष्म तथा श्रेष्ठ श्रेणी का है। अशोक का बाह्य संघर्ष स्थूल तथा साधारण श्रेणी का है। क्योंकि इस संघर्ष में अशोक का स्वार्थ छिपा हुआ है।

रामकुमार वर्मा के 'विजय पर्व' नाटक का आरम्भ मार्मिक संघर्ष से

---

१ डॉ० गोविन्ददास—अशोक—पृ० ७ (सन् १९६१ का संस्करण)
२ डॉ० गोविन्ददास—अशोक—पृष्ठ २० (सन् १९६१ का संस्करण)
३ वही पृ० २०
४ वही पृ० २१
५ वही पृ० २४

होता है। पाटलिपुत्र के अमात्य मण्डल ने, सम्राट बिन्दुसार की मत्यु के पश्चात वीर, साहसी, निभय अशोक को सम्राट पद प्रदान किया है। अत ईर्ष्या के कारण सुगाम की प्रेरणा से सुसाम की अध्यक्षता मे अ य भाई अशाक की हत्या का पडयन्त्र रचते हैं। परन्तु अशोक साहस तथा शौय से उस पडयन्त्र को विफल कर दता है। 'गह कलह' न बढ जाय इसलिए भाइयो को क्षमा कर देता है। सुगाम को पश्चिम चक्र का शासक बनाता है। परन्तु अवसरवादी सुगाम कलिंग नरेश से मित्रता जोडकर पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने का पडयन्त्र रचता है। अशाक सुगाम तथा कलिंग नरेश को मगध के शत्रु मानता है। कलिंग पर चढाई करता है। घोर रक्तपात के बाद अशोक की विजय होती है।

इस विजय स पूव सम्राट अशोक का मन, दो घटनाओ से, बहुत विचलित हुआ था। एक स्त्री न अशाक के याय पर अविश्वास यक्त कर आत्मघात कर लिया। चारुमित्रा न अपनी स्वामिभक्ति को सिद्ध करने को अपना बलिदान कर अशोक क प्राणो का रक्षा की। इन घटनाओ से अस्थिर हुआ अशोक इस विजय को विजय नही मानता। वह हिंसा के माग को त्याग देता है और अहिंसावादी बौद्ध धम को स्वीकार करता है।

प्रस्तुत नाटक मे भी अशाक का सघष स्थूल सघष है। प्रथम अक मे अशोक का अपन भाइया से जो सघष है वह वैचारिक तथा उच्च श्रणी का सघष है। उस सघष म अशाक सदविचारो के बल पर अपने भाइयो पर विजय पाता है। यह विजय अत्यन्त स्वाभाविक विजय है।

अन त बहादुर सिंह क सम्राट अशोक' (१९६०) नाटक में भी अशोक का तक्षशिला म विद्रोहियो से पाटलिपुत्र म राजसत्ता पान के लिए सुसीम स और अपन अधिपत्य को प्रस्थापित करने क लिए कलिंग स सघष है।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द के प्रियदर्शी (१९६१) मे भी अशोक का राज्य प्राप्ति के लिए भाइया स और राज्य विस्तार के लिए कलिंग से सघष है। इस नाटक के आरम्भ म अशोक का आतरिक सघष भी है। एक ओर सम्राट पद पान की महत्त्वाकाक्षा है तो दूसरी तरफ भाइयो स प्रेम है। अशोक निणय नही कर पाता कि किस स्वीकार करना चाहिए ? उस समय अशोक क गुरु उपगुप्त उसे समझाते हैं कि लोक हित क लिए अशोक का सम्राट पद पाना आवश्यक है। अत इस काय लिए अशोक को भाइयों से सघष करना पडा तो भी अनुचित नही है। उपगुप्त की बातो का अशोक पर अनुकूल प्रभाव होता है। फलत वह जन कल्याण के लिए सत्तारूपी साधन पाने का निणय करता है।

अशोक का आ तरिक सघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रणी का सघष है। यह दो सदविचारो का सघष है। इस सघष म देश हित से सम्बन्धित विचार की जीत होती

है । यह बात अत्यन्त स्वाभाविक है ।

कुछ नाटक कलिंग पर चढ़ाई को लेकर लिखे गये हैं । चतुरसेन शास्त्री के 'धर्मराज' (१९५६) कलिंग पर चढ़ाई से सम्बन्धित है । इसमें दिखाया गया है कि साम्राज्य विस्तार की महत्त्वाकांक्षा से अशोक कलिंग से संघर्ष कर रहा है । अन्त में अशोक का हृदय-परिवर्तन दिखाया गया है । चतुरसेन ने भी अपने 'कलिंग विजय' (१९५६) नाटक में दिखाया है कि सम्राट अशोक अपनी साम्राज्य विस्तार की महत्त्वाकांक्षा से कलिंग से संघर्ष कर रहा है । अशोक वर्मा का 'अशोक' नाटक (१९[illegible]७) नाटक [illegible] के 'विजय पर्व' नाटक के तीसरे अंक का परिवर्धित रूप है । यह भी अशोक और कलिंग के संघर्ष से सम्बन्धित है । इसमें बड़ी कलात्मकता से दिखाया गया है कि अशोक का हृदय परिवर्तन किस प्रकार हुआ । रानी तिष्यरक्षिता का मन युद्ध की भावना से अस्थिर हुआ है । वह चाहती है कि अब युद्ध रुक जाय । परन्तु अशोक से स्पष्ट रूप में यह कुछ कह नहीं पाती । अतः वह अपने मन की व्याकुलता और अस्थिरता को स्वीकार करती है । रानी चारुमित्रा कलिंग देश की निवासिनी है । अतः रानी और अशोक उस पर सन्देह व्यक्त करते हैं । इस सन्देह से चारुमित्रा का मन अस्थिर हो जाता है । एक ओर स्वामिभक्ति है तो दूसरी ओर देशभक्ति । लेकिन चारुमित्रा अपनी स्वामिभक्ति को कलंकित न होने देने का निर्णय करती है । अशोक की रक्षा करने के निश्चय से अशोक के शिविर में घुसे कलिंग सैनिकों पर चारुमित्रा धावा बोल देती है और उन्हें वहाँ से भगाने में सफल होती है और वीरगति पाती है । चारुमित्रा के बलिदान से अशोक का हृदय परिवर्तन होता है । लेकिन इस नाटक में अन्तर्द्वन्द्व जितना उभरना चाहिए था उतना नहीं उभरा है ।

विष्णु प्रभाकर के 'नव प्रभात' नाटक में अशोक के आन्तरिक संघर्ष को महत्त्व का स्थान मिला है । इस आन्तरिक संघर्ष के कारण ही अशोक का हृदय परिवर्तन होता है । इस बात का निर्देश करते हुए महारानी कारुवाकी कहती है—'जब अपने अन्तर में संघर्ष मचता है तभी मनुष्य अपने को पहचानता है और अपने को पहचानने पर मानव और मानवता को पहचानना कठिन नहीं रह जाता ।'[1] सम्राट अशोक कलिंग संघर्ष में सफलता पाता है परन्तु पराजित कलिंग के बन्दी राजकुमार के मस्तक को अपने सामने झुकाने में सफल नहीं होता । बन्दी राजकुमार सम्राट अशोक की हर एक बात का उत्तर निर्भयता से देता है । वह तलवार पर विश्वास रखने वाले सम्राट अशोक की महानता को अस्वीकार करता है । क्रोध में आकर सम्राट अशोक राधागुप्त को [illegible] बन्दी राजकुमार का सिर काटने की आज्ञा देता है । बन्दी राजकुमार उत्तर में कहता है— बस ! यही है तुम्हारी

1 विष्णु प्रभाकर—नवप्रभात—पृ० १०६ (ग्यारहवाँ सं० सन् १९६८)

वीरता ? यही है तुम्हारा शौर्य ? इसी बल पर सम्राट बने हो। एक बन्दी का सिर भी नही झुका सके। खोपडियाँ ठुकराने के लिए तो अनेक गीदड श्मशान मे घूमा करते हैं, लेकिन वह वीर पुरुषो का मार्ग नही है।'[1] इस वाक्य से अशोक के मन में संघर्ष की आँधी उठती है। मैं एक बन्दी का सिर नही झुका सका, एक बन्दी का। क्या सचमुच मैं इतना निर्बल हूँ। जीते जी सिर नही झुका सका–फिर सिर काटने से क्या लाभ ?"[2] बन्दी की हत्या की जाय या न की जाय ? फिर जीते जी उसे कैसे पराजित किया जाय ? क्या बिना नाश किये विरोधी को पराजित कर सकें, ऐसी शक्ति मिल सकती है ? आदि प्रश्न उसके मन में उठते हैं और वह किसी एक निर्णय पर नहीं पहुँच पाता। भिक्षु उपगुप्त के उपदेशों को सुनने पर भी वह निर्णय नहीं कर पाता। वह किसी भी स्थिति में बन्दी कुमार को जीतना चाहता है। इस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वह राजकुमार को क्षमा से जीतना चाहता है। अतः वह उसे क्षमा कर देता है। उसका राज्य उसे लौटाता है और चाहे तो संघमित्रा उसे अपना पति भी बना सकती है। परन्तु स्वाभिमानी राजकुमार अशोक की क्षमा को भी अस्वीकार कर अपनी छाती में कटार मार लेता है और अपने देश के लिए आत्माहुति कर देता है। इससे अशोक के हृदय पर कड़ा आघात होता है। उसका बल असमर्थ सिद्ध होता है। वह अपनी विजय मे पराजय का अनुभव करने लगता है–'कुमार ने मेरी दया स्वीकार नही की ? कुमार ! तुम जीत गये। मैं पराजित हो गया।'[3] इस समय अशोक अहिंसात्मक बौद्ध धर्म को स्वीकार करता है।

प्रस्तुत नाटक मे परस्पर विरुद्ध विचारो के आन्तरिक संघर्ष से अशोक की मानवीयता का प्रकाशन हुआ है। इस आन्तरिक संघर्ष के फलस्वरूप अशोक का हृदय परिवर्तन स्वाभाविक बन पड़ा है। अशोक का आन्तरिक संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का है। इस संघर्ष में अशोक के मानवतावादी विचारो की विजय हुई है।

प्रस्तुत नाटक मे अशोक और कलिंग के राजकुमार का जो संघर्ष है वह परस्पर विरुद्ध विचारधाराओं का संघर्ष है। यह संघर्ष भी सूक्ष्म तथा श्रेष्ठ श्रेणी का है। इस संघर्ष मे मानवतावादी विचारों की जीत हुई है।

(११) सेनापति पुष्यमित्र को लेकर लिखे गये नाटकों में बाह्य संघर्ष को महत्त्व का स्थान मिला है। इन नाटकों मे सेनापति पुष्यमित्र का देश रक्षार्थ तथा प्रजा हितार्थ, अकर्मण्य मगध राज बृहद्रथ से तथा आक्रामक यवनो से संघर्ष है। सीताराम चतुर्वेदी के सेनापति पुष्यमित्र (१९५१) मे कर्त्तव्य विमुख बृहद्रथ को

१ विष्णु प्रभाकर–नवप्रभात–पृ० ३६ (ग्यारहवा संस्करण सन् १९६४)
२ वही, पृ० ४४।
३ वही, पृ० १००।

सेनापति पुष्यमित्र का प्रत्येक कार्य अखरता है। कर्त्तव्यपरायण पुष्यमित्र देश रक्षा के लिए अत्यन्त सतर्क है।

यवन सम्राट दमत्रिय माध्यमिका और मथुरा को जीत कर साकेत की ओर बढ़ रहा है। साकेत के राजा अनंतपाल की कन्या कल्याणी साकेत की रक्षा करना चाहती है। वह इस कार्य में बृहद्रथ की सहायता पाने के हेतु मगध आ जाती है। लेकिन बृहद्रथ कल्याणी की प्रार्थना पर ध्यान नहीं देता। वह कल्याणी का अपमान करता है। तब सेनापति पुष्यमित्र साकेत की रक्षा का भार अपने सिर पर लेता है। इससे क्रुद्ध होकर बृहद्रथ पुष्यमित्र को सेनापति पद से मुक्त कर देता है। वह उसे बन्दी बनाने की भी आज्ञा देता है। परन्तु राजमाता पुष्यमित्र से कहती है कि वह स्वतन्त्र है। इसमें स्वार्थी और कर्त्तव्यविमुख बृहद्रथ और निस्वार्थ, कर्त्तव्यरत माता का संघर्ष छिड़ता है।

बृहद्रथ ने साकेत जाने वाली सेना को रोका और सेनानायक धानुसेन को सबके सामने अपमानित किया। धानुसेन अपने मान की रक्षा के लिए सेनानायक पद का त्याग देता है। इसमें बृहद्रथ और धानुसेन में संघर्ष छिड़ता है।

बृहद्रथ बौद्ध धर्मीय अमात्य देवरात की बातों में आकर साकेत तक का राज्य देकर आक्रामक यवनों से संधि करना चाहता है। साथ-साथ वह कल्याणी को भी बन्दी बनाना चाहता है। तब बृहद्रथ की बहन देवनन्दा अपने घर में कल्याणी को आश्रय देती है। इसमें बहन भाई में संघर्ष छिड़ता है।

ऐसी स्थिति में कर्त्तव्यपरायण सेनापति पुष्यमित्र प्रतिकार का निश्चय करता है— मैं भी देखता हूँ कि मेरे रहते हुए इस राज्य में अत्याचार को कौन पोषण करता है।[1]

उधर देश रक्षा के लिए धानसेन यवनों से संधि करने का प्रयास करने वाले बृहद्रथ की हत्या कर देता है। पुष्यमित्र हत्या का आरोप अपने पर लेता है और धानुसेन के नेतृत्व में सेना को साकेत की रक्षा के लिए भेज देता है। पुष्यमित्र आक्रामक यवनों को सीमा पार खदेड़ने में और देश रक्षा करने में सफलता पाता है। तब सेनापति पुष्यमित्र मगध की राजसत्ता अपने हाथ में लेता है।

इस प्रकार इस नाटक में आदि से अन्त तक व्यक्ति-व्यक्ति का और समूह समूह का संघर्ष है। यह कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का संघर्ष है। इसमें बौद्ध धर्मीय अमात्य देवरात और वैदिक मतावलम्बी सेनापति पुष्यमित्र के संघर्ष के रूप में धार्मिक संघर्ष भी है।

हरिकृष्ण प्रेमी ने भी 'शक्ति-साधना' (१९६८) नाटक में उपर्युक्त संघर्ष को महत्त्व का स्थान दिया है। मगध का अंतिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ कायर और

---

१ सीताराम चतुर्वेदी—सेनापति पुष्यमित्र—पृ० २ (प्र०सं० सन् १९५१)

विलासी है। वह आक्रामक यवनों से लोहा लेने के बदले भारत का कुछ भू भाग देकर संधि करना चाहता है। कर्त्तव्यपरायण सेनापति पुष्यमित्र देश की सुरक्षा के लिए कायर सम्राट का वध कर आक्रामक यवनों से लोहा लेने का निश्चय करता है। वह एक बार वृहद्रथ को समझाने की चेष्टा करता है। 'राजदण्ड के शिथिल हो जाने पर विदेशियों की बात तो जाने दीजिए स्वदेश में भी कोई उसकी बात नहीं सुनता। मगध के अतिरिक्त मौर्य साम्राज्य के लगभग सभी प्रदेश स्वतन्त्र सत्ताधारी बन बैठे हैं। प्रजा राज्य को कर नहीं देती। क्या यह स्थिति संतोषजनक है?'[1]

वृहद्रथ को पुष्यमित्र की बात अच्छी नहीं लगती। वह पुष्यमित्र को राजद्रोही ठहराकर बंदी बनाने का असफल प्रयास करता है। दोनों में संघर्ष बढ़ता है। अपने जन्म दिवस पर बृहद्रथ मगध की सेना के सामने पुष्यमित्र को अपमानित करता है। इससे दोनों का संघर्ष चरम सीमा पर पहुँच जाता है। दोनों में तलवार का द्वन्द्व-युद्ध होता है। इसमें बृहद्रथ का वध होता है। सेनापति पुष्यमित्र का सेना पर अधिकार प्रस्थापित होता है।

बौद्ध धर्मीय बादरायण और बृहद्रथ की रानी लवंगलता यूनानी सम्राट मिलिन्द की सहायता लेते हैं। मिलिन्द की सेना और पुष्यमित्र की सेना का युद्ध होता है। मिलिन्द हारता है और पुष्यमित्र विजय प्राप्त करता है।

उपर्युक्त दोनों नाटकों में देशप्रेमी व्यक्ति का स्वार्थी देशवासियों से तथा बाहरी आक्रमणकारियों से प्रखर संघर्ष है। इस संघर्ष की परिणति देशप्रेमियों की विजय में हुई है। प्रस्तुत संघर्ष स्थूल संघर्ष है। क्योंकि इसमें घटनाओं पर अधिक बल दिया गया है।

(१२) लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत 'दशाश्वमेध' (१९५०) नाटक भारशिव नागों के शौर्य से सम्बन्धित है। इसमें देशभक्त नागवीर वीरसेन का कुषाणों से संघर्ष है। इस संघर्ष में वीरसेन की जीत होती है। प्रस्तुत नाटक बाह्य संघर्ष प्रधान नाटक है।

कुषाण राज देवपुत्र वासुदेव का काशी तक अधिकार है। उसने अगारक को काशी का क्षत्रप नियुक्त किया है। कुषाण शक्ति की थाह लेने के हेतु वीरसेन कनिष्क की सेना में नायक बन गया है। उसने बड़े कौशल से अन्तःपुर में अपना अधिकार जमाया है। वासुदेव की कन्या कौमुदी और वीरसेन परस्पर अनुरक्त हुए हैं। इस सन्दर्भ में क्षत्रप अगारक वीरसेन को अपने प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखता है। क्योंकि वह भी कौमुदी को चाहता है। वह वासुदेव के पास प्रस्ताव भेजता है कि यदि वासुदेव अपनी कन्या कौमुदी का विवाह अगारक से कर देगा तो अगारक प्राणों पर खेलकर कान्तिपुरी (गंगा पार) के उन भागों का दमन करेगा जो अन्तर्वेद का

१ हरिकृष्ण प्रेमी—शक्ति साधना—पृ० १७ (प्र० सं० सन् १९६८)

सारा धन लूटकर अपने भण्डार में ले जाते हैं। कुमारराज वासुदेव अगारक के प्रस्ताव का आदर करता है।

यह सुनकर वीरसेन की भुजाएँ अगारक से लड़ने के लिए फड़क उठती हैं। वह विजित नागकुमारी कौमुदी के सामने प्रतिज्ञा करता है— अगारक को जिस दिन द्वन्द्व-युद्ध में मारूँगा, शिवपुरी काशी में अश्वमेध करूँगा।[1] इस प्रतिज्ञा के साथ-साथ अपनी योजना के बारे में बताता है— विन्ध्याचल में अष्टभुजा के सामने संकल्प करूँगा, इस विदेशी राज्य के अन्त के लिए आज के दिन ठीक एक वर्ष बाद मैं छोड़ूँगा राजतुरंग। आदर्श नायक के रूप में नहीं विजयी नागराज वीर सेन के रूप में स्वतुरंग तब पुष्पपुर लूँगा और इस गढ़ पर भारशिव नागों की पताका फहरायेगी भगवान शंकर की पताका।[2]

दोनों ओर संघर्ष की तैयारियाँ होती हैं। गंगा की रेती में भीषण अगारक और वीरसेन का द्वन्द्व होता है। अगारक की मृत्यु और वीरसेन की जीत होती है। वीरसेन कुषाणों को अन्तर्वेद से बाहर निकालने में सफल होता है। विजयी वीरसेन का कौमुदी से विवाह होता है। इस प्रकार इस नाटक के दूसरे अंक तक बाह्य संघर्ष को महत्व का स्थान मिला है।

प्रस्तुत संघर्ष उच्च श्रेणी का है जिसमें संघर्ष में स्वाधीनता प्रिय तथा देश प्रेमी व्यक्तियों की विजय हुई है। संघर्ष क्रमशः चरम सीमा को पहुँच कर समाप्त हुआ है।

(१३) सम्राट समुद्रगुप्त के जीवन की घटनाओं के आधार पर डा० [illegible] ने सन् १९४० में 'भारत विजय' नाटक लिखा है। इस नाटक का दूसरा संस्करण सन् १९५२ में 'सम्राट समुद्रगुप्त' नाम से प्रकाशित किया गया है। इस नाटक में एक ओर देश के अन्तर्गत स्वार्थ के कारण गृह कलह है, भारतीय राजाओं का आपसी संघर्ष है, अपने-अपने धर्म को लेकर बौद्धों और ब्राह्मणों का संघर्ष है। दूसरी ओर विदेशी कुषाणों और शकों का आक्रमण है। समुद्रगुप्त का इन सभी संघर्षों पर विजय पाकर मगध का सम्राट बनना है।

कट्टर ब्राह्मणवादी वाकाटक और भारशिव वंश, सामन्त लिच्छवियों से वैवाहिक सम्बन्ध होने के कारण चन्द्रगुप्त (समुद्रगुप्त के पिता) को ब्राह्मणों का पक्षपाती मानते हैं। अतः इनका आर्यों से तथा मगध राज से संघर्ष है। ये मगध पर अधिकार पाने के लिए कल्याण वर्मा का पक्ष लेते हैं। कल्याण वर्मा महाकान्तार और नाग राज्यों की सहायता से अपने पिता का राज्य हस्तगत करने का उद्योग करता है। षड्यन्त्र से वह चन्द्रगुप्त प्रथम को महाकान्तार दुर्ग में बन्दी बनाता है।

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र—दशाश्वमेध—पृ० ६७ (प्र०सं० सन् १९५०)
२ वही पृ० ६३।

उस समय समुद्रगुप्त की विमाता छोटी रानी अपने पुत्र कच को सिंहासन पर बिठाने के लिए अमात्य की सहायता से वाकाटकों से गुप्त संधि करती है।

समुद्रगुप्त पराक्रम से पिता को मुक्त करता है। भाई कच के विद्रोह को शान्त करता है। पुत्र के पराक्रम को देखकर चन्द्रगुप्त समुद्रगुप्त को सिंहासन पर बिठाता है।

अन्तर्गत कलह पर विजय पाने के उपरान्त समुद्रगुप्त कुषाण और शकों से संघर्ष करता है। कुषाण और शक देशद्रोही आर्यों की सहायता से मथुरा के सुदृढ़ दुर्ग पर अधिकार पाते हैं। शकों का महाक्षत्रप पराजित महासेनापति की पुत्री मालती से विवाह करना चाहता है। इसके अतिरिक्त संधि में कई अपमानजनक शर्तें भी रखता है। समुद्रगुप्त की सेना ठीक समय पर पहुँच कर शकों को पराजित करती है और यौधेयराज महासेनापति की रक्षा करती है। समुद्रगुप्त, तक्षशिला पर आक्रमण करने वाले कुषाणों को भी पराजित करता है।

इस प्रकार इस नाटक में बाह्य संघर्ष की प्रधानता है। देशप्रेमी व्यक्ति का स्वार्थी अदूरदर्शी देशवासियों से तथा बाहरी आक्रमणकारियों से उच्चश्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष में देशप्रेमी व्यक्ति विजय पाने में सफल हुआ है।

वैकुण्ठनाथ दुग्गल के "समुद्रगुप्त" (१९४९) नाटक में भी सम्राट समुद्रगुप्त के जीवन से सम्बन्धित बाह्य संघर्ष को स्थान मिला है। समुद्रगुप्त एक विकट योद्धा के साथ साथ कुशल कवि भी हैं। दक्षिण की ओर समुद्रगुप्त की कांची की राजकुमारी कंचन से अचानक भेंट हो जाती है। दोनों परस्परानुरक्त हो जाते हैं। दक्षिण राज्य संघ के सब नरेशों पर सम्राट समुद्रगुप्त का आधिपत्य है। इस आधिपत्य से मुक्त होने की कामना दक्षिण के नरेशों में उत्पन्न होती है। यहीं संघर्ष का आरम्भ होता है। कांची नरेश विष्णुगुप्त अपनी स्वतंत्रता की भावना को इस प्रकार व्यक्त करता है— 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है अमात्य। यह हमारी जन्मभूमि है। हमारा देश किसी दूसरे का अधिकार नहीं हो सकता। सम्राट समुद्रगुप्त का प्रतिविम्ब कर दूत समय मेरे हृदय में प्रतिशोध की लपटें उठाता है मन्त्री।'[1] पल्लव राज विष्णुगुप्त के इस भाव को देखकर दक्षिण राज्य संघ के सभी नरेशों ने आगामी युद्ध के लिए कांची नरेश को सैन्य संचालन का अधिकार सौंप दिया। सम्राट को कर देना बन्द करके दक्षिण के स्वाधीन साम्राज्य की घोषणा कर दी जाती है। पिताजी की इच्छा के अनुसार राजकुमारी कंचन भी मगध राज के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित हो जाती है। सम्राट समुद्रगुप्त भी युद्ध की पूरी तैयारी करता है। युद्ध का आरम्भ करने के पहले सम्राट समुद्रगुप्त अपने मन्त्री से अपना एक सपना कहता है— भारत में एक अखण्ड साम्राज्य स्थापित करने का मेरा चिरस्वप्न था। ये छोटे

१ वैकुण्ठनाथ दुग्गल— समुद्रगुप्त पृ० १५-१६ (सन् १९५७ का संस्करण)

छोटे राज्य भारत के मानचित्र पर अभिशाप मात्र थे। जनता का शोषण करने वाले ये नरेश जिस स्वाधीनता की रक्षा का दम भरते हैं उसके पीछे शक्ति रही होती है उनकी अपनी विलासिता। किन्तु अभी तक मेरा वह स्वप्न पूरा नहीं हुआ मंत्री।'[1] इस स्वप्न को पूरा करने की अदम्य कामना को लेकर सम्राट समुद्रगुप्त पूरी तैयारी के साथ दक्षिण के नरेशों से युद्ध करने के लिए निकल पड़ता है। (भारतवर्ष की एकता के लिए फिर दक्षिण की ओर चल पड़ता है।) युद्धात्मक संघर्ष चरम सीमा पर पहुँचता है। भयानक रक्तपात होता है। काची नरेश विष्णुगुप्त वीरगति को प्राप्त होता है। विलासिता के दलदल में फँसे हुए दक्षिण नरेश सम्राट की विजय वाहिनी को रोक नहीं सके। पिता की मृत्यु के उपरान्त अकेली कंचन काची की ओर से लड़ती है। युद्ध समाप्त होता है। पुरुष के वेष में लड़ने वाली कंचन को बन्दी बनाया जाता है। उसके मन में आन्तरिक संघर्ष की आँधी उठती है। वह सम्राट समुद्रगुप्त की हत्या कर पिता की हत्या का प्रतिशोध लेना चाहती है। परन्तु अपने प्रेम के कारण उसका मन समुद्रगुप्त की हत्या की जाय या न की जाय की दुविधा में उलझता है। अन्त में सम्राट के विजयोत्सव पर बौद्ध धर्मावलम्बी वसुबन्धु सम्राट की हत्या करने के निश्चय से छुरा मारता है परन्तु बीच में कंचन (पुरुष वेष में अमिल नामधारी) आ जाती है और छुरे से घायल होकर चल बसती है। आन्तरिक संघर्ष से ग्रस्त कंचन अपने बलिदान के द्वारा अपने प्रियतम की प्राण रक्षा करती है।

कंचन की परस्पर विरुद्ध भावनाओं का आन्तरिक संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का संघर्ष है। एक ओर कंचन की प्रेम भावना है तो दूसरी ओर पिता की मृत्यु से संबंधित प्रतिशोध लेने की भावना है। इस संघर्ष में कंचन की प्रेम भावना ने विजय पाई है। यह स्वाभाविक विजय है।

बाह्य संघर्ष में समुद्रगुप्त की भारत की अखण्डता रक्षा की आकांक्षा ने विजय पाई है।

(१४) कंचनलता सब्बरवाल कृत 'आन्ध्रियसेन गुप्त' (१९८८) और 'अमिया' (१९४८) दोनों नाटक गुप्त युग से सम्बन्धित हैं। संघर्ष की दृष्टि से 'आन्ध्रियसेन गुप्त' साधारण श्रेणी का नाटक है। इसमें मगध के युवराज आन्ध्रियसेन का बौद्ध सम्राट हर्ष से संघर्ष है।

'अमिया' में युवराज वज्रगुप्त का आक्रामक हूण राजा तोरमाण से संघर्ष है, जिसमें वज्रगुप्त की हार और मृत्यु होती है। इसमें देशद्रोही मातृविष्णु और उसकी देशभक्त पत्नी भ्रमरी का भी संघर्ष है।

देशभक्त भ्रमरी और उसकी पुत्री अमिया में आन्तरिक संघर्ष भी है। पंद्रह

---

१ बद्रीनाथ दुग्गल— समुद्रगुप्त पृ० २५ (सन् ५० का संस्करण)

कि नगर में व्यभिचार फैलेगा । अतः वह समाज व्यभिचार को रोकने के हेतु सरस्वती को कैद में रखता है । इससे अपमानित कालकाचार्य में प्रतिशोध की आग सुलगती है । वह प्रतिज्ञा करता है— मुझे राजा को दण्ड देना होगा ... भगिनी का अपमान मेरा अपमान है । भगवान महावीर का सम्पूर्ण जैन धर्म का अपमान है ।"[1] इस अत्याचार का बदला लेना ही होगा ।"[2] यहीं से संघर्ष आरम्भ होता है ।

कालकाचार्य उत्तरी भारत के लाट, पांचाल, सिंध देश के राजाओं तथा विदेशी शकों की सहायता से अवन्ती पर आक्रमण करता है । गंधर्व सेन प्रतिकार करता है । लेकिन युद्ध में उसका वध होता है । शकराजा माहानसाहि मालव का राजा बन जाता है ।

उन्मत्त शकों के द्वारा प्रजा पर किए जाने वाले अत्याचारों को देखकर कालकाचार्य पछताने लगता है । वह उस वर्ग की सहायता करते हैं जो शकों को पराजित करने की प्रतिज्ञा करता है । पुनः संघर्ष छिड़ता है । मालव स्वाधीन होता है ।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'हंस मयूर' (१९४८) में स्वामक गर्दभिल्ल कालकाचार्य की बहिन सुनन्दा को बलपूर्वक अपनी रानी बनाता है । इसमें गर्दभिल्ल और कालकाचार्य के मध्य संघर्ष छिड़ता है ।

आक्रामक शकों का प्रतिकार करने के बजाय गर्दभिल्ल भाग जाता है । शक उज्जैन के शासक बन जाते हैं ।

नरपुर का राजा वैष्णव इन्द्रसेन शकों पर विजय पाता है । विजयी इन्द्रसेन शकनायक नुमक की कन्या नन्दी से विवाह कर लेता है । वह उज्जैन और मालव जनपदों का राजा बन जाता है । उस समय उसे 'हंस' कहा जाता है और उस नाम से संवत का प्रवर्तन किया जाता है । उसे शकारि भी कहा जाता है ।

उपर्युक्त दोनों नाटक संघर्ष की दृष्टि से साधारण श्रेणी के नाटक हैं । इन नाटकों में अति स्थूल तथा निम्न श्रेणी का संघर्ष है । संघर्ष का चित्रण भी ठीक ढंग से नहीं हो पाया है । क्योंकि इन नाटकों में घटनाओं की भरमार है ।

हरिकृष्ण प्रेमी के 'संवत प्रवर्तन' (१९५९) में भी बाह्य संघर्ष है । इसमें उज्जयिनी का राजा गर्दभिल्ल सरस्वती का अपहरण करता है । उसे पत्नी बनाने की चेष्टा करता है पर सरस्वती अत्याचारी की चेष्टा सफल नहीं होने देती । कालकाचार्य के निमंत्रणानुसार शक क्षत्रप साहिमुमक और नहपाण उज्जयिनी पर आक्रमण करते हैं । युद्ध में गर्दभिल्ल वीरगति पाता है । महारानी अपने तीन वर्ष के विक्रम को सरस्वती को सौंपकर प्राण त्यागती है ।

अठारह वर्ष के बाद विक्रम उज्जयिनी आता है । वह मालव को सम्मिलित

---

१ उदयशंकर भट्ट : शक विजय, पृष्ठ ४० (प्र० सं० सन १९४९)
२ वहीं पृष्ठ ४१ ।

शक्ति की सहायता से शको पर विजय पाता है और पिता की हत्या का प्रतिशोध लेता है। इस विजय के निमित्त "विक्रम सवत" नामक नवीन सवत का प्रवतन किया जाता है।

विराज के 'सम्राट विक्रम' (१९६३) नाटक मे अवन्ती का पराक्रमी सम्राट विक्रमादित्य का शको से युद्धात्मक सघप है। विजयी विक्रमादित्य 'विक्रम सवत" का आरम्भ करता है। कुँवर वीरेन्द्रसिंह के "स्वतन्त्रता सग्राम" मे विक्रम का नको से तथा कुषाणा से क्षीण सघप है।

(१७) लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'गरुड ध्वज' (१९४५) म विदिशा के नौनिमान तथा पराक्रमी नुग सेनापति विक्रममित्र के नेतत्व म भारतीयो का आक्रामक शको से मघप है। इस सघप मे शको की पराजय होती है। अवन्ती का राज कुमार विपमशील को सौंप दिया जाता है।

प्रस्तुत नाटक सघप की दष्टि स साधारण कोटि का है।

(१८) महाकवि कालिदास के जीवन की घटनाआ को लेकर सीताराम चतुर्वेदी 'हृदय' और शिवप्रसाद मिश्र रुद्र द्वारा लिखा गया 'महाकवि कालिदास (१९८०) और गणेशप्रसाद द्विवेदी लिखित कवि कालिदास' (११६१) दोनो नाटको मे सघप का अभाव है। लेकिन मोहन राकेश कृत आषाढ का एक दिन मे सघप न महत्त्वपूण स्थान पाया है।

मोहन राकेश का आषाढ का एक दिन' नाटक महाकवि कालिदास से सम्बन्धित कुछ घटनाओ पर आधारित कल्पनाप्रधान तथा भावनाप्रधान नाटक है। सघप के कारण प्रस्तुत नाटक एकदम हृदयग्राही बन गया है।

नाटक के आरम्भ मे माता अम्बिका और कन्या मल्लिका का सौम्य सघप है। यह सघप परस्पर विरुद्ध दो विश्वासो का सघप है। यह दो दृष्टिकोणों का सघप है। यह सघप भावना और व्यवहार का सघप है।

मल्लिका अम्बिका की इकलौती, लाडली एव तरुण बेटी है। बेटी की भलाई के लिए अम्बिका प्रयास करती है कि उसका विवाह किसी योग्य युवक से हो जाय। लेकिन मल्लिका को यह अच्छा नही लगता। क्योंकि वह कालिदास से प्रेम करती है और कालिदास उसस। ग्राम प्रदेश के प्राकृतिक सौ दय के सान्निध्य म कालिदास प्रियतमा मल्लिका से प्रेरणा पाकर ऋतुसहार' महाकाव्य का निर्माण करता है।

मातुल के यहाँ कालिदास की दशा बडी दयनीय है। धनाभाव क कारण कालिदास विवाह की बात नही उठाता। मल्लिका इस बात की चिन्ता नही करती। उसका अटूट विश्वास है कि जब अच्छे दिन आ जायेंगे तब कालिदास उससे विवाह अवश्य करेगा। इस विश्वास के कारण मल्लिका अपने प्रेम को लेकर सन्तुष्ट है।

लेकिन अम्बिका जो दुनिया के स्वार्थी और भ्रमयुक्त व्यवहार से अच्छी तरह

परिचित हुई है वह। विचित्र है। अब जो व्यक्ति केवल प्रेम ही करता है कभी परिणय की बात नहीं करता उसके साथ मल्लिका का घूमना फिरना, मिलना जुलना अम्बिका को अच्छा नहीं लगता। इस स्थिति में अम्बिका और मल्लिका में इस प्रकार नोक झोंक होती है—

मल्लिका—तुम्हारे दुःख को भी जानती हूँ, फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से ही प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है।

अम्बिका—और मुझे ऐसी भावना से वितृष्णा होती है। पवित्र, कोमल और अनश्वर! हूँ!

मल्लिका—माँ, तुम मुझ पर विश्वास क्यों नहीं करतीं?

अम्बिका—तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्मप्रवंचना है। भावना में भावना का वरण किया है! मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वरण क्या होता है? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती हैं? भावना में भावना का वरण है! हूँ!

मल्लिका—जीवन की स्थूल आवश्यकताएँ ही तो सब कुछ नहीं हैं, माँ? उनके अतिरिक्त भी तो बहुत कुछ है।

अम्बिका—होगा। मैं नहीं जानती।[1]

इससे अलग-अलग स्वानुभूति पर आधारित मल्लिका और अम्बिका के परस्पर भिन्न विश्वासों का दृष्टिकोणों का संघर्ष निर्देशित होता है। परिचित व्यवहार पर आधारित दृष्टिकोण का समर्थन करने वाली अम्बिका कालिदास से घृणा करती है। वह मल्लिका को स्पष्ट शब्दों में बताती है— माँ का जीवन भावना नहीं कर्म है।

राजा कालिदास को राजकवि का आसन देना चाहता है इस बात को सुनकर मल्लिका आनन्दित होती है। परन्तु अम्बिका दुःखी चिन्तित होती है। मल्लिका को अपनी माँ बहुत कठोर नजर आती है। मल्लिका को लगता है, अब कालिदास के अच्छे दिन आयेंगे तब उन दोनों का ब्याह होगा। इस विश्वास से वह माँ से कहती है—

'मल्लिका—अब तो तुम विश्वास करती हो माँ कि मेरी भावना निराधार नहीं है?

अम्बिका—मैं कह चुकी हूँ कि मेरी सोचने समझने की शक्ति जड़ हो चुकी है।

मल्लिका—क्यों माँ? क्यों तुम्हें इतना पूर्वाग्रह है? क्यों तुम उनके सम्बन्ध में उदारतापूर्वक नहीं सोच पातीं?

---

१ मोहन राकेश—आषाढ़ का एक दिन—पृष्ठ ८९ (द्वि० सं० सन् १९६५ ई०)
२ वही, पृष्ठ १०।

अम्बिका—मेरी वह अवस्था बीत चुकी है जब यथार्थ से आँखें मूँदकर जिया जाता है।"[1]

अम्बिका की दृष्टि से मल्लिका का विश्वास एकदम निराधार है अयथार्थ है। अम्बिका कालिदास को आत्मसीमित और आत्मसंतुष्ट व्यक्ति मानती है। अम्बिका मल्लिका को समझाती है कि किसी सम्बन्ध से बचने के लिए साधनहीन और अभाव ग्रस्त दशा जितना कारण बन सकती है उससे बड़ा कारण अभावपूर्ति बन जाता है। अतः अम्बिका चाहती है कि उज्जयिनी जाने से पहले मल्लिका कालिदास से विवाह के विषय में बातचीत करे। लेकिन मल्लिका वैसा नहीं करती। उसका हृदय विश्वास करता है कि कालिदास उसे कदापि नहीं भूलेगा।

लेकिन अम्बिका की बात सही सिद्ध होती है। उज्जयिनी में कालिदास 'मेघदूत', 'रघुवंश', 'शाकुन्तल' आदि महान रचनाओं का सृजन करता है। अतः वह विपुल वैभव, प्रचुर कीर्ति पत्नी के रूप में राजदुहिता और कश्मीर का शासक पद पाता है। कश्मीर जाते समय मल्लिका स्थित ग्राम से होकर जाता है पर मल्लिका से नहीं मिलता। प्रियंगुमंजिरी मल्लिका के घर आती है और मल्लिका एवं अम्बिका के घाव पर नमक छिड़ककर चली जाती है। कालिदास में परिवर्तन को देखकर मल्लिका और अम्बिका में तीव्र अन्तर्द्वन्द्व चलता है। क्षणभर उनकी समझ में नहीं आता कि उन्हें क्या करना चाहिए।

जीवित रहने के लिए मल्लिका को अम्बिका की बात माननी पड़ती है। अम्बिका मरने से पहले मल्लिका को कालिदास के प्रतिद्वन्द्वी विलोम का सहारा देती है। इस प्रकार माँ बेटी का सौम्य परन्तु मर्मस्पर्शी संघर्ष समाप्त होता है।

प्रस्तुत नाटक में मल्लिका और कालिदास के आन्तरिक संघर्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान मिल पाया है। कालिदास प्रिय पर्वत भूमि को छोड़कर उज्जयिनी जाना नहीं चाहता। परन्तु मल्लिका चाहती है कि कालिदास उज्जयिनी चला जाय, वहाँ उसके कवित्व का व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होगा। अतः मल्लिका कालिदास को उज्जयिनी चले जाने के लिए मनाती है। इस सन्दर्भ में मल्लिका और कालिदास में जो संवाद होता है उसमें इन दोनों का आन्तरिक संघर्ष भी व्यंजित होता है—

कालिदास—तुम फिर एक बार सोचो मल्लिका।
प्रश्न सम्मान और राज्याश्रय स्वीकार करने का नहीं है। उससे बड़ा प्रश्न मेरे सामने है।

मल्लिका—और वह प्रश्न मैं हूँ। हूँ न? तुम समझते हो कि तुम इस अवसर को ठुकराकर यहाँ रह जाओगे तो मुझे सुख होगा? मैं जानती हूँ कि तुम्हारे चले जाने पर मेरे अन्तर को एक रिक्तता छा लेगी, और बाहर

[1] मोहन राकेश—आषाढ़ का एक दिन पृष्ठ १९ (द्वि० सं० सन १९६३)

भी सम्भवत बहुत सूना प्रतीत होगा । फिर भी मैं अपने साथ छल नहीं कर रही । मैं हृदय से कहती हूँ कि तुम्हें जाना चाहिए ।

कालिदास—चाहता हूँ कि तुम इस समय अपनी आँखें देख सकती

मल्लिका—मेरी आँखें इसलिए गीली हैं कि तुम मेरी बात नहीं समझते । तुम यहाँ से जाकर भी मुझ से दूर हो सकते हो ?' [1]

'कालिदास—इसका अर्थ है तुमसे बिना ...?

(मल्लिका सहसा चिहुँक उठती है ।)

मल्लिका—नहीं । विदा तुम्हें नहीं दूँगी । जा रहे हो, इसलिए केवल प्रार्थना करूँगी कि तुम्हारा पथ प्रशस्त हो । जाओ ।

(कालिदास क्षणभर आँखें में देखता रहता है । फिर मुड़कर चला जाता है । मल्लिका हाथों में मुँह छिपाये आसन पर जा बैठती है—सिसक उठती है ।)' [2]

इस प्रकार मल्लिका और कालिदास अपने मन के अन्तर्द्वन्द्व को लेकर अपने अपने मार्ग को स्वीकार करते हैं ।

कालिदास सत्ता और प्रभुता पाकर पछताते हुए मल्लिका के पास आता है और बताता है कि वह विपुल वैभव में भी सुखी नहीं हो सका । इससे व्यंजित होता है कि कालिदास में आन्तरिक संघर्ष चल रहा होगा । वह कभी मल्लिका (काव्य की प्रेरक शक्ति) की ओर तो कभी प्रियंगुमंजिरी (वैभव के आधार) की ओर आकृष्ट होता रहा । अन्त में वह वैभव से मुक्त होकर नये सिरे से जीवन यापन करने की इच्छा से मल्लिका के पास आता है । लेकिन कालिदास मल्लिका के 'वर्तमान' से जब हो परिचित होता है उद्विग्नता से वापस चला जाता है । पुनः एक बार मल्लिका की आशा चूर चूर हो जाती है ।

वस्तुतः मल्लिका का प्रत्येक क्षण कालिदास की प्रतीक्षा में बीतता रहा है । ऐसी स्थिति में यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि मल्लिका का समर्पित जीवन अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त नहीं रहा । हाँ यह सत्य है कि मल्लिका और कालिदास का अन्तर्द्वन्द्व जितना वाणी में प्रकट होना चाहिए था उतना नहीं हुआ है । पर इस स्थिति के कारण ही प्रस्तुत नाटक स्मरणीय बन पड़ा है ।

डा० प्र० रा० भुपटकार का मत द्रष्टव्य है—

कालिदास एवं मल्लिका पूरा नाटक इन दोनों चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्व की नींव पर खड़ा है । कौशल यह है कि इस द्वन्द्व को किसी चरित्र ने कहीं वाणी नहीं दी है । लेकिन अन्तर्द्वन्द्व का यह मौन उक्त नाटक में कहीं अधिक मुखर बन पड़ा है ।

---

१ मोहन राकेश—आषाढ़ का एक दिन—पृ० १९ (द्वि० सं० सन् १९६३ ई०)

२ वही पृ० ४३-४४ ।

अन्तर्द्वन्द्व की वह ध्वन्यात्मकता ही इस नाटक का सबसे रुचिर अंग है।[1]

इस वस्तु स्थिति के कारण ही इस नाटक में प्रखर बाह्य संघर्ष को विशेष स्थान नहीं मिला है। मल्लिका और कालिदास का आन्तरिक संघर्ष अतिशय सूक्ष्म और श्रेष्ठ श्रेणी का संघर्ष है। प्रस्तुत संघर्ष प्रेम भावना और व्यवहार से सम्बंधित भावना का संघर्ष है। इन सम्भावनाओं में से किसी एक भावना की विजय नहीं हुई है। अतः मल्लिका और कालिदास का आन्तरिक संघर्ष समाप्त नहीं हुआ है।

मल्लिका और अम्बिका का बाह्य संघर्ष भी सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का संघर्ष है। दोनों भी सद्भावनाओं का स्वतंत्र संघर्ष कर रही हैं। परिस्थिति विशेष में अम्बिका की सद्भावना की विजय होती है। यह विजय स्वाभाविक विजय है।

(१९) वीर योद्धा यशोवर्मन का आक्रामक हूणों से जो संघर्ष होता है उसे आधार बनाकर डा० दशरथ ओझा ने 'स्वतंत्र भारत" (१९४७) हरिकृष्ण प्रेमी ने 'शपथ (१९५१) और विष्णु प्रभाकर ने समाधि' (१९५२) की रचना की है।

स्वतंत्र भारत नाटक में दिखाया गया है कि तूरमाण के सेनापतित्व में बर्बर हूण गांधार, तक्षशिला और पुरुषपुर को जीत कर मालवा पर आक्रमण करते हैं। इस आक्रमण का प्रतिकार मगध सम्राट बालादित्य से नहीं होता। क्योंकि उस पर अहिंसावादी बौद्धों का प्रभाव है। इस विकट स्थिति में वीर योद्धा यशोवर्मन खण्डित राज्यों की सेना का संगठन करता है हिन्दू जनता को आत्म सम्मान और देश मर्यादा की रक्षा के लिए आक्रामक हूणों से संघर्ष करने को प्रोत्साहन देता है। लेकिन आरम्भ में यशोवर्मन को हूणों से पराजित होना पड़ता है।

इस पराजय के उपरान्त यशोवर्मन और आचार्य वासुरत कूटनीति से काम लेते हैं और हूणों को पराजित करते हैं। बन्दी मिहिरकुल को बालादित्य के आदेशानुसार प्राणदण्ड दिया जाता है। मथुरा के समीप तूरमाण को भी पराजित किया जाता है।

इस नाटक में बाह्य संघर्ष का मुख्य आधार यशोवर्मन की स्वाधीनता रक्षा सबंधी संघर्षशील इच्छा है।

हरिकृष्ण प्रेमी के शपथ नाटक में भी युद्धात्मक बाह्य संघर्ष है। विष्णुवर्धन (यशोवर्मन) देशप्रेमी तथा महत्त्वाकांक्षी योद्धा के रूप में जनता को विदेशी आक्रामकों से लड़ने के लिए उत्तेजित करता है। जनता में स्वावलम्बन का भाव, निर्भयता आत्मविश्वास देश के प्रति कर्त्तव्य भावना को जगाता है। एरण के रण स्थल में हूणों से लड़ते हुए विष्णुवर्धन के पिता का देहान्त हुआ था। इस बलिदान में विष्णुवर्धन में प्रतिशोध की आग भड़क उठती है। वह जनता के सामने प्रतिज्ञा

१ डा० प्र० रा० भुपटकर-हिन्दी और मराठी के एतिहासिक नाटक तुलनात्मक विवेचन-पृष्ठ ३७३ (प्र० सं० सन १९७०)

हुई है। दशमर के आचाय और छात्र भी देशरक्षा के लिए सतक हुए हैं। कालमणि के शिष्य देशोद्धार के लिए प्रयत्नशील हुए हैं। कालमणि जयन्त से कहते हैं–'देश की रक्षा राजा की सेना नहीं करती भद्र। देश की प्रजा करती है।'[1]

आचाय कालमणि की योजना के अनुसार केशवचन्द्र हूणो को पाठ पढाने के उद्देश्य से अवन्ती के हूण क्षत्रप खखार की कन्या पाती का, खखार के मन्त्री तोशल की कन्या घाती का और खखार के सेनापति गुजल कन्या राती का अपहरण करता है। इससे हूणों का घमण्ड चूर चूर हो जाता है। अब हूण सोचते हैं कि यदि हम अनीति करेंगे तो हमारी तीन कन्याओं के साथ भी उत्तेजना में शत्रु यही कर बठेगा। अत क्षत्रप खखार आचाय कालमणि से समझौता करता है। अपहृत हूण कन्याओं के प्रति भारतीयों के सद्व्यवहार को देखकर खखार प्रभावित होता है। वह हूणो द्वारा अपहृत जयन्ती और गौरी (मालव जयन्त की पुत्रियो) को मुक्त कर देता है। आचाय कालमणि के कहने के अनुसार क्षत्रप खखार भारतीयों से रक्त-सम्बन्ध जोडने के लिए पाती का देवदत्त से, घाता का सत्यजित से और राती का यनसेन से विवाह कर देता है। केशवचन्द्र का जयन्ती से विवाह होता है। सघष समाप्त होता है।

प्रस्तुत नाटक मे राजनीतिक सघष के साथ-साथ सास्कृतिक सघष है। यह सघष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का सघष है। इस सघष मे भारतीयो की सुसस्कृत विचारधारा की जीत हुई है।

(२१) डा० लक्ष्मीनारायण लाल का 'कलकी' (१९६९) नाटक प्रतीकात्मक कल्पनाप्रधान तथा बाह्य सघष प्रधान ऐतिहासिक नाटक है। इसमे उस समय का चित्र अकित किया गया है जिस समय भारत पर बबर हूणो के आक्रमण पर आक्रमण हो रहे थे और भारत का सब कुछ लूटा जा रहा था। आक्रामको का प्रतिकार करने का बल न सामन्तो म था न जन साधारण म। सामन्त वग लोक कल्याण के कत्तव्य को ताक पर रखकर गुलछर्रे उडाने मे मशगूल था। जन साधारण कभी विद्रोह न करे इसलिए सामन्त उस पर अनियन्त्रित अधिकार जमाने की चेष्टा करते थ। अपनी विलासिता कत्तव्य विमुखता निष्क्रियता और निर्वीयता को ओट मे रखकर सामन्तो ने तान्त्रिकों की तन्त्र विद्या की सहायता से लोगो को अन्धविश्वासों मे फँसा कर अपनी ही तरह निष्क्रिय और निर्वीय बनाया। व लोगो को कमवीर के बदले क्रियाहीन और भाग्यविधाता के बदले भाग्याधीन बना रहे थ।

वस्तुत यह चित्र किसी भी धूत्त कुटिल षडयन्त्री स्वार्थी, विलासी, कत्त व्य विमुख निष्क्रिय शासक के काल का हो सकता है। इसलिए प्रस्तुत नाटक प्रतीकात्मक है। यह भी प्रतीकात्मक है कि यदि कोई जागरूक नागरिक 'प्रस्थापितसत्ता'

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र–वीरशख–पृष्ठ १३ (प्र० स सन १९६७ ई०)

करता है—'मैं माँ की ज्वालामुखी सी प्रज्वलित आँखों की शपथ लेकर कहता हूँ कि इन बर्बर विदेशियों के आक्रमण से भारतभूमि की रक्षा करूँगा।'[1] 'मैं पिताश्री की मृत्यु का प्रतिशोध लेकर ही शान्त नहीं हो जाऊँगा, बल्कि भारत माँ के वक्ष-स्थल पर अपने अपावन और क्रूर पाँव रखने की उद्दण्डता करने वाले समस्त विदेशियों से भारत भूमि को मुक्त करूँगा।'[2]

इस प्रकार विष्णुवर्धन स्वयं मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए आक्रामकों से प्रतिकार करने को तत्पर होता है और संगठित जनता को भी तत्पर कराता है। सभी मिलकर हूणों से संघर्ष करते हैं और हूणों को मालव भूमि से खदेड़ देने में सफलता पाते हैं। इस संघर्ष में मिहिरकुल का वध होता है।

विष्णु प्रभाकर के 'समाधि' नाटक में भी यशोधर्मन का हूणों से यशस्वी संघर्ष है। यशोधर्मन हूणों के नाश के लिए युद्ध चाहता है। भिक्षुणी आनन्दी भी हूणों के नाश के लिए युद्ध चाहती है। हूणों ने बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के साथ अमानुषिक व्यवहार किया है। अतः भिक्षुणी आनन्दी में प्रतिशोध की आग धधक रही है। वह गाँव गाँव जाती है और नागरिकों को जगाती है। उनमें आक्रामकों से लोहा लेने के लिए स्फूर्ति भर देती है।

यशोधर्मन और सेनापति द्वारा मिहिरकुल और उसके सेनापति को घायल कर देते हैं—पकड़ लेते हैं। मिहिरकुल की पत्नी की प्रार्थना सुनकर मिहिरकुल को मुक्त किया जाता है। आनन्दी को यह अच्छा नहीं लगता। तब यशोधर्मन प्रतिज्ञा करता है—

'आनन्दी! यह अच्छा ही हुआ। मेरी तलवार अभी प्यासी है। मैं आज हूणों का सर्वनाश करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि हूणों को इस देश से निकाल बाहर करूँगा।'[3] इस प्रतिज्ञा के अनुसार हूणों को मालव से निकाल बाहर करने में सफलता मिलती है। परन्तु इस युद्धात्मक संघर्ष में आनन्दी का बलिदान होता है।

(२०) लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'वत्सराज' (१९६०) में स्वातन्त्र्य प्राप्ति की कामना से वीर भारतीयों का आक्रामक हूणों से संघर्ष है। इस संघर्ष में अवन्ती विद्यापीठ के आचार्य कालमणि यौद्धिकता से काम लेते हैं। उनका प्रिय शिष्य वाराहक राजकुमार कारवचन्द्र आचार्य कालमणि की योजनाओं के अनुसार अपने साथियों के सहयोग से हूणों से संघर्ष करता है।

राज्यसत्ता के मिट जाने के कारण प्रजा स्वयं अपनी रक्षा के लिए प्रवृत्त

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी—शपथ—पृष्ठ १८ (द्वि० सं० सन् १९५४ ई०)

२ हरिकृष्ण प्रेमी—शपथ पृष्ठ ९० (द्वि० सं० सन् १९५४ ई०)

३ विष्णु प्रभाकर समाधि—पृष्ठ ७१ (प्र० सं० सन् १९५२ ई०)

हुई है। देशभर के आचार्य और छात्र भी देशरक्षा के लिए सतर्क हुए हैं। कालमणि के शिष्य देशोद्धार के लिए प्रयत्नशील हुए हैं। कालमणि जयन्त से कहते हैं– देश की रक्षा राजा की सेना नही करती भद्र। देश की प्रजा करती है।"[1]

आचार्य कालमणि की योजना के अनुसार केशवचन्द्र हूणो का पाठ पढाने के उद्देश्य से अवन्ती के हूण क्षत्रप खखार की कन्या पार्ती का, खखार के मत्री तोशल की कन्या घाती का और खखार के सेनापति गुजल कन्या राती का अपहरण करता है। इससे हूणो का घमण्ड चूर चूर हो जाता है। अब हूण सोचते हैं कि यदि हम अनीति करेंगे तो हमारा तीन कन्याओ के साथ भी उत्तेजना मे शत्रु यही कर बैठेगा। अत क्षत्रप खखार आचार्य कालमणि से समझौता करता है। अपहृत हूण कन्याओ के प्रति भारतीयो के सद्व्यवहार को देखकर खखार प्रभावित होता है। वह हूणो द्वारा अपहृत जयन्ती और गौरी (मालव जयन्त की पुत्रियाँ) को मुक्त कर देता है। आचार्य कालमणि के कहने के अनुसार क्षत्रप खखार भारतीयो से रक्त-सम्बन्ध जोडने के लिए पार्ती का देवदत्त से, घाती का सत्यजित से और राती का यज्ञसेन से विवाह कर देता है। केशवचन्द्र का जयन्ती से विवाह होता है। सघर्ष समाप्त होता है।

प्रस्तुत नाटक मे राजनीतिक सघर्ष के साथ-साथ सास्कृतिक सघर्ष है। यह सघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का सघर्ष है। इस सघर्ष मे भारतीयो की सुसस्कृत विचारधारा की जीत हुई है।

(२१) डा० लक्ष्मीनारायण लाल का 'कल्की (१९६९) नाटक प्रतीकात्मक कल्पनाप्रधान तथा बाह्य सघर्ष प्रधान ऐतिहासिक नाटक है। इसमें उस समय का चित्र अकित किया गया है, जिस समय भारत पर बर्बर हूणो के आक्रमण पर आक्रमण हो रहे थे और भारत का सब कुछ लूटा जा रहा था। आक्रामको का प्रतिकार करने का बल न सामन्तो मे था न जन साधारण मे। सामन्त वर्ग लोक कल्याण के कर्त्तव्य को ताक पर रखकर गुलर्छे उडाने मे मशगूल था। जन-साधारण कभी विद्रोह न करे इसलिए सामन्त उस पर अनियन्त्रित अधिकार जमाने की चेष्टा करते थे। अपनी विलासिता कर्त्तव्य विमुखता निष्क्रियता और निर्वीर्यता की ओट मे रखकर सामन्तों ने तान्त्रिको की तन्त्र विद्या की सहायता से लोगो को अन्धविश्वासो मे फँसा कर अपनी ही तरह निष्क्रिय और निर्वीर्य बनाया। वे लोगों को कर्मवीर के बदले क्रियाहीन और भाग्यविधाता के बदले भाग्याधीन बना रहे थे।

वस्तुत यह चित्र किसी भी धूर्त्त कुटिल षडयन्त्री स्वार्थी, विलासी, कर्त्तव्य विमुख निष्क्रिय शासक के काल का हो सकता है। इसलिए प्रस्तुत नाटक प्रतीकात्मक है। यह भी प्रतीकात्मक है कि यदि कोई जागरूक नागरिक 'प्रस्थापितसत्ता'

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र–वीरदास–पृष्ठ १३ (प्र० स सन् १९६७ ई०)

को धक्का देने के लिए विद्रोह करता है शान्ति को आग भड़काता है तो नायक उसका दमन करने की चेष्टा करता है। परन्तु जन-साधारण क्रान्तिकारी नागरिक के बलिदान से प्रेरणा पाकर प्रस्थापित मर्यादा को तहस नहस कर देने को संगठित होता है और क्रान्ति की आग भड़काता है। ऐसी दशा में जागरूक जन अपने उद्धार के लिए कल्की अवतार की प्रतीक्षा करने के बदले स्वयं कर्मवीर एवं भाग्य विधाता बनकर स्वोद्धार का प्रयास करेंगे। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक 'प्रतीकात्मक ऐतिहासिक नाटक' है।

'कल्की' नाटक में बाह्य संघर्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। इस नाटक का नायक हूल्प ठीक चौदह वर्ष बाद पुर में प्रवेश करता है। पुर में प्रवेश करने के पश्चात् युवा जागरूक एवं युयुत्सु हूल्प का उस अवधूत और तांत्रिक से संघर्ष छिड़ता है जो लोगों पर अपना निरंकुश अधिकार जमाने के हेतु लोगों को अंध विश्वासों भ्रम जाल झूठा आशाओं में फँसाकर निष्क्रिय निश्चेष्ट बनाते हैं और मृगमरीचिका के पीछे दौड़ाते हैं।

चौदह वर्ष पूर्व हूल्प का पिता अकुल्सम पुरपति था। अकुल्सम ने लोगों पर अपना अनियंत्रित प्रभुत्व स्थापित करने के लिए लोगों को अंधविश्वासों में फँसा कर निष्क्रिय बनाया था। उस समय हूणों का भयंकर आक्रमण हुआ था। तब हूल्प ग्यारह वर्ष का था। वह छोटा सा धनुष और तीर लेकर आक्रामक हूणों से लड़ने दौड़ा था। लेकिन अकुल्सेम ने हूल्प को पकड़ कर तंत्रविद्या का रहस्य जानने के लिए विक्रम विहार में भेज दिया। उस समय साम ने अकुल्सेम ने नगरवासियों से कहा था कि उसने पुत्र हूल्प को विक्रमविहार इसलिए भेजा है कि वहाँ हूल्प लोकहित के लिए तंत्र विद्या का रहस्य जानेगा। लोगों की समझ में नहीं आया कि चालाक अकुल्सेम ने इस प्रकार नगर में हूल्प के रूप में उभरते तेजस्वी वीरत्व का दमन किया है।

जब नगर कृषि, व्यवसाय मर्यादा धर्म सब कुछ उन बर्बर लोगों से लूटा फूँका जा रहा था तब अकुल्सेम गिरि शिखर पर पहुँचकर लोगों से कहता रहा था—'ठहरो-ठहरो।' लेकिन कोई जाग नहीं बना और कोई नहीं लड़ा। अब लोगों का अंधविश्वास है कि नगर की रक्षा के लिए अकेला अकुल्सम लड़ता रहा और घायल होकर गिरिशिखर पर पहुँच गया। वहाँ पर उसने अंतिम साँस ली।

चौदह वर्ष के बाद हूल्प नगर में प्रवेश करता है वह विक्रम विहार से भागकर आया है। वहाँ की भयानक साधना में उसका दम घुट रहा था। वह लोगों में अदम्य उत्साह और वीरत्व जगाकर नगर को एक नया रूप प्रदान करने की महत्त्वाकांक्षा से पुर में प्रवेश करता है। उसमें कई प्रश्नों के साथ विद्रोह की विधायक क्रान्ति की आग भड़क उठी है। यहीं से नाटक का आरम्भ होता है।

पुर मे प्रवेश करते ही हूल्प प्रश्न करना आरम्भ कर देता है। अपने नगर म 'प्रश्नकर्ता' को देखकर कृपक भयभीत हो जाते हैं। वे अकुलक्षेम पुत्र हूल्प को पहचानते हैं। हूल्प कृपकों के अन्धविश्वास पर प्रहार करते हुए कहता है–

'हूल्प–मैं अकुलक्षेम का पुत्र हूँ, यह सच्चाई तुममे क्रोध नही पैदा करती।

पहला कृषक–अकुलक्षेम अन्त म हमारे लिए लडा था।

हूल्प–नही, केवल अपने लिए

दूसरा कृषक–हमने सारा अधिकार उसे सौंप दिया था।

हूल्प–इसके लिए तुम म कभी द्वन्द्व सघप नही हुआ ?

तीसरा कृषक–द्वन्द्व सघप यह शब्द तू कहाँ से सीख आया।

हूल्प–"ओह ! उसने तुम्हे कुछ भी नही जानने दिया। अपने इन्द्रजाल म फँसाकर जो नहीं है, वह प्रकट किया, जो अप्रासगिक है उसे प्रसग बनाकर तुम्हारे कण्ठ म बाध दिया।"

इतना कहने पर भी नगर निवासी अन्धविश्वास से मुक्त होकर अपनी यथार्थता को जानने के लिए प्रवृत्त नही होते। क्योंकि उन्हे चडी मडप म ठहरे हुए धूर्त अवधूत ने बताया है कि वह नगरवासियो की भलाई के लिए कल्की अवतार की साधना कर रहा है। लोग अवधूत को महासिद्ध मानते हैं और उसके कहने के अनुसार प्रश्न करना महापाप समझते हैं। तीनों कृषक हूल्प को बताते हैं—

तीसरा कृषक–हमें यही बताया गया है कि एक सहस्र शवसाधना पूरी होते ही इस नगर म कल्की अवतार होगा।

पहला कृषक–जसे ही वह इस नगर म आयेगा, यह सारा देश धन धान्य से भर आएगा। यह रोग अधकार सब मिट जायगा।

दूसरा कृषक–वह महापराक्रमी श्वेत अश्व पर चढा आयगा।

तीसरा कृषक–हम यही विश्वास दिया गया है वह इस धरती पर सतयुग लायेगा।'[२]

कृपकों की अन्धविश्वासपूर्ण बातें सुनकर हूल्प धूर्त अवधूत का भण्डा फोडने के लिए चडी मडप के पास जाता है और निर्भीकता से अवधूत को ललकारता है—

अमावस्या की आधी रात बीत गई। अवधूत यदि तुममे साहस है तो प्रत्यक्ष मेरे सामने आ। ओ ढोंगी, पाखण्डी, अपनी अधूरी दुनिया से बाहर निकल। (सहसा) क्या कहा ? तू बाहर नही निकलेगा। तो सुन मैं पूरे नगर से चिल्ला चिल्लाकर कहूँगा–तू कायर है क्लीव है झूठ है।'

१ डा० लक्ष्मीनारायण लाल–कल्की–पृष्ठ ५ (प्र० स० सन् १९६९)

२ वही पृष्ठ ९–१०।

३ लक्ष्मीनारायण लाल–कल्की–पृष्ठ–१३ (प्र० स० सन् १९६९ ई०)

अवधूत बाहर निकलकर हुल्प को भाग जाने के लिए धमकाता है। वह एक रहस्य भी प्रकट करता है—

'अवधूत–तेरे पिता अकुल्सेम से मेरी अंतिम भेंट उस गिरि शिखर पर हुई थी।

हेरूप– उन्होंने ही मुझे यहाँ भेजा ?

अवधूत– सुन सुन सुन मेरी बात

हेरूप– पुरपति होकर जिसने इस नगर को व्यवस्था निर्वीयता के पथ पर डाला, अपनी सत्ता को यहाँ स्थापित रखने के लिए अपने अपरिवर्तनीयता के भ्रम फैलाए, उसी ने अपनी कायरता-पूर्ण मृत्यु के बाद अब मुझे यहाँ भेजा।'[1]

अवधूत हुल्प को तंत्र विद्या में फँसाने का प्रयास करता है। पर हुल्प अवधूत की कुटिलता पर कठोर आघात करता है और पिता के कुकर्म के बारे में कहता है।

हेरूप–(अवधूत से) समझने सारे रहस्य जो यहाँ थे रहस्य। मनुष्य को पहले दिशाहीन करना व्यक्ति और सामाजिक दोनों स्तरों पर निर्वीर्य कर उन्हें नपुंसक बना देना फिर उनकी गणना करते रहना उनके यथार्थ में उन्हें बलात् की तरह झोंककर अयथार्थ के जंगल में डाल देना और हर क्षण सत्य को भ्रम में, विद्रोह को स्वीकार में बदलते जाना।[2]

हुल्प जानता है कि अकुल्सेम के पिता में एक ओर अकुल्सेम का महानतर अधिकार था, तो दूसरी ओर लोग विद्रोह के अधिकार से वंचित जा रहे थे। अब हुल्प लोगों में विद्रोह की आग भड़काकर उस प्रस्थापित व्यवस्था को तहस-नहस कर देना चाहता है।

परन्तु धूर्त अवधूत "प्रस्थापित व्यवस्था" की रक्षा के लिए लोगों को उसी प्रकार 'भुलावे' में डालना चाहता है जिस प्रकार अकुल्सेम ने डाला था। अवधूत हुल्प को बताता है कि वह उसके (हुल्प के) पिता का भूत है। भूत के रूप में अकुल्सेम इसलिए आता है कि वह जानता था कि हुल्प कभी वापस आकर इस नगर में अकुल्सेम के विरुद्ध विद्रोह फैलायेगा। यह अकुल्सेम के लिए असह्य था। वह मरकर भी अपना अस्तित्व सुरक्षित रखने के हेतु पुत्र के विद्रोह को निष्फल कर देने को अवधूत के रूप में नगर में आया है। उसने लोगों को दिशाहीन प्रश्नहीन, निर्वाक, निष्क्रिय कर दिया है। सब अपनी दुर्दशा से मुक्त होने के लिए कल्की की प्रतीक्षा में हैं। लोगों में जब भी कुछ महान और शुभ जन्म लेने लगता है अवधूत उसे काट देता है।

हेरूप को अपने जाल में फँसाने के लिए अवधूत लोगों को आज्ञा देता है कि

---

१ डा० लक्ष्मीनारायण लाल—कल्की—पृ०–१४ (प्र० सं० सन १९६९ ई०)

२ वही पृ० १६

वे हेरूप को राजा (पुरपति सामत) के रूप म अभिषिक्त करें। उस समय महातान्त्रिक का आगमन होता है। हेरूप को नये वस्त्र और अलकारो से सजाया जाता है। लेकिन हेरूप के मन मे विद्रोह की चिनगारी सुलग रही है।

जब तान्त्रिक के कहन पर दोना स्त्रियां हेरूप को अजन लगाने को होती हैं और वद्ध मेखला बाँधने को होना है हेरूप तीना पर चोट करता है। तारा मदिरा पिलाने को होती है तो हेरूप घट पर हाथ मारता है। जातव अभिनय के समय हेरूप घायल सिंह की तरह तडपकर तान्त्रिक पर टूट पडता है। यदि तारा बढकर हेरूप से तान्त्रिक को मुक्त न कर देती तो हेरूप तान्त्रिक की हत्या ही कर देता है। हेरूप मुक्त हुए तान्त्रिक से पूछता है--

हेरूप- शव क्यो ? मुझे मनुष्य की साधना करन दो।

तान्त्रिक-शव क्या है ?

हेरूप- जो जड है, प्रश्नहीन है।

तान्त्रिक-मूर्ख, यह निष्क्रिय शिव है राग विराग से रहित इच्छा-द्वेष से विनिमुक्त। यह साक्षात आनन्दभरव है।

हेरूप- शव-साधना।

तान्त्रिक-यथाथ परिवतन के लिए।

हेरूप- शव साधना के इतने दिन बीत गय परिवतन क्यो नही हुआ ?

तान्त्रिक-यह उस क्षण होगा, जब यह शव जीवित मनुष्य की भाँति बातें करेगा।

हेरूप- कब करेगा।

तान्त्रिक-औंधे पड हुए शव का मुख जब साधक की ओर घूम जायगा।

हेरूप- (स्वप्न देखता सा) हाँ यथाथ को यदि बदला जा सकता है, तो केवल उसका सामना करके ही। अब औंधा पडा मुख सामने आएगा।

तान्त्रिक-पापी अधर्मी

हेरूप- यथाथ का सामना करके ही, किसी तान्त्रिकता से नही।

तान्त्रिक-'हत्यारा।'[1]

अवधूत का इशारा पाकर महातान्त्रिक हेरूप का जबरदस्ती से विक्रम विहार की ओर ले जाता है। जाते समय हेरूप न तीसर कृषक को विश्वास दिलाया कि उसम साहस है हम सब शव नही, बोधिसत्त्व हैं। इस विश्वास के बल पर तीसरा कृषक गिरिशिखर पर जाता है। वहाँ उस पता चलता है कि अकुलक्षम पुर रक्षा के लिए नही लडा था, बल्कि कृपाण से उसन आत्म हत्या कर ली है। तीसरा कृषक लोगों को बताता है कि अकुलक्षेम ने नागरवासियों के साथ विश्वासघात किया है। इसम अधविश्वासी नगरवासियो की आँखें खुल जाती है। सभी में विद्रोह की,

1 डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल-कल्की--पृ० ३८ ३९ (प्र० स० १९६९ ई०)

क्रान्ति की आग भड़कती है। सब कुटिल अवधूत को मारने दौड़ते हैं। अवधूत भय भीत होकर पीछे की ओर भागता है। क्रान्तिकारी हल्प से प्रेरणा पाकर सभी अपनी यथार्थता, वास्तविकता का ज्ञान लेते हैं और परावलम्बिता से मुक्त होते हैं। अपने उद्धार के लिए सभी कर्म प्रवृत्त होते हैं।

प्रस्तुत नाटक में क्रान्तिकारी हल्प का धूर्त शासक का घातक नीति से संघर्ष है। हल्प का किसी व्यक्ति से संघर्ष नहीं है। वह तो घातक परम्पराओं, अंध-विश्वासों को सुरक्षित रखने की चेष्टा करने वालों के विरुद्ध संघर्ष करता है। हल्प ने प्रस्तुत संघर्ष लोगों को सोचने विचारने तथा क्रान्ति करने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से छेड़ा है। इस उद्देश्य में हल्प को अत्यधिक सफलता मिल जाती है। अतः प्रस्तुत संघर्ष उच्चतम श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यह वैचारिक तथा सूक्ष्म संघर्ष है।

(२२) स्थाणेश्वर के युवराज राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन से सम्बन्धित नाटकों में बाह्य संघर्ष की प्रधानता है। श्यामकृष्ण वर्मा 'राजा' के राज्यवर्द्धन (१९५३) नाटक में स्थाणेश्वर और मालव का संघर्ष दिखाया गया है। यह दो राज्यों के संघर्ष के रूप में समूह-समूह का संघर्ष है। राज्यवर्द्धन की बहन राज्यश्री को पाने के लिए मालव नरेश देवगुप्त स्थाणेश्वर पर आक्रमण करना चाहता है इससे संघर्ष का आरम्भ होता है।

राज्यश्री का ब्याह कान्यकुब्ज नरेश ग्रहवर्मा से हो जाने के कारण देवगुप्त गौडाधिपति शशांक नरेन्द्रगुप्त की सहायता पाकर कान्यकुब्ज पर आक्रमण करता है और ग्रहवर्मा की हत्या कर राज्यश्री को बंदी बनाता है। उस समय बहन की मुक्ति के लिये राज्यवर्द्धन देवगुप्त पर आक्रमण करता है। देवगुप्त और शशांक की सम्मिलित वाहिनी को वह पराजित करता है। पर शशांक चालाकी से राज्यवर्द्धन की हत्या करता है।

वैकुण्ठनाथ दुग्गल के 'हर्षवर्द्धन' (१९६०) नाटक में भी उक्त संघर्ष है। लेकिन इसमें यह भी दिखाया गया है कि भाई राज्यवर्द्धन की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए हर्षवर्द्धन शशांक से युद्ध करने को कन्नौज आता है। शशांक भाग जाता है। हर्षवर्द्धन कन्नौज के सिंहासन पर विराजमान होता है।

डा० गोविन्ददास का 'हर्ष' (१९५७) संघर्ष की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस नाटक में बाह्य संघर्ष के साथ-साथ क्षीण आंतरिक संघर्ष भी है। इसमें हर्ष का बौद्धधर्म विरोधी शशांक और आदित्यसेन से बाह्य संघर्ष है। शशांक और आदित्य सेन मिलकर राज्यश्री तथा हर्ष की राजसत्ता को उलटने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रयत्न में शशांक और आदित्यसेन ब्राह्मणों को बौद्धों से संघर्ष करने के लिए भड़काते हैं। बोधी वृक्ष को काटते हैं। तब हर्ष महाबलाधिकृत भण्डी और माधवगुप्त धर्मश्री

को उचित दण्ड देते है।

इसमे हप का परम्परा के विरुद्ध भी सघष है। हप विधवा राज्यश्री को कान्यकुब्ज के राजसिहासन पर बिठाना चाहता है। परन्तु हिन्दू परम्परा के अनुसार कोई स्त्री सिहासनारूढ नही हो सकती और कोई विधवा स्त्री मगल काय मे भाग नही ले सकती। हप इस परम्परा स सघष कर नवीन परिपाटी चलाना चाहता है। इस सन्दभ मे वह राज्यश्री से कहता है—"अमुक बात आजपयन्त नही हुई है इस लिए वह आज और भविष्य म भी नही हो सकती, यह मैं नही मानता। यदि कोई बात आजपयन्त नही हुई है और वह उचित है तो अवश्य होनी चाहिए मैं राजकाज म भी स्त्रियों को पुरुषो के समान अधिकार देने की परिपाटी चलाना चाहता हूँ। यदि पुरुष सिहासनासीन हो सकते हैं तो स्त्रिया भी विधवा भी।"[1] हप की इस बात का विरोध कुछ कट्टर धर्मान्ध ब्राह्मण करते हैं परन्तु हप अपने मन की ही करता है।

इस नाटक म सत्ता को स्वीकार करने के सन्दभ मे हप का आन्तरिक सघष भी है। राज्यवद्धन की हत्या के बाद हप को सिहासनारूढ होना पडता है। परन्तु सिहासनासीन होने स पूव उसम आन्तरिक सघष चलता है। सिहासनारूढ हो जाय या न हो जाय–इस समस्या म वह उलझता है। क्योंकि वह मानता है कि राज्याधिकार स भोग लिप्सा बढती है और अहित हो जाता है। पर माधवगुप्त के समझाने पर हप सिहासनासीन होने का निणय करता है।

उपयुक्त तीनो नाटको म उच्च श्रेणी के बाह्य सघष की प्रधानता है। इस सघष मे योग्य पक्ष की विजय हुई है। यह स्वाभाविक विजय है।

(२३) कचनलता सब्बरवाल के 'अनन्ता' (१९५९) नाटक म भी हप और देवगुप्त का सघष है। लेकिन इस नाटक म बाह्य सघष की अपेक्षा अनन्ता का नारी सुलभ आन्तरिक सघष अधिक महत्त्व का है। मालव सम्राट बनने के लिए सघष करने का इच्छा रखने वाले पति को समझाते हुए अनन्ता कहती है—"युद्ध किया जाता है अन्याय से, मानव को मुक्ति दिलाने के उद्देश्य स, किन्तु जिस युद्ध का ध्येय केवल राज्य विस्तार ही हो–जिस युद्ध के द्वारा केवल शक्ति सचय ही किया जा सके वह मानव हत्या ही तो है।"[2] परन्तु देवगुप्त अनन्ता की उदात्त बात पर ध्यान नही देता। तब अनन्ता म आन्तरिक सघष छिड़ता है। वह अनिणय में उलझती रहती है। 'वह मेरे देवता हैं, किन्तु मैं उनकी पुजारिन होते हुए भी उनका, उनके अनेक कृत्यो का समथन नही कर पाती। सो क्यो? सोचती हू कि उनसे सम्पक नही रक्खूँगी, वह भी नही कर पाती, सो क्यो?'[3] अनन्ता कोई एक निणय

---

१ डा० गोविन्ददास—हप—पृ० ४७-४८ (छठा स० सन् १९६१)
२ कचनलता सब्बरवाल–अनन्ता पृ० १३ (प्र० स० सन् १९५९ ई०)
३ वही—पृ० २२-२३

करने में अपने को असमर्थ पाती है। एक ओर पति से प्रेम है, तो दूसरी ओर मानवता से सम्बन्धित उसके उदात्त विचार हैं। ऐसी दशा में उसे क्या करना चाहिए उसकी समझ में नहीं आता। फिर भी वह पति को समझाती रहती है। वह उस समय भी पति को समझाती है जब वह मौखरि वंश और यवन वंश का नाश करना चाहता है। परन्तु देवगुप्त अनन्ता के उदात्त विचारों की उपेक्षा कर कहता है—"जब तक मौखरि और यवन वंश का नाश नहीं कर लेता तब तक हृदय को शान्ति नहीं मिल सकती अनन्ता।"[1] ऐसी दशा में अनन्ता न पति को दुष्कृत्यों से रोक पाती है न उसका साथ दे सकती है। फिर भी वह राज्यश्री के सिन्दूर की रक्षा करने का प्रयास करती है परन्तु असफल रहती है। अनन्ता का आन्तरिक संघर्ष बढ़ता ही रहता है। इसी में ही उसका करुण अन्त होता है। देवगुप्त की मृत्यु के बाद विष प्राशन कर वह आत्म हत्या कर लेती है।

अनन्ता का आन्तरिक संघर्ष दो सम्भावनाओं का संघर्ष है। अनन्ता स्वयं अन्त तक निर्णय नहीं कर पाती कि किस भावना को प्रश्रय दिया जाय? वह न पति-भक्ति को त्याग सकती है न मानवता को। प्रस्तुत आन्तरिक संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष में किसी सम्भावना की जीत नहीं हुई है। दोनों सम्भावनाएँ अनन्ता की मृत्यु तक प्रबल रहती हैं। इन आन्तरिक संघर्ष के साथ उसकी मृत्यु होती है।

(२४) डा० गोविन्ददास का 'सिंहलद्वीप' नाटक भी बौद्ध युग से सम्बन्धित है। इसमें परस्पर विरुद्ध विचारधाराओं के बाह्य संघर्ष को स्थान मिला है। इसमें बौद्ध और हिन्दू का संघर्ष है। इस नाटक का नायक विजय बुद्ध के विचारों से प्रभावित है। विजय के पिता सिंहल बाहु के राजा हैं। विजय एक नए समाज के निर्माण की महत्त्वाकांक्षा रखता है। इस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए विजय विरोधियों से टक्कर मोल लेता है। वह मानता है—"आर्यों के धर्म और संस्कृति का मूल आधार है वर्ण व्यवस्था। बुद्ध ने वर्ण व्यवस्था पर महान कुठाराघात किया है।"[2] अतः विजय भी वर्ण-व्यवस्था रहित समाज का निर्माण करने की आकांक्षा रखता है। वह सभी वर्णों के लोगों को समान मानता है। वह अपने सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए अस्पृश्यों की बस्ती में जाता है, उन्हें गले लगाता है उन्हें बताता है कि अस्पृश्यता मानना संसार से बड़ा अधर्म और पाप है। अस्पृश्यों की बस्ती में एक सह भोज का आयोजन करता है। तब विरोधियों के द्वारा विजय के विरुद्ध अनेक षड्यन्त्र रचे जाते हैं। पर विजय अपने मार्ग पर अडिग रहता है और दृढ़तापूर्वक बताता है—"भगवान बुद्ध के जन्म के पश्चात् उनके उपदेशों की

१ कंचनलता सब्बरवाल—अनन्ता—पृ० ८३ प्र० सं० (सन् १९६०)
२ डा० गोविन्ददास—सिंहलद्वीप—(पृ० ८ सन् १९६६ ई० का संस्करण)

सुनने के उपरान्त, मैंने बीड़ा उठाया है कि इस वर्ण व्यवस्था का नाश करने में मैं कोई बात उठा न रखूँगा। ''बंग देश की जनता' इस जनता को स्वार्थी धूर्त ब्राह्मणों ने सवर्ण आर्यो ने धर्म भ्रष्ट किया है। धर्म के नाम पर अधर्म की भावनाओं से भरा है। पूजनीय माने जाने वाले सवर्ण अपूजनीय ब्राह्मणों ने, सवर्ण आर्यो ने मानव के एक बड़े समुदाय को अस्पृश्य कह धर्म के नाम पर अधर्म की घोषणा की है।''[1] सत्य और न्याय के विपरीत आज ब्राह्मणों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए मानव को पशु से भी निकृष्ट दशा उस स्पर्श योग्य भी न रहे सच्चे धर्म के स्थान पर पाखण्ड धर्म की स्थापना की है।'

युवराज विजय के क्रान्तिकारी विचारों और कार्यों को देखकर विरोधियों ने राजा सिंहल से कह दिया कि यदि युवराज विजय को देश से निष्कासित नहीं कर दिया तो देश में आपसी संघर्ष की आग भड़केगी। राजा विवश होकर पुत्र विजय को देश निष्कासन का दण्ड देता है। युवराज विजय अपने सुधारवादी साथियों को साथ में लेकर एक द्वीप चला जाना चाहता है जहाँ वर्ण भेद, जाति भेद नहीं होंगे। उसका नाम सिंहलद्वीप रखा जायगा। वहाँ महत्त्वाकांक्षी विजय की दृष्टि में समाज रचना इस प्रकार होगी इस द्वीप पर जिस समाज की रचना होगी, वह समाज वर्ण रहित, जाति रहित होगा और उस समाज में रहने वाले हर व्यक्ति को नागरिकता के पूर्ण अधिकार होंगे।'[2]

इस प्रकार इस नाटक में विजय का घातक रूढ़ियों से ग्रस्त समाज से वैचारिक एवं क्रान्तिकारी संघर्ष है। प्रस्तुत संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष का मूल कारण क्रान्तिकारी विजय की उदात्त महत्त्वाकांक्षा है।

वास्तव में नाटककार ने इस संघर्ष के द्वारा समसामयिक समस्या का निर्देश किया है। प्रस्तुत संघर्ष घातक जातिवाद तथा धर्मवाद के विरुद्ध है। अतः प्रस्तुत संघर्ष समाप्त नहीं हुआ है बल्कि वह चल रहा है।

(२५) कालिदास कपूर के धर्म विजय (१९६४) में बौद्धों और ब्राह्मणों का संघर्ष है। इन्द्रप्रस्थ के महाराज आदित्यवर्धन का बड़ा पुत्र बौद्ध धर्म से प्रभावित है। राजकुमार कौण्डिन्य बौद्ध भिक्षु नागसेन की सुधारवादी बातों का बहुत आदर करता है। ये दोनों मिलकर घातक ब्राह्मणवाद और पुरोहितवाद से संघर्ष करते हैं। साथ साथ लोगों को भी इस संघर्ष के लिए उत्तेजित करते हैं। दूसरी ओर से राज पुरोहित चक्रपाणि और उसके साथी बौद्ध धर्म के बारे में लोगों में असन्तोष फैलाते रहते हैं। वे महाराज की दुर्बलता से लाभ उठाकर प्रजा पर मन माना अत्याचार

१ डा० गोविन्ददास–सिंहलद्वीप–पृ० १४ (स० सं० का १९६६)
२ वही–पृ० २३ २४।
३ वही–पृ० २६।
४ वही–पृ० ५५।

भी करते हैं। भगवान के नाम पर स्वर्ण, अन्न और गोरस से अपना घर भरते हैं। बौद्धधर्म का विरोध करते हुए चक्रपाणि कहता है—"भला बौद्ध धर्म भी कोई धर्म है। न तो उसमें वर्ण व्यवस्था है, न स्पर्शास्पर्श का विचार। देवताओं को भी जान वाला पवित्र अग्नि का भी वे विरोध करते हैं।[1] अतः ब्राह्मणवाद की रक्षा करने और बौद्ध धर्म को पराजित करने के लिए राजपुरोहित चक्रपाणि राजकुमार कौण्डिन्य के बढ़ते प्रभाव को रोकने का प्रयत्न करता है। वह छोटी महारानी को बहकाकर बड़े राजकुमार कौण्डिन्य को राजद्रोही ठहराकर छोटे महाराज को सिंहासन का उत्तराधिकारी बनाने का षड्यन्त्र रचता है। राजा महाराज भी बहकाते हैं और कौण्डिन्य तथा भिक्षु नागसेन को पकड़वाकर उन्हें निर्वासन का दण्ड दिलवाते हैं। तब राजकुमार कौण्डिन्य देश से बाहर जाने के पहले महाराज से स्पष्ट कह देता है—ब्राह्मण धर्म और पुरोहितवाद के कारण समाज में जो असंतोष, अंध विश्वास तथा भ्रष्टाचार व्याप्त है उसे समाप्त करने के लिए गौतम का धर्मवाद उपयुक्त साधन है। यों कहना अधिक उपयुक्त होगा कि पुरोहितवाद के दोष को समाप्त करने के लिए ही तथागत ने समानता, सत्य और अहिंसा का प्रचार किया।[2] ऊँच नीच के भेद भाव के आधार पर भूमि और सम्पत्ति का अधिक भाग समाज के थोड़े से व्यक्तियों के पास एकत्रित हो गया है। वे मदान्ध होकर विलासिता तथा अत्याचार में डूब गए हैं। शेष जनता निर्धन होकर अनेक प्रकार की यातना भुगत रही है।[3] परन्तु राजा अपने निर्णय में परिवर्तन नहीं करता है। अतः राजकुमार कौण्डिन्य कम्बुज (कम्बोडिया) जाता है और वहीं बौद्ध धर्म के प्रसार में जीवन यापन करता है।

प्रस्तुत संघर्ष समाज सुधार तथा धर्मसुधार के सन्दर्भ में परस्पर विरुद्ध विचारों तथा धारणाओं का संघर्ष है। अतः प्रस्तुत संघर्ष समाप्त नहीं हुआ है। यह संघर्ष वैचारिक तथा उच्च श्रेणी का संघर्ष है।

(२६) कर्तारसिंह दुग्गल के 'बुद्धं शरणं गच्छामि' (१९५८) नाटक में मधरबन्धु के आंतरिक संघर्ष को महत्व का स्थान मिल गया है। मधरबन्धु कलाकार भी है और भिक्षु भी। वह अजन्ता की गुफाओं में एक से एक सुन्दर मूर्तियाँ बनाता है।

मधरबन्धु के आन्तरिक संघर्ष का कारण बड़ा विलक्षण है। वहाँ एक थेर है जो बहुत दिनों से मधरबन्धु से प्रेम करता है। थेर पहले राजकुमारी थी। वह तब से मधर से प्रेम करती है जब पहली बार उसने उसे अपने द्वार पर भिक्षा की प्रतीक्षा करते हुए देखा था। वह उसके पीछे अजन्ता आयी। उस अज्ञान का

१ कालिदास कपूर–धर्मविजय–पृष्ठ ६ (प्रथम सं० १९६४ ई०)
२ वही–पृष्ठ २९-३०
३ वही, पृ० ३०

प्रयत्न करती रही—'यह सारा दिन छेनी लेकर पत्थरों के हृदय टटोलता रहता पर एक नजर उठाकर मेरी ओर कभी इसने नहीं देखा—मैंने इसके लिए क्या नहीं किया।'[1] वह स्वयं भिक्षुणी बन गयी। संघ के नियम के विरुद्ध वह भधर बन्धु के वस्त्र हर दिन धोती रही। नियम के अनुसार किसी भिक्षुणी को किसी भिक्षु के वस्त्र नहीं धोने चाहिए। पर थेर भधर के प्रेम में हरेक नियम का भंग करती रही। इस आशा से कि भधर बन्धु कभी न कभी उसे अपनी बनायेगा। परन्तु भधर बन्धु उसे अपना नहीं बना सकता। वह भिक्षु धर्म का पालन करता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि थेर के प्रेम से भधर बन्धु का मन विचलित नहीं हुआ है। उसका मन अवश्य विचलित हुआ है। उसके मन में आन्तरिक संघर्ष चलता है। एक ओर भिक्षु धर्म है तो दूसरी ओर चुनौती देता हुआ प्रेम है। किसे स्वीकार किया जाय? इसका निर्णय वह कर नहीं पाता। न वह स्थिरता से भिक्षु धर्म का पालन करता, न थेर के प्रेम को स्वीकारता। भधर बन्धु थेर पर बहुत चिढ़ता है। क्योंकि वह समझता है कि थेर ने एक भिक्षु से प्रेम कर अच्छा नहीं किया। इससे लोग नाराज होने लगे और स्वयं भधर बन्धु दुविधा में फँस गया। अतः क्रोध के आवेश में भधर बन्धु थेर को बहुत कड़ी बात सुनाता है—

"भधर बन्धु—(क्रोध के आवेश में) बौद्ध भिक्षु को देखकर लोग द्वार बन्द कर लेते हैं। भिक्षा तक कोई नहीं देता है। एक मछली सारे जल को गन्दा कर देती है।

थेर— (आवेग में आते हुए) इस गंदी मछली ने सारी आयु तुम्हें प्रेम किया है। इस गंदी मछली ने सारी आयु तुम्हारी राह देखी है, किन्तु तुम्हारे भगवान ने आज तक इसकी नहीं सुनी।

भधर— झूठ है झूठ है झूठ है। (पागलों की तरह चीत्कार करता बाहर निकल जाता है।)''[2]

स्पष्ट है कि भधर बन्धु में परस्पर विरुद्ध भावनाओं का आन्तरिक संघर्ष चल रहा है और इसी कारण से वह थेर के सामने अपने को अनियन्त्रित पाता है। वह अपने पर नियन्त्रण पाने के लिए थेर पर चिढ़ता है अथवा उससे दूर जाता है। एक बार तो उसने जान बूझकर थेर को छेनी मारी थी। इस संदर्भ में वह कहता है—'मैंने छेना मारी थी ताकि इसकी बड़ी बड़ी आँखों में जाकर लगे जिनसे वह दिन रात मुझे छिप छिप कर देखती रहती है।'[3] यहाँ भधरबन्धु का आन्तरिक संघर्ष व्यंजित हो रहा है। वह अपने पर नियन्त्रण पाने में सफल नहीं हो रहा है। वह

१ कर्तारसिंह दुग्गल—बुद्ध शरणं गच्छामि—पृ० २२ (प्र० सं० सन १९५८ ई०)
२ वही—पृ० २०
३ वही—५२

संघर्षों के आधार पर अनेक नाटक रचे गये हैं। इन नाटकों में से अधिकतर नाटकों में वीर भारतीयों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। इन नाटकों का निर्माण सोद्देश्य किया गया है। उद्देश्यों में विविधता होने के कारण नाट्य विषयों में भी विविधता आ गयी है।

१ मध्य युग से सम्बंधित एतिहासिक नाटकों का निर्माण करने वाले हिन्दी नाटककारों का प्रमुख उद्देश्य यह रहा है कि जिन महापुरुषों ने स्वातन्त्र्य रक्षा के लिए प्रखर संघर्ष किए हैं उन महात्माओं के जीवन तथा व्यक्तित्व से परिचित कराना। इस दृष्टि से अनेक नाटक रचे गये हैं।

२ दूसरे उद्देश्य के अनुसार कुछ नाटकों में यह दिखाया गया है कि राष्ट्रीयता धर्म से ऊपर की चीज है। इस सन्दर्भ में 'स्वप्नभंग' और 'विष्णु' नाटक उल्लेखनीय हैं।

३ तीसरे उद्देश्य के अनुसार कुछ नाटकों के द्वारा समाज तथा देश की भलाई के लिए धर्म सुधार तथा समाज सुधार का समर्थन किया गया है। इस दृष्टि से 'कुलीनता' 'रामानुज' आदि नाटक विचारणीय हैं।

४ चौथे उद्देश्य के अनुसार कुछ नाटकों में भारतीय राजाओं के पारस्परिक संघर्ष के दुष्परिणाम पर प्रकाश डाला गया है।

१ मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिन्ध पर विजय पाने के अनन्तर मुसलमानों के बारबार आक्रमण होने लगे। भारत का धन बारबार लूटा जाने लगा। महमूद गजनी धन पाने की लालसा से सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण करता है। इस आक्रमण और उसके प्रतिकार को लेकर सीताराम चतुर्वेदी ने 'जय सोमनाथ' (१९७६) नाटक लिखा है।

प्रस्तुत नाटक में क्षात्र बाह्य संघर्ष है। देशद्रोही तांत्रिक सोमनाथ के मन्दिर की संपत्ति लूटने को गजनी के महमूद को निमंत्रण देता है। उस समय राजा भीमदेव लोगों की आक्रामक का प्रतिकार करने के लिए कटिबद्ध होते हैं—"सौराष्ट्र की भूमि पर उसने पग रखे तो मैं उसके विष के दाँत उखाड़ डालूँगा।"[१] भीमदेव भाग्य पति भोजदेव को अपनी ओर से लड़ने के लिए निमंत्रण देता है। भोजदेव के पहुँचने तक स्वयं भीमदेव संघर्ष करता है। फिर भी महमूद गजनी सोमनाथ का मन्दिर और नगर लूटता है। भोजदेव के आने पर आक्रामक भाग जाता है।

संघर्षानुकूल घटनाओं पर बल न देकर संघर्षहीन घटनाओं पर बल दिया गया है। फलतः प्रस्तुत नाटक में संघर्ष का निर्वाह ठीक रीति से नहीं हो पाया है। इस नाटक में स्थूल तथा साधारण श्रेणी का संघर्ष है।

(२) आकारनाथ दिनकर का 'गुजरेश्वर' (१९६७) नाटक गुजरराधिपति

१ सीताराम चतुर्वेदी—जयसोमनाथ—पृष्ठ ४८ (प्र० सं० सन १९७६ ई०)

कुमारपाल के जीवन की सघषमय घटनाओं पर आधारित हैं। इस नाटक म व्यक्ति-व्यक्ति का सघष युद्ध का रूप धारण करता है। सिद्धराज जयसिंह की मत्यु के बाद समस्या पदा होती है कि गुज्जर मण्डल के राज्य सिंहासन पर किसे आसीन किया जाय–त्रिभुवन पाल के पुत्र कुमारपाल को या जयसिंह प्रथम पुत्र चाहडदेव को ? जयसिंह कुमारपाल से घणा करता था। घणा का कारण था कुमारपाल के पितामह का चौलुक्य सम्राट भीमदेव की नतकी रानी का पुत्र होना।

दुर्गाध्यक्ष कृष्णदेव चौहान कुमारपाल का पक्ष लेता है। लेकिन दुर्गाध्यक्ष चाहडदेव का पक्ष लेता है। इससे स्वार्थी और निस्वार्थी व्यक्तियों में सघष छिडता है। चाहडदेव शाकम्भरी सम्राट अर्णोराज को गुज्जर पर आक्रमण करने को भडकाता है। अर्णोराज अपनी पत्नी का अपमान करता है। क्योंकि वह कुमारपाल की बहिन है अपमानित बहिन कुमारपाल के पास आ जाती है और उसे शाकम्भरी से युद्ध करने को उत्तेजित करती है। कुमारपाल और अर्णोराज म युद्धात्मक सघष छिडता है। कुमारपाल की जय होती है। अर्णोराज अपनी पुत्री 'जल्हना' का विवाह कुमारपाल से पक्का करता है। इससे गुज्जर और सपादलक्ष म शक्ति सम्बन्ध स्थापित होता है।

प्रस्तुत नाटक का बाह्य सघष स्थूल सघष है। इस सघष म कुमारपाल के रक्षणशील तथा न्याय्य पक्ष की विजय इष्ट है।

(३) आकारनाथ दिनकर के 'विग्रहराज विशालदेव' (१९५७) नाटक म सपादलक्ष के सम्राट विग्रहराज विशालदेव का स्वार्थी स्वकीयो और विदेशी आक्रामकों से वीरोचित सघष है।

नाटक के आरम्भ म ऐसा वातावरण है जिसस सघष का उद्भव होता है। सपादलक्ष का नरेश और गुजर नरेश म शत्रुता है। गुजर नरेश का साथी धूर्त दुजन भट शाकम्भरी म राजद्रोह की चिनगारियाँ सुलगाता है। गुजर देश की अनुपम सुन्दर नर्तिका मदलेखा की सहायता स युवराज जगदेव का मन बहलाता है और बहकाता भी। तीनो मिलकर कुमार विग्रह राज की हत्या का षड्यन्त्र रचते हैं। इस आग म तेल डालने का काम कुमार विग्रहराज की विमाता गुजर नन्दिनी देवलदेवी करती है। उसकी धारणा है कि कुमार विग्रहराज की माता सुधवा देवी न उसका अपमान किया है। अत वह अपमान का प्रतिशोध लेन के लिए कुमार विग्रहराज की हत्या के षड यन्त्र म सहयोग देती है। परन्तु प्रयत्न हत्या कुमार विग्रहराज के बदले परम भट्टारक अहनाल व अरुणोराज की हत्या होता है। इसस कुमार विग्रहराज सतप्त (विक्षुब्ध) हो जाता है।

विग्रहराज तानो अपराधियो के पहचानने पर क्षमा करता है। जगदेव राज्य का भार विग्रहराज को सौंपता है। इसस गृहकलह समाप्त होता है। विग्रहराज विशालदेव का आक्रामक म्लेच्छ तुरुष्क हम्मीर से द्वन्द्व युद्ध होता है। हम्मीर परा

जित होता है। सपादलक्ष की सेना का पुष्करपुर तक पहुँचती है । आक्रामक की सेना इसके बाद विग्रहराज आक्रामक सुमेरा मंत्रिक को भी पराजित कर लेता है। इस प्रकार विग्रहराज विशालदेव का देशहिताय स्वार्थी स्वकीया तथा आक्रामक विदेशियों से संघर्ष है। इस संघर्ष में विग्रहराज विशालदेव की विजय इष्ट है। पर घटनाओं की भरमार के कारण संघर्ष का निर्वाह ठीक रीति से नहीं हो पाया है।

(४) देवराज दिनेश कृत 'यशस्वी भोज' (१९५५) में मालवा के नरेश भोज के जीवन की संघर्षमय घटनाओं को स्थान मिला है। मालवाधिपति भोज प्रजाहितरत राजा है। वह किसी से युद्ध करना नहीं चाहता। लेकिन अपने देश की रक्षा और प्रजा के हित के लिए अत्याचारी से युद्ध करना उचित मानता है। चौहान राजा वीयराम स्वाधवश मामा तवामा प्रजा पर अत्याचार करता है। राजा भोज चौहान पर आक्रमण करता है और उसे मार देता है। कारण नरेश तैलप ने पृथ्वी वल्लभ (भोज के पिता) को बन्दी बनाया था अपमानित किया था और मृत्यु दण्ड दिया था। अतः राजमाता रसुमावती पति पृथ्वीवल्लभ मुंज की मृत्यु का प्रतिशोध लेना चाहती है। उस समय कारण नरेश जयसिंह सीमा की प्रजा पर अत्याचार करता है। ऐसी स्थिति में माता रसुमावती की इच्छा के अनुसार भोज जयसिंह पर आक्रमण करता है। युद्धात्मक संघर्ष में जयसिंह की मृत्यु होती है। इस प्रकार पृथ्वी वल्लभ मुंज की मृत्यु का प्रतिशोध लिया जाता है।

आकाशनाथ दिनकर 'धारेश्वर भोज' (१९५८) में भी उसी संघर्ष को ही स्थान दिया गया है। इसमें राजमाता का नाम मणालवती है जो पति की हत्या का प्रतिशोध तैलपणाधीश जयसिंह से लेना चाहती है।

उपर्युक्त दोनों नाटकों में स्थूल और साधारण श्रेणी का बाह्य संघर्ष है। प्रस्तुत संघर्ष किसी महान् उद्देश्य को लेकर नहीं चल रहा है। इस संघर्ष के मूल में वैयक्तिक मान अपमान की भावना काम कर रही है।

(५) जगदीशचन्द्र माथुर कृत 'कोणार्क' में शिल्पी विशु उस कलाकार का प्रतीक है जो विरह-व्यथा में अपूर्व कला का सृजन करता है। शिल्पी विशु उस कलाकार का भी प्रतीक है जो कला तथा कलाकार की स्वाधीनता रक्षा के लिए अत्याचारी से प्रखर संघर्ष करता है। कोणार्क में शिल्पी धर्मपद भी उस कलाकार का प्रतीक है जो असहाय कलाकारों के अधिकारों तथा स्वातन्त्र्य को सुरक्षित रखने के लिए अत्याचारों से वीरतापूर्वक संघर्ष करता है। इस दृष्टि से 'कोणार्क' प्रतीकात्मक ऐतिहासिक नाटक है।

इस नाटक की यह भी उल्लेखनीय विशेषता है कि इस नाटक का निर्माण राजनीतिक पृष्ठभूमि पर हुआ है पर इसका प्रतिपाद्य कला और कलाकार से सम्बन्धित है।

"कोणाक" (१९५१) में बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। उत्कल नरेश नरसिंह देव का प्रधान शिल्पी विशु जिसने एक के बाद एक चार अद्भुत मन्दिरों का भुवनेश्वर मे निर्माण किया है और अब जो बारह सौ शिल्पियो, मजदूरो की सहायता से बारह वर्ष लम्बी साधना से, अपनी विराट कल्पना 'कोणार्क" के रूप मे साकार कर रहा है। मन्दिर पूरा हो रहा है। परन्तु मन्दिर का शिखर पूरा नहा हो रहा है। निश्चित विश की समय म नहीं आ रहा है कि कब मन्दिर का शिखर पूरा होगा? कब उस पर केसरी पताका फहरायेगी? विशु राजीव से कहता है— कब? आखिर कब हम अम्ल के ऊपर त्रिपटधर को स्थापित कर पायेंगे? आज दस राज हो गये कवल इसी के कारण मूर्ति का प्रतिष्ठापन नहीं हो रहा है।"[1] इसस कलाकार विशु की विवशता, अस्थिरता का पता चलता है।

लाख चेष्टा करने पर भी विशु की कल्पना काम नही दे रही है। उसका महान सपना पूरा नही हो पा रहा है। विवश विशु यहाँ तक सोचता है कि यदि कोणार्क पूरा न हुआ, तो वह उसे तोड देगा।

अचानक नये शिल्पी का आगमन होता है जिसका नाम धर्मपद है। (वस्तुत धर्मपद विशु का ही बेटा है। बीस वर्षो के पूर्व एक शबर किशोरी से विशु का प्रेम सम्बन्ध रहा। विशु उसे "चन्द्रलेखा" कहा करता था। ब्याह के पहले ही चन्द्रलेखा के पाव भारी हो गए। लोक भय के कारण विशु अकेला ही राजधानी भाग गया। इधर चन्द्रलखा के पुत्र हो गया है। धर्मपद वही पुत्र है।) युवा धर्मपद आशु शिल्पि, तर्क निपुण और तीक्ष्ण बुद्धिमान है। उसकी वाणी में ओज और व्यवहार मे निर्भयता है।

धर्मपद का कला विषयक दृष्टिकोण विशु के दृष्टिकोण की अपेक्षा एकदम भिन्न है। धर्मपद के आगमन के अनन्तर संघर्ष की सम्भावना दिखती है। वह उग्र स्वभाव का युवक है। उसम पीडितो के प्रति सहानुभूति और शोषको के प्रति विद्रोह भावना है। इस कारण से धर्मपद के कला सम्बन्धी विचार क्रान्तिकारी हैं। अत कोणार्क मे उत्कीर्ण शृंगार मूर्तियाँ धर्मपद को पसन्द नही आती। वह जीवन का संघर्ष चाहता है जो जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच होता है। वह विशु से कहता है—' जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक और सीढ़ी है—जीवन का पुरुषार्थ, अपराध क्षमा हो आचार्य आपकी कला उस पुरुषार्थ को भूल गई है। जब मैं इन मूर्तियो म बँधे रसिक जोडो को देखता हूँ तो मुझे याद आती है पसीने मे नहाते हुये किसान की कोसो तक धारा के विरुद्ध नौका को खेने वाले मल्लाह की, दिन दिन भर कुल्हाडी लेकर खटकने वाले लकडहारे की इनके बिना जीवन अधूरा

[1] जगदीशचन्द्र माथुर—कोणाक—पृष्ठ २४ (नवाँ स० सन १९६४ ई०)

है आचार्य ।'[1] शोषितों के उद्धार के लिए धर्मपद बहुत कुछ करना चाहता है । यहाँ तक कि वह अत्याचारी शासकों से लड़ना भी चाहता है । उसे यह खटकता है कि कोणार्क का निर्माण करने वाले मजदूरों शिल्पियों पर महामात्य चालुक्य अनेक अत्याचार कर रहा है और प्रधान शिल्पि विशु का उस बात पर ध्यान नहीं है । विशु राजनीतिक मामलों में दखल देना नहीं चाहता है । विशु के दृष्टिकोण पर आघात करते हुए धर्मपद कहता है– मगर यह भी तो उचित नहीं कि जब चारों ओर अत्याचार और अकाल की लपटें बढ़ रही हों शिल्पि एक शीतल और सुरक्षित कोने में यौवन और विलास की मूर्तियाँ ही बनाता रहे ।'[2]

वस्तुतः धर्मपद की बातें विशु को भी जँचती हैं लेकिन अब विशु का पूरा ध्यान मन्दिर पर कलश स्थापन की समस्या पर केंद्रित हुआ है । अत्याचारों से पीड़ित शिल्पियों की दुरवस्था पर उसका ध्यान नहीं है । वह अपनी अप्रतिम कलाकृति को पूर्णत्व प्रदान करने के लिए धर्मपद की सहायता चाहता है । ठीक उसी समय महामात्य चालुक्य का आगमन होता है । संघर्ष छिड़ने की सम्भावना दिखाई देती है । क्योंकि वहाँ धर्मपद उपस्थित है । धर्मपद जानता है कि महामात्य चालुक्य दण्डपाणिकों का नेता, षड्यन्त्रकारी, अत्याचारी और सत्तालोलुप है । अत्याचारी से लड़ने के लिए धर्मपद की भुजाएँ फड़क उठती हैं । वह महादण्डपाणिक चालुक्य के सामने सीना तानकर खड़ा होता है । सहसा धर्मपद पर चालुक्य की दृष्टि पड़ जाती है । वह पूछता है—

'चालुक्य–यह युवक यहाँ क्या खड़ा है ?

धर्मपद– मैं आचार्य के सामने शिल्पियों की दुखगाथा कह रहा था ।

चालुक्य–शिल्पियों की दुखगाथा ? प्रतिहारी इसे धक्का देकर बाहर निकालो । मुफ्तखोर कहीं का ।

धर्मपद– मैं आपही जाता हूँ (बायें वाले दरवाजे से प्रस्थान, आहत अभिमान की मुद्रा)'[3]

धर्मपद के चले जाने पर चालुक्य विशु पर अनेक आरोप लगाते हुए कहता है कि कोणार्क के निर्माण में राज्यकोष का धन नष्ट हो रहा है शिल्पि और मजदूर ठीक काम नहीं कर रहे हैं । वह जाने के पहले विशु को धमकाता है— सुन लो और कान खोलकर सुन लो । आज से एक सप्ताह के अन्दर यदि कोणार्क देवालय पूरा न हुआ तो (कुछ रुककर शब्दों पर जोर देते हुए) तुम लोगों के हाथ काट

१ जगदीशचन्द्र माथुर—कोणार्क-पृ० ३४ (नवाँ सं० सन् १९६४ ई०)
२ वही, पृ० ३५
३ वही पृष्ठ ६८

दिये जायेंगे ।"[1]

अब विशु के दृष्टिकोण म एकदम परिवर्तन होता है। अब उसे कोणार्क की पूर्णता पर नहीं, बल्कि निरापराधी शिल्पियो के जीवन की सुरक्षा पर ध्यान केंद्रित करना पड़ता है। उस अब शिल्पियों की जीवन रक्षा के लिये कोणार्क को पूरा करना होगा। वह इस कार्य मे धर्मपद की सहायता लेता है। इस सहायता के बदले म विशु ने, मन्दिर में मूर्ति प्रतिष्ठापना के दिन अपने सभी अधिकार धर्मपद को सौंपने का वचन दिया। धर्मपद उस दिन त्रस्त शिल्पियो की करुण कथायें उत्कल-नरेश के सामने रखना चाहता है।

धर्मपद की योजना सफल होती है और कोणार्क पूरा हो जाता है। प्रजा वत्सल नरेश नरसिंह देव का आगमन होता है। धर्मपद की बातों को सुनकर नरेश नरसिंहदव शिल्पियों के उद्धार का अभिवचन देते हैं। ठीक उस समय चालुक्य दण्ड पाणिक सेना की सहायता से कोणार्क पर आक्रमण करता है। धर्मपद अपने अदम्य साहस और सगठन कौशल से शिल्पियों और मजदूरो को प्रजावत्सल राजा की रक्षा के लिये, अत्याचारी से लडने को प्रवृत्त करता है। धर्मपद चालुक्य के दूत शवालिक से दृढ़तापूर्वक कहता है— बहुत हुआ बहुत हुआ दूत। क्या हम लोग भेड़ बकरियाँ हैं जो चाहे जिसके हवाले कर दी जाय ? आज ही तो हमारे भाग्य का फैसला है। जिस सिंहासन को तुम आज डांवाडोल कर रहे हो, वह हमारे ही कंधो पर टिका है। क्या उस पर वह बैठेगा, जिसके कारण सैकडो घर उजड चुके हैं, वह जिसने कोणार्क के सौंदर्य निर्माता शिल्पियों को ठीकरो से तुच्छ मान ठुकराया ? कलिंग हमारा है और उसके अधिपति हैं हमारे प्रजावत्सल नरेश श्रीनरसिंहदेव ।"[3] "अपने नये स्वामी के पास यह अंगारा भरा सन्देशा ले जाओ कि कलिंग-नरेश श्रीनरसिंहदेव महाराज, अत्याचारी विश्वासघातियों की धमकियों की चिन्ता नहीं करते। वे आज अकेले नहीं हैं, आज उनके पीछे वह शक्ति है जो कार्णिक के शिल्पियों और मजदूरो म दुर्दम सेनाओं का बल भर देगी। कोणार्क का मन्दिर आज दुर्ग का काम देगा। जाओ हमें चुनौती स्वीकार है।"[4]

सचमुच धर्मपद के नेतृत्व म सभी शिल्पि और मजदूर अपने प्राणों पर खेलने और अत्याचारी का प्रतिकार करने को तत्पर होते हैं। इनके शस्त्र हैं—कुदाली दण्ड हथौड़े और पत्थर। कोणार्क का मन्दिर दुर्ग और धर्मपद दुर्गपति बन जाता है। युद्धात्मक संघर्ष छिड जाता है। शत्रु के बाणो से आहत धर्मपद को मूर्छा आ

१ जगदीशचन्द्र माथुर—कोणार्क—पृ० ३९ (नवाँ स० सन १९६४ ई०)

३ वही, पृ० ५७

४ वही, पृ० ५८

जाता है। उस समय विशु रुनता है कि धर्मपद के गले की माला में रामदेव की वह प्रतिमा है जो विशु ने चन्द्रलेखा को भेंट दी थी।

इस समय विशु में अनेक प्रश्नों को लेकर आन्तरिक संघर्ष चलता है। उत्सुकता वश विशु सोचता है कि क्या धर्मपद मेरा पुत्र है? क्या वह मुझे पिता कह कर पुकारेगा? मैं उसे कैसे कहूँ कि मैं तुम्हारा पिता हूँ? क्या वह मेरी बात पर विश्वास करेगा? विशु इन प्रश्नों के कारण निर्णय नहीं कर पाता कि धर्मपद को वास्तविकता से परिचित किया जाय अथवा न किया जाय? अपने आन्तरिक संघर्ष को प्रकट करते हुए विशु सौम्य से कहता है-- सौम्य कैसे उसे बताऊँगा? मुझे तो वह जानता नहीं पर जान लेने पर क्या सोचेगा वह? शायद शायद (विकल मुद्रा) आह सौम्य!! बरसों गुफा के अधेरे के बाद यह तेज उजाला क्या मुझे अंधा बनाकर रहेगा क्या वह मेरा मुख भी देखना चाहेगा।[1] सौम्य विशु को समाधान की चेष्टा करता है पर विशु का आन्तरिक संघर्ष नहीं मिटता है। विशु में धर्मपद से बातचीत करने की भी सामर्थ्य नहीं रहती है। अतः वह सौम्य और धर्मपद की बातचीत छिपकर सुनता है।

धर्मपद की बातों से विशु में यह भाव उत्पन्न होता है कि धर्मपद मेरा ही पुत्र है। विशु में धर्मपद से पिता के रूप में मिलने की भावना तीव्र बन जाती है। विशु के पैर धर्मपद की ओर बढ़ने के लिए अधीर हो जाते हैं। धर्मपद जब सौम्य से कहता है कि मेरी माँ अब जीवित नहीं है, तब विशु मर्माहत हो पीछे हट जाता है। उसका आन्तरिक संघर्ष तीव्र रूप ग्रहण करता है।

बिना कोई निर्णय किये ही अचानक विशु सामने आकर धर्मपद से बातचीत करने लगता है। पर विशु में धर्मपद को यह बताने की शक्ति नहीं है कि मैं तेरा पिता हूँ। कुछ क्षणों के उपरान्त विशु अपने को रोक नहीं पाता। वह भावावेग में आगे बढ़ता है और धर्मपद के हाथ को अपने चेहरे से लगाता हुआ व्यथित और रुन्धे पूरे स्वर में कहता है-- क्षमा मेरे बच्चे मेरे बेटे।[2] विशु रोने लगता है। इस समय धर्मपद अत्यन्त समझदारी से पिता को आन्तरिक संघर्ष से मुक्त कर देता है।

इस आन्तरिक संघर्ष से मुक्त होते ही विशु में पुनः आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है। विशु में पुत्र रक्षा का मोह जगता है। विशु कलाकार की स्वाधीनता रक्षा को भूलकर पुत्र रक्षा को प्राथमिकता देता है। वह पुत्र रक्षा के लिए अत्याचारी चालुक्य के आगे भिक्षा माँगने को तत्पर होता है। बार बार धर्मपद को पिता की आकुलता अखरती है। धर्मपद जानता है कि पुत्र रक्षा के मोह को प्राथमिकता देने का अर्थ है अत्याचारी की दासता को स्वीकार करना और कलाकार की स्वाधीनता को गर्तशायी करना।

---

१ जगदीशचन्द्र माथुर--कोणार्क--पृ० ६० (नवाँ सं० सन् १९६४ ई०)

२ वही पृ० ७२।

ऐसा न हो, इसलिए धमपद निष्क्रिय बने पिता को कर्तव्य का स्मरण दिलाते हुए चेतावनी देता है--'जिस नीच से आप भीख मांगते हैं उस भीख दूँगा, अपने प्राणों की भीख। मेरा मोह आपको दुर्बल बना रहा है। आज शिल्पी पर अत्याचार का प्रहार हो रहा है। कला पर सदा पत्ता टूट पड़ी है। आपका सुनहरा सपना वही कोणाक एक पामर, पापी अत्याचारी के हाथ का खिलौना बन जायगा। आतंक के हाथों में जकड़ी हुई कला सिमटेगी। वही कारीगर की सबसे बड़ी हार होगी, सबसे भारी हार।"[1] इतना कहकर धमपद घायल अवस्था मे भी अत्याचारी चालुक्य को पराभूत करने के लिए चला जाता है।

धमपद की ओजमयी वाणी से विशु म तीव्र आन्तरिक संघर्ष आरम्भ होता है। वह निर्णय नही कर पाता कि पुत्र रक्षा के लिए अत्याचारी की दासता को स्वीकार किया जाय अथवा कलाकार की स्वाधीनता रक्षा के लिए अत्याचारी स संघर्ष किया जाय? वह अस्थिरता म कभी उठता है कभी थमता है। तीव्र आन्तरिक संघर्ष से मुक्त होने के लिए विशु कोणाक (कलाकार की स्वाधीनता) की रक्षा का निर्णय करता है। उसी क्षण विशु को धमपद की वीरगति का समाचार मिलता है। प्रक्षुब्ध विशु मन्दिर को गिराकर अत्याचारी का अन्त करने म सफलता पाता है। विशु कोणाक को शिल्पी की पराजय का प्रतीक नही होने देता। स्वाधीनताप्रिय शिल्पियों ने अत्याचारी के प्रतिकाराथ जो प्रखर संघर्ष किया है वह अति उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष म शिल्पियों के रक्षणशील एव योग्य पक्ष की विजय हुई है। इस संघर्ष म शिल्पियों की विजय ही अभीष्ट था।

शिल्पी विशु का दो सद्विचारों का संघर्ष श्रेष्ठतम श्रेणी का संघर्ष है। एक ओर प्रिय पुत्र की रक्षा का विचार है तो दूसरी ओर प्रिय कला की रक्षा का विचार है। शिल्पी विशु कला तथा कलाकार की स्वाधीनता रक्षा को प्राधान्य देने का निर्णय करता है। इस आन्तरिक संघर्ष म कलाकार की स्वाधीनता रक्षा को प्राधान्य देना ही अभीष्ट था। अत प्रस्तुत संघर्ष श्रेष्ठतम श्रेणी पाने म सफल रहा है। प्रस्तुत संघर्ष सूक्ष्म संघर्ष है।

'कोणाक' म बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष का निर्वाह अति उच्च कलात्मक कौशल के साथ किया गया है। दोनों संघर्ष क्रमश चरम सीमा पर पहुँचकर समाप्त हुए हैं।

(६) हरिकृष्ण प्रेमी के 'प्रकाशस्तम्भ' (१९५४) नाटक में महत्वाकांक्षी (कालभोज) बाप्पा रावल का, मेवाड राज्य के संस्थापन के लिए, चित्तौड राज मानसिंह से और आक्रामक अरबों से संघर्ष है। प्रस्तुत नाटक म बाप्पा रावल का संघर्ष ही प्रधान संघर्ष है।

---

१ जगदीशचन्द्र माथुर-कोणाक-पृ० ७६ ७७ (नवा स० सन् १९६४ ई०)

सिंध प्रान्त का अरबी शासक जुनैद आक्रमण करने के उद्देश्य से चित्तौड़ की ओर बढ़ रहा है। चित्तौड़ का मौर्यवंशी राजा मानसिंह प्रतिकार की तैयारी नहीं करता। वह अरबों का माण्डलिक बनना चाहता है। बाप्पा रावल को अरबों का माण्डलिक बनना अखरता है। वह और क्रांतिकारी अग्निवाला तथा ज्वाला स्वाधीनता प्रेमियों का गुप्त संगठन करते हैं। इस संगठन के बल पर राजमुकुट छीन कर कालभोज बाप्पा के मस्तक पर रखा जाता है। बाप्पा रावल के नेतृत्व में प्रजा आक्रामक अरबों को पराभूत कर देती है। राजनीतिक दृष्टि से अरबी सेनापति सलीम की पुत्री हुमारा से बाप्पा का विवाह किया जाता है।

बाप्पा प्रजा की शक्ति में विश्वास करता है। वह मानता है कि प्रजा में राजा के सर पर राजमुकुट रखने उतारने की क्षमता होती है। वह समाज में व्याप्त विषमता को मिटाना चाहता है। वह नीच और ऊँच, क्षत्रिय और भील, राजा और प्रजा के बीच की विषमता की खाई को पाट देना चाहता है। जिन वस्तुओं पर स्पर्धाओं और विश्वासों के कारण मनुष्य मनुष्य में विषमता स्थापित की जाती है, उनको नष्ट करना चाहता है। समाज को छिन्न भिन्न कर देने वाली जातियों और अछूत प्रथा को उखाड़ना चाहता है। वह कहता है— "मैं तो उच्च जाति, उच्च वंश और सत्ता के अभिमान को एक धक्का लगाना चाहता हूँ।"[1] इसलिए ही वह नागदा-नरेश की पुत्री पद्मा से विवाह नहीं करता। इस प्रकार इस नाटक में बाप्पा रावल का आक्रामकों से युद्धात्मक संघर्ष भी है साथ साथ समाज की घातक परम्पराओं से भी संघर्ष है।

इस संघर्ष में बाप्पा रावल की जीत हुई है। प्रस्तुत संघर्ष व्यापक तथा उच्च श्रेणी का संघर्ष है।

(७) भगवतीप्रसाद वाजपेयी का 'राय पिथौरा' (१९५८) और ओंकारनाथ दिनकर का 'अंतिम सम्राट' (१९५०) दोनों नाटक पृथ्वीराज चौहान के संघर्षमय जीवन से सम्बन्धित हैं। 'राय पिथौरा' में पृथ्वीराज चौहान का आक्रामक मुहम्मद गोरी से संघर्ष है। इस संघर्ष के छिड़ने का कारण यह है कि पृथ्वीराज द्वारा मुहम्मद गोरी के भतीजे हुसन खाँ को अपने यहाँ आश्रय दिया जाना। गोरी की प्रेयसी हुसनखाँ से प्रेम करने लगी थी। इससे गोरी और हुसनखाँ की नहीं पटती थी। अब हुसनखाँ अपनी प्रेयसी को लेकर पृथ्वीराज के आश्रय में आ जाता है। शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी चिढ़कर आक्रमण करता है। पृथ्वीराज उसे पराभूत कर बन्दी बनाता है। पृथ्वीराज उदारता से उसे मुक्त कर देता है। गोरी दुबारा आक्रमण करता है। पुनः पहले जैसे ही उसकी स्थिति होती है। तीसरी बार मुहम्मद गोरी का जबर्दस्त आक्रमण होता है। पृथ्वीराज को हार मानना पड़ता है। पृथ्वीराज

१ हरिकृष्ण प्रेमी—प्रकाश-स्तम्भ—पृ० ८४ (द्वि० सं० सन १९६२ ई०)

को बन्दी बना कर उसकी आखें निकाली जाती हैं । पृथ्वीराज के शब्द वेधी बाण से अचानक मुहम्मद गोरी का वध होता है । उस समय पृथ्वीराज अपने संघर्षमय जीवन का निर्देश करते हुए कहता है– 'बचपन मे युद्ध, किशोरवय मे युद्ध, मिलन मे युद्ध, संयोग मे युद्ध, वियोग मे युद्ध, पृथ्वीराज का दूसरा नाम ही युद्ध है––उसकी प्रत्येक यात्रा विजय यात्रा रही है ।'"[1] 'विजय ही जीवन है ।'[2]

'अन्तिम सम्राट" में पृथ्वीराज के काका और सामन्तगण हुसेनखाँ को आश्रय देकर संघर्ष मोल लेना नहीं चाहते । लेकिन पृथ्वीराज दृढ़ता के साथ शरणागत को आश्रय देता है । वह शरणागत की रक्षा को अपना धर्म मानता है । जब उसे बताया जाता है कि इस घटना से लाभ उठाकर शत्रु आर्यभूमि पर पैर फैलाना चाहता है, तब पृथ्वीराज वीरतापूर्वक कहता है––'हम उस पर को काटकर फेंक देंगे । जो पर हमारे अनर्थ की कल्पना से हमारी भूमि–हमारी मातृभूमि–की ओर बढ़ना चाहता है उसे नष्ट करने की क्षमता पृथ्वीराज को परम्परा से मिली है ।'[3] लेकिन दुर्भाग्य से पृथ्वीराज का स्वदेशियों से भी संघर्ष छिड़ता है । एक ओर गुर्जर के चालुक्यराज भीमदेव से संघर्ष है, तो दूसरी ओर संयोगिता के अपहरण के कारण कनौजाधिपति जयचन्द से संघर्ष है । ये दोनों पृथ्वीराज को हराने मे आक्रामक मुहम्मद गोरी की सहायता करते हैं । इस प्रकार उक्त दोनों नाटकों मे युद्धात्मक बाह्य संघर्ष है ।

भैरवप्रसाद गुप्त के 'चन्दवरदायी' नाटक मे पृथ्वीराज की अत्यधिक विलासिता के साथ साथ उक्त संघर्ष भी प्रदर्शित हुआ है ।

उपर्युक्त तीनों नाटकों मे संघर्षहीन घटनाओं की बहुलता के कारण बाह्य संघर्ष का निर्वाह व्यवस्थित नहीं हो पाया है । प्रस्तुत संघर्ष बहुत स्थूल संघर्ष है । इस संघर्ष के अन्त मे मुहम्मद गोरी की जीत हुई है । संघर्ष अत्यन्त सामान्य श्रेणी का है ।

यमुनाप्रसाद त्रिपाठी के 'आजादी या मौत उर्फ वीर मलखान नाटक" (१९३६) में भी पृथ्वीराज और सिरसा के वीर मलखान का युद्धात्मक संघर्ष है । पृथ्वीराज महोबा पर आक्रमण करने से पहले सिरसा पर आक्रमण करता है । वीर मलखान और भाई सुलखान अपनी स्वाधीनता के लिए अपने अन्त तक संघर्ष करते हैं । उन्हें वीरगति मिल जाती है । इस नाटक मे भी आक्रामक पृथ्वीराज विजय पाने में सफल होता है । इस संघर्ष का कारण पृथ्वीराज की राज्यविस्तार सम्बन्धी आकांक्षा है । प्रस्तुत संघर्ष स्थूल तथा सामान्य श्रेणी का है ।

विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का 'कलियुगीन अभिमन्यु' (१९६१) नाटक

१ भगवतीप्रसाद बाजपेयी–रायपिथोरा–पृ० १६४ (द्वि० सं० सन् १९६२ ई०)
२ वही पृ० १७६ ।
३ ओंकारनाथ दिनकर–अन्तिम सम्राट–पृ० ९ (प्र० सं सन् १९५९)

पृथ्वीराज से हुए आल्हा ऊदल और लाखन के संघर्ष से सम्बन्धित है। पृथ्वीराज चौहान चक्रवर्ती बनने की वांछा से जनपद महोबा पर आक्रमण करता है। महोबा की ओर से वीर आल्हा ऊदल और जयचन्द का भतीजा लाखन प्रतिकार करते हैं। लाखन वीर अभिमन्यु की भाँति लड़ता है और पृथ्वीराज की सेना को भारी क्षति पहुँचाता है। पृथ्वीराज शब्दवेधी बाण से लाखन का भी और आल्हा, ऊदल का भी वध करता है। इस संघर्ष में आक्रामक पृथ्वीराज की जीत होती है। प्रस्तुत संघर्ष स्थूल तथा सामान्य श्रेणी का है।

(८) डॉ० गोविन्ददास का 'कुलीनता' (१९४०) नाटक संघर्ष की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इसमें बाह्य संघर्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। इस नाटक की घटनाएँ जिस काल से संबंधित हैं, उस समय त्रिपुरी पर कल्चुरी वंश का अंतिम राजा विजयसिंह देव राज्य करता था। इस नाटक में विजयसिंह देव का मन्त्री सुरमा पाठक गोंड यदुराय को त्रिपुरी के सिंहासन पर विराजमान कराता है। इस सन्दर्भ में गोंड यदुराय और विजयसिंह देव की उदात्त धाराएँ संघर्ष छेड़ती हैं।

गोंडवंश का यदुराय बाण-वध में, मल्ल-युद्ध में, खड्ग-युद्ध में, छुरिका-युद्ध में सर्वश्रेष्ठ है। विजयसिंह देव के दरबार में विजयादशमी के उपलक्ष्य में जो युद्ध कला प्रदर्शित होती है, उसे देखकर यदुराय गोंड को सर्वश्रेष्ठ वीर घोषित किया जाता है। यहीं से संघर्ष का आरम्भ होता है। उस समय राजकुमारी रेवा सुन्दरी के मन में यदुराय के मस्तक पर तिलक करने की इच्छा होती है। यदुराय के प्रति राजकुमारी का आकर्षण देखकर विजयसिंह देव का सेनापति चन्द्रपीड ईर्ष्या से जल उठता है। वह यदुराय के विरुद्ध विजयसिंह देव के कान भरने की चेष्टा करता है। वह बताता है कि राजकुमारी के इस आकर्षण से अपना उच्च कुल कलंकित होगा। क्योंकि यदुराय शूद्र गोंड है अस्पृश्य है युद्ध क्षत्रियों का धर्म है, शूद्रों का नहीं। शूद्र का काम तीनों वर्णों की सेवा करना है। अतः अधर्मी यदुराय को पुरस्कार के बदले दण्ड देना चाहिए।

वीर यदुराय प्रतिक्रियावादी चन्द्रपीड से नहीं डरता। वह चन्द्रपीड को मुँहतोड़ जवाब देता है— जन्म के अनुसार वर्ण नहीं, मैं कर्म के अनुसार वर्ण मानता हूँ।[1] राजा विजयसिंह देव को यदुराय की बातें अच्छी नहीं लगतीं। वह यदुराय को अपने राज्य से निष्कासित कर देता है।

इधर रेवासुन्दरी और पिता विजयसिंह देव में संघर्ष आरम्भ होता है। क्योंकि रेवासुन्दरी प्रतिज्ञा करती है— यदि विवाह करूँगी तो उन्हीं (यदुराय) के साथ नहीं तो आजन्म कुमारी रहूँगी।[2] इस प्रतिज्ञा के कारण पिता-पुत्री में संघर्ष

१ डॉ० गोविन्ददास—कुलीनता—पृ० २५ (छठा सं० सन् १९६६ ई०)
२ वही पृ० २९।

छिड़ता है।

राजा विजयसिंह देव और मंत्री सुरभी पाठक में भी संघर्ष छिड़ता है। राजा विजयसिंह देव शहाबुद्दीन गोरी के सूबेदार कुतुबुद्दिन ऐबक का माण्डलिक बनना चाहता है। पर मंत्री सुरभी पाठक विरोध करता है। वह मंत्री-पद त्याग देता है और मण्डला के राजा नागदेव के यहाँ आश्रय लेकर देशोद्धार का काम करता है। मंत्री सुरभी पाठक से मंत्रणा पाकर यदुराय भी गाड़ा की सेना बनाता है और देशोद्धार के लिए प्रयत्नशील होता है। त्रिपुरी की सेना मण्डला पर आक्रमण करती है। यदुराय की सेना त्रिपुरी सेना से युद्ध करती है। चण्डपीड मारा जाता है। यदुराय की जीत होती है। इस युद्ध में रेवासुन्दरी भी यदुराय की ओर से लड़ती है। इस युद्ध के पश्चात् यदुराय, त्रिपुरी पर चढ़ाई करने वाली (कुतुबुद्दीन ऐबक की) सेना से, युद्ध करता है। आक्रामक को पराभूत कर त्रिपुरी की स्वतन्त्रता की रक्षा करता है। परिणामस्वरूप यदुराय से रेवासुन्दरी का विवाह होता है। यदुराय त्रिपुरी का अधिपति बन जाता है। यदुराय अपने कर्म से सिद्ध करके दिखाता है—"संसार में काम का महत्त्व है और काम ही कुलीनता की कसौटी है।"[1] 'संसार में कर्म ही मुख्य है और कुलीनता कर्म पर निर्भर रहता है।"[2] इस दृष्टिकोण के अनुसार यदुराय का संघर्ष किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं, बल्कि उस समाज से है, जो स्वार्थ साधने के लिए घातक परम्पराओं को सुरक्षित रखने की चेष्टा करता है। इस संघर्ष में विवेकी सुरभी पाठक और रेवासुन्दरी यदुराय के क्रान्तिकारी विचारों तथा कार्यों का साथ देते हैं। यह संघर्ष परस्पर विरुद्ध विचारधाराओं का वैचारिक संघर्ष है। इस संघर्ष में यदुराय के आक्रमणशील पक्ष के सदविचारों की जीत हो जाती है। अतः प्रस्तुत संघर्ष वैचारिक तथा उच्च श्रेणी का संघर्ष है। संघर्ष का निर्वाह व्यवस्थित किया गया है।

(९) रण थंभौर के महाराव हम्मीर की उदारता वीरता और शरणागत वत्सलता को प्रकाश में लाने के प्रयोजन से हरिकृष्ण प्रेमी ने 'आहुति" बलराम चौहान ने 'पनाह' (१९५७) उदयसिंह भटनागर ने 'दहकते अंगारे (१९५९) नाटकों का सृजन किया है। संघर्ष की दृष्टि से हरिकृष्ण प्रेमी का "आहुति" अधिक विचारणीय है।

इसमें लम्पट, विलासी अलाउद्दीन नरहरणोगढ़ के राजपूत किलेदार की पुत्री चपला की इज्जत पर डाका डालने को प्रवृत्त होता है। लेकिन मीर माहिमा (अलाउद्दीन के सेनापति मीर गभरू का भाई) अलाउद्दीन का प्रतिरोध करता है। अलाउद्दीन गुस्से में आकर मीर महिमा को अपनी हुकूमत की हद के बाहर चले जाने

१ डॉ० गोविन्ददास—कुलीनता—पृ० १२७ (छठा सं० सन् १९६६)

२ वही, पृ० १३७।

का हुक्म देता है। मीर माहिमा आन जाते अलाउद्दीन को सुनाता है—"हर एक मर्द का फर्ज है कि वह औरत को बचावे। औरत चाहे वह किसी कौम की हो, उसकी इज्जत करनी चाहिए।"[1] इस आघात से अलाउद्दीन तिलमिलाता रहता है। संघर्ष का आरम्भ होता है।

उधर वीर हम्मीर की मन स्थिति इस प्रकार है— मेरे प्राणों में असंतोष की ग्लानि का और उद्दाम आकांक्षा का भयंकर बवंडर उठता रहता है। मेरा जी करता है पूर्वजों के रक्त से सिंची हुई हमारी जन्मभूमि पर अधिकार कर चैन की वंशी बजाने वालों से लोहा लूँ। मेरे प्राणों में जोश का तूफान लहराता है कभी मुझे इन जंगली घाटियों में लिए फिरता है।[2] वह स्वाधीनता के लिए अलाउद्दीन से खून की होली खेलना चाहता है। संयोग से वह अवसर आ जाता है। वह शरणागत मीर माहिमा को रणथम्भौर में आश्रय देता है। यहीं से संघर्ष का विकास होता है।

अलाउद्दीन रणथम्भौर पर अधिकार पाने और मीर माहिमा को गिरफ्तार करने के लिए सेनापति मीर गभरू को भेजता है।

इधर हम्मीर भी युद्ध की पूरी तैयारी करता है। वह बड़े उत्साह से कहता है— मैं जागते केवल युद्ध के ही स्वप्न। कितना सुन्दर है यह जीवन। संघर्ष का ही नाम तो जीवन है।[3]

हम्मीर किसी भी शर्त पर संधि या समझौता नहीं चाहता। वह शरणागत की रक्षा के लिए प्राणों पर खेलना पसंद करता है। वह दिनों तक युद्धात्मक संघर्ष चलता रहा है। एक दिन हम्मीर और उसके साथी केसरिया बाना पहनकर दुर्ग से बाहर आकर युद्ध करते हैं। अलाउद्दीन की सेना पराभूत होकर भागना आरम्भ करती है। उधर गढ़ में राजपूत स्त्रियों को लगता है अपनी पराजय हुई है। अतः वे अपने को जौहर-ज्वाला में अर्पण कर देती हैं। यह देखकर हम्मीर की सेना गढ़ की ओर जाने के बदले अलाउद्दीन की सेना का पीछा करने लगती है। इस युद्ध में मीर माहिमा और मीर गभरू दोनों भाई परस्पर विरुद्ध रहकर वीरगति पाते हैं।

स्वाधीनता प्रिय हम्मीर का संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष का निर्वाह ठीक रीति से किया गया है। प्रस्तुत संघर्ष क्रमशः चरम सीमा पर पहुँच गया है।

मीर गभरू का परस्पर विरुद्ध विचारों का आन्तरिक संघर्ष भी दर्शनीय है। वह जानता है कि अलाउद्दीन का पक्ष अन्याय का है और मीर माहिमा का

१ हरिकृष्ण प्रेमी—आहुति—पृष्ठ ९ (सत्रहवाँ सं० सन् १९६८ ई०)
२ वही पृ० १०।
३ वही पृ० ५१।

न्याय्य का । इच्छा न होते हुए भी उसे अन्याय्य के पक्ष की ओर से याय्य पक्ष से लडना पडता ह । मीर गभरू म कौम के प्रति अध श्रद्धा अधिक है । इसके साथ ही साथ वह अपने मालिक क प्रति वफादार रहना उचित समझता ह । अत वह मालिक के दुश्मन को अपना दुश्मन मानता है । लेकिन इतना कहने पर भी मीर गभरू का हृदय मीर माहिमा से लडना पस द नही करता । वह जमाल से कहता है– 'कौमो से कौमों की लडाई नही होती, जमाल । वह तो इ सान की ख्वाहिशें लडती हैं । अलाउद्दीन इस्लाम नही है, हम्मीर हि दू धम नही है । एक है दिल्ली का बाद शाह और एक रणथम्भोर का राजा । दिल्ली का बादशाह रणथम्भोर के राजा को अपना गुलाम बनाना चाहता है और वह अपनी आजादी बनाये रखना चाहता है । दोनो का घमण्ड इतने लोगो का खून करा रहा है ।'[१] लेकिन 'महाराव का इरादा ऊँचा है इसलिए उसके घमण्ड की इज्जत करनी चाहिए । ऊँचे इरादे के लिए जानें देने वाले मरकर भी जि दा रहते हैं ।'[२]

कोई निणय न कर पाने के कारण मीर गभरू मत्यु तक आतरिक सघप से मुक्त नही हो पाता । मीर गभरू का परस्पर विरुद्ध विचारो का आतरिक सघप सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का है ।

बलराम चौहान के पनाह' नाटक म बाह्य सघप का आरम्भ महाराव हम्मीर की यायप्रियता से होता है । हम्मीर भाई भोजदेव की सारी सपत्ति राज्य के अधिकार मे कर लता है और उस निर्वासित भी कर देता है । क्योकि भोजदेव ने राज्य के धन का व्यक्तिगत रूप से उपभोग किया था ।

भोजदेव अलाउद्दीन का मित्र बनकर उस रणथम्भोर पर चढाई करने को उकसाता है । उधर गुजरात पर विजय पान के बाद अलाउद्दीन के सिपहसालारो मे आपसी झगडा आरम्भ होता है । सिपहसालार नसरतखाँ से लडकर मीर मुहम्मद अपनी रक्षा के लिए हम्मीर के आश्रय म रहता है । इस बात को लेकर अलाउद्दीन रणथम्भोर पर चढाई करता है । देशद्रोही लोगो के कारण हम्मीर को हारना पडता है ।

उदयसिंह भटनागर क 'दहकते अगारे' म राजा हम्मीर का सौतेला भाई भोजदव, ईर्ष्यावश अलाउद्दीन के पास जाता है और रणथम्भोर पर आक्रमण करने को उकसाता है । उधर स मीर मुहम्मद अलाउद्दीन से बगावत कर हम्मीर की शरण मे आता है । परिणामस्वरूप युद्धात्मक सघप छिडता है । देशद्रोहियो विश्वा सघातियो के कारण हम्मीर की हार होनी है ।

उपयु क्त तीनो नाटकों मे स्वाधीनता प्रिय हम्मीर का सघप उच्च श्रेणी का

१ हरिकृष्ण प्रेमी–आहुति–पृ० ३८ (सत्रहवाँ स० सन् १९६४ ई०)
२ वही, पृ० ३८ ।

संघर्ष है। इस संघर्ष में हम्मीर के रक्षणशील पक्ष की पराजय हुई है।

(१०) हरिकृष्ण प्रेमी का 'शतरंज के खिलाड़ी' (१९५५, नाटक उनके 'मित्र' नाटक का नवीनतम रूप है।) इस नाटक में दो मित्रों का युद्धात्मक संघर्ष है। जसलमेर के महाराव जैतसिंह का छोटा पुत्र रत्नसिंह और दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन का सेनापति महबूब खाँ, इन दोनों में मित्रता है। दोनों को शतरंज खेलने का शौक है। लेकिन इन दोनों पर सच्ची लड़ाई खेलने का वक्त आता है।

जसलमेर वाले दिल्ली को आर जा रहा खजाना लूटते हैं और दिल्ली के पाँच सौ सिपाहियों को मौत के घाट उतारते हैं। इससे संघर्ष का आरम्भ होता है। इस घटना का बदला लेने के लिए अलाउद्दीन जसलमेर पर चढ़ाई करने का काम महबूब खाँ को सौंपता है। जसलमेर की ओर से रत्नसिंह लड़ता है तो अलाउद्दीन की ओर से महबूब खाँ। विश्वासघाती सूरजसिंह के कारण रत्नसिंह को हार खाना पड़ती है।

इस नाटक में दिखाया गया है कि दोनों मित्र युद्धभूमि में भी किस प्रकार मित्रता निभाते हैं। युद्धभूमि में तलवारें मिलाने वाले एकांत में हृदय भी मिलते हैं। ऐसी स्थिति में महबूब खाँ दुविधा में उलझता है। वह अपनी दुविधा इस प्रकार प्रकट करता है -- एक तरफ मित्रता है दूसरी तरफ अपने सम्राट के प्रति कर्तव्य पालन की भावना।'[1] न वह मित्रता पर आँच आने देना चाहता है न कर्तव्यपालन की भावना पर। जहाँ तक हो सके दोनों को भी निभाता है।

परस्पर विरुद्ध भावनाओं के कारण रत्नसिंह और महबूब खाँ का संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। महबूब खाँ की भावनाओं का आन्तरिक संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का संघर्ष है।

(११) हरिकृष्ण प्रेमी के 'साँपों की सृष्टि'[1] (१९६६) नाटक में मलिक काफूर और रानी कमलावती दोनों अलाउद्दीन को नष्ट कर दिल्ली की सत्ता अपने हाथों में लेने के लिए संघर्ष करते हैं। जो मलिक काफूर अलाउद्दीन की हत्या कर सत्ता अपने हाथों में लेता है उसका भी खून होता है।

गुजरात के पराजित राजा कर्णसिंह की अपहृत रानी कमलावती भी अलाउद्दीन के नाश के लिए प्रयत्न करती है। उसे अलाउद्दीन के अंतःपुर में रहना पड़ता है। वह यहाँ आने का उद्देश्य बताती है-- 'मैं दिल्ली के तख्त के नीचे साँपों की सृष्टि करने आई हूँ।'[2] वह अपनी बेटी देवल को खिजरखाँ (अलाउद्दीन का पुत्र) से विवाह कराती है और खिजरखाँ को दिल्ली के तख्त पर बिठाने का असफल प्रयास करती है। इस प्रकार इस नाटक में राजसत्ता पाने के स्वार्थ को लेकर अत्यंत स्थूल तथा निम्न श्रेणी का संघर्ष चलता है।

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी-शतरंज के खिलाड़ी-पृ० ३४ (सन १९५५ का संस्करण)
२ हरिकृष्ण प्रेमी-साँपों की सृष्टि-पृ० १५ (प्र० सं० सन् १९६६ ई०)

(१२) उपेन्द्रनाथ अश्क के "जय-पराजय" (१९३८), "व्यथित हृदय" के 'पुण्य फल' (१९३७) आकारनाथ दिनकर के 'मुक्ति-यज्ञ' (१९६७) और हरिकृष्ण प्रेमी के भाई भाई (१९६९) में राजसत्ता के लिए राजपूतों का पारस्परिक संघर्ष है।

जय पराजय" में दिखाया गया है कि दुर्भाग्य से हंसाबाई (मंडोवर के राठौर की कन्या) का विवाह चण्ड से होने के बदले चण्ड के पिता राणा लक्षसिंह से होता है। हंसाबाई चण्ड को अपना प्रेमी बनाने का प्रयास करती है। चण्ड अस्वीकार करता है। चण्ड से प्रतिशोध लेने के लिए हंसाबाई दुष्ट एवं स्वार्थी रणमल को अपने यहाँ आश्रय देती है। रणमल हंसाबाई का भाई है। चण्ड अपमानित होकर माडू के सुलतान के आश्रय में चला जाता है। इधर रणमल मेवाड पर अधिकार पाने के लिए हंसाबाई के पुत्र मोकल की हत्या का षडयन्त्र रचता है। हंसाबाई के निमन्त्रणानुसार चण्ड लौट आता है और रणमल को पराभूत कर मेवाड को राठौरों के अत्याचार से मुक्त कर देता है।

मुक्ति यज्ञ' नाटक में भी उक्त घटनाओं और उनके सन्दर्भ में संघर्ष को स्थान मिला है। "पुण्य फल और भाई भाई' में भी उक्त संघर्ष को ही स्थान मिला है। 'पुण्य-फल में चण्ड की सौतेली माँ और रणमल की बहन का नाम मुकेनी है। भाई भाई' में चण्ड की सौतेली माँ का नाम सूर्यकुमारी है। इसमें रणमल सूर्यकुमारी का पिता है जो मेवाड पर अधिकार जमाने के लिए दुष्टता दिखाता है।

उपर्युक्त नाटकों में व्यक्तिगत स्वार्थों का संघर्ष है। प्रस्तुत संघर्ष अतिशय स्थूल तथा सामान्य श्रेणी का संघर्ष है।

(१३) जनार्दन राय के आधी रात' (१९३८) और हरिकृष्ण प्रेमी के "कीर्ति-स्तम्भ" में राजपूतों का आपसी संघर्ष है। 'आधीरात' में महाराणा कुम्भा का बडा बेटा ऊदयसिंह कुम्भा का वध कर महाराणा बन जाता है। इस कार्य में भाई जैतसिंह की सहायता ली थी। लेकिन महाराणा बनने पर स्वार्थी उदयसिंह और लालची जैतसिंह आपस में लडने हैं। उदयसिंह जैतसिंह की हत्या करता है।

कुम्भा के वध का रहस्य प्रकट होने के बाद राजा उदयसिंह और प्रजा में संघर्ष आरम्भ होता है। इसमें प्रजा की विजय होती है। हारा हुआ ऊदय पागल बन जाता है।

हरिकृष्ण प्रेमी के 'कीर्ति स्तम्भ' (१९५५) में भी उक्त संघर्ष को स्थान मिला है। मेवाड के महाराणा कुम्भा का वध कर ऊदाजी (उदयसिंह) ने राजसत्ता हस्तगत की थी। छोटे भाई रायमल ने ऊदाजी को भगाकर राजसत्ता पर अधिकार जमाया। अब रायमल के पुत्र संग्रामसिंह, पृथ्वीराज और जयमल युवराज पद पाने के लिए एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी बन गये हैं। अत्याचारी पठान को हराने के कारण पृथ्वीराज को युवराज पद दिया जाता है। निर्वासित ऊदा का पुत्र सूरजमल और

पुत्री ज्वाला-मेवाड़ पर अधिकार स्थापित करना चाहते हैं। अतः पृथ्वीराज और सूरजमल में युद्ध छिड़ता है। योग से पृथ्वीराज की मृत्यु होती है। संग्रामसिंह विपक्षी को परास्त कर सूरजमल और ज्वाला को बन्दी बनाता है। इस प्रकार उक्त दोनों नाटकों में स्वार्थ, ईर्ष्या और लोभ के कारण विभिन्न व्यक्तियों में संघर्ष का निर्माण होता है। प्रस्तुत संघर्ष स्थूल तथा साधारण श्रेणी का संघर्ष है। घटनाओं की बहुलता के कारण इन नाटकों में संघर्ष का निर्वाह व्यवस्थित नहीं हो पाया है।

(१४) हरिकृष्ण प्रेमी के 'भग्न प्राचीर' (१९५५) में महाराणा संग्रामसिंह का बाबर से संघर्ष है। बाबर इब्राहीम लोदी को पराभूत कर दिल्ली की सत्ता अपने हाथों में लेता है। महाराणा संग्रामसिंह बाबर को पराभूत करना चाहते हैं। अतः वे इब्राहीम के पुत्र महमूद लोदी को आश्रय देते हैं और राजस्थान के राजपूतों को संगठित कर बाबर से युद्ध करते हैं। लेकिन खानवा के युद्ध में संग्रामसिंह की पराजय होती है। फिर भी संग्रामसिंह युद्ध की तैयारी करने लगते हैं। लेकिन युद्ध से ऊबे हुए उनके सामन्त विष देकर उनका प्राणान्त कर देते हैं। इस नाटक में देश-प्रेमी संग्रामसिंह का आक्रमणकारी बाबर से सत्त्व का संघर्ष है। इस संघर्ष में संग्रामसिंह को भारी हानि उठाना पड़ता है। प्रस्तुत संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है।

(१५) हरिकृष्ण प्रेमी के 'रक्षा-बन्धन' (१९३४) में महाराणा संग्रामसिंह की विधवा पत्नी कर्मवती के नेतृत्व में स्वाधीनता रक्षा के लिए आक्रामक बहादुरशाह से संघर्ष है। मेवाड़ का महाराणा (महारानी जवाहरबाई का पुत्र) विक्रमादित्य चाँदखाँ को आश्रय देता है। चाँदखाँ गुजरात के बादशाह बहादुरशाह का भाई है। बहादुरशाह भाई चाँदखाँ के खून का प्यासा है। अतः वह मेवाड़ पर चढ़ाई करता है। रानी कर्मवती राजपूत वीरों को राखी बाँधती है और उन्हें देश के लिए सर्वस्व बलिदान करने को उत्तेजित करती है। वह मेवाड़ की रक्षा के लिए हुमायूँ को भी राखी भेजती है। लेकिन हुमायूँ के पहुँचने से पूर्व ही संघर्ष भयंकर रूप धारण करता है। राजपूतों की हार होती है। जवाहरबाई वीरगति पाती है। कर्मवती राजपूत रमणियों के साथ जौहर ज्वाला में प्रवेश करती है। हुमायूँ बहादुरशाह को पराभूत कर विक्रमादित्य को सिंहासन पर बिठाता है। इस प्रकार इस नाटक में मानो राजपूतों का देश-रक्षार्थ संघर्ष है। अतः प्रस्तुत संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष का निर्वाह ठीक ढंग से किया गया है।

ओंकारनाथ दिनकर के 'अभिषेक' (१९४८) नाटक में भी उक्त संघर्ष को स्थान मिला है। इस संघर्ष के द्वारा मेवाड़ियों में आपसी संघर्ष का आरम्भ होता है।

मेवाड़ का राणा विक्रमादित्य कमजोर होने के कारण सामन्त विद्रोह करते हैं। वे विक्रम को अपदस्थ करते हैं और पृथ्वीराज के दासीपुत्र बनवीर को सिंहासन पर बिठाते हैं। बनवीर विक्रम की हत्या करता है। वह उदयसिंह (राना कर्मवती

के पुत्र) की भी हत्या करने वाला था परन्तु पन्ना धाय अपने पुत्र का बलिदान देकर उदयसिंह की रक्षा करती है। उदयसिंह बडा होने पर अनेको की सहायता से अत्याचारी बनवीर को पराजित करता है और मेवाड का राजा बन जाता है। इस प्रकार इस नाटक मे मेवाड के राजपूतो का गुजरात के बहादुरशाह से सघष है। साथ ही साथ मेवाड के राजपूतो का व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण पारस्परिक सघष भी है। प्रस्तुत सघप स्थूल और साधारण श्रेणी का सघप है। सघप का निर्वाह व्यवस्थित नही हो पाया है।

(१६) गोविन्दवल्लभ पन्त के 'राजमुकुट' (१९३५) नाटक मे भी राजपूतो के पारस्परिक सघप को स्थान मिला है। इसमे भी विक्रमादित्य को अपदस्थ कर बनवीर को सिंहासन पर बिठाया जाता है। वह विक्रम की हत्या करता है। वह बालक उदय की भी हत्या करने की चेष्टा करता है। परन्तु पन्ना धाय उदय की रक्षा करती है। बनवीर को पराजित कर उदय मेवाड का अधिपति बन जाता है।

प्रस्तुत नाटक का बाह्य सघप वैचारिक सघप है। इस सघप म सुष्ट पक्ष की जीत हुई है।

(१७) डॉ० गोविन्ददास के 'शेरशाह' म विदेशी और स्वदेशी मुसलमानो का पारस्परिक सघप है। शेरशाह हिन्दुस्थान को अपना मुल्क मानता है। वह अपने मुल्क पर किसी विदेशी का शासन नही चाहता है। अत वह आक्रामक मुगलो को इस मुल्क से निकाल बाहर कर देना अपना कर्तव्य मानता है। वह कहता है—'मुगल चाहे मुसलमान हो लेकिन उन्हें मैं इस मुल्क के लिए लुटेरा समझता हूँ।"[1] अत 'मैं चाहता हू इस मुल्क के हिन्दू मुसलमान दोनो मिलकर इस बाहरी कौम का मुकाबला करें।"[2] इस महत्त्वाकाक्षा के अनुसार शेरशाह हुमायू से सघप करता है विजय पाता है और सम्राट बन जाता है। वह देशहित के लिए स्वदेशी मुसलमानो और हिन्दुओ म एकता चाहता है।

इस सघप म शेरशाह के सुष्ट एव रक्षणशील पक्ष की विजय होती है। यह सघप उच्च श्रेणी का सघप है। पर इस सघप का निर्वाह ठीक ढग स नही हो पाया है।

(१८) पराधीन मेवाड का उद्धार करन क हेतु स्वातन्त्र्य सनानी महाराणा प्रताप न जो जीवन पय त सघप किया, उसका निर्देशन चन्द्रशेखर पाण्डे कृत 'मेवाड उद्धार' (१९४६) म देवराज दिनेश कृत 'मानव प्रताप' (१९५२) मे, चतुर्भुज कृत 'अरावली का शेर' (१९५७) मे रामकुमार वर्मा कृत 'महाराणा प्रताप' (१९६७) म और हरिकृष्ण प्रेमी कृत 'बन्धु मिलन' (१९६९) मे हुआ है। इन

१ डा० गोविन्ददास—शेरशाह—पृ० ५५ (सस्करण तथा तिथि का अनुल्लेख)
२ वही, पृ० ५६।

नाटकों में बाह्य संघर्ष की प्रधानता है।

चन्द्रशेखर पाण्डे के 'मेवाड़ उद्धार' का आरम्भ व्यक्ति व्यक्ति के संघर्ष से होता है। आखेट के समय राणा प्रताप और शक्तिसिंह दोनों के बर्छों से वराह का शिकार होता है। उस शिकार पर अधिकार पाने के लिए भाइयों में संघर्ष होता है। शक्तिसिंह की उद्दण्डता देखकर राणा प्रताप शक्तिसिंह को राज्य निर्वासन का दण्ड देते हैं। शक्तिसिंह अकबर के पास जाता है और उसे मेवाड़ पर चढ़ाई करने को उकसाता है।

राणा प्रताप अकबर के सेनापति मानसिंह को जानबूझकर भोजन का निमन्त्रण देते हैं और भोजन के समय उसका अपमान करते हैं। इस अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए मानसिंह प्रताप पर चढ़ाई करता है। दोनों पक्षों का हल्दी घाटी में युद्ध होता है। राणा प्रताप की हार होती है। फिर भी राणा प्रताप भामाशाह तथा भीलों की सहायता से जीवनपर्यन्त संघर्ष करते रहते हैं। एक चित्तौड़ को छोड़कर सभी दुर्ग जीत लेते हैं।

देवराज दिनेश के 'मानव प्रताप' का आरम्भ हल्दी घाटी के युद्ध से होता है। पराजित राणा प्रताप हिम्मत नहीं हारते। वे मेवाड़ की स्वाधीनता के लिए जीवन पर्यन्त लड़ने का प्रण करते हैं। वे कहते हैं—'वास्तव में जीने का अधिकारी वही है जो प्रबल से प्रबल संघर्षों में भी मुस्कराता रहे।'[1] 'युद्ध निरन्तर युद्ध। इन संघर्षों का कहीं कोई अन्त भी नहीं दीखता। एक क्षण भी आराम नहीं। अकबर और प्रताप का संघर्ष है। (हँसकर) कुछ भी हो पर है यह भी जीवन आनन्द दायक।'[2]

अकबर की कामना है कि किसी भी क्यों न हो प्रताप को नीचा दिखाया जाय। अतः वह मानसिंह के बाद शाहबाजखाँ को मेवाड़ पर चढ़ाई करने को भेजता है। बार शक्तिसिंह शाहबाजखाँ के शिविर को लूटकर राणा प्रताप के स्वातन्त्र्य युद्ध को सफल करने में सहयोग देता है।

शाहबाजखाँ के बाद रहीमखानखाना चढ़ाई करता है। प्रताप की मानवता देखकर रहीमखानखाना प्रभावित होता है। इस प्रकार राणा प्रताप का संघर्ष कभी नहीं रुकता। अनेक किले उनके अधिकार में आते हैं। अकेला चित्तौड़ पराधीन रहता है। पुत्र अमरसिंह से चित्तौड़ की मुक्ति का वचन लेकर ही राणा प्रताप प्राण त्यागते हैं।

चतुर्भुज के 'अरावली का शेर' नाटक के आरम्भ में भी सूअर के शिकार के सन्दर्भ में राणा प्रताप और शक्तिसिंह का संघर्ष है। उसके बाद राणा प्रताप द्वारा मानसिंह का अपमान और हल्दी घाटी का युद्ध है।

१ देवराज दिनेश—मानव प्रताप—पृ० ३६ (द्वि० सं० सन १९५४ ई०)
२ वही—पृ० ९१।

रामकुमार वर्मा के "महाराणा प्रताप" नाटक के आरम्भ मे मेवाड के सामन्तो और जगमल का संघर्ष है । राणा के पिता ने छोटी रानी के पुत्र जगमल को राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया है । इससे सामन्तो म असन्तोष फलता है । क्योंकि राज्य का उत्तराधिकारी राणा प्रताप को घोषित कर देना चाहिए था । सामन्तो के असतोष को देखकर जगमल क्रुद्ध होता है और सामन्त झालौर से तलवार का द्वन्द्व युद्ध करता है । जगमल को हार खानी पडती है । सभी सामन्त राणा प्रताप का अभिषेक करते हैं । उस अवसर पर महाराणा प्रताप प्रतिज्ञा करते हैं—' मेवाड भूमि के वीरो ! आज अपनी मातृभूमि मेवाड को प्रणाम कर मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो विश्वास मेरे सामन्तों ने मुझ पर किया है उसको जीवन भर रक्षा करूँगा और अपने रोम रोम से अपनी मातृभूमि की सेवा करता हुआ उसकी स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर दूँगा ।'[1] इस प्रतिज्ञा के अनुसार राणा प्रताप जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहे और किलो को जीतने मे सफल रहे । इस नाटक मे भी हल्दी घाटी के युद्धात्मक संघर्ष को स्थान दिया गया है ।

हरिकृष्ण प्रेमी कृत 'बन्धु मिलन' म आरम्भ में शक्तिसिंह और महाराणा प्रताप का संघर्ष है । इसके पश्चात महाराणा प्रताप द्वारा राजा मानसिंह का अपमान होता है । परिणामस्वरूप हल्दी घाटी का युद्ध होता है । महाराणा प्रताप की हार होती है । पश्चाताप दग्ध शक्तिसिंह अकबर का पक्ष छोडकर महाराणा प्रताप से मिल जाता है । भाइयो का पुनर्मिलन हो जाता है । वस्तुत संघर्ष की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक का प्रथम अक ही प्रभावशाली है । अन्य अको मे क्षीण बाह्य संघर्ष है ।

उपर्युक्त सभी नाटको मे बाह्य संघर्ष है । इन नाटको म से कुछ ही नाटकों में संघर्ष का निर्वाह ठीक ढग स किया गया है । इस सन्दर्भ मे "महाराणा प्रताप" नाटक उल्लेखनीय है । इन नाटको में उच्च श्रेणी का बाह्य संघर्ष है । प्रस्तुत संघर्ष का आधार महाराणा प्रताप का स्वाधीनता प्रेम है ।

डा० दशरथ ओझा कृत 'चित्तौड की देवी' (१९३४) नाटक महाराणा प्रताप की बेटी चम्पा के जीवन पर आधारित है । हल्दी घाटी के युद्ध के पश्चात महाराणा प्रताप को अत्यन्त कष्ट मे दिन बिताने पडते हैं । अपने भूख से पीडित बच्चो को देखकर महाराणा का हृदय व्याकुल हो जाता है । इस दुरवस्था से मुक्त होने के हेतु महाराणा प्रताप अकबर से सन्धि करने का निश्चय करते हैं । लेकिन स्वाधीनता प्रिय चम्पा अपने बलिदान से महाराणा प्रताप को सन्धि करने से रोकती है । महाराणा प्रताप अकबर से सन्धि करने के बदले लोहा लेने का निर्णय करते हैं । इस प्रकार प्रस्तुत नाटक म अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए संघर्ष करने के निर्णय को महत्व का स्थान मिल पाया है ।

१ रामकुमार वर्मा—महाराणा प्रताप-पृ० ३२ (प्र० स० सन् १९६७ ई०)

चम्पा का बलिदान होने से पूर्व चम्पा के दृढ़ निश्चय को देखकर राणा प्रताप में सूक्ष्म आन्तरिक संघर्ष चलता है। एक ओर देश की स्वाधीनता रक्षा का विचार है, तो दूसरी ओर व्यक्तिगत संकट के कारण अकबर से संधि करने का विचार है। चम्पा के बलिदान से प्रभावित होकर राणा प्रताप व्यक्तिगत संकट की चिन्ता का त्याग करके देश के स्वातन्त्र्य की रक्षा करने का निर्णय करते हैं। इस दृष्टि से राणा प्रताप का आन्तरिक संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है।

(१९) गोंडवाने की स्वाधीनता रक्षा के लिए वीर रानी दुर्गावती का बादशाह अकबर के सेनापति आसफखाँ से जो वीरतापूर्वक संघर्ष हुआ है उसका प्रदर्शन नरेन्द्र राव के अमर बलिदान (१९६०) और कविरत्न पाराशर के वीरांगना दुर्गावती (१९६५) में हुआ है।

बादशाह अकबर गोंडवाने पर अधिकार पाना चाहता है। रानी दुर्गावती अकबर का सपना चूर चूर कर देना चाहती है। अकबर के हुक्म के अनुसार सेनापति आसफखाँ भारी फौज लेकर गोंडवाने पर चढ़ाई करता है। रानी दुर्गावती जबरदस्त प्रतिकार करती है। इस संघर्ष में रानी को वीरगति मिलती है। आसफखाँ की जीत होती है।

प्रस्तुत संघर्ष बाह्य संघर्ष है। दोनों नाटकों में इस संघर्ष का निर्वाह उचित रीति से किया गया है। इस संघर्ष में वीर रानी दुर्गावती की हार होती है। रानी दुर्गावती का संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है।

(२०) रामकुमार वर्मा का 'सारंग स्वर' (१९७०) नाटक संघर्ष की दृष्टि से अतिशय साधारण नाटक है। इसमें संघर्ष न के बराबर है। बादशाह अकबर के काल से सम्बन्धित 'अनारकली' (१९५२ सीताराम चतुर्वेदी) और 'बीरबल' (वृन्दावनलाल वर्मा) इन नाटकों में भी संघर्ष का अभाव है। डा० गोविन्ददास का जीवनीस्वरूप नाटक 'रहीम' (१९५५) भी बाह्य संघर्ष की दृष्टि से विशेष नहीं है। रहीम में सूक्ष्म आन्तरिक संघर्ष है। रहीम के एक ओर राजनीति है तो दूसरी ओर साहित्य, एक तरफ वैभव है तो दूसरी तरफ वैराग्य। वे किसी एक को स्वीकार करने का निर्णय नहीं कर पाते। संत तुलसीदास से मिलने पर इनके मन को शान्ति मिल जाती है।

रहीम का परस्पर विरुद्ध विचारों का आन्तरिक संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है।

(२१) कुंवर वीरेन्द्रसिंह के 'सम्राट' (१९५८) नाटक में, सम्राट जहाँगीर की मुक्ति के लिए राजपूत वीर अनूपसिंह का आक्रामक तातार-नरेश से द्वन्द्व युद्धात्मक संघर्ष है।

नूरजहाँ अनूप को अपना भाई मानती है। ईर्ष्यावश कुछ सरदार अनूप के

विरुद्ध जहाँगीर के मन में विष घोलते हैं । तब आखेट के अवसर पर अनूप की हत्या का षड्यन्त्र रचा जाता है । लेकिन वहाँ अनूप शेर का शिकार कर जहाँगीर की जान बचाता है । जहाँगीर अनूप पर विश्वास करने लगता है । आक्रामक तातार-नरेश जहाँगीर को कैद करता है । बहन नूरजहाँ के सुहाग की रक्षा करने के लिए अनूप तातार नरेश के जगबहादुर को द्वन्द्व युद्ध में हराता है और जहाँगीर को मुक्त कर देता है ।

प्रस्तुत नाटक का संघर्ष श्रेणी की दृष्टि से अतिशय साधारण संघर्ष है ।

(२२) संत गोकुलचन्द शास्त्री के "हिरोल (१९४६) और ओंकारनाथ दिनकर के 'मृत्युञ्जय' (१९६६) में बाह्य संघर्ष को स्थान मिला है । इन दोनों नाटकों में संघर्ष का आरम्भ इस प्रकार हुआ है । बादशाह जहाँगीर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई करने की तैयारी की है । इधर चित्तौड़ाधिपति अमरसिंह के सामने समस्या उपस्थित होती है कि जहाँगीर से लड़ते समय सेना का हिरोल किसे दिया जाय ? अब तक हिरोल का गौरव चूडावत भोगते आ रहे थे । अब शक्तावत नेता बल्लजी हिरोल चाहने लगा । इससे चूडावतों का नेता सालूम्बा सरदार और बल्लजी के मध्य प्रतिस्पर्द्धा आरम्भ हुई । इस समस्या को सुलझाने के लिए अमरसिंह ने बल्लजी और सालूम्बा सरदार को 'ऊंतलादुर्ग' पर (ऊंटाला दुर्ग पर) चढ़ाई करने भेजा । शर्त यह रखी कि जो कोई दुर्ग को जीतेगा और उसमें सर्वप्रथम प्रवेश करेगा, वह हिरोल का अधिकारी होगा ।

बल्लजी और सालूम्बा सरदार ऊंतलादुर्ग पर दोनों ओर से चढ़ाई करते हैं । दुर्ग पर मुसलमान शासक का शासन है । अन्दर से जबर्दस्त प्रतिकार होता है । शक्तावत नेता बल्लजी दुर्ग का द्वार खोलने में सफलता पाता है । परन्तु इससे उसका बलिदान होता है । सालूम्बा सरदार भी दुर्ग की दीवार पर पहुँचता है पर लड़ते लड़ते वीरगति पाता है ।

उपर्युक्त दोनों नाटकों का संघर्ष स्थूल और साधारण श्रेणी का है । इस संघर्ष के मूल में स्वार्थपरायणता कार्य कर रही है ।

(२३) हरिकृष्ण प्रेमी के 'उद्धार (१९४९) में चित्तौड़ गढ़ की स्वाधीनता के लिए जननायक हमीर का संघर्ष है । चित्तौड़ पर सिसोदिया राजवंश का महाराव मालवदेव शासन कर रहा है । उसे दिल्ली के बादशाह ने नियुक्त किया है । दिल्ली के पदाधिकारी और सैनिक मेवाड़ की जनता पर अत्याचार कर रहे हैं । अतः जनता के हृदय में विद्रोह की चिनगारी सुलगती है । जनता जननायक हमीर का साथ देती है । इस स्वाधीनता संग्राम में कमला (मालवदेव की कन्या) भी हमीर का साथ देती है । हमीर चित्तौड़ पर धावा बोल देता है और विजय पाता है । इस विजय से चित्तौड़ स्वाधीन बन जाता है । साथ साथ सिसोदिया और चौहानों में मित्रता भी

स्थापित होती है।

स्वाधीनता संग्राम के साथ साथ वीर हमीर का घातक सामाजिक परम्पराओं से भी संघर्ष चलता है। कमला विधवा है। हिन्दू धर्म कमला का पुनर्विवाह की अनुमति नहीं दे सकता। कमला और हमीर परस्पर अनुरक्त हैं। वे विवाह करना चाहते हैं। हमीर कमला को समझाता है—'हमीर देश को विदेशियों से मुक्त करके ही शान्त नहीं होगा वरन् प्राचीन रूढ़ियों को तोड़कर क्रान्ति भी करेगा।'[1] 'हम समाज के पाखण्डों के विरुद्ध विद्रोह करते हैं।'[2] इससे ज्ञात होता है कि इस नाटक में राजनीतिक संघर्ष के साथ साथ सामाजिक संघर्ष भी है।

वीर हमीर का संघर्ष स्थूल तथा उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष में वीर हमीर के सुष्ठ एवं प्रगतिशील पक्ष की विजय हुई है। यह स्वाभाविक विजय है।

(२४) हरिकृष्ण प्रेमी का 'विषपान' नाटक संघर्ष की दृष्टि से एक साधारण नाटक है। इसमें स्वार्थपरायण राजपूतों का निम्न श्रेणी का पारस्परिक संघर्ष है।

(२५) हरिकृष्ण प्रेमी के 'अमर आन' (१९६४) नाटक में अमरसिंह राठौर का न्याय की माँग के लिए बादशाह शाहजहाँ के सरदारों के साथ संघर्ष है। बीकानेर के अधिपति राज्य की सीमा से मतीरा ले जाते हैं। नागौर के राठौर अमरसिंह इस घटना को आन का प्रश्न मानता है। वह अपनी रानी से कहता है—"तलवार के जोर से कोई मेरी सीमा से मतीरा ले जाए नहीं रानी यह नहीं होने दिया जावेगा। राजपूत राज्य छोड़ सकता है प्राण दे सकता है लेकिन नाक नहीं कटा सकता। दिल्ली के बल पर बीकानेर ने यह दुस्साहस किया है। पहले मैं दिल्ली से अपना मतीरा माँगूँगा। वह नहीं देगा तो अपने बल से लूँगा। मैं अमरसिंह राठौर हूँ।"[1]

लेकिन बादशाह शाहजहाँ के दरबार में कुछ और ही होता है। वहाँ सलावत खाँ अमरसिंह का अपमान करता है। क्रोध में आकर अमरसिंह वहीं पर सलावत खाँ का सिर काटता है। अनेक सैनिक अमर पर धावा बोलते हैं। वीर अमर सभी को पराजित कर देता है। परन्तु अर्जुन गौड़ के धोखे में आने से अमर की हत्या होती है।

प्रस्तुत नाटक का संघर्ष अति साधारण श्रेणी का संघर्ष है।

(२६) हरिकृष्ण प्रेमी के 'स्वप्न भंग' (१९४९) नाटक में राज्य-सत्ता पाने के लिए बादशाह शाहजहाँ की महत्त्वाकांक्षी सन्तानों का पारस्परिक संघर्ष है। एक ओर दारा और जहाँनआरा हैं तो दूसरी ओर औरंगजेब और रोशनआरा हैं। औरंगजेब और रोशनआरा बड़े निर्मम हैं। वे किसी को हृदय से प्यार नहीं करते।

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी—उद्धार—पृ० ७९–(चतुर्थ सं० सन् १९५६ ई०)
२ वही—पृ० ८५।
१. हरिकृष्ण प्रेमी—अमर आन—पृ० २२–२३ (प्र० सं० सन् १९६४ ई०)

दोना राजसत्ता पर अपना अधिकार चाहते हैं। पूर्त औरगजेब कुरानशरीफ को राजनीति का अस्त्र बनाता है। वह कहता है—"कुरान शरीफ के नाम पर मैं जगल मे भी सेना जमा कर सकता हूँ, नए साम्राज्य स्थापित कर सकता हूँ। यह केवल धम ग्रन्थ ही नही राजनीतिक अस्त्र भी है।" अत अपनी महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति के लिए औरगजेब विद्रोही पुत्र के रूप म दक्षिण की ओर से दिल्ली पर चढ़ाई करने निकलता है।

दारा की महत्त्वाकाक्षा औरगजेब की महत्त्वाकाक्षा से एकदम भिन्न है। उसकी काक्षा है—'मैं सम्राट नही मनुष्य बनना चाहता हू। मनुष्य रहकर सम्राट बनना चाहता हूँ। सम्राट बनकर मनुष्यो को मनुष्य बनाना चाहता हूँ।'[1] लेकिन दारा का स्वप्न पूरा नही होता। औरगजेब दारा के स्वप्न के टुकडे-टुकडे कर देता है।

महत्त्वाकाक्षी रोशनआरा औरगजेब का साथ देती है। इसके विरुद्ध जहाँनआरा दारा के सत्पक्ष का साथ देती है। लेकिन युद्ध मे दारा की हार और औरगजेब की जीत होती है। औरगजेब दारा और उसके पुत्र की हत्या कराता है। इससे राष्ट्रीयता की क्षति होती है। जहाँनआरा इस सघष की व्याख्या इस प्रकार करती है— यह भाई भाई की लडाई नही है यह है राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता का सघष।"[2]

वास्तव म दारा और औरगजब म परस्पर विरुद्ध दो विचारधाराओ का वचारिक सघष है। इस सघष म दारा क सद्विचारो तथा मानवतावादी एव राष्ट्रीय दृष्टिकोण की पराजय होती है। दारा के उदात्त स्वप्न का भग होता है।

दारा का सघष उच्च श्रेणी का सघष है। सघष का निर्वाह ठीक रीति से किया गया है। दारा और औरगजेब का वचारिक सघष सूक्ष्म है और राजनीतिक सघर्ष स्थूल है।

(२७) हरिकृष्ण प्रेमी के 'विदा (१९५८) म बादशाह औरगजेब से उसके ही पुत्र अकबर का सघष है। कवल राज्य करना ही औरगजेब का ध्येय नही है बल्कि हिन्दुस्थान भर इस्लाम का प्रचार करना भी है। इस ध्येय की पूर्ति के लिए वह अपनी स तान के प्रति भी निदय हो सकता है।

औरगजेब की पुत्री जब्बुन्निसा निर्भीक और विवेकी है। वह अपने पिता के मनुष्यताशून्य कार्यों के विरुद्ध विद्रोह करना चाहती है। वह स्पष्ट शब्दो में पिता से कहती है—'आप अपन अब्बाजान से विद्रोह कर सकत हैं तो मैं भी अपने अब्बा

१ हरिकृष्ण प्रेमी—स्वप्न भग—पृ० २१ (छठा स० सन् १९५३)

२ वही—पृ० २०।

३ वही—पृ० २९।

जाता न कर सकती हूँ।" औरंगजेब इस विद्रोह को कुचलने का निश्चय करता है। जन्हुन्निसा भाई अकबर को विद्रोह की चेतावनी देती है। वह मनुष्यता की रक्षा के लिए औरंगजेब के दुष्ट चक्र को रोकना चाहता है।

उधर राजस्थान में वीर दुर्गादास औरंगजेब से लड़ने की तयारी करता है। अकबर दुर्गादास से मिलता है। और औरंगजेब से लड़ने के लिए दुर्गादास की सहायता लेता है। लेकिन पिता को पराजित करने में अकबर को यश नहीं मिलता। वह निराश होकर ईरान चला जाता है। जाते हुए वह अपनी पत्नी और पुत्री को दुर्गादास के आश्रम में छोड़ देता है। इस प्रकार इस नाटक में पिता-पुत्री का पिता पुत्र का पारिवारिक संघर्ष है। प्रस्तुत धार्मिक संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का संघर्ष है। राजनीतिक संघर्ष स्थूल संघर्ष है। संघर्ष का निर्वाह उचित रीति से किया गया है।[1]

(२८) आचार्य चतुरसेन शास्त्री का अजीत सिंह नाटक एक काल से सम्बन्धित अनेक घटनाओं पर आधारित है। बीच बीच में बाह्य संघर्ष के दर्शन होते हैं। आरम्भ में ही वीर दुर्गादास बालक अजीतसिंह और उसकी माता को औरंगजेब की कैद से मुक्त कर देता है। इस आरम्भ में वीर दुर्गादास को औरंगजेब की सेना से लड़ना पड़ता है।

ठाकुर दुर्गादास अजीतसिंह को अजेय योद्धा बनाता है। युवक अजीत प्रतिज्ञा करता है—प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं मुगलों के साम्राज्य का विध्वंस करूँगा। उनके तख्ते ताउस को खण्ड-खण्ड करके धूल में मिला दूँगा। मैं उन अत्याचारियों के वंश का समूल संहार करूँगा।' दुर्गादास के कहने के अनुसार अजीत सिंह जालौर के दुर्ग को जीत लेता है और जोधपुर का राजा बन जाता है।

अजीतसिंह अकबर की कन्या रजिया से प्रेम करता है। इस प्रेम को लेकर अजीतसिंह और दुर्गादास का संघर्ष होता है। अजीतसिंह दुर्गादास को निर्वासन की सजा देता है। भीषण संघर्ष टालने के लिए दुर्गादास सजा को स्वीकार करता है।

मेवाड़ के प्रमुख सरदार अजीतसिंह का इसलिए विरोध करते हैं कि वह विधर्मी लड़की को मारवाड़ की रानी बनाना चाहता है। इस विरोध के परिणाम स्वरूप उदयपुर की राजकुमारी से अजीतसिंह का विवाह होता है।

बहादुरशाह का वध करने और दिल्ली की सत्ता अपने हाथों में लेने में अजीतसिंह को सफलता मिलती है। अन्त में पुत्र द्वारा भोजन में दिए गए विष से अजीत सिंह की मृत्यु होती है। इस प्रकार इस नाटक में विभिन्न परिस्थिति के सन्दर्भ में संघर्ष को स्थान मिला है।[2]

१ हरिकृष्ण प्रेमी—विदा—पृष्ठ ७ (चौथा सं० सन् १९६३ ई०)
२ चतुरसेन शास्त्री—अजीतसिंह—पृष्ठ २०-२१ (सन् १९६१ ई० का संस्करण)

प्रस्तुत नाटक का बाह्य संघर्ष अत्यन्त स्थूल संघर्ष है। इस संघर्ष का अव्यवस्थित निर्वाह नहीं हो पाया है।

सुवर्णसिंह वर्मा 'आनंद' के 'वीर दुर्गादास' (१९३४ ई०) नाटक का भी कथानक 'अजीतसिंह' नाटक के कथानक जैसा ही है। अतः इस नाटक में भी प्रसंग के अनुसार दुर्गादास और औरंगजेब, अकबर और औरंगजेब तथा दुर्गादास और अजीत का संघर्ष है।

हरिकृष्ण प्रेमी के 'आन का मान' (१९६२) नाटक का कथानक भी 'वीर दुर्गादास' नाटक के कथानक जैसा है। अतः इस नाटक में भी उन्हीं घटनाओं के संदर्भ में बाह्य संघर्ष को स्थान मिला है जिन घटनाओं के सन्दर्भ में वीर दुर्गादास नाटक में। इसमें अकबर की पुत्री का नाम सफीयतुन्निसा है। दुर्गादास मानता है कि सफीयतुन्निसा को औरंगजेब के पास सुरक्षित पहुँचाने में राजपूती आन है। इस राजपूती आन को निभाने के लिए दुर्गादास अजीतसिंह से संघर्ष करता है।

रामकुमार वर्मा के 'जौहर की ज्योति' (१९६७) में क्षीण बाह्य संघर्ष है। इसमें अजीत और सफीयत के प्रेम को महत्त्व का स्थान मिला है। वे दोनों गान्धर्व विवाह कर लेते हैं। दुर्गादास को यह अच्छा नहीं लगता। उसे लगता है जिस विश्वास से अकबर ने सफीयत को दुर्गादास के आश्रय में रखा था उस विश्वास को ठेस पहुँच गयी है। अतः वह सफीयत को औरंगजेब के पास पहुँचाना चाहता है। अजीतसिंह क्रुद्ध होकर विरोध करता है। अजीतसिंह और दुर्गादास में संघर्ष न हो इस विचार से सफीयत दुर्गादास के साथ औरंगजेब के पास जाने को तैयार होती है।

इस प्रकार इस नाटक के केवल तीसरे अंक में संघर्ष को स्थान मिला है। सफीयत की समझदारी के कारण यह संघर्ष भीषण रूप धारण नहीं करता।

उपर्युक्त चारों नाटकों में संघर्ष का निर्वाह योग्य रीति से नहीं हो पाया है। इन चारों नाटकों में स्थूल बाह्य संघर्ष है।

(२९) आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'राजसिंह' नाटक में राणा राजसिंह का औरंगजेब से संघर्ष है। रूपनगर की राजकुमारी को पाने के लिए औरंगजेब चढ़ाई करता है। राजकुमारी चारुमती अपनी रक्षा के लिए राजसिंह की सहायता लेती है। राजसिंह औरंगजेब को पराभूत करता है। औरंगजेब को राजसिंह के साथ संधि करनी पड़ती है। इस प्रकार इस नाटक में विशिष्ट परिस्थिति के संदर्भ में दुष्ट व्यक्ति से सुष्ट व्यक्ति का संघर्ष है।

(३०) बुन्देलखण्ड के स्वाधीनता संग्राम के सेनानी चंपतराय और वीर पुत्र छत्रसाल के संघर्षमय जीवन का दिग्दर्शन श्यामकान्त पाठक के 'बुन्देल केसरी' (१९३४) सत्येन्द्र' के 'मुक्ति यज्ञ' (१९४७) और हरिकृष्ण प्रेमी के 'प्रतिशोध' (१९४७) में हुआ है। संघर्ष की दृष्टि से प्रतिशोध नाटक उल्लेखनीय है। दस

आचाय वजनाथ राय के 'सिंहगढ़ विजय' (१९४९) मे औरगजेब के सरदार उदयभानु से शिवाजी के वीर सरदार तानाजी का सघष है। लेकिन नाटक मे इस सघष को बहुत कम स्थान मिला है।

मोहनलाल महतो 'वियोगी' के अफ़ज़ल वध (१९३०) म वीर शिवाजी द्वारा अफ़ज़लखाँ का वध दिखाया गया है।

उपयुक्त सभी नाटको म छत्रपति शिवाजी का उच्च श्रणी का सघष है। परन्तु इन नाटको म सघष का निर्वाह ठीक ढग से नही किया गया है। फलतः सघष ने प्रभावहीन स्वरूप धारण किया है।

(३२) रागेय राघव के 'रामानुज' (१९५२) नाटक मे सत रामानुज का मानवता के लिए अनेको स सघष है। रामानुज अपन समय के एक बड़े क्रान्तिकारी विचारक और कमवान थ। इन्होंने समाज का एक नया जीवन दिया। वे जात पाँत और छुआ छूत क विरोधी थ।

प्रस्तुत नाटक के आरम्भ म ही गुरुदेव यादवप्रकाश और विद्यार्थी रामानुज में वचारिक सघष है। विद्यार्थी रामानुज निर्भीकता से गुरुदेव यादवाचाय के तर्कों का खण्डन करते हैं। यादवाचाय क्रोध मे आते हैं। अपने 'अहं' की रक्षा के लिए यादवाचाय रामानुज को अपनी पाठशाला स निकाल बाहर कर देते हैं। दम्भी यादवप्रकाश रामानुज की हत्या का षडयत्र रचत हैं। समझदार विद्यार्थी कुरेश इस षडयत्र को विफल कर देता है।

ब्राह्मण अपनी बस्ती म माग पर शूद्र को नही जान देते। इस प्रतिबन्ध के कारण शूद्रा को बहुत से अत्याचार सहन करन पडते हैं। रामानुज स यह देखा नहीं जाता। उनका मन विद्रोह करने लगता है। वे पत्नी वेदनायकी से कहते हैं— 'वेदनायकी! यह अत्याचार है। क्या वह मनुष्य नही था कि उसे ब्राह्मणा ने अपने रहते हुए पथ पर चलन का अधिकार भी नही दिया। इतना दम्भ कि परपन (अस्पृश्य) की छाया पडने स भी ब्राह्मण अपवित्र हा जाता है।"[1]

लेकिन पति की क्रान्तिकारी बातें वेदनायकी की समझ म नही आती। वह परिपाटी के आधीन है। अत पति पत्नी मे इस प्रकार सघर्ष छिडता है—

वेदनायकी—तुम्हारा आत्मा कस चमारा को दखकर घृणा नहीं करता, मुझे इसी का आश्चय है।

रामानुज—अद्भुत है तुम्हारा न्याय वदनायकी। तुरुक और क्रिस्तान घर घर म प्रचार कर रह हैं। दक्षिणात्य के कइ ब्राह्मण उनसे समान भाव से मिलत हैं। और यह अत्यज्य हैं। यह ता विष्णु के चरणा स जन्मे हैं।[2]

---

१ रागय राघव–रामानुज–पृ० २७ (द्वि० स० सन् १९६२ ई०)
२ वही–पृ० २८।

सचमुच वन्नायकी तुङ्ग विमान की स्त्री है। समझाने से शासन के बदले उल्टा माया गुनाना रहता है। रामानुज भक्त चमार धुर्दास को भवन पर बुलाते हैं। इस बात पर वन्नायकी संघर्ष उठती है। वन्नायकी अपने सामाजिक कर्तव्य को स्वीकार नहीं करती। वह पति का घर छोड़कर मायके चली जाती है। रामानुज से वाम ग्रहण करते हैं।

रामानुज भक्ति को क्रान्तिकारी रूप प्रदान करते हैं। वे भक्ति में जातिभेद का स्थान नहीं देते। उनकी दृष्टि में भक्त किसी भी जाति का क्यों न हो—परमात्मा के सबसे अधिक निकट होता है। रामानुज स्वयं ही कहते हैं—वही (भक्त) सबसे श्रेष्ठ है चाहे वह किसी भी जाति में जन्म ले चुका हो। वेदाध्ययन करने वाला ब्राह्मण पण्डितम्मा और पापी हो तो वह निकृष्ट है। वह शूद्र महान है जो पवित्रता से जीवन व्यतीत करता हुआ भगवान में भक्ति रखता है। इसीलिए मैं कहता हूँ ज्ञान से ऊपर है भक्ति।[1] इन क्रान्तिकारी विचारों के कारण रामानुज और ब्राह्मणों का संघर्ष छिड़ता है। रामानुज का मनुष्यत्व का मार्ग ब्राह्मणों को खटकता है। लेकिन रामानुज अपने मानवता पथ पर अडिग रहते हैं।

चाण्डाल धनुर्दास से रामानुज को नमन करने का असमर्थ प्रणाम करता है। रामानुज शालिग्राम (विष्णु उत्सवमूर्ति) की मूर्ति स्थापन समय चमारों को बस्ती में आश्रय देते हैं। चमार विष्णु और मुकुन्द मूर्ति की आरती करते हैं।[2] चमारों को मन्दिर में प्रवेश देने के लिए रामानुज पण्डितों से संघर्ष करते हैं। उन्हें इस कार्य में सफलता मिलती है। वे मनुष्यता को मान्यता देते हैं। मनुष्य की श्रेष्ठता जन्म कुल अधिकार और धर्म से नहीं होती। उसकी महानता उसकी मानवता है उसका मनुष्य प्रेम है। इस प्रकार इस नाटक में सनातनियों से बाह्य संघर्ष है। इस संघर्ष के कारण ही नाटक प्रधान होता हुआ भी गतिशील और प्रभावशाली है।

रामानुज का संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष में रामानुज के मानवतावादी विचारों की विजय हुई है। इस संघर्ष का निर्वाह सागर गति से किया गया है। प्रस्तुत संघर्ष वैचारिक संघर्ष है।

(३३) सन्तयुग के अन्य सन्तों के चरित्र पर आधारित नाटकों में संघर्ष को विशेष स्थान नहीं मिला है। सन्त कबीर के जीवन पर आधारित दो नाटक लिखे गये हैं—(१) मातुराम शर्मा का सन्त कबीर और (२) सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' का 'इमान का गज' (१९६२) इन दोनों नाटकों में बाह्य संघर्ष है। दोनों नाटकों के आरम्भ में दिखाया गया है कि कबीर को हिन्दू सन्तों के समान भक्ति में लीन देखकर माता नीमा पिता नीरू कबीर का विरोध करते हैं। कबीर हिन्दू

---

१ रांगेय राघव—रामानुज—पृष्ठ ६७-६८ (द्वि० सं० सन १९६२ ई०)

२ वही, पृ० १२२

सन्त के शिष्य बन जाते हैं यह माता पिता को खलता है । लेकिन कबीर किसी के विरोध की चिंता न करते हुए अपने मानवतावादी पथ पर बढ़ते रहते हैं । इस सन्दभ में पिता पुत्र की बातचीत इस प्रकार होती है—

'नीरू—तुम गुमराह हो अपने रास्त पर आ जाओ । तुमने मुसल्मान होकर एक काफिर का रास्ता पकड रखा है । तुम न कभी मस्जिद जाते हो, न नमाज पढ़ते हो । मैं नही जानता कि तुमने कभी रोजा रखा भी है ।(दुख से)ओह इन सड मुसडा के साथ तुमने अपने दीन का ताक म रख दिया है ।

कबीर—पिता जी मैं बेदीन नही हू । मरा दीन इसान का दीन है, किसी हिन्दू और मुसलमानों का नहीं । सत्य की खोज धम की खोज है, अहिंसा का माग धम का माग है ।"[1]

इससे ध्वनित होता है कि कबीर का माग मानवता का माग है । कबीर अपने अन्त तक हिन्दू मुसलमान की एकता तथा मानवता की प्रतिष्ठापना के लिए पाखडी मौलवियो, पडितो तथा लोगो के अन्धविश्वासो से लडते रहते है । व अच्छाई के लिए समाज की घातक परपराओ से लडत रहत हैं । अत उक्त दानो नाटको म सन्त कबीर का मानवता की भलाई की दृष्टि से घातक परपराओं तथा अन्धविश्वासो से सघप है ।

सन्त कबीर का सघप उच्च श्रणी का सघप है । यह वचारिक तथा सूक्ष्म सघप है ।

(३४) सन्त चरित' से सम्बन्धित जिन नाटको म सघप का नितान्त अभाव है, उनमे डा० गोविन्ददास के महाप्रभु वल्लभाचाय' (१९५५) रामनारायण अग्रवाल के 'सूरदास (१९५९), जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी क तुलसीदास नाटक' (१९३४) रामदत्त भारद्वाज के सोरो का सन्त (१९५०), श्री राम शर्मा के 'तुलसीदास' (१९५२), कुवरचन्द्र प्रकाशसिंह के कविवर नरोत्तमदास' (१९५९) और पतीराम भटट के 'श्रीचतन्य (१९५७) का समावेश किया जा सकता है ।

(३५) तुलसीदास शर्मा के 'मतवाली मीरा' (१९३५) और शम्भुदयाल सक्सेना कृत साधना पथ' म सघप का अभाव है । गोकुलचन्द शास्त्री की मीरा (१९३९) म भी सघप को विशेष स्थान नही मिला है । इन दोनो नाटको म 'दुर्गा पजन' के सन्दभ म सास और बहू मीरा का थोडा सा सघप है । राजमाता मीरा द्वारा दुर्गा की पूजा करवाना चाहती है । वह गोपाल पूजा छोडकर दुर्गा पूजा नही करती । वह अपने मन की ही करती रहती है । पति भोजराज की मत्यु के बाद मीरा का गोपाल मूर्ति के सामन भक्तो की उपस्थिति म नाचना गाना राणा विक्रम को अच्छा नही लगता । वह विष देकर मीरा की हत्या करना चाहता है । इस बात

१ सरनामसिंह शर्मा अरुण—इसान की राह—पृष्ठ ८ (प्र० स० सन् १९६९ ई०)

में परस्पर विरुद्ध भावनाओं एवं विचारों का आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है। वह निर्णय नहीं कर पाता कि मीरा को विष दें या न दें ? लेकिन अन्त में राणा कुल मर्यादा की रक्षा करने की भावना का प्राधान्य स्वीकार मीरा को विष देने का निर्णय करता है। इस आन्तरिक संघर्ष से राणा की मानवीयता का उद्घाटन हुआ है। अतः राणा का आन्तरिक संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है।

तात्पर्य

उपर्युक्त विवेचन से विदित होता है कि—

१ मध्ययुग से सम्बद्ध ऐतिहासिक नाटकों में राजनीतिक बाह्य संघर्ष की प्रधानता है। प्रस्तुत बाह्य संघर्ष दो प्रकार का संघर्ष है—(अ) समुदाय-समुदाय का संघर्ष और (आ) व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष।

१ अ अनेक ऐतिहासिक नाटकों में समुदाय समुदाय के संघर्ष को स्थान मिला है। प्रस्तुत संघर्ष आक्रमणकारी तथा दमनकारी दलों के विरुद्ध स्वातन्त्र्य प्रिय रक्षणशील दलों का संघर्ष है। इस दृष्टि से प्रतापारम्भ, 'राय पिथौरा' 'आहुति', 'मान प्राचार', रक्षा बन्धन 'पन्नाद्' 'मेवाड़ उद्धार', महाराणा प्रताप 'चित्तौड़ की देवी 'वीरांगना दुर्गावती दुर्ग कुमारी 'प्रतिशोध, 'शिवा साधना' तथा अन्य अनेक नाटकों में स्वाधीनता प्रिय वीर भारतीयों का आक्रमणकारियों से प्रखर राजनीतिक संघर्ष है। इस संघर्ष के मूल में स्वाभिमानी एवं प्रतापी भारतीयों की स्वतन्त्रता से सम्बद्ध तीव्र भावना कार्य कर रही है।

१। आ–राजनीतिक संघर्ष के सन्दर्भ में व्यक्ति-व्यक्ति के संघर्ष को भी कई नाटकों में महत्त्व का स्थान मिला है।

आ १–'गौरों की सृष्टि', 'जय पराजय', 'कीर्ति स्तम्भ' 'राजमुकुट' "हिरोल", 'विषपान' तथा अन्य अनेक नाटकों में भी राजनीतिक संघर्ष है। लेकिन यहां राजनीतिक संघर्ष का आधार व्यक्तियों का विविध प्रकार का स्वार्थ है। अतः इन नाटकों का राजनीतिक संघर्ष व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष है।

आ २–कुछ नाटकों में सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक संघर्ष के सन्दर्भ में व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष महत्त्व का है। कलानिधि, 'स्वप्न भंग और 'विष्णु में भी राजनीतिक संघर्ष है। लेकिन इन नाटकों में सामाजिक, साम्प्रदायिक और धार्मिक संघर्ष को अत्यधिक महत्त्व का स्थान मिला है। इन नाटकों में व्यक्ति-व्यक्ति के संघर्ष के द्वारा सामाजिक, साम्प्रदायिक, जातीय तथा राष्ट्रीय एकता का सन्देश दिया गया है।

आ २ क–कुछ नाटकों में सामाजिक संघर्ष के सन्दर्भ में व्यक्ति और समुदाय का महत्त्वपूर्ण संघर्ष है। इस सन्दर्भ में "रामानुज", 'सन्त कबीर" और 'इमान की राह"

नाटक भी उल्लेखनीय हैं। इन नाटको में समाज की घातक परम्पराओ के विरुद्ध व्यक्ति और समाज (समुदाय) का वैचारिक सघर्ष है।

आ २ ख–'कोणाक' मे कलाकार की स्वाधीनता रक्षा के हेतु शिल्पियो का विश्वास घाती एव अत्याचारी शासक से प्रखर सघर्ष है। प्रस्तुत सघर्ष समुदाय और व्यक्ति का सघर्ष है। एक ओर स्वातत्र्य प्रिय शिल्पियो का रक्षणशील पक्ष है तो दूसरी ओर दमनशील चालुक्य का पक्ष है। इस सघर्ष म दमनशील पक्ष का पराभूत होना पडा है।

३ कुछ एतिहासिक नाटको में आतरिक सघर्ष को भी महत्त्वपूण स्थान मिला है।

३ ब–कोणाक मे प्रधान शिल्पी विशु का सद्भावनाओ तथा सद्विचारो का आतरिक सघर्ष अत्यत प्रभावशाली है।

३ भ–'चित्तौड की देवी" नाटक परस्पर विरुद्ध विचारो के आतरिक सघर्ष के कारण हृदयस्पर्शी बन गया है।

३ म–'शतरज के खिलाडी" म महबूब खाँ और 'आहुति" म मीर गभरू का परस्पर विरुद्ध भावनाओ का आतरिक सघर्ष दर्शनीय है।

४ इस युग के नाटको म आतरिक सघर्ष प्रधान नाटको का अभाव है। बाह्य सघर्ष को प्रधानता दी जाने के फलस्वरूप आतरिक सघर्ष उपेक्षित रहा है।

सार रूप म कहा जा सकता है कि मध्य युग स सम्बद्ध ऐतिहासिक नाटको म बाह्य सघर्ष का महत्त्वपूण स्थान है। कुछ नाटको म परिस्थिति विशेष मे महत्त्व का आतरिक सघर्ष है।

३ आधुनिक युग से सम्बद्ध ऐतिहासिक नाटक और सघर्ष-तत्त्व

आधुनिक युग से सम्बद्ध नाटको में स्वीकृत इतिहास काल और घटनाओ का आरम्भ ईरान के बादशाह नादिरशाह द्वारा दिल्ली पर किए गए आक्रमण से हुआ है। तत्पश्चात् सन १८५७ के स्वातत्र्य सग्राम की समाप्ति तक के इतिहासकाल और तत्सम्बन्धी घटनाओ एव सघर्षों के आधार पर विविध प्रकार के नाटक रचे गये हैं। बहुसख्य नाटको मे हिन्दू राजाओ तथा भारतीय मुसलमान राजाओ का स्वाधीनता के लिए साम्राज्यवादी अग्रेजो स सघर्ष है। इन नाटको के निर्माण म स्वातत्र्य प्रेमी भारतीयो के पराक्रम का परिचय कराने का उद्देश्य रहा है।

(१) गोविन्दवल्लभ पत के 'अधूरी मूर्ति" म क्षीण बाह्य सघर्ष है। इस नाटक में दिखाया गया है कि यदि हिन्दू मुसलमान, मराठे, सिक्ख, जाट, बुन्देले मिलकर लडते तो विदेशी आक्रामक नादिरशाह को मुँह की खानी पडती। हमारी फूट के कारण ईरान के नादिरशाह की जीत होती है। वह हमारी धन दौलत लूटकर ले जाता है।

इस नाटक में यह भी दिखाया गया है कि कलाकार अपने देश की रक्षा के लिए तलवार भी धारण कर सकता है। मनजात एक मूर्तिकार है। वह आक्रामक का प्रतिकार करने के लिए मुहम्मद शाह की फौज में शामिल होता है। करनाल की लड़ाई में मुहम्मदशाह की हार होती है। मनजात वीरगति पाता है। इस प्रकार इस नाटक में भी स्वाधीनता रक्षा के लिए आक्रमणकारी से संघर्ष है।

समद कासिम अली के 'दौलत नादरी' नाटक में भी उक्त संघर्ष का स्थान मिला है। यहाँ भी मुहम्मद अली शाह की पराजय दिखाई गई है। हूर नामक एक भारतीय नर्तकी ईरान जाती है और विष पिलाकर नादिरशाह की हत्या करती है।

वास्तव में उक्त सभी नाटक संघर्ष की दृष्टि से अति साधारण हैं। इन नाटकों में संघर्ष का निर्वाह ठीक रीति से नहीं किया गया है।

(२) चतुर्भुज के 'सिराजुद्दौला' (१९४९) और सदानन्द के 'सिराजुद्दौला' (१९५८) नाटक में मुर्शिदाबाद के नवाब सिराजुद्दौला का अंग्रेजों से संघर्ष है। वह बंगाल बिहार और उड़ीसा का नवाब है। वह अपने राज्य की स्वाधीनता रक्षा के लिए अंग्रेजों से लड़ता है। लेकिन सिराजुद्दौला का सिपहसालार मीर जाफर और उसका पुत्र मीरन द्रोह करते हैं और अंग्रेजों का साथ देते हैं। परिणामतः सिराजुद्दौला की हार होती है। अन्त में उसकी हत्या होती है।

(३) चतुर्भुज के 'मीर कासिम' (१९५०) नाटक में मुर्शिदाबाद के नवाब मीर कासिम का अंग्रेजों से संघर्ष है। अंग्रेजों ने मीर जाफर को मुर्शिदाबाद की गद्दी से अपदस्थ किया और उसके दामाद—मीर कासिम—को बंगाल बिहार और उड़ीसा का नवाब बनाया। लेकिन मीर कासिम अंग्रेजों के हाथ का खिलौना बनकर रहना नहीं चाहता। उसने अत्याचारी, लुटेरे अंग्रेजों से युद्ध करने का निश्चय किया। लेकिन धूर्त अंग्रेजों ने मीर जाफर को फिर से मुर्शिदाबाद की गद्दी पर बिठाया और उससे मीर कासिम से लड़ने का हुक्म पाया। अंग्रेज मीर कासिम को हराने में सफल होते हैं।

उपर्युक्त तीनों नाटकों में देशप्रेमियों का साम्राज्यवादी अंग्रेजों के साथ संघर्ष है। इस संघर्ष में देशप्रेमियों को पराजित होना पड़ता है। देशप्रेमियों का संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष में घटनाओं पर अधिक ध्यान दिया गया है।

(४) परिपूर्णानन्द वर्मा के 'नाना फड़नवीस' (१९४६) नाटक में सत्ता के लिए पेशवाओं का संघर्ष है। राघोबा की महत्वाकांक्षी पत्नी आनन्दीबाई नहीं चाहती कि राघोबा राज्य का कारोबार माधवराव को सौंप दें और स्वयं अधिकारों से वंचित हो जायें। वह राघोबा को सत्ता पाने के लिए उत्तेजित करती है। माधवराव की मृत्यु के बाद राघोबा और आनन्दी नारायणराव की हत्या कराने में सफल

होते है । लेकिन नाना के विरोध के कारण राघोबा राज्य को हथियाने म असफल हो जाता है । राघोबा भागकर सूरत जाता है और अग्रेजो की शरण लेता है । इधर नाना राघोबा से प्रतिशोध लेने का निश्चय करता है । नाना अग्रेजो से लडता है और विजय पाता है । राघोबा को कद म रखता है । वही राघोबा का अन्त होता है । दूसरा बाजीराव अग्रेजो का सहायता स राजसत्ता को पाने मे सफल होता है । इस नाटक मे व्यक्तिगत स्वार्थो के कारण गृह कलह के साथ युद्धात्मक सघर्ष भी है । दोनो सघर्षों ने स्थूल स्वरूप धारण किया है ।

रामकुमार वर्मा के 'नाना फडनवीस' (१९६०) नाटक मे भी उक्त स्थूल सघर्षो को स्थान मिला है । चतुर राजनीतिज्ञ नाना हत्यारे राघोबा को कद म रखता है । वह नारायणराव के पुत्र सवाई माधवराव को सिंहासन पर बिठाता है । इस सघर्ष से पूर्व नाना पानीपत की हार को जीत मे बदल देने का प्रयास करता है । माधवराव नाना का विलक्षण बुद्धि की सहायता स कई विजय सम्पादित करता है । इस प्रकार इस नाटक मे राज्य रक्षा की इच्छा से नाना का अनेको से सघर्ष है।

(५) जगदीशचन्द्र माथुर कृत 'शारदीया' (१९५९) नाटक म मुख्य पात्रो से सम्बन्धित बाह्य सघर्ष न के बराबर है । बायजाबाई प्रेमी नरसिंहराव से विवाह करना चाहती है । पर बायजाबाई का कपटी एव महत्त्वाकाक्षी पिता शर्जेराव अपना स्वार्थ साधने के लिए दौलतराव सिंधिया के द्वारा नरसिंहराव को कैद कराता है और बायजाबाई को दौलतराव सिंधिया की महारानी बनाता है । महारानी बनने के अनन्तर एक दिन महारानी बायजाबाई को ज्ञात होता है कि खर्दा के युद्ध म नरसिंहराव की मृत्यु नही हुई है उसे बन्दी के रूप मे कारागार म बन्द कर दिया गया है । यह सब पिता का कपटनीति का फल है । बायजाबाई दौलतराव सिंधिया की अनुमति से नरसिंहराव की मुक्ति का आज्ञा पत्र लेकर नरसिंहराव के पास आती है ।

नरसिंहराव जिस प्रियतमा की स्मृति म कद मे भी सतोषपूर्वक जी रहा था, उसी प्रियतमा को महारानी के रूप म देखकर अत्यन्त उद्विग्न हो उठता है । बायजाबाई भी उद्विग्न हो उठती है । पर वह उद्विग्नता को छिपाकर नरसिंहराव को समझाती है कि महारानी बनने के अनन्तर मुझे पिता की कपटनीति विदित हो गई । उस समय अपना मन कितना अस्थिर हो गया था, इस बात को सूचित करते हुए बायजाबाई कहती है— लेकिन लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी । [1]

वास्तव मे उसी समय से बायजाबाई मे आन्तरिक सघर्ष चल रहा है । उसका मन नरसिंहराव की ओर आकृष्ट होता है । परन्तु उसका वर्तमान का जीवन उसे रोकता है । उसकी समझ म नही आता कि उसे क्या निर्णय करना चाहिए ? ऐसी स्थिति म वह नरसिंहराव के पास आती है । वह नरसिंहराव को मुक्त करना चाहती

१ जगदीशचन्द्र माथुर—शारदीया—पृ० १११ (प्र० स० सन् १९५९ ई०)

उपर्युक्त नाटकों में भी उक्त बाह्य संघर्ष को स्थान दिया गया है। तात्या टोपे और नानासाहब द्वारा स्वाधीनता रक्षा के लिए किया गया संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। पर इस संघर्ष का निर्वाह ठीक ढंग से नहीं किया गया है। इस संघर्ष ने बाह्य संघर्ष का स्वरूप धारण किया है।

(१०) तेज दहलवी के 'बहादुरशाह की बेटी' (१९५८) नाटक में सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में मुगल बादशाह बहादुरशाह की बेटी जहाँआरा अंग्रेजों से लड़ती लड़ती प्राणों की बलि चढ़ाती है।

बहादुरशाह के नेतृत्व में भारतीय क्रान्तिकारी अंग्रेजों को पराजित कर दिल्ली पर अधिकार पाते हैं। लेकिन अंग्रेज सेनापति हडसन के नेतृत्व में अंग्रेजों की सेना फिर से दिल्ली पर कब्जा करती है। बहादुरशाह और उसके परिवार को कैद बनाया जाता है।

इसमें एक ही शाहजादी बावाम और शाभर्त यद्दा बहीआरा का संघर्ष है।

हरिकृष्ण प्रेमी के 'रक्तदान' (१९६०) में भी मुगल बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों का अंग्रेजों से संघर्ष है। लेकिन परस्पर फूट के कारण हिन्दुस्तानी क्रान्तिकारियों को हारना पड़ता है। इस नाटक में भी षड्यन्त्रात्मक संघर्ष है। साथ साथ सत्ता के लिए बहादुरशाह के वंश का आपसी संघर्ष भी है।

उपर्युक्त दोनों नाटकों में संघर्ष ने स्थूल स्वरूप ग्रहण किया है। इन नाटकों में संघर्ष का निर्वाह सफलतापूर्वक नहीं हुआ है।

(११) मदनगोपाल के '१८५७ की दिल्ली' (१९६९) नाटक में दिखाया गया है कि दिल्ली की जनता स्वातन्त्र्य के लिए अत्याचारी अंग्रेजों से किस प्रकार संघर्ष कर रही है। एक ओर स्वाभिमानी हिन्दू और मुसलमान स्वातन्त्र्य संग्राम की तैयारियाँ कर रहे हैं तो दूसरी ओर कुछ स्वार्थी और देशद्रोही हिन्दू और मुसलमान अंग्रेजों की सहायता कर रहे हैं। हिन्दू और मुसलमान अंग्रेजों के अत्याचारों से तंग आ गये हैं। वे सोच रहे हैं कि इस गुलामी की जिन्दगी से तो आज़ादी की मौत अच्छी है। ऐसा सोचकर मुल्ला सदरुद्दीन मीर साहब युसुफ आदि क्रान्ति की तैयारियाँ कर रहे हैं। ठीक इसके विरुद्ध मुंशी का पुत्र माधो और लच्छा गमा री देशद्रोह कर रहे हैं। क्रान्ति की आग भड़क उठती है। क्रान्तिकारी भाले, तलवार या बर्छी लेकर अंग्रेजों से लड़ते हैं। अंग्रेजों के वासस्थान में आग लगाई जाती है। अंग्रेजों की बड़ी दुरवस्था होती है। लेकिन बड़ी संख्या में अंग्रेजों का आगमन होता है। देशद्रोही उनका साथ देते हैं। क्रान्तिकारियों की हार होती है।

प्रस्तुत नाटक में क्रान्तिकारियों की स्वाधीनता रक्षा के लिए उच्च श्रेणी का संघर्ष है। संघर्ष का निर्वाह सफलतापूर्वक हुआ है।

(१२) गिरिजाशंकर पाण्डेय "शास्त्री" के "खलकखुदा का" (१९५८) नाटक मे क्रान्तिकारी हिन्दू सैनिको का अग्रेज अफसर से सघर्ष है। बनारस के क्रान्तिवीर भोलानाथ तिवारी, गोरखनाथ सिंह कामर्लसिह बन्दासिह और गगू दुबे अग्रेजों की हत्या करने का प्रयत्न करते है। लकिन प्रत्येक क्रान्तिकारी का बलिदान होता है।

(१३) सवदानन्द के 'चेतसिह' (१९५७) नाटक में भी काशी के महाराज चेतसिह के रक्षार्थ मानसिह का अग्रजो स सघर्ष है। परिपूर्णानन्द वर्मा के 'अवध का रगीला नवाब-वजिदअली शाह' (१९५९) नाटक मे अग्रेज अत्यन्त सहजता से अवध पर अपना अधिकार प्रस्थापित करत हैं। इस सन्दभ म सघर्ष का अभाव है।

(१४) सन १८५७ के स्वातत्र्य सग्राम में बिहार के वीर कुँवरसिंह ने अग्रेजो से जो सघर्ष किया उसका चित्रण चतुभुज के 'कुवर सिंह" एम० एम० कान्तसिंह 'कात' के 'कुँवरसिंह (१९५८) और श्यामलाल 'मधुप" के 'बिहार का शेर' (१०५४) म हुआ है। चतुभु ज के "कुँवरसिंह' म धूत अग्रज जगदीशपुर नरेश कुँवरसिंह की रियासत पर कब्जा करने के लिए जाल फलाते हैं, पर उस जाल मे कुँवरसिंह नही फँसते। कुँवरसिंह जानते हैं कि चर्बी वाले कारतूसो के कारण भारतीय सनिका म विद्रोह की ज्वाला भडक उठी है। अत इस योग्य अवसर पर कुवरसिंह अग्रेजो स लडने का निणय करते हैं। जगदीशपुर क्रान्तिकारियो का गढ़ बन गया है। दानापुर की फौजी छावनी में चर्बी वाले कारतूसो के कारण भारतीय सनिको और अग्रेजा म सघर्ष छिडता है। भारतीय सनिकों की जीत होती है। विजयी सनिक कुँवरसिंह से मिलते हैं।

कुँवरसिंह आरानगर पर अधिकार पाने म सफल होते हैं। वहाँ का जेल तोडकर कदियो को अपनी सेना म मिला लिया जाता है। कप्तान डनवर आरानगर पर कब्जा करन के हेतु आरानगर की ओर बढ़ता है। कुँवरसिंह ने रास्त मे ही डनवर को मारा और दुबारा विजय पाई।

सेनापति जनरल विन्सेन्ट आयर विशाल सना लेकर आरानगर की ओर बढ़ता है। घमासान युद्ध क बाद कुँवरसिंह की हार होती है। विन्सेन्ट आयर आरानगर पर कब्जा कर लेता है। उधर जगदीशपुर पर भी अग्रेजो ने कब्जा कर लिया। अमरसिंह न बड़े शौय म अग्रजा को पराभूत कर जगदीशपुर को मुक्त कर दिया। कुँवरसिंह स्वाधीन जगदीशपुर म जीवन यात्रा समाप्त करते है।

इस सघर्ष का ही उपयुक्त अन्य नाटकों मे भी स्थान दिया गया है। वीर कुँवरसिंह का सघर्ष उच्च श्रेणी का सघर्ष है। इस सघर्ष न स्थूल स्वरूप धारण किया है। इस सघर्ष का निर्वाह उचित रूप से किया गया है।

तात्पर्य

१ उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ज्ञात होता है कि आधुनिक युग से सम्बद्ध एतिहासिक नाटकों में बाह्य संघर्ष की प्रधानता है। प्रस्तुत बाह्य संघर्ष राजनीतिक संघर्ष है। राजनीतिक बाह्य संघर्ष के सन्दर्भ समुदाय समुदाय तथा व्यक्ति-व्यक्ति के संघर्ष की प्रधानता है।

(अ) समुदाय समुदाय का संघर्ष वीर भारतीयों और सत्ता प्रेमी अंग्रेजों के मध्य चल रहा है। 'सिराजुद्दौला' 'मीर कासिम' 'चिराग जल उठा' 'झांसी की रानी', 'अमर बलिदान' (हरिकृष्ण प्रेमी) तथा राणे 'दीवान' 'रत्नजान', 'कुंवरसिंह' आदि नाटकों में स्वाधीनता रक्षा की भावना को लेकर वीर भारतीयों का साम्राज्यवादी अन्यायी एवं अत्याचारी अंग्रेजों के विरुद्ध राजनीतिक संघर्ष है। इस संघर्ष के मूल में वीर भारतीयों की देशभक्ति एवं स्वतन्त्रता से सम्बन्धित तीव्र भावना कार्य कर रही है। इस विशेषता के कारण इन नाटकों में अत्याचारी अंग्रेजी सत्ता को उखाड़कर फेंकने के हेतु वीर भारतीयों ने प्रखर संघर्ष छेड़ा है।

(आ) नाना फड़नवीस और 'हैदरअली' या मयूर पतन में जो राजनीतिक संघर्ष है उसका आधार व्यक्तिगत स्वार्थ है। अतः इन नाटकों में व्यक्ति-व्यक्ति के संघर्ष की प्रधानता है। नाना फड़नवीस में स्वार्थपूर्ति के लिए पात्रों का पारस्परिक संघर्ष है। हैदरअली या मयूर पतन में स्वार्थ-पूर्ति के हेतु हैदर अली का मयूर के राजा चिक्क कृष्णराय के विरुद्ध राजनीतिक संघर्ष है।

२ 'नारायणी' और 'चिराग जल उठा' में आन्तरिक संघर्ष को अल्प मात्रा में स्थान मिला है। (क) 'नारायणी' नाटक में बायजाबाई और नरसिंहराव की परस्पर विरुद्ध भावनाओं का आन्तरिक संघर्ष है। (ख) 'चिराग जल उठा' में वीर टीपू का दो सद्विचारों का आन्तरिक संघर्ष है।

३ वस्तुतः इस युग से सम्बद्ध नाटकों में आन्तरिक संघर्ष को महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला है। साथ ही साथ व्यावहारिक संघर्ष भी उपेक्षित रहा है।

तात्पर्य यह है कि आधुनिक युग से सम्बद्ध ऐतिहासिक नाटकों में बाह्य संघर्ष ने अत्यधिक महत्त्व का स्थान पाया है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्याय में किए गए समस्त विवेचन के आधार पर निम्नांकित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

१ प्रसादोत्तर ऐतिहासिक नाटकों में बाह्य संघर्ष की प्रधानता है। बाह्य संघर्ष ने कुछ नाटकों को प्रभावशाली बना दिया है। विशेषकर जिन ऐतिहासिक नाटकों में पात्रों का स्वधर्म रक्षा, स्वाधीनता रक्षा, स्वराज्य स्थापना, सम्मान रक्षा,

मानवता प्रतिष्ठापना, लोकहित सम्बन्धी तथा घातक अन्धविश्वासों, परम्पराओं के ध्वसन सम्बन्धी सदिच्छाओं ने बाधाओं से प्रखर संघर्ष छेड़ा है, व नाटक अधिक प्रभावशाली एव रोचक बन पड़े हैं। इस दृष्टि से निम्नोक्त नाटक दर्शनीय हैं–

कुलीनता, शेरशाह, आहुति, प्रतिशोध, रक्षा बन्धन प्रकाशस्तम्भ, चन्द्रगुप्त मौर्य, सीमा सरक्षण, स्वप्न भंग विदा, प्रियदर्शी मानव प्रताप महाराणा प्रताप, विजय पर्व, रामानुज, अमर बलिदान (हरिकृष्ण प्रेमी), कला और कृपाण, दशाश्वमेध वीरांगना दुर्गावती, झांसी की रानी, कल्की, कोणार्क।

२ जिन ऐतिहासिक नाटकों में परिस्थिति विशेष में पात्रों की सदिच्छाओं ने संघर्ष का रूप धारण किया है वे अत्यधिक मर्मस्पर्शी एवं रुचिकर बन पड़े हैं। इस सदर्भ मे 'आषाढ़ का एक दिन' का उल्लेख किया जा सकता है। इसमें मल्लिका और अम्बिका का मर्मस्पर्शी संघर्ष दो सदिच्छाओं का संघर्ष है। लेकिन इस प्रकार के ऐतिहासिक नाटको की संख्या अत्यल्प है।

२ कुछ ऐतिहासिक नाटको मे हृदयस्पर्शी आन्तरिक संघर्ष ने प्रधानता पाई है। 'आषाढ़ का एक दिन' और "लहरो के राजहंस की प्रभावक्षमता एव रोचकता का प्रधान आधार है––प्रमुख पात्रो का हृदयस्पर्शी आन्तरिक संघर्ष। प्रसादोत्तर ऐतिहासिक नाटको मे आन्तरिक संघर्ष प्रधान नाटको की अत्यधिक कमी है।

४ प्रसादोत्तर काल के मोहन राकेश, जगदीशचन्द्र माथुर और डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल इस प्रकार के ऐतिहासिक नाटककार हैं, जिन्होने ऐतिहासिक पात्रो के मानवीय भावो के चित्रण के साथ संघर्ष का चित्रण किया है। इससे इन नाटककारो के नाटक अत्यधिक मार्मिक बन पड़े हैं। इस दृष्टि से लक्ष्मीनारायण मिश्र, गोविन्द दास और हरिकृष्ण प्रेमी के भी कुछ नाटक दर्शनीय हैं।

५ युद्धात्मक संघर्ष से युक्त नाटको मे व्यक्ति-व्यक्ति के संघर्ष ने ही समूह समूह के संघर्ष का रूप धारण किया है। परिस्थिति विशेष मे परस्पर विरुद्ध इच्छाओं के कारण व्यक्ति व्यक्ति के संघर्ष का आरम्भ होता है। आगे चलकर यही संघर्ष युद्धात्मक संघर्ष का रूप ग्रहण करता है।

६ कुछ नाटको मे परस्पर विरुद्ध विचार धाराओ के संघर्ष के रूप मे वैचारिक संघर्ष है। इस सन्दर्भ मे निम्नोक्त नाटक उल्लेखनीय हैं––नवप्रभात कला और कृपाण, सिंहलद्वीप धर्म विजय कल्की, कोणार्क, प्रकाश स्तम्भ, कुलीनता रामानुज सन्त कबीर इंसान की राह विदा और स्वप्नभंग।

स्पष्ट है कि प्रसादोत्तर ऐतिहासिक नाटकों में संघर्ष ने महत्व का स्थान पाया है।

पाँचवाँ अध्याय

प्रसादोत्तर राजनीतिक नाटक और संघर्ष तत्त्व

अध्याय-प्रवेश

प्रस्तुत अध्याय में विवेच्य नाटकों को ऐतिहासिक नाटकों के अन्तर्गत रखने के बदले राजनीतिक नाटकों के अन्तर्गत रखा गया है। इसका महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि ऐतिहासिक नाटकों से सम्बद्ध मानसिक धारणा और राजनीतिक नाटकों से सम्बद्ध मानसिक धारणा में अन्तर है। इस अन्तर के आधार पर विवेच्य नाटकों को राजनीतिक नाटकों के अन्तर्गत समाविष्ट करना समीचीन प्रतीत हुआ।

इस सन्दर्भ में डा० प्र० रा० भुपटकर की मान्यता द्रष्टव्य है। वे कहते हैं—"ऐतिहासिक नाटकों के आधुनिक काल के सम्बन्ध में कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक है। नाटकों के लिए वह युग अतीत युग होता है जिसको नाटककार अपने युग से भिन्न युग मानता है। अपने युग से अतीत युग को भिन्न मानने का कालावधि स्वीकृत हुई है और वह साधारण रीति से ५० या ६० वर्षों तक का होता है। लोकमान्य तिलक, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, क्रान्तिवीर भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि को लेकर लिखे गये नाटक ऐतिहासिक नहीं बल्कि राजनीतिक नाटक माने जाते हैं। कारण यह है कि यद्यपि इन नेताओं का सम्बन्ध आज की दृष्टि से भारत के अतीत युग से है, फिर भी उक्त लोकनेता वर्तमान के अपने युग के हैं। ऐतिहासिकता के लिए आवश्यक है कि नाटककार तथा दर्शक या पाठक में वह भाव विद्यमान हो कि मैं किसी दूसरे युग में संक्रान्त हो रहा हूँ।"[1]

विवेच्य राजनीतिक नाटकों को पढ़ते या देखते समय पाठक या प्रेक्षक में यह भाव विद्यमान नहीं होता कि मैं किसी दूसरे युग में संक्रान्त हो रहा हूँ। इसके विरुद्ध पाठक या प्रेक्षक में यह भाव विद्यमान होता है कि मैं अपने ही युग में जी रहा हूँ। इस विशेषता को ध्यान में रखकर ही विवेच्य नाटकों को राजनीतिक नाटकों में सम्मिलित किया गया है।

इन नाटकों को सामाजिक नाटकों के अन्तर्गत न रखने का कारण यह है कि इन नाटकों में राजनीति-सम्बन्धी विषयों और समस्याओं तथा उनसे सम्बन्धित

---

१ डॉ० प्र० रा० भुपटकर—हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक : एक तुलनात्मक विवेचन पृ० ८३ (प्र० सं० सन १९७० ई०)

राजनीतिक सघर्ष को स्थान दिया गया है । इन नाटको में सामाजिक समस्याओ और उनसे सम्बन्धित सघर्ष का अभाव है । कारण यह है कि इन नाटको का लक्ष्य सामाजिक सघर्ष को नही, बल्कि राजनीतिक सघर्ष को उजागर करना है । इस वास्तविकता के आधार पर विवेच्य नाटको के लिए 'राजनीतिक' विशेषण का प्रयोग कर उनका स्वतन्त्र विवेचन किया गया है ।

स्वातन्त्र्य-पूर्व काल से सम्बन्धित राजनीतिक नाटको मे स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए वीर भारतीयो का सशस्त्र तथा अहिंसात्मक सघर्ष है । स्वातन्त्र्योत्तर काल से सम्बन्धित राजनीतिक नाटको मे स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिए वीर भारतीयों का सघर्ष है । इस स्थिति के आधार पर विषयानुसारी पद्धति के अनुसार राजनीतिक नाटको की विवेचना के लिए निम्नलिखित वर्गीकरण इष्ट है ।

१ सशस्त्र क्रान्ति आन्दोलन से सम्बद्ध नाटक
२ स्वातन्त्र्य के अहिंसात्मक आन्दोलन से सम्बद्ध नाटक
३ स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक आक्रमण से सम्बद्ध नाटक

१ सशस्त्र क्रान्ति आन्दोलन से सम्बद्ध नाटक और सघर्ष तत्त्व

स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए सशस्त्र क्रान्ति को चाहने वाले क्रान्तिवीरो का यह दृष्टिकोण था कि खून का बदला खून से लेना चाहिए । उनका विश्वास था कि सशस्त्र क्रान्ति से भारतीयो की वीरता जाग्रत होगी और स्वातन्त्र्य प्राप्ति का मार्ग सरल बन जायगा । इन क्रान्तिकारियो मे चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह और सुभाष चन्द्र बोस का स्थान श्रेष्ठ है । क्रान्तिवीर चन्द्रशेखर आजाद और शहीद भगतसिंह के सशस्त्र क्रान्ति आन्दोलन से सम्बन्धित नाटक इस प्रकार हैं ।

देवी प्रसाद धवन 'विकल' रचित 'चन्द्रशेखर आजाद', शम्भूदयाल सक्सेना रचित 'अगारो की मौत', विष्णुदत्त 'कविरत्न' रचित 'क्रान्ति का देवता—चन्द्रशेखर आजाद' और 'क्रान्ति का देवता—सरदार भगतसिंह' जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' रचित 'वीर चन्द्रशेखर' और रघुवीरशरण मित्र रचित 'भारतमाता' ।

इन नाटको मे अत्याचारी अग्रजो से क्रान्तिवीरो का आद्योपान्त सघर्ष है । इन नाटको का आरम्भ क्रान्तिवीरो की सशस्त्र क्रान्ति करने की दृढ प्रतिज्ञाओ से होता है । मध्य भाग मे क्रान्तिकारी घटनाए होती रहती हैं । अन्त मे वीरो के वीर मरण के साथ नाटक समाप्त होते हैं ।

विवेच्य नाटको मे क्रान्तिवीर विशिष्ट परिस्थिति की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप क्रान्ति के लिए प्रेरित होते हैं । स्वातन्त्र्य-आन्दोलन का दमन करने के लिए अंग्रेज बडी क्रूरता से भारतीय प्रजा पर अत्याचार करते हैं । क्रान्तिवीरो को फाँसी के तख्तो पर लटकाते हैं । जलियाँ वाला बाग मे भीषण हत्याकाण्ड होता है । साइमन कमीशन के विरोध मे लाला लाजपतराय का बलिदान होता है । इन घटनाओं से क्रान्ति-

वीरों का खून खौल उठता है उनमें प्रतिशोध की आग भड़क उठती है। वे अत्याचारी अंग्रेजों को मौत के घाट उतारने और सशस्त्र क्रांति करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

उत्तर प्रदेश में वीर चन्द्रशेखर आजाद क्रांति की आग भड़काते हैं तो पंजाब में वीर भगतसिंह। आगे चलकर चन्द्रशेखर से भगतसिंह की भेंट होती है। दोनों मिलकर लड़ते रहते हैं।

देवीप्रसाद धवन विकल लिखित 'चन्द्रशेखर आजाद' नाटक के आरम्भ में चन्द्रशेखर की प्रक्षुब्धता दृष्टिगत होती है। अंग्रेजों द्वारा जालियाँवाले बाग में हुआ भीषण हत्याकाण्ड चन्द्रशेखर को ज्ञात था। उस समय स्वाभिमानी चन्द्रशेखर में खून का बदला खून से लेने की महत्त्वाकांक्षा जाग्रत हो गयी। इस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के हेतु चन्द्रशेखर ने आजादी की लड़ाई लड़ने का दृढ़ निश्चय किया। चन्द्रशेखर ने अपने साथियों को इस लड़ाई में अपनी कुरबानी करने को प्रेरित किया। अपने क्रांतिकारी साथियों को उत्तेजित करते हुए चन्द्रशेखर ने कहा— हमारी लड़ाई न्याय की लड़ाई है।[1] अत्याचारी गोरी सरकार से अहिंसात्मक संघर्ष करना चन्द्रशेखर को अमान्य था। चन्द्रशेखर म० गांधी के अहिंसावादी विचारों से सहमत नहीं थे। फलस्वरूप इनका म० गांधी के अहिंसावाद के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष छिड़ता है। इस संदर्भ में चन्द्रशेखर आजाद कहते हैं 'अहिंसा ? हिन्द इतना बड़ा देश अहिंसा के बल पर आजाद नहीं किया जा सकता। मैं बदला लूँगा। मैं अहिंसा के सिद्धांत को नहीं मान सकता नहीं मान सकता।'[2] इस मान्यता के अनुसार चन्द्रशेखर आजाद एक ओर अहिंसात्मक आन्दोलन के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष और दूसरी ओर अत्याचारी गोरी सरकार के विरुद्ध भावनात्मक तथा हिंसात्मक संघर्ष छेड़ते हैं। वे अंत तक अपने सिद्धांतों का पालन करते रहते हैं। सशस्त्र क्रांति शस्त्रों के बल पर सफल हो सकती है। इस विश्वास से चन्द्रशेखर शस्त्र खरीदने के लिए धन पाने की योजना बनाते हैं। इस योजना के अनुसार काकोरी स्टेशन पर गाड़ी से सरकारी खजाना लूटा जाता है। लेकिन चन्द्रशेखर के साथी बिस्मिल रोशन राजेन्द्र तथा अशफाकुल्ला पकड़े जाते हैं। इन साथियों को मुक्त करने के हेतु चन्द्रशेखर इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस से संघर्ष करते हैं। कुछ पुलिसों को मौत के घाट उतारने के उपरांत चन्द्रशेखर अपने ही पिस्तौल की गोली से अपना बलिदान करते हैं।

चन्द्रशेखर आजाद से सम्बन्धित अन्य नाटकों में भी उपर्युक्त संघर्ष को ही स्थान दिया गया है। इन नाटकों में यह भी दिखाया गया है कि क्रान्तिवीर भगतसिंह चन्द्रशेखर से मिलने के अनंतर चन्द्रशेखर की योजनाओं के अनुसार सशस्त्र क्रांति करते रहते हैं। चन्द्रशेखर आजाद के साथ विचार विमर्श करने पर ही असेम्बली

१ देवीप्रसाद धवन विकल—'चन्द्रशेखर आजाद'—पृ० १३ (प्र० सं० सन १९६१ ई०)
२ वही, पृ० २६–२७

भवन मे बम के विस्फोट की योजना बनायी जाती है ।

विष्णुदत्त कविरत्न रचित 'क्रान्ति का देवता सरदार भगतसिंह' नाटक मे भी क्रांतिवीर भगतसिंह का भावनात्मक तथा वैचारिक संघर्ष है । भगतसिंह को भी म० गांधी का अहिंसात्मक आन्दोलन पसन्द नही था । अत भगतसिंह सशस्त्र क्रांति को स्वातंत्र्य प्राप्ति का माध्यम बनाते हैं । सशस्त्र क्रांति की प्रेरणा देते हुए भगतसिंह रहीम राजगुरु, सुखदेव आदि अपने साथियो से कहते हैं "मेरा यह प्रण है कि मैं चैन से न बैठूंगा, न अंग्रेजी सरकार को चैन से बैठने दूंगा।" 'मातृभूमि की परतंत्रता की जंजीरो को तोड़ूंगा। इसको आजाद कराने के लिए तन मन धन लगा दूंगा। सफेद चमडी वाले अंग्रेजो को भारत से निकालकर ही चैन लूंगा।"[१] इस दृढ प्रतिज्ञा के अनुसार भगतसिंह अपने साथियो के साथ सशस्त्र क्रान्ति का आरम्भ करते हैं । लाला लाजपतराय की मृत्यु का प्रतिशोध लेने की भावना से भगतसिंह जनरल डिग और साडर्स की हत्या करते हैं । असेम्बली मे बम का विस्फोट कर स्वातंत्र्य विषयक तीव्र भावना की अभिव्यक्ति करते हैं । देश की आजादी के लिए वे फाँसी की सजा को सानंद स्वीकार करते हैं ।

श्यामलाल मधुप' कृत बिस्मिल की बहक' मे क्रांतिवीर रामप्रसाद बिस्मिल का सशस्त्र संघर्ष है । चन्द्रशेखर आजाद की योजना के अनुसार रामप्रसाद बिस्मिल काकोरी स्टेशन पर गाडी रोक कर सरकारी खजाना लूटते हैं । इस संघर्ष के फलस्वरूप उन्हे फांसी की सजा दी जाती है ।

विश्वम्भरनाथ उपाध्याय रसपीन रचित 'नेताजी सुभाषचन्द्र बोस', समर सरकार रचित जनगण अधिनायक', देवीप्रसाद धवन 'विकल' रचित तुम मुझे खून दो' और लालचन्द जैन रचित अमर सुभाष', इन नाटको मे क्रांतिवीर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का भारत की स्वतन्त्रता के लिए साम्राज्यवादी अंग्रेजो से संघर्ष है ।

क्रांतिकारी देशबन्धुदास अंग्रेजो की घोर दमन-नीति का विरोध करते हैं । इससे प्रेरणा लेकर सुभाषचन्द्र सरकारी नौकरी से त्याग पत्र देते हैं और म० गांधी के नेतृत्व मे असहयोग आन्दोलन मे सम्मिलित हो जाते हैं । लेकिन वे उग्र दल के नेता बन जाते हैं । म० गांधी से मतभेद होने पर वे कांग्रेस छोड देते हैं और अपनी उग्र नीति के अनुसार अंग्रेजो से आमरण लडते हैं ।

इस संघर्ष को लेकर लिखे गये नाटकों मे से लालचन्द जैन का अमर सुभाष' नाटक विचारणीय है । इसमे सुभाषचन्द्र की और पुलिस अधिकारी अरविन्द की मानवीयता उभरी है । अत प्रस्तुत नाटक हृदयग्राही बन पडा है ।

१ विष्णुदत्त कविरत्न—क्रान्ति का देवता सरदार भगतसिंह—पृ० १६ (प्र० स० १९६२ ई०)
२ वही, पृ० १७

म० गांधी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित होने के बाद सुभाषचन्द्र धीर धीरे उग्रता की ओर बढ़ते हैं। वे महसूस करते हैं– न यह शांति से बैठने का समय है और न मौज उड़ाने का। यह क्रांति का बिगुल बजाने का समय है।[1] सुभाष कलकत्ता में एक जोरदार भाषण देने लगते हैं जिनसे प्रेरणा पाकर कलकत्ता निवासी क्रांति के लिए प्रवृत्त होने लगते हैं। सुभाष अपने साथियों को समझाते हैं– स्वतन्त्रता निश्चित है किन्तु उसके लिए बलिदान की आवश्यकता है प्रयत्न और संघर्ष की आवश्यकता है। यह संघर्ष लम्बा हो सकता है इसलिए धैर्य रखने की आवश्यकता है।[2] सुभाष और उनके साथी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध आमरण संघर्ष करने के निश्चय से अपने खून से प्रतिज्ञा-पत्र लिखते हैं। सुभाष के क्रांति कार्य से भयभीत होकर अंग्रेज सरकार सुभाष को नजर बन्द कैद में रखती है। उस समय सुभाष सोचते हैं– भारत की आजादी के लिए भारत के अन्दर तो क्रांति और संघर्ष खूब है किन्तु भारत से बाहर के जनमन को समझाना है और बाहर से भी संघर्ष करना है।[3] इस विचार के अनुसार सुभाष अवसर पाकर जर्मनी चले जाते हैं। हिटलर से मिलते हैं। आजाद हिन्द फौज की स्थापना करते हैं। सिंगापुर में अंग्रेजों से लड़ते हैं। दिल्ली चलो का नारा लगाते हैं। लेकिन अचानक वायुयान की दुर्घटना में उनका अंत होता है।

इस प्रकार इस नाटक में बाह्य संघर्ष को बहुत अधिक स्थान मिला है। लेकिन इस संघर्ष के साथ साथ पुलिस सब इंस्पेक्टर अरविंद का अन्तर्द्वन्द्व प्रभावशाली है। वह कलकत्ता में पुलिस सब इंस्पेक्टर है। उसे अंग्रेज सरकार ने नेताजी सुभाष को गिरफ्तार करने का आदेश दिया है। अरविन्द के सामने समस्या पैदा होती है कि सुभाष को गिरफ्तार किया जाय अथवा न किया जाय? एक ओर सरकार का आदेश है, तो दूसरी ओर देशसेवा का कर्तव्य है। जिसका पालन किया जाय? निर्णय न कर पाने से अरविन्द में आंतरिक संघर्ष छिड़ता है—

'हृदय में द्वन्द्व मचा हुआ है, कोने कोने में द्वन्द्व अन्तर्द्वन्द्व। यह सत्य है कि सुभाष को पकड़ना बहुत सरल है क्योंकि वह जल्दी से डरने वाला युवक नहीं। वह हँसते-हँसते स्वयं गिरफ्तार होने को तैयार हो जायगा। किन्तु क्या यह ठीक है? क्या यह ठीक है? नहीं नहीं यह ठीक नहीं है। तब ठीक क्या है? अरविन्द! ठीक क्या है? आदेश पुकार मचाता है कि सुभाष को पकड़ना ही ठीक है–अच्छा वही सही। किन्तु आह! एक निरपराध देश प्रेमी युवक को कारागृह में डाल देना क्या

---

1 लालचन्द जैन–अमर सुभाष–पृ० ३ (प्र० सं० सन १९६४)
2 वही पृ० ३९
3 वही, पृ० ५७

पाप नही है ? अच्छा तो अब मुझे पापी ही सिद्ध होना है ?"[1]

इस आतरिक सघर्ष के कारण अरविंद सुभाष को पकड नही सकता। वह सुभाष के क्रान्तिकारक विचारो और व्यक्तित्व से प्रभावित होता है और राज्य-सेवा से त्याग पत्र देकर देश सेवा के लिए प्रवृत्त होता है। वह आगे चलकर सुभाष की आजाद हिन्द फौज मे मेजर बन जाता है।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक म बाह्य सघर्ष के साथ साथ आतरिक सघर्ष को भी स्थान मिला है।

सशस्त्र क्रातिवीरों को लेकर लिखे गये नाटको म केवल बाह्य सघर्ष को स्थान मिला है। हर एक क्रातिवीर का निर्द्वन्द्व व्यक्तित्व है। अत प्रत्येक क्रातिवीर अपने प्रिय देश भारत के स्वातत्र्य के लिए प्रबल सत्ता से आमरण सघर्ष करता है। यह सघर्ष प्रतिनिधिक दृष्टि से अपने स्वातत्र्य के लिए एक राष्ट्र का दूसरे अत्याचारी राष्ट्र से है। यहाँ चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह नेताजी सुभाष चन्द्र बोस आदि क्रातिवीर हिन्दुस्थान के प्रतिनिधि हैं। अत्याचारी अग्रेज-अफसर हिन्दुस्थान का दमन करने वाले ब्रिटेन के प्रतिनिधि हैं। अत क्रातिवीरो और अग्रेज सरकार के मध्य चलने वाला सघर्ष राष्ट्र राष्ट्र का सघर्ष है।

इस सघर्ष मे क्रातिवीरो का पक्ष आक्रमणशील पक्ष है तो अत्याचारी अग्रेज सरकार का पक्ष रक्षणशील पक्ष है। अग्रेज सरकार अपनी दमन नीति का समर्थन करने के लिए क्रातिवीरो से सघर्ष करती है। क्रातिवीर देश की स्वाधीनता के लिए अग्रेज सरकार से सघर्ष छेडते हैं और अग्रेजो को इस देश से भगाने की कोशिश करते हैं। इस सघर्ष म क्रातिवीरो की देश के स्वातत्र्य सम्बन्धी सदभावना अत तक प्रबल बनी रहती है। फलस्वरूप क्रातिवीर अपने अत तक प्रखर सघर्ष करते हैं।

उदयशकर भट्ट कृत 'क्रान्तिकारी' नाटक म काल्पनिक पात्रो के द्वारा सशस्त्र क्रान्ति आन्दोलन पर प्रकाश डाला गया है। क्रान्तिकारी दिवाकर और उसके साथी मातृभूमि के प्रति असीम अनुराग से अनुप्रेरित होकर हिंसात्मक क्रान्ति कर रहे हैं। इस क्रान्ति म दिवाकर ने कई अग्रेजो अफसरों की हत्या की है। दिवाकर का मित्र मनोहर सी आई डी अफसर है। मनोहर अपनी तरक्की के लिए दिवाकर को गिरफ्तार करने की कोशिश करता है। दिवाकर तथा अपने देश के प्रति पति की दुष्टता को देखकर मनोहर की पत्नी वीणा पति से सघर्ष छेडती है। वह दिवाकर के क्रान्तिकारी दल मे सम्मिलित होकर देशद्रोही पति की हत्या करती है। दिवाकर अग्रेजो से सघर्ष करते हुए देश के स्वातन्त्र्य के लिए आत्म बलिदान करता है।

स्वातन्त्र्य आन्दोलन के सदर्भ म देशाभिमानी वीणा और देशद्रोही मनोहर व्यक्ति-व्यक्ति-का सघर्ष महत्वपूर्ण है। क्रान्तिवीरो और अग्रेजों का सघर्ष समूह समूह

---

१ लालचन्द जैन-अमर सुभाष-पृ० १८ (प्र० स० सन १९६४ ई०)

का संघर्ष है। नाटक के प्रारम्भ में धींगा और मदारी का संघर्ष है। इसके बाद क्रान्तिकारियों का अंग्रेजों से व्यापक संघर्ष है।

२ स्वातन्त्र्य के अहिंसात्मक आन्दोलन से सम्बद्ध नाटक और संघर्ष तत्त्व

म० गांधी का विश्वास था कि अहिंसात्मक आन्दोलन से ही स्वातन्त्र्य प्राप्ति होगी। इस विश्वास को लेकर म० गांधी अन्यायी अंग्रेजों से अहिंसात्मक संघर्ष करते रहे। पर हिन्दी के कुछ ही नाटकों में इस संघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है।

म० गांधी के जीवन की घटनाओं को लेकर लिखे गये नाटकों में से [illegible] लिखित 'युगध्वनि', लक्ष्मीनारायण मिश्र लिखित 'मृत्युंजय' और [illegible] लिखित [illegible] यात्रा। तीनों नाटक संघर्ष की दृष्टि से अतिशय साधारण नाटक हैं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'मृत्युंजय' चर्चात्मक नाटक है। पूरे नाटक में महात्मा गांधी, सरदार पटेल आदि पात्र आपस में वार्तालाप करते समय भारतीय संस्कृति और पश्चिमी संस्कृति में जो भेद है उन पर चर्चा करते हैं और यह प्रकट करते हैं कि भारत के छात्रों पर पश्चिमी शान्ति का युग अमर हो रहा है। यहाँ तक कि म० गांधी का [illegible] भी [illegible] अमर का ही एक अंग माना जाता है। इस नाटक में संघर्ष का नितान्त अभाव है।

डॉ० गोविन्ददास का 'महात्मा गांधी' और [illegible] 'पवन' विकल का 'साबरमती का सन्त' नामक नाटकों का स्वरूप जीवनी नाटक जैसा है। दोनों में महात्मा गांधी के संघर्षमय जीवन का आरम्भ दक्षिण आफ्रिका से दिखाया है।

दक्षिण आफ्रिका की गोरी सरकार ने भारतीयों पर अपमान जनक प्रतिबन्ध लगाये थे। महात्मा गांधी ने इस अन्याय को मिटाने के लिए अहिंसात्मक संघर्ष का आरम्भ किया। इस संघर्ष का प्रबल साधन रहा—सत्याग्रह। म० गांधी के सत्याग्रह के सामने गोरी सरकार की पाशविक शक्ति को झुकना पड़ा। म० गांधी के न्याय तथा मानवतावादी संघर्ष की विजय हुई।

भारत में आने पर क्षमा-सत्याग्रह-शस्त्र की सहायता से म० गांधी अंग्रेजों से लड़ते रहे और भारत को स्वतन्त्र बनाने में सफल रहे। अन्त में घातक साम्प्रदायिकता से लड़ने में उनका बलिदान होता है। इस प्रकार इन दो नाटकों में म० गांधी के जीवन भर के संघर्ष को स्थान मिला है।

डॉ० राजेश्वर गुप्त का [illegible] नाटक संघर्ष की दृष्टि से एक अच्छा नाटक है। यह महात्मा गांधी के जीवन के अन्तिम दिनों से सम्बन्धित है।

स्वतन्त्र भारत का एक आदर्श रूप प्रदान करने के विषय में महात्मा गांधी का एक उज्ज्वल स्वप्न था। लेकिन प्रयत्न में कुछ ऐसा हुआ, जिससे म० गांधी का

स्वप्न चूर चूर हो गया है। स्वातन्त्र्य प्राप्ति के साथ ही देश के टुकडे हो गये, प्रेम का स्थान घृणा ने ले लिया, मानव का रक्त बहने लगा। इस कडी चोट से म० गाधी का मानवतावादी हृदय बुरी तरह घायल हो गया। उनकी मन स्थिति बडी विचित्र बन गयी।

एक ओर पाकिस्तान म मुसलमानो से हिन्दुओ पर किये जाने वाले अमानुष अत्याचारा को, म० गांधी रोक नही पा रहे थे तो दूसरी ओर उन अत्याचारों का बदला लेने के लिये यहा क हिन्दू यहाँ के मुसलमाना पर अत्याचार करने को प्रवृत्त हो रह थे और म० गाधी उन्हें रोकने म असफल हा रहे थे। अत हिन्दू भा और मुसलमान भी म० गाधी को सदेह की दष्टि स दखने लग। इससे म० गाधी की मन स्थिति बडी विचित्र और द्वन्द्वग्रस्त बन गयी। इस मन स्थिति को लेकर प्रस्तुत नाटक लिखा गया है।

इस भयानक काण्ड को रोकने और शांति स्थापन करने के लिए म० गाधी अंतिम उपाय के रूप मे आमरण उपवास प्रारम्भ करते हैं। इससे नाराज होकर अतिवादी हिन्दू (जो बदला लेन की भावना से यहाँ मुसलमानो पर अत्याचार करना चाहते थे) महात्मा गाधी को अपने माग से हटाने का प्रयास करत हैं। भारत मे आये हिन्दू शरणार्थी भी गाधी का सन्देह का दृष्टि देखने लगते हैं।

दिल्ली क्षेत्र के पुलिस महा निरीक्षक को कुछ पता चला है कि यदि म० गाधी आज प्रार्थना सभा मे उपस्थित रहग तो उनके प्राण सकट म होंगे। वह म० गाधी से मिलकर बताता है कि कुछ सिरफिरे लोगों ने उन्हें कत्ल करन का षडयन्त्र रचा है अत गाधी आज प्रार्थना सभा म न जाय।

पुलिस महानिरीक्षक की प्रार्थना सुनने पर म० गाधी बाले—"आप यह क्या नहीं चाहते कि मैं निर्भयता और साहसपूर्वक उन लोगो का मुकाबला करूँ जो मेरा कत्ल करना चाहते हैं और उन्हें दिखा दू कि जिस बात को मैं सत्य समझता हूँ, उसके लिए अपने प्राणा की आहुति द सकता हूँ। इसस मेरे उद्देश्य को बल मिलेगा।[1] 'मैंने अपन सारे जीवन भर देश की एकता के लिए संघर्ष किया है, और सत्य तथा अहिंसा का प्रचार किया है।[2] इसस म० गाधी की दृढ निश्चयात्मकता दर्शित होती है।

लेकिन भीतर ही भीतर गाधी का मन द्वन्द्व की आँधी मे उलझा हुआ है। अत व अतिशय अशान्त है। व अनुभव करते हैं कि इस अन्तर्द्वन्द्व के कारण उनसे निश्चितरूप स कुछ नही हो रहा है। अत वे प्यारेलाल से कहते हैं— इस अशान्ति

१ राजेश्वर गुरु—शरविद्ध स्वप्न—पृ० १५ (प्र० स० सन १९७० ई०)

२ वही, प० १७

के बीच मैं अनु न शांति और निद्रा दूना कम प्राप्त कर सकूँगा।"[1]ऐसी स्थिति में वे किसी प्रकार का निर्णय नहीं कर पाते हैं। वे भारी थकान का अनुभव करते हुए सो जाते हैं।

जाग उठने पर वे प्रार्थना सभा में जाते हैं। कदाचित इस विचार से कि अमानुषिक साम्प्रदायिकता से संघर्ष करते हुए बलिदान हुआ, तो भला ही है। सच मुच इस संघर्ष में उनका बलिदान हो जाता है। वे शांति के साथ प्राणों को त्याग देते हैं।

इस प्रकार इस नाटक में म० गांधी के दृढ़ निश्चय के कारण आंतरिक संघर्ष को उभरने के लिए अवकाश नहीं मिला है।

इस प्रकार इस नाटक में म० गांधी के मानवतावादी बाह्य संघर्ष को महत्त्व का स्थान मिला है। प्रस्तुत नाटक में म० गांधी के दृढ़ निश्चय के कारण आंतरिक संघर्ष को उभरने के लिए अवकाश नहीं मिला है।

लक्ष्मीनारायण लाल का 'हत्या एक आकार की' नाटक वैचारिक संघर्ष के सन्दर्भ में एक विशिष्ट एवं दर्शनीय नाटक है। इसका सम्बन्ध महात्मा गांधी की हत्या के षड्यन्त्र से है। नाटककार ने सराहनीय कलात्मक कौशल से दिखाया है कि म० गांधी की हत्या से आकार की हत्या हुई न कि म० गांधी द्वारा व्यवहृत मानवतावादी सिद्धांतों की।

इस नाटक की यह खूबी है कि इसमें म० गांधी की अनुपस्थिति है फिर भी म० गांधी की उपस्थिति भासमान होती है। जो चार व्यक्ति (जो यह मानते हैं कि म० गांधी द्वारा व्यवहृत सिद्धान्तों से भारत की हानि हुई है और हो भी रही है अतः उन सिद्धान्तों को नष्ट करने के निश्चय से) महात्मा गांधी की हत्या का षड्यन्त्र रचते हैं उनमें से एक युवक में अन्तर्द्वन्द्व छिड़ता है। उस युवक में शंका उठती है कि हम जो करने जा रहे हैं क्या वह ठीक है? इस शंकित युवक के कारण षड्यन्त्रकारियों के सामने एक नई परिस्थिति उपस्थित होती है और नाटक एक विशिष्ट रूप धारण करता है। इस सन्दर्भ में स्वयं नाटककार प्राक्कथन में कहते हैं—

गांधी-हत्या से कुछ समय पूर्व एक भूमिगत कमरे में चार षड्यन्त्रकारी जमा होते हैं। पहले व्यक्ति पर हत्या करने का दायित्व है दूसरे व्यक्ति ने योजना बनाई है और चौथे व्यक्ति ने षड्यन्त्र की सफलता के लिए सभी सुविधायें जुटाई हैं। उनका साथी शंकित युवक जब उन्हें इस निश्चय के प्रति फिर से विचार करने पर विवश करता है तो वे एक मुकदमे का नाटक रचते हैं और उसमें शंकित युवक को ही प्रतिनिधि स्वरूप कटघरे में खड़ा कर देते हैं। पहला व्यक्ति सरकारी वकील का

1 राजेन्द्र गुरु-गरविद्ध स्वप्न—पृ० २६ (प्र० सं० सन् १९७० ई०)

भूमिका में एक के बाद एक आरोप लगाता है दूसरा व्यक्ति सरकारी गवाह के रूप में उसका पक्ष सबल करता है किन्तु जब शक्ति युवक अभियुक्त और उसके वकील की भूमिका मे अपना पक्ष सामने रखता है तो जज के रूप में अधेड़ व्यक्ति पूर्वनिश्चित योजना के अनुसार ही निर्णय देता है।"[1]

इससे ज्ञात होता है कि प्रस्तुत नाटक में वैशिष्ट्यपूर्ण रीति से वैचारिक संघर्ष का निर्देशन हुआ है। म० गांधी जी का प्रतिनिधि बने हुए 'शक्ति युवक' और अन्य तीन षड्यन्त्रकारियों में प्रबल सद्धान्तिक संघर्ष छिड़ता है।

षड्यन्त्रकारी पिस्तौल में गोलियाँ डालकर हत्या की पूरी तैयारी करते हैं। लेकिन जैसे ही वे हत्या के लिए चलने को होते हैं, शक्ति युवक पूछता है— क्या यह ठीक है ? जो हम करने जा रहे हैं ।[2] इस प्रश्न से अन्य तीन षड्यन्त्रकारी हक्का बक्का हो जाते हैं। 'शक्ति युवक' अपनी बात जारी रखता है—

"शक्तियुवक—मुझे डर है बाद में कहीं पछतावा न हो।

पहला युवक—पछताव की कोई गुंजाइश नहीं है।

शक्ति युवक—फिर भी एक बार सोच लेने में क्या हर्ज है। हमारी उस आदमी से कोई दुश्मनी नहीं है।

पहला व्यक्ति—देश हित क्या कोई कारण नहीं है ?

शक्ति युवक—कहीं हम अहित को हित तो नहीं समझ बैठे ?"[3]

साथियों की दृढ़ता देखकर 'शक्ति युवक' ने साफ साफ कह दिया कि वह उनका साथ नहीं देगा। तब दूसरे व्यक्ति ने 'शक्ति युवक' को छोड़कर चले जाना अच्छा नहीं माना। अगर बाद में वह मुखबिर हो गया तो सभी साथियों के प्राण संकट में होंगे।

दूसरे व्यक्ति ने वहीं पर ही, शक्ति युवक' पर मुकदमा चलाने की योजना बनाई। 'शक्ति युवक' को उस व्यक्ति का प्रतीक माना गया। जिसका वे नामो निशान मिटाना चाहते हैं। अन्य तीनों ने शक्ति युवक को म० गांधी का प्रतिनिधि मानकर उस पर कई अभियोग लगाये। तब शक्ति युवक भी ईमानदारी के साथ म० गांधी का प्रतिनिधि बन गया। वह एक एक आरोप का खण्डन बड़े तर्क शुद्धता से करने लगा। विरोधियों के पैर उखड़ने लगे। वह सत्य के लिए संघर्ष करता रहा। तब थककर तीनों ने शक्ति युवक का व्यर्थ ही दोषी ठहराया। अधेड़ व्यक्ति ने झूठा न्याय देते हुए कहा— मुजरिम मुकदमा शुरू होने से पहले हमारा जो फैसला था वही अब भी है। अदालत यह सजा सुनाती है कि तुम्हें सरे आम सरे राह गोली

१ ललित सहगल—हत्या एक आकार की—पृ० १ (प्र० सं० सन १९६८)

२ वही, पृ० १०–११

३ वही, पृ० १४—१५

मार दी जाय ।'[1]

यह निर्णय जिस समय सुनाया जाता है उस समय गोली चलाने की आवाज सुनाई देती है । इस आवाज को सुनकर तीनों व्यक्ति मानते हैं कि "फसले" के अनुसार उस व्यक्ति को देहान्त का दण्ड दिया गया । शिक्षित युवक भी मानता है कि इन लोगों ने 'उस व्यक्ति की हत्या की ।' 'शिक्षित युवक' उन तीनों का एक साथी के रूप में सुनाता है । तुम्हारा ख्याल है दोस्त तुमने उसे मार दिया है ? नहीं, दोस्त नहीं । तुमने एक आकार की हत्या की है–हाड़ मांस से भरे एक आकार की ।[2] उसने कहा था मेरी मृत्यु हिन्दू मुसलमान दोनों को एक करने के प्रयत्न में ही हो ? हे न नमाज़ । इस समय तो उसका अन्तरंग गांधी में नाच रहा होगा मूक ।"[3]

प्रस्तुत नाटक में परस्पर विरुद्ध सिद्धान्तों तथा राजनीतिज्ञों का प्रबल संघर्ष है । म० गांधी ने स्वातन्त्र्य प्राप्ति तथा भारत की अखण्डता के लिए जिन राजनीतिक सिद्धान्तों को अपनाया था उन सिद्धान्तों के विरुद्ध कुछ हिन्दुओं ने संघर्ष छेड़ा था । इन हिन्दुओं की धारणा थी कि म० गांधी के राजनीतिक सिद्धान्तों से भारत की भारी हानि हुई । इन हिन्दुओं के राजनीतिक सिद्धान्त म० गांधी के राजनीतिक सिद्धांतों से भिन्न थे । परस्पर विरुद्ध राजनीतिक सिद्धान्तों के कारण इन हिन्दुओं और महात्मा गांधी के मध्य वैचारिक संघर्ष चल रहा था । इस संघर्ष की परिणति गांधी की हत्या में होती है । इस संघर्ष को लेकर ही 'हत्या एक आकार की' और 'परविद्ध स्वप्न' का निर्माण किया गया है ।

३ स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक आक्रमण से सम्बद्ध नाटक और संघर्ष तत्त्व

स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर पाकिस्तान ने और चीन ने आक्रमण कर भारत के स्वातन्त्र्य को छीनने का असफल प्रयास किया । भारत की स्वतन्त्र राजनीति पाकिस्तान और चीन को अखरती रही है । दुनिया में भारत का बलशाली राष्ट्र के रूप में उभरना पाकिस्तान और चीन को फूटी आँख नहीं भाता । अतः पाकिस्तान और चीन ने आक्रमण द्वारा भारत की स्वाधीनता, मान मर्यादा और विशिष्ट राजनीति को मिट्टी में मिलाने का असफल प्रयत्न किया ।

सन् १९६२ में चीन ने और सन् १९६५ में पाकिस्तान ने भारत पर जोरदार आक्रमण किया । भारत ने जोरदार प्रतिकार से अपने स्वातन्त्र्य की रक्षा की । हिन्दी नाटककारों ने इन संघर्षों के आधार पर नाटकों का निर्माण किया है । इन नाटकों में संघर्षशील भारत की वीरता का प्रकाशन किया गया है ।

१ ललित सहगल–हत्या एक आकार की–पृ० ९४ (प्र० सं० सन १९६८)
२ वही, पृ० ९५
३ वही, पृ० ९५–९६

(अ) भारत-चीन सघर्ष से सम्बद्ध नाटक

सन १९६२ मे हुये भारत चीन सघर्ष को लेकर लिखे गये नाटकों मे बाह्य सघर्ष को महत्त्व का स्थान मिला है। लेकिन सघर्ष की दृष्टि स दो नाटक ही महत्त्वपूर्ण हैं। एक है डॉ० शिवप्रसादसिंह रचित घाटियाँ गूँजती हैं' और दूसरा है ज्ञानदेव अग्निहोत्री रचित नेफा की शाम'। इन नाटको मे प्रभावशाली बाह्य सघर्ष के साथ थोडा आन्तरिक सघर्ष भी है।

डॉ० शिवप्रसाद सिंह का 'घाटियाँ गूँजती हैं नाटक सन १९६२ मे हुए भारत चीन सघर्ष से सम्बन्धित है। विश्वासघाती चीन न भारत पर युद्धात्मक सघर्ष लादा। भारत अपनी सुरक्षा के लिये भरसक प्रतिकार करता रहा। भारत की सपूर्ण उत्तर सीमा पर युद्ध की अग्नि धधकती रही। इस पूरी सीमा पर फल युद्ध क्षेत्र की सबसे हृदयविदारक घटना थी बोमदिला का पतन। किसी देश द्रोही से चीनियो को सेला के पास का गुप्तमार्ग मालूम होन के कारण १८ नवम्बर रविवार के दोपहर बाद चीनियो का बोमदिला के कस्बे पर कब्जा हो गया। यह कब्जा चीनियो की कपटनीति का फल रहा। इस घटना को आधार बनाकर प्रस्तुत नाटक की रचना हुई है। इस सन्दर्भ मे नाटककार द्वारा चीनियो की इस कपट नीति को "इस नाटक की पष्ठभूमि के रूप म स्वीकार किया गया ताकि इस पष्ठभूमि पर सघर्परत भारतीय राष्ट्र की आत्मा का पूर्ण प्रकाश प्रस्फुटित हो सके।"[1]

प्रस्तुत नाटक मे नाटककार का ध्यान उस बात पर केन्द्रित हुआ है कि बबर आक्रमण का प्रतिकार करने मे भारत का साधारण से साधारण व्यक्ति भी किस प्रकार देशाभिमान से सघर्परत है। इस तथ्य को उजागर करने के हेतु ही प्रस्तुत नाटक का सजन हुआ है। अत नाटक की 'पाश्वभूमि म नाटककार लिखते हैं-'सघर्ष की मूल शक्ति तो व्यक्ति और समूह का वह दृढ भाव है वह मानसिक मनोमन्थन है जो इस प्रकार के अमानुषिक कृत्यो के प्रति अपनी अबाध प्रतिक्रिया म साकार हुआ करता है और यह सघर्ष दूसरी श्रेणी की उन घटनाओ में ही दिखाई देगा, जो ऐतिहासिक नही विश्वसनीय होती हैं, तथ्य नही सत्य होती हैं।'[2]

इस युद्ध के समय भारतीय जन के मन में ऐसे ऐसे भाव सवेग उबलते हैं, जो उमे सघर्ष के लिए उत्तेजित करते हैं। अत इस नाटक म सघर्ष को प्रवत्त करने वाले भाव-सवेगों को महत्त्व का स्थान मिल गया है। इस सन्दर्भ म नाटककार कहते हैं—'चूँकि यह पूरा परिवेश बहुत व्यापक और बहुत स्थूल है इसलिये इस नाटक मे घटनाओ की स्थूलता से अलग होकर भिन्न भिन्न व्यक्तियो की अन्तरात्मा म उभरने वाले भावो और सवेगो को ही लक्ष्य म रखकर उनके सघर्ष का चित्रण किया गया

१ डॉ० शिवप्रसादसिंह—घाटियाँ गूँजती हैं—(पाश्वभूमि पृ० ८) द्वि० स० सन १९६५

२ वही पृ० ९–१०

है नाटकीय संघर्ष में सद् और असद् चरित्रों के द्वन्द्व की स्थिति अनिवार्य मानी जाती है। यहाँ यह असद् अदृश्य है फिर उसके सबल एवं कुकृत्य ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। यह असद् अदृश्य अपनी पूरी बीभत्स गहराइयों और पहलुओं के साथ इस नाटक के चरित्रों के माध्यम से अनुभवगम्य हो गये उसको प्रकट किया गया है। चूँकि दुष्ट और उसके कुकृत्य एक बहुत बड़े संकट का पर्याय बन गये हैं, इसी कारण उससे जूझने वाले चरित्रों में व्यक्तिगत ईर्ष्या की पीड़ा और असहायता का भी बोध उभरता है जो इस प्रकार के युद्धों की अनिवार्य उपज है। इसी से इन चरित्रों के त्याग, शौर्य और संघर्ष में आत्मबलिदान भी मिलेगा।[1]

प्रस्तुत नाटक में देश की सुरक्षा के लिए स्वाभिमान से संघर्षरत पात्र हैं— पत्रकार विवेक राय, कैप्टन मोहनसिंह और उसकी पत्नी कालिम्पोंग निवासी नीरू (देशद्रोही दूरी की वाग्दत्ता) बधुआ राज के पिता तथा राज। हर एक व्यक्ति अपने ढंग से आक्रमणकारी से संघर्ष कर रहा है।

नवयुवक विवेककुमार राय एक प्रसिद्ध समाचार संस्था का निर्भीक और साहसी संवाद प्रतिनिधि है जो चीनी आक्रमण की खबरें एकत्र करने के लिए तेजपुर आया हुआ है। वह कालिम्पोंग जाने के लिए मिलिट्री दफ्तर से परमिट लेता है।

विवेक कालिम्पोंग जाने के पहले तेजपुर के होटल में बैठा रहता है जहाँ से हिमालय में छिड़ गए युद्ध की लपटों का अनुभव कर सकता है। राइफलों, तोपों, मोर्टरों और अन्य युद्धास्त्रों की गड़गड़ाहट सुनकर उसके मन में क्रोध की आग भड़कती है। वह पहाड़ों को देखते हुए बड़बड़ाता है– आज वही हिमालय शान्त और पवित्र हिमालय जल रहा है। विश्वासघाती चीनियों के कुचक्र से हिमालय का भाल—।"[2]

यहीं विवेक से कैप्टन मोहनसिंह की भेंट होती है। साथ ही साथ कालिम्पोंग निवासी राज की भी भेंट होती है। विवेक और कैप्टन मोहनसिंह के वार्तालाप से पता चलता है कि चीनी सेनाएँ सेला को एक तरफ से काटकर आगे बढ़ आयी हैं। बोमडिला और सेला दोनों को जोड़ने वाली सड़क भारतीय फौजों ने काट दी है। विवेक आवेग में कैप्टन मोहनसिंह (व्यंग्यात्मक ध्वनि) से कहता है— मतलब कि हमने दोस्ती का हाथ बढ़ाया इन्होंने हाथ पर थूक दिया। हम इनके लिए सब कहीं वकील बने, इन्होंने बदले में यह हमारे ही ऊपर हमला बोल दिया। बात शान्ति की करते हैं, काम रावण का। पंचशील की शपथ और मित्र की ही पीठ में छुरा। कैप्टन इन्हें कोई पूछता नहीं था तब हमने आदर दिया सम्मान दिया हिन्दी-चीनी भाई भाई के नारों से धरती और आसमान भर दिए। और इन्होंने ? इन्होंने

1 डॉ॰ शिवप्रसादसिंह–घाटियाँ गूँजती हैं–पृ॰ १० (द्वि॰ सं॰ सन् १९६५)
2 वही पृ॰ २०

हमारी सच्चाई और शिष्टता को हमारी कमजोरी मानकर हमे ठोकर मार दी । कप्तेन ऐसे जघन्य आचरण एक सभ्य देश शायद ही कर सके । मुह म "जनता का हित" और मन मे साम्राज्य लिप्सा और चगजखानी ।'[1] विवेक के इन शब्दो म विश्वासघाती चीन के प्रति भारतीया का आवेश, क्रोध व्यक्त हुआ है । इस आवेश और क्रोध के कारण ही भारतीय जनता अनेक रूपा म आक्रमण का प्रतिकार करती रहती है । इस स्थिति पर प्रकाश डालन की दृष्टि स कप्तन सोहनसिंह विवेक से कहता है— बधु, यह स्वत त्र भारत का पहला युद्ध है इस युद्ध का एक-एक सनिक अपनी मातृभूमि के मान-सम्मान का पहरेदार है सनिक नेता शासक, पत्र कार, लेखक, किसान, मजदूर और व्यापारी—य सब जसे अलग-अलग डिपाटमेंट हैं, मगर अधीन एक ही हेडक्वाटर के हैं और वह हेडक्वाटर है मातभूमि ।"[2]

विवेक, कप्तन सोहनसिंह, रोज, शीकू आदि अपनी मातभूमि क मान-सम्मान की रक्षा के लिए बोमदिला चल जात हैं । सभी सघष का अभिन्न अग बन जाते हैं । देशद्रोही मुकुल और टूरी सेला स बोमदिला आने का गुप्त माग चीनियो को बता देत हैं । गुप्त माग स आकर चीनी बोमदिला पर हमला करत हैं । बोमदिला की रक्षा के लिए भारतीय सनिक साहस और शूरता से लड रहा है । इस सघर्ष मे रोज के देशाभिमानी पिता का बलिदान हाता है । राज शोक म रोने लगती है । उस समय निर्भीक और साहसी क्यूला (शीकू की बहू) रोज को समझाती है— अरे तुम रो रही हा । राने से क्या हाता है भला । अब दखो मेरा घरवाला दो महीने से लापता है । सुना चीनियो न पकड लिया उस, मगर म बिल्कुल नही रोती ।'[3] बचारी क्यूला को मालूम नही कि उसका पति देशद्रोही है । वह तो गव करती है कि उसका पति बबर चीनिया से लडते लडत गिरफ्तार हुआ है । क्यूला क गव को देखकर रोज भी देश की रक्षा के लिए कुछ करना चाहता है । विवेक के समझाने पर रोज देश की सुरक्षा के लिये सघप करने को प्रवृत्त होती है । विवेक न रोज को समझाया—'हम अब सब कुछ उस तरह करना पडेगा जस एक जीवित और सघपरत राष्ट्र के निवासी करते हैं । जिनके दिला मे जलत दीय को बडी स बडी आँधी भी बुझा नही पाती । जिनके विश्वास को बडा स बडा भूकम्प भी हिला *नहीं पाता ।*"[4]

चीनियो के पशाचिक छल कपट के कारण भारतायो की हार होती है । बोमदिला शत्रु के अधिकार म चला जाता है । लेकिन कप्तन सोहनसिंह देशद्रोही

---

१ डॉ० शिवप्रसादसिंह—घाटियाँ गूँजती हैं—पृष्ठ २६ (द्वि० स० सन १९६५ई०)

२ वही पृष्ठ ३१

३ वही, पृष्ठ ९८

४, वही, पृ० ८८

मुकुल और उसके साथियों को पकड़ने में सफलता पाता है। शीकू भी अपने देशद्रोही पुत्र टूरी की हत्या कर देता है। शीकू टूरी की हत्या से अपने कलंक को मिटाता है। देशद्रोही पति टूरी की हत्या से मयूला को बुरा नहीं लगता, बल्कि उसे तो अच्छा लगता है। यहाँ पर देशद्रोही पुत्र और स्वाभिमानी पिता का तथा देशद्रोही पति और देशभक्त पत्नी मयूला का संघर्ष व्यक्त हुआ है।

इस नाटक में बाह्य संघर्ष के साथ साथ शीकू का मार्मिक आंतरिक संघर्ष भी है तथापि वह नाटक में उतना उभर नहीं पाया है जितना कि उभरना चाहिए था।

देशद्रोही पुत्र की हत्या होने तक पिता शीकू में आंतरिक संघर्ष चल रहा था। शीकू को जब से मालूम हुआ कि उसका इकलौता पुत्र टूरी देशद्रोही के रूप में चीनियों का साथ दे रहा है तब से शीकू में लाल रंग के प्रति घृणा पैदा होती है। वह मानता है कि लाल रंग गद्दारी और वतन के साथ घात की निशानी है। इस धारणा के कारण वह लाल रंग के फूल को पैरों तले कुचल देता है। वह बड़ा अस्थिर नजर आता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि वह अन्तर्द्वन्द्व में फँसा हुआ रहता है। एक ओर देश प्रेम है तो दूसरी ओर पुत्र प्रेम। वह निर्णय नहीं कर पाता कि किस प्रेम पर किस प्रेम की बलि चढ़ाया जाय? पुत्र प्रेम पर देश प्रेम की या देश प्रेम पर पुत्र प्रेम की? अन्त में शीकू देशहित की दृष्टि से देश प्रेम पर पुत्र-प्रेम की बलि चढ़ाता है और शान्ति की साँस लेता है।

शीकू के अन्तर्मन में छिड़े अन्तर्द्वन्द्व का पता उस समय चलता है, जब वह देशद्रोही पुत्र टूरी की हत्या करता है और कप्तान मोहनसिंह तथा विवेक आदि से बातचीत करता है। शीकू मुझे मालूम हुआ सरकार कि टूरी गद्दार है। वह उन लोगों में शामिल है जो देश की आजादी बेचना चाहते हैं।[1]

"कप्तान–जब तुम्हें शक हुआ था तो तुमने ये बातें पुलिस को क्यों न बतायीं?

शीकू–(मोह भरी मुद्रा में) टूरी मेरा इकलौता बेटा था सरकार। मैंने अपने दिल को बड़ा कड़ा किया बाबू। कई बार मन में आया चलकर सारी बातें पुलिस को बता दूँ। मन का बोझ हल्का कर लूँ। पर हर बार सामने टूरी की तस्वीर खड़ी हो जाती थी। बेटे की ममता मेरे पैरों में जंजीर डाल देती। मुझे कई-कई रात नींद नहीं आई। दिमाग कहता था कि तुम माँ की तरह प्यारी धरती से दगा कर रहे हो। मगर दिल हमेशा टूरी का साथ देता रहा। मैं गूँगा बन गया।"[2]

शीकू का आंतरिक संघर्ष दो सद्भावनाओं का संघर्ष है। यहाँ दोनों भावनाएँ

---

१ डॉ० शिवप्रसादसिंह—घाटियाँ गूँजती हैं—पृ० ११७

२ वही—पृष्ठ १२०

ल हैं—पुत्र प्रेम की भावना भी और देश प्रेम की भावना भी । अन्त मे देश प्रेम भावना के सामने पुत्र प्रेम की भावना को झुकना पडता है । देश हित की दृष्टि डाकू का पुत्र हत्या का निर्णय श्रेष्ठ श्रेणी का है ।

विवेक जो सपना देखता है उस सपने से वैचारिक सघर्ष की अभिव्यक्ति हुई । चीनी अपने पाशवी विचारो को छोडकर कँनफयूशियस, बुद्ध और मार्क्स के मानवतावादी विचारो–सिद्धान्तो को स्वीकार नही करते हैं । अत भारत चीन सघर्ष के सदर्भ मे इस वैचारिक सघर्ष के द्वारा चीन की अमानुषता ध्वनित होती है ।

ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'नेफा की एक शाम' नाटक भारत–चीन सघर्ष पर आधारित है। प्रस्तुत नाटक मे हिमालय मे बसे आदिवासियो का देश रक्षार्थ आश्चर्यजनक सघर्ष दिखाया गया है । इस नाटक के "प्राक्कथन" में नाटककार लिखते है—"इन जागी हुई जनजातियों ने चीनी आक्रमण के समय जो कुछ किया वह अब कहानी बन चुका है । यही कहानी इस नाटक की कथावस्तु है ।"[1] इस वास्तविकता के कारण ही सम–सामयिक पृष्ठभूमि पर आधारित होते हुए भी नाटककार की दृष्टि से "यह नाटक मानव के उन सम्बन्धो की पुन र्व्याख्या करने का प्रयास करता है जो किसी देशाचल मे बाह्य आक्रमण के समय होने चाहिए ।"[2]

इस नाटक की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमे उत्तरी सीमाचल के निवासी आदिवासी भी देश को मान–मर्यादा की रक्षा के लिए असीम शौर्य और धैर्य से लडते हैं । पूरे नाटक मे आरम्भ से अन्त तक सघर्षात्मक क्रिया व्यापार है ।

सियाँग नदी के इस पार केबग गाव बसा हुआ है। सियाँग नदी के उस पार की घाटी मे चीनियो ने अपना एक नया अड्डा बनाया है । वहाँ उनकी रसद और गोला बारूद विपुल मात्रा मे जमा है । दुश्मन के कुछ अच्छे फौजी दस्ते दिन–रात इस जगह की हिफाजत करते है । इस अड्डे की सब खबरें गोगो के पास हैं ।

केबग गाँव ने आक्रामक का प्रतिकार करने के हेतु गोगो को अपने सरदार के रूप मे चुन लिया है । गोगो दूसरे महायुद्ध मे बर्मा की लडाई मे गुरिल्ला दल मे था । अब उस अनुभव के बल पर गोगो ने अब गुरिल्ला दल की स्थापना की है जो अपने काम मे सफलता पा रहा है । वीरमाता मातई का छोटा लडका देवल गोगो का अभिन्न साथी बन जाता है ।

गोगो ने चीनियो की हरकतो पर नजर रखने के लिए हर ऊँची पहाडी पर अपने आदमी तैनात कर दिए हैं । इन सबके पास ढोल हैं जैसे ही शत्रु की कोई टुकडी आगे बढ़ेगी वैसे ही बँधे बँधाये इशारो से सब खबरें मिल जायेंगी । ढोल बजाने वाला का यह जाल सारे इलाके में फैला है । इन देशभक्तों का निश्चय है कि

१ ज्ञानदेव अग्निहोत्री–नेफा की एक शाम–पृ० ६ (चतुर्थ स० सन् १९६७)
२ वही पृ० ५

कर खड़ा होता है। इतने मे गोगो आता है। दोनो को समझाने का प्रयास करता है। ठीक उस समय धागचू और फुगशी आते हैं और गोगो और देवल को निःशस्त्र बनाते हैं। वागचू के आदेशो से फुगसी देवल और गोगो को बेहद पीटता है। वागचू देवल से जानना चाहता है कि उसका सरदार कौन है ? दल मे कितने लोग हैं ? गोला बारूद कहाँ रखा है ? तब मातई वीरमाता का रूप धारण करती है और वागचू से पूछती है--' मातई--और अगर यह बतलाने से इनकार कर दे ?

वागचू-तो हम इसे गोली मारना चाहेंगे।

मातई-(दृढ़ता से) तो फिर चला गोली। इसकी तरफ स मैं कहती हूँ, यह कुछ नही बतलाएगा, (चीखकर) कुछ नही बतलाएगा। [1]

मातई की वीरोचित बातो से गुस्से म आकर वागचू मातई के सिर मे पिस्तौल की मूठ का आघात करता है---माथे स खून बहने लगता है। लेकिन मातई नही डरती, बल्कि निर्भीकता स कहती है-

"पापी, नीच! भूल गया वह घडी जब तू घायल था, तेरे पर मे गोली लगी थी। तू मर रहा था। मैंने तेरे घावो पर शहद लगाया। तुझे प्यार से गले लगाया, तुझे बेटा कहा। और तू हमें बदला दे रहा है ? प्यार के बदले म खून, मोहब्बत के बदले म गोली ? (चीखकर) यही तेरे देश का रिवाज है।' [2]

इस स्थिति से नीमो मे एकदम परिवर्तन होता है। वह बडी चालाकी से काम लेता है और वागचू को खतम कर देता है। वह जासूसी करने वाली मुहाली को भी गोली स उडा देता है। अब नीमो का हर एक क्षण मातृभूमि की सुरक्षा मे बीतता है।

मातई भी बन्दूक चलाना सीखती है। मातई और शीवाकाई दोनों मिलकर कभी कभी दुश्मन पर गोलियाँ चलाती हैं। एक भारतीय फौजी जवान आकर समाचार देता है कि हिन्दुस्तानी जवानो की नई कुमुक आने वाली है, तब तक दुश्मन को सियाँग नदी के उस पार रोकना है।

सरदार गोगो को खबर मिलती है कि आज रात दुश्मन आधी रात के पहले या बाद में पुल पार कर सियाँग नदी के इस पार आने वाला है। दुश्मन को इस पार न आने देने के लिए पुल उडाने की योजना बनाई जाती है।

लेकिन पुल उडाना आसान काम नही है। उस पार पहाडी पर चीनियो ने एक छोटी सी चौकी बनाई है और अपनी मशीन गनें लगा दी हैं। पहाडी की ऊँचाई से दुश्मन सियाँग नदी के पुल पर चौबीसो घण्टे निगरानी रखता है। जब रात आती है तो पहाडी स एक तरह की तेज रोशनी घूमने लगती है। यह पुल

१ ज्ञानदेव अग्निहोत्री--नेफा की एक शाम--पृ० ६८ (चतुर्थ स० १९६७ ई०)
२ वही, पृ० ६९।

में संघर्ष का चित्रण व्यवस्थित नहीं हो पाया है। क्योंकि इन नाटकों में अन्य बातों पर ही अधिक बल दिया गया है।

'चमगादड़' नाटक में दिखाया गया है कि किस प्रकार चीनी एजेन्ट भारत के सीमावर्ती प्रदेश के अव्यवस्थित गुरिल्ला प्रबन्ध से लाभ उठा रहे हैं। नाटक के आरम्भ में स्वाभक्त पहाड़ो और चीनी एजेन्ट चांगफू का संघर्ष है। चांगफू पहाड़ी की हत्या कराता है। इस दृश्य के पश्चात नाटक जासूसी नाटक का रूप ग्रहण करता है। परिणामस्वरूप प्रस्तुत नाटक में संघर्ष भली भांति नहीं उभर पाया है।

(अ) भारत पाकिस्तान संघर्ष से सम्बद्ध नाटक

सन् १९६५ में हुए भारत पाकिस्तान संघर्ष को लेकर लिखे गये नाटकों में बाह्य संघर्ष को महत्त्व का स्थान मिला है। इस कारण से भारत-पाकिस्तान संघर्ष सम्बन्धी नाटक प्रभावकारी बन पड़े हैं। इन नाटकों में व्यक्ति व्यक्ति का भी संघर्ष है। लेकिन व्यक्ति व्यक्ति के संघर्ष का अपना स्वतन्त्र महत्त्व नहीं है। क्योंकि इन नाटकों में राष्ट्र राष्ट्र के संघर्ष के सन्दर्भ में व्यक्ति व्यक्ति का संघर्ष है। अतः राष्ट्र राष्ट्र के संघर्ष के सन्दर्भ में ही व्यक्ति व्यक्ति का संघर्ष महत्त्वपूर्ण है।

राजकुमार का 'हाजी पीर का दर्रा' नाटक भारत पाक संघर्ष पर आधारित है। इस नाटक में कश्मीर पर कब्जा करने की पाकिस्तानी साजिश पर प्रकाश डाला गया है।

पाकिस्तान मुजाहिदों को कश्मीर में घुसा रहा है। एक मार्ग है हाजी पीर का दर्रा। घुसपैठ करने वाले मुजाहिदों के एक दल का नेता जालिमखाँ बड़ा जालिम है। उसका साथी नूरखाँ भारतीय जासूस अकबर की बातों से प्रभावित होकर भारत की न्याय भूमिका का समर्थन करता है। परस्पर विरुद्ध विचारों के कारण नूरखाँ और जालिमखाँ में संघर्ष छिड़ता है। इस संघर्ष को लेकर नाटक का आरम्भ होता है।

जालिमखाँ ने हाजीपीर की मजार पर मन्नत मांगने आयी हुई कश्मीर की (मुसलमान) नारी की इज्जत लूटने का प्रयास किया था। इस सन्दर्भ में नूरखाँ धिक्कारते हुए कहता है[1]—

नूरखाँ—लानत है तुम्हारी बहादुरी पर ! तुमने एक औरत पर

जालिमखाँ—खामोश बेवकूफ ! औरत हो या दौलत जर हो या जमीन हिन्दुस्तानी कश्मीर की हर चीज को लूटने का हक हमको हासिल है। यह लालच खत्म हो गयी तो मुजाहिदों की फौज कश्मीर के उस पार के हिस्से की जमीन पर पैर रखने के लिए कभी तैयार न होगा।

१ राजकुमार—हाजी पीर दर्रा का दर्रा—पृष्ठ ३ (प्र० सं० नवम्बर सन १९६५)

इससे मालूम होता है कि पाकिस्तानी मुजाहिद किस इरादे से कश्मीर मे घुसते हैं । लेकिन नूरखा को यह पसन्द नही है । वह मुजाहिदो के नापाक इरादे से नफरत करने लगता है । *वह दुष्ट जालिम खाँ का धिक्कार करते हुए कहता है*—"मौत का खौफ दिखाकर तुम अब नूरखाँ की जबान पर ताला नही लगा सकते जालिम खाँ । तुम्हारे दिल पर काबिज शैतान को मैंने उस समय ही देख लिया था जब तुमने शराब के नशे म हाजीपीर की मजार को बूटो से ठोकरें लगायी थ और उस पर थूका था ।"[1]

इससे यह भी सूचित होता है कि पाकिस्तानी मुजाहिद जो मजहब का दम भरते हैं वह कितना झूठा है। इस पर करारा व्यग्य करते हुए नूरखाँ कहता है (जालिम खाँ से) 'तुम लोग मजहब का नाम ले लेकर उसके कलेजे म छुरियाँ भोंक रहे हो, बगुनाह इसानो के खून स हाथ रगने वाले दरिद्रो का रोल अदा कर रहे हो कुरान और खुदा का नाम लकर डाकाजनी और लूट का बाजार गम कर रहे हो ।"[2]

जालिमखाँ गुस्से म आकर नूरखाँ पर बन्दूक चलाता है । नूरखाँ घायल होकर कहीं निकल जाता है ।

नूरखाँ के चल जाने के बाद जालिम खाँ और अकबर (भारतीय जासूस है, इसकी मानवता की बातो से ही प्रभावित होकर नूरखा जालिम खा का विरोध करता है ।) मे सघर्ष छिडता है । जालिमखाँ को पता नही है कि अकबर भारतीय जासूस है । अकबर नूरखाँ की तरह जालिम खाँ का विरोध करता रहता है । जालिम खाँ अकबर को भी धमकाता है पर अकबर नही डरता । मौलवी अताउल्लाह भी मुजाहिदो को भड़काने के लिए हाजीपीर के दर्रे के पास आता है । अताउल्लाह मौलवी बनने के पूर्व एक नम्बर का मक्कार आदमी था । लेकिन पाकिस्तानी हुकूमत ऐसो को ही मौलवी बनाकर मुजाहिदो को भडकाने का काम कराती है । लेकिन हिन्दुस्तानी सिपाहियों से पाकिस्तानी मुजाहिदो को बुरी तरह हार खानी पडती है कश्मीरी मुसलमान जनता पाकिस्तानी मुजाहिदो का साथ नही देती, बल्कि उन मुजाहिदो का खात्मा करने वाली हिन्दुस्तानी फौज का साथ देती है । मुजाहिदो के हथियार रसद फौजी सामान सब कुछ हिन्दुस्तानी फौज के हाथ लगता है । भारतीय फौज पाकिस्तान के अमरिकी पटन टको और सबर जेट हवाई जहाजो को नष्ट कर देती है । पाकिस्तानी फौज के पर उखड जाते हैं । भारतीय फौज हाजीपीर के दर्रे पर कब्जा कर लती है । कई मुजाहिद और मुल्ला मौलवी पकडे जाते हैं । मौलवी अताउल्लाह भी पकडा जाता है ।

---

१ राजकुमार—हाजी पीर का दर्रा—पृष्ठ ३ (प्र० स० सन नवम्बर १९६५)

२ वही पृष्ठ १२ ।

पशमीना और रेशमा जवान तो हैं ही साथ ही साथ बडी निर्भीक साहसी और देशाभिमानी हैं। वक्त पडने पर पशमीना और रेशमा अपनी हिफाजत के लिए हथियार भी उठा सकती हैं। पशमीना बंदूक भी चलाती है।

ये दोनो गाँव में कुछ दूरी पर एक पुरानी मसजिद के पास भेडो को चरा रही है। इलाहीबख्श के चले जाते ही वहाँ दो खूनी भेडियो–मुजाहिदा–का आगमन होता है। वे पशमीना और रेशमा का पकडने की कोशिश करते हैं, पर पशमीना और रेशमा बडी चतुराई से वहा से निकल जाती हैं।

गुलाम राजाकार फौज का नेता है और कालेखाँ मुजाहिदो का नेता है। दोनो अपना अपना उल्लू सीधा करने के लिए आपस में बार बार लडते झगडते हैं। पाकिस्तानी मेजर जावेद और कप्टेन या कूब वहाँ आते हैं। वे हिन्दुस्तानी मुसलमानों को जेहाद की बात समझाकर अपने पक्ष मे कर लेना चाहते हैं। इसलिए गुलाम और कालेखाँ के द्वारा इलाहीबख्श को पकडवाकर लाया जाता है। गाव के मुखिया ने अपनी बात को मान लिया तो पूरे गाव पर अपना अधिकार स्थापित होगा इस इरादे मे इलाहीबख्श को जेहाद की बात समझाने की कोशिश करते हैं। लेकिन देशाभिमानी इलाहीबख्श अपने वतन के दुश्मन की बातो मे नहीं आते। उन्हे अपना मुल्क प्यारा है। यह देखकर महबूब लपकता है और इलाहीबख्श के एक थप्पड मारता है। इलाहीबख्श जवाब मे कहते हैं— महबूब तूने यह तमाचा हमें नही अखलाक और इन्सानियत को मारा है।'[1]

महबूब और जावेद इलाहीबख्श को सच्चा मुसलमान नही मानते। इस बात पर व्यग्य कहते हुए इलाहीबख्श कहते हैं–

'इलाहीबख्श—सच्चा मुसलमान कौन है ? सच्चा मुसलमान एक सच्चा इन्सान है जो अपने पडोसियो की, वो किसी, भी कौम के क्यूँ न हो इज्जत करता है अम्न चैन से खुद जीता है और जीने देता है और अगर वक्त आ जाए तो बुराई की बुनियाद मिटाने के लिए खून का आखरी कतरा भी बहा देता है।[2]

इलाहीबख्श की भारत के प्रति निष्ठा को देखकर जावेद इलाहीबख्श को पीटने का आदेश देता है। काले खाँ इलाहीबख्श को इतना पीटता है कि वह जमीन पर गिर जाता है। उसके सामने पशमीना और रेशमा को सताया जाता है। फिर भी इलाहीबख्श अपना पाक इरादा नही बदलते हैं। इलाहीबख्श रेशमा को धीरज बँधाते हैं- बेटी, वो जमीन के लिए लड रहे हैं हम उसूलो के लिए। देखना है कि

१ ज्ञानदेव अग्निहोत्री–वतन की आबरू–पृ०–६८

२ वही पृष्ठ ७०।

तानाशाही और जम्हूरियत की लड़ाई में फतह किसकी होती है। अच्छाई और बुराई की इस जंग में दो चार गाँवों का उजड़ जाना, सौ-दो सौ आदमियों का मरना कोई मायने नहीं रखता? बात यह है कि हम मजहब का सही मतलब समझें और आखिरी साँस तक अपने उसूलों पर डटे रहें।

जावेद—और अगर तुम्हारी दुख्तर को आँच आए तो?

इलाहीबख्श—तो भी हमारा फैसला नहीं बदल सकता।

जावेद—अगर हम तुम्हारी बेटी को तुम्हारे सामने गोली मार दें तो?

इलाहीबख्श—मुझे खुशी होगी कि वह वतन के काम आई।[1]

अपनी असफलता से मेजर जावेद खीझ उठता है। उस समय उसे हुक्म मिलता है कि दस मिनट के अन्दर अखनूर पर हमला करना और हवाई अड्डे के साथ वहाँ के फौजी जमाव को नेस्तनाबूद करना। मेजर जावेद के हुक्म के मुताबिक महबूब परवीना से अखनूर पहुँचने का गुप्त रास्ता जानने की कोशिश करता है। परवीना बड़ी चातुरी से महबूब को गोली से मार देती है। तब मेजर जावेद गुप्त रास्ता जानने के लिए परवीना के सामने ही इलाहीबख्श की हत्या कर देता है। परवीना में प्रतिशोध की आग भड़कती है। वह अखनूर पहुँचने का गलत रास्ता बता देती है। परिणामस्वरूप मेजर जावेद की पूरी बटालियन हिन्दुस्तानी फौज से मारी जाती है। इस गलती का बदला लेने के लिए जावेद परवीना को गोली मारता है। घायल परवीना निर्भयता से कह देती है—"हमारे वतन की आबरू इतनी सस्ती नहीं। हम न रहें तो क्या, कश्मीर जिन्दा रहेगा, हिन्दुस्तान जिन्दा रहेगा।"[2]

भारतीय फौजों के आगमन के संकेत मिलते हैं। मेजर जावेद भागने की कोशिश करता है। रशीदा जावेद को पिस्तौल की गोली से मार देती है। घायल परवीना को देखकर रशीदा की आँखों में आँसू आ जाते हैं। परवीना रशीदा को समझाती है—"रशीदा! तू क्या समझती है कि मैं मर गई? पगली, तेरी परवीना कभी नहीं मर सकती। खुदा से दुआ कर कि हम अगले जन्म में फिर इसी पाक जमीन पर पैदा हों और अपने वतन की आबरू के लिए इसी तरह मरें।"[3] परवीना को वीरगति प्राप्त होती है।

इस प्रकार स्वाभिमानी कश्मीरी मुसलमान परिवार का देश की सुरक्षा के लिए वीरोचित संघर्ष है। वह संघर्ष समूह-समूह का संघर्ष है। इस रूप में यह राष्ट्र-राष्ट्र का संघर्ष है। इलाहीबख्श का परिवार पाकिस्तान से संघर्ष करने वाले

१ आनन्द अग्निहोत्री—वतन की आबरू—पृष्ठ ८८-८९

२ वही—पृष्ठ १२३।

३ वही—पृष्ठ १२४।

भारत का प्रतिनिधि है। इस परिवार की देश रक्षा की इच्छा अन्त तक प्रबल बनी रहती है। इसलिए यह परिवार अपने प्राणो की चिन्ता न करते हुए आक्रमणकारी पाकिस्तान से संघर्ष करता है।

नाटक के अन्त में भारतीय फौज और पाकिस्तानी फौज का संघर्ष सूचित हुआ है। यह भी सूचित हुआ है कि इस संघर्ष में भारतीय फौज की विजय हुई है।

दूसरी दृष्टि से प्रस्तुत संघर्ष परस्पर विरुद्ध विचारधाराओ का संघर्ष है। इलाहीबख्श मानते हैं कि सच्चा मुसलमान सभी के साथ इन्सानियत का बर्ताव करता है। पर पाकिस्तानी मुसलमान इसलाम के नाम पर शैतानी का बर्ताव कर रहा है। अत इलाहीबख्श और मेजर जावेद का संघर्ष वैचारिक संघर्ष है।

रामकुमार भ्रमर का 'खून की आवाज' नाटक भारत पाक संघर्ष से सम्बन्धित है। इसका आधार ह सितम्बर १९६५ में भारत और पाकिस्तान में हुआ युद्धात्मक संघर्ष। पूरे नाटक में कश्मीरी नागरिक कासिम का अपने गद्दार बेटे फारुक से संघर्ष है। कासिम की बेटी सलमा का भी गद्दार भाई फारुक से संघर्ष है। साथ ही साथ देशभक्त कश्मीरियो का पाकिस्तानी घुसपैठियो से संघर्ष है। इस संघर्ष मे देशभक्त रफीक का बलिदान होता है। पाकिस्तानी घुसपैठिया मोहम्मद गिरफतार होता है।

जब पाकिस्तानियों ने पहले पहल कश्मीर पर हमला किया था तब कासिम का बेटा फारुक पाकिस्तानियो की सहायता करता रहा। वह उन्ही के साथ ही पाकिस्तान चला गया। तबसे देशभक्त कासिम अपनी गद्दार औलाद से नफरत करने लगता है।

पाकिस्तानी मेजर मोहम्मद एक घुसपैठिये के रूप में कासिम के यहाँ, बडी चालाकी से आश्रय पाता है। वह सलमा को प्यार के जाल में फँसाने का प्रयास करता है। घुसपैठिया के षडयन्त्र को जानने तथा विफल करने के उद्देश्य से भारत सरकार के गुप्तचर विभाग का (सन्टललीजेन्स) अधिकारी उसमान कासिम के गाँव मे ठहरता है। मोहम्मद और उसमान दोनो एक दूसरे का रहस्य जानने के लिए एक दूसरे के पीछे लग जाते हैं। उसमान और सल्मा परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं।

भारत और पाकिस्तान का युद्धात्मक संघर्ष छिड जाता है। गद्दार फारुक हिन्दुस्तान आ जाता है और पिता तथा बहन को विश्वास दिलाता है कि मुझमें परिवर्तन हुआ है। लेकिन कासिम और सलमा फारुक की बात का विश्वास नही करते।

'फारुक—मैं पाकिस्तान से भाग आया हूँ। वापस अपने वतन मे। अपने खून के साथ फिर घुल मिल जाने के लिए।

सलमा—घर ? खून ? उँह । क्या घर ! क्या खून ! यहाँ न आपका अब याद घर बचा है न खून । आप जो मरते हैं। किसी बहाने को बहुत बड़ी जरूरी जाना में बजाय मैं मर जाना ज्यादा बहतर समझता हूँ । यह आइए यहीं से ।''[1]

उमरऊ फारुक सलमा को घर का प्रलोभन दिखाता है और बताता है कि खुद पाकिस्तान ने कश्मीर पर कब्जा कर लिया है । यह सुनकर सलमा व्यंग्यपूर्वक मुस्कराती हुई साफ-साफ कह देती है— 'कश्मीर तो तब मिलेगा भाई जान जब तुमसे ही कोई वास्ता न होगा और आप जानते हो कि इस मुल्क में पनाहगीर कराह रहा है । धार्मिक पहाड़ नहीं नापा करता । आप चले आइए ।'[2] इस प्रकार सलमा खून के रिश्ते का आदर धर्म के रिश्ते का बड़ा मानती है और फारुक की बात यहाँ कायम नहीं रहती ।

कासिम को मालूम होते ही फारुक के आगमन की सूचना पुलिस को देता है । हिन्दुस्तानी कासिम अपने वतन के प्रति कर्तव्य को बड़ी निष्ठा के साथ निभाता रहता है । हिन्दुस्तानी पुलिस फारुक का पीछा करती है । फारुक अपने को बचाने के लिए कासिम से विनती करने लगता है । लेकिन कासिम दृढ़तापूर्वक बताता है— मैं तुम्हें पनाह देकर गुनहगार नहीं बन सकता । मैं तुम्हें माफ नहीं कर सकता । तू अगर खून पर आता तो मैं बचा सकता था पर तू अपने वतन से गद्दारी कर । अब तुझे कोई नहीं बचा सकता । कोई नहीं ! ' मैं चाहता हूँ, तुझे मौत की सजा मिले ताकि लोगों को सबक हो कि अपना घर, अपना वतन कितना जरूरी काम है ।[3]

अपना रहस्य खुल न जाए इसलिए मासूम फारुक की हत्या करने की कोशिश करता है । मासूम भागने का प्रयास करता है । फारुक उसे पकड़ता है पर मासूम उसको गोली मार देता है । कासिम के द्वार पर फारुक की मृत्यु होती है । उसमान हिन्दुस्तानी पुलिस के साथ आता है और मासूम को गिरफ्तार कर लेता है ।

प्रस्तुत नाटक में राष्ट्र राष्ट्र के संघर्ष के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है । नाटक में भारत-पाकिस्तान का संघर्ष केवल सूचित हुआ है । प्रथम में व्यक्ति-व्यक्ति का ही संघर्ष है । लेकिन कासिम और सलमा भारत की ओर से संघर्ष करते हैं, तो फारुक पाकिस्तान की ओर लड़ता है अतः कासिम और फारुक सलमा और फारुक का संघर्ष भारत-पाकिस्तान का संघर्ष है । इस संघर्ष में कासिम

१ रामकुमार भ्रमर—खून की आवाज—पृष्ठ ५८ (प्र० सं० सन् १९६६ ई०)
२ वही—पृष्ठ ५६-५७
३ वही—पृष्ठ ६३ ।
४ वही—पृष्ठ ६४ ।

और सलमा के सत्पक्ष की जीत होती है। इस सन्दभ मे राष्ट्राभिमानी रफीक और पाकिस्तान की ओर से जासूसी करने वाले मोहम्मद का सघष भी महत्वपूण है।

भारत पाकिस्तान सघष को लेकर अन्य नाटककारो ने भी नाटक लिखे हैं लेकिन उपयु क्त नाटको की भाँति इन नाटको मे भारत पाकिस्तान के सघष का चित्रण व्यवस्थित नही हुआ है। इन नाटको मे प्रेमकश्यप सोज' कृत शहीदो की बस्ती दशरथ सिंह शास्त्रीलिखित जननी तेरी जय हो और वीरदेव वीर लिखित 'हलचल' का अन्तर्भाव किया जा सकता है।

निष्कर्ष

निष्कष रूप म यह कहना सगत लगता है कि राजनीतिक नाटको मे सघष तत्व ने अत्यधिक महत्त्व का स्थान पाया है।

(१) इन नाटकों म बाह्य सघष की ही प्रधानता है। स्वातन्त्र्य प्राप्ति और स्वातन्त्र्य रक्षा की तीव्र इच्छाओ ने प्रखर बाह्य सघष छेडा है।

(२) इन नाटको का सघष समूह समूह तथा राष्ट राष्ट का सघष है। परस्पर विरुद्ध पक्षो के सघषरत पात्र अपने अपने देश के हितषी हैं। राष्ट राष्ट्र के सघष के सन्भ मे ही व्यक्ति व्यक्ति का सघष महत्त्वपूण है।

(३) राष्ट राष्ट्र का सघष परस्पर विरुद्ध राजनीतियो का सघष है। इस सन्दम मे राजनीतिक नाटको मे परस्पर विरुद्ध विचारधाराओ का वैचारिक सघष है। 'घाटियाँ गूँजती हैं' का बचारिक सघष उल्लखनीय है।

(४) 'हत्या एक आकार की' नाटक म भी परस्पर विरुद्ध राजनीति के सन्दम मे वचारिक सघष को महत्त्व का स्थान मिला है।

(५) विवेचित राजनीतिक नाटको मे आन्तरिक सघष का अभाव है। घाटियाँ गूजती हैं' के नीकू का दो सदभावनाओ का आन्तरिक सघष मार्मिक है। नफा की एक शाम नाटक के अन्त म मातई का आन्तरिक सघष भी हृदयस्पर्शी है।

साराश यह कि राजनीतिक नाटको म सघष तत्व ने अभिन्न तथा महत्त्व पूण स्थान पाया है।

छठा अध्याय

प्रसादोत्तर सामाजिक नाटक और संघर्ष तत्त्व

अध्याय प्रवेश

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी नाटक साहित्य में सामाजिक नाटक के प्रणयन का सूत्रपात किया है। भारतेन्दु अपने परिवेश के प्रति जागरूक थे। उन्होंने अनुभव किया कि भारतीयों को समाज-सुधार तथा देशोद्धार की प्रेरणा देना अत्यावश्यक है। उन्होंने सोचा कि यह कार्य तभी हो सकता है जब लोगों को सामाजिक नाटकों के द्वारा विषम समाज जीवन से परिचित किया जाय। एक जागरूक नाटककार के रूप में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जनसाधारण के हित धार्मिक तथा पौराणिक नाटकों के बदले सामाजिक नाटकों को लिखने का निश्चय किया। इस निश्चय के अनुसार भारतेन्दु ने भारत दुर्दशा (१८८०) नाटक लिखा। इसमें भारत के प्राचीन गौरव को याद दिलाते हुए उसकी वर्तमान बुरी अवस्था बताकर भारत के उद्धार की प्रेरणा दी गई है।[1]

भारतेन्दु ने लोगों को अपने विषम समाज जीवन से परिचित कराने के लिए प्रहसनों की रचना की। इन प्रहसनों के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए डॉ० सोमनाथ गुप्त लिखते हैं— इनके लिखने का उद्देश्य मनोरंजन भी है और धर्म के नाम पर पाखण्ड का मूलोच्छेदन भी।[2] इस उद्देश्य के अनुसार भारतेन्दु ने इन प्रहसनों में व्यंग्य और वक्रता के द्वारा समाज जीवन की बुराइयाँ प्रकट की हैं। विशिष्ट शैली के कारण इन प्रहसनों के द्वारा प्रेक्षकों का मनोरंजन भी होने लगा और उन्हें समाज सुधार तथा देशोद्धार के लिए विषम समाज जीवन की बुराइयों को हटाने की प्रेरणा भी मिलने लगी। परिणामस्वरूप प्रेक्षक धार्मिक तथा पौराणिक नाटकों की अपेक्षा उन नाटकों में अधिक रुचि लेने लगे जिनमें समसामयिक समाज जीवन की विषमताओं तथा समस्याओं का चित्रण किया हुआ रहता था। प्रेक्षकों में धार्मिक तथा पौराणिक विषयों को लेकर सोचने के बदले अपने ही जीवन के विभिन्न विषयों और उनसे सम्बद्ध समस्याओं को लेकर सोचने विचारने की प्रवृत्ति जाग्रत हो गई।

---

१ डॉ० सोमनाथ गुप्त–हिन्दी नाटक साहित्य का विकास–पृ० ५१ (तृतीय सं० सन १९५१ ई०)

२ वही–पृ० ५३।

फलस्वरूप भारतेंदु के अतिरिक्त अन्य हिन्दी नाटककारों ने भी सामाजिक नाटक लिखना आरम्भ किया। प्रेक्षक भी इन नाटकों को रुचिपूर्वक देखने लगे और अपनी बुद्धि की सहायता से अपने समाज जीवन की विषमताओं तथा समस्याओं का विचार करने लगे।

'प्रसाद युग' की समाप्ति तक हिन्दी नाटककारों तथा प्रेक्षकों में बौद्धिकता की वृद्धि हो गई। फलस्वरूप हिन्दी सामाजिक नाटक अधिकाधिक यथार्थवादी रूप ग्रहण करने लगा। प्रसिद्ध नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र ने बर्नार्ड शा के समस्या नाटकों से प्रभावित होकर प्रसाद युग के अंत और प्रसादोत्तर युग के आरम्भ में छह सामाजिक नाटकों का निर्माण किया। इन नाटकों के द्वारा प्रेम और विवाह की समस्या की बौद्धिक व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया। इस प्रयत्न के कारण लक्ष्मीनारायण मिश्र के सामाजिक नाटकों के शिल्प ने भी नवीन तथा यथार्थवादी रूप धारण किया। सामाजिक नाटक के अधिक यथार्थवादी रूप ने बुद्धिवादी प्रेक्षकों को आकृष्ट कर लिया। बुद्धिवादी प्रेक्षक सामाजिक नाटक के द्वारा मनोरंजन की अपेक्षा अपने जीवन की व्यक्तिगत तथा समाजगत समस्याओं का बौद्धिक विश्लेषण अधिक चाहने लगा। प्रेक्षक की इस भूख को ध्यान में रखकर प्रसादोत्तर युग के अनेक हिन्दी नाटककारों ने व्यक्ति परिवार समाज और देश की विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण करने के हेतु अति यथार्थवादी सामाजिक नाटक के निर्माण की प्रक्रिया शुरू की। फलस्वरूप प्रसादोत्तर युग में अनेक सामाजिक नाटक रचे गये। इन नाटकों में प्रेक्षकों की बुद्धि अधिक रुचि लेने लगी। क्योंकि इन नाटकों के द्वारा प्रेक्षक की बुद्धि को सोचने विचारने की प्रेरणा मिलने लगी। प्रेक्षक की बुद्धि समस्याओं का समाधान पाने के लिए विवश होने लगी।

इस तथ्य का निर्देश करना अनावश्यक नहीं प्रतीत होता कि हिन्दी सामाजिक नाटक पाश्चात्य 'समस्या नाटक' के सदृश स्वरूप धारण करने में पर्याप्त सफल नहीं रहा है। हेनरिक इब्सेन और बर्नार्ड शा 'समस्या नाटक' के प्रवर्तक रहे हैं। दोनों नाटककार बुद्धिजीवी चिंतक और समसामयिक समाज के प्रति जागरूक थे। अतः इन्होंने समसामयिक और ज्वलंत समस्या का बौद्धिक, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। धक्का पहुँचाने के दृष्टिकोण का अवलम्ब करने के कारण इस विश्लेषण की परिणति समस्या का समाधान देने में नहीं, बल्कि परम्परागत मूल्यों का खोखलापन दिखाने और समाज के सामने कई प्रश्न चिह्नों को उपस्थित करने में होती है। उक्त नाटककारों ने धक्का पहुँचाने के दृष्टिकोण के अनुसार समस्या का बौद्धिक, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने के लिए विध्वंसक, खण्डनात्मक वाद विवादात्मक चर्चात्मक, तर्क वितर्कपूर्ण तथा हास्य व्यंग्यात्मक शैली को अपनाया है। इससे समाज की विचार शक्ति को धक्का लग जाता है। इस धक्के

से समाज की विचार शक्ति जाग्रत होकर उन प्रश्नचिह्नों पर सोचने विचारने लगती हैं जिन्हें समस्या नाटकों ने समाज के सामने उपस्थित किया है। इससे स्पष्ट होता है कि 'समस्या नाटक' का स्वरूप कितना क्रान्तिकारी होता है।

प्रसादोत्तर युग में सामसामयिक समस्याओं को लेकर लिखे गये नाटकों में से अधिकतर नाटक समस्या नाटक का क्रान्तिकारी स्वरूप धारण करने में असफल रहे हैं। इन नाटकों में समसामयिक समस्या का सामान्य विश्लेषण और साथ साथ समाधान का संकेत करने की प्रवृत्ति को महत्त्व का स्थान मिला है। समाधान का संकेत करने की प्रवृत्ति का निर्देश करते हुए डॉ० मान्धाता ओझा लिखते हैं– हिन्दी समस्या नाटक में पाश्चात्य की अपेक्षा समाधान संकेत की अधिक प्रवृत्ति पायी जाती है।"[1] इस वास्तविकता के कारण ही प्रस्तुत अध्याय में विवेच्य नाटकों को समस्या नाटक कहने की अपेक्षा सामाजिक नाटक' कहना अधिक समीचीन प्रतीत हुआ।

प्रसादोत्तर युग में भारतीय जनजीवन विकासवाद समाजवाद साम्यवाद प्रजातन्त्रवाद, भौतिकवाद मानवतावाद गाँधीवाद आदि वादों से पर्याप्त प्रभावित हुआ। परिणामस्वरूप भारत में विभिन्न वादों तथा विज्ञान मनोविज्ञान से पोषित बुद्धिवादी एवं प्रगतिवादी चिंताधारा का विकास हुआ। इस चिंताधारा ने भारतीय जनजीवन में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा अन्य प्रकार की क्रान्तियों का आरम्भ किया। इन क्रान्तियों से प्रभावित होकर हिन्दी नाटककारों ने विभिन्न विषयों को लेकर सामाजिक नाटक रचे हैं और उन विषयों पर नवीन दृष्टि से सोचने विचारने की प्रेरणा दी है। इस वास्तविकता के आधार पर विवेचना की सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गीकरण को स्वीकार किया गया है।

१ प्रेम और विवाह से सम्बद्ध सामाजिक नाटक
२ पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध सामाजिक नाटक
३ आर्थिक विषमता से सम्बद्ध सामाजिक नाटक
४ जातीय तथा साम्प्रदायिक एकता से सम्बद्ध सामाजिक नाटक
५ शासकीय अन्याय एवं त्रुटियों से सम्बद्ध सामाजिक नाटक
६ इतर विषयों से सम्बद्ध सामाजिक नाटक।

१ प्रेम और विवाह से सम्बद्ध सामाजिक नाटक और संघर्ष तत्त्व

प्रसादोत्तर युग में नयी बौद्धिक चेतना से प्रभावित हुए हिन्दी नाटककारों ने प्रेम और विवाह सम्बन्धी विभिन्न विषयों को आधार बनाकर अनेक सामाजिक नाटकों का निर्माण किया है। इन नाटकों के द्वारा व्यक्ति और समाज को नय

१ डॉ० मान्धाता ओझा–हिन्दी समस्या नाटक–पृ० ९० (प्र०सं० १९६८ ई०)

दृष्टिकोण के आधार पर प्रेम और विवाह सम्बन्धी अपनी मान्यताओं को परखने की प्रेरणा दी गयी है। इस सन्दर्भ में इन नाटकों में संघर्ष तत्त्व का महत्त्वपूर्ण स्थान दृष्टिगत होता है।

(२) मनोवांछित साथी पाने में असफलता के कारण संघर्ष

दूसरे लोग (चाहे माँ-बाप भी क्यों न हों) जब युवक अथवा युवती की इच्छा को ध्यान में न रखकर अपनी इच्छा के अनुसार उनका विवाह करते हैं तब उनमें प्राप्त जीवन से असंतोष उत्पन्न होता है। यह असंतोष उन्हें अवांछित जीवन से मुक्ति पाने के हेतु संघर्ष की प्रेरणा देता है। परिणामस्वरूप उनका जीवन संघर्षमय बन जाता है। लेकिन चरित्रगत दुर्बलता के कारण इनके द्वारा अवांछित जीवन से मुक्ति पाने के हेतु तीव्र बाह्य संघर्ष नहीं छेड़ा जाता। वे अनिर्णयात्मक मन स्थिति में उलझ कर आंतरिक संघर्ष का शिकार बन जाते हैं। इस आंतरिक संघर्ष को 'राजयोग', कद और खिलौने की खोज' में मनोवैज्ञानिक रीति से उजागर किया गया है। मिश्र कृत 'राजयोग (१९३४) नाटक में रतनपुर के राजकुमार शत्रुसूदन सिंह की पत्नी चम्पा का आंतरिक संघर्ष है। चम्पा के सामने समस्या यह है कि प्रेम और पातिव्रत्य में से किसे महत्त्व दिया जाय?

विवाह के पूर्व चम्पा रतनपुर के दीवान रघुवंश के पुत्र नरेन्द्र से प्रेम करती थी। दोनों ने विवाह करने का निश्चय किया था। लेकिन शत्रुसूदनसिंह ने चम्पा के पिता ठाकुर बिहारीसिंह पर दबाव डालकर चम्पा से विवाह कर लिया। तब से चम्पा में परस्पर विरुद्ध भावनाओं का संघर्ष चलता है।

चम्पा अपने प्रेम को नहीं त्याग देती। वह अब भी नरेन्द्र से प्रेम करती है। चम्पा को कभी लगता है, प्रेम को भुलाकर पति के प्रति पूर्ण समर्पण कर दिया जाय। परन्तु प्रयत्न करने पर भी चम्पा पति के प्रति पूर्ण समर्पण नहीं कर पाती। फलतः उसमें आंतरिक संघर्ष चलता है। वह निर्णय नहीं कर पाती कि प्रेम और पातिव्रत्य में से किसे पूर्णरूपेण स्वीकार किया जाय? इस स्थिति में चम्पा पति को तन दे सकती है पर हृदय नहीं दे पाती। इससे चम्पा और शत्रुसूदन में भी संघर्ष चलता है। शत्रुसूदन जानता है कि चम्पा हृदय से उसका साथ नहीं दे रही है। अतः वह बात बात पर चम्पा से संघर्ष करता रहता है।

शत्रुसूदनसिंह का नौकर गजराज भी आंतरिक संघर्ष से ग्रस्त है। चौबीस वर्ष पूर्व गजराज और ठाकुर बिहारीसिंह की पत्नी का अवैध सम्बन्ध था जिससे चम्पा का जन्म हुआ। गजराज का हृदय चम्पा को अपनी बेटी के रूप में अपनाने को अधीर है। लेकिन वह वैसा नहीं कर पाता। क्योंकि वह साहसपूर्वक निर्णय नहीं कर सकता।

गजराज और चम्पा का आंतरिक संघर्ष उस समय समाप्त होता है जब राजयोगी नरेन्द्र योग के बल पर गजराज के द्वारा चम्पा के जन्म का रहस्य प्रकट

करता है। आंतरिक संघर्ष से मुक्त हुई चम्पा पति के प्रति पूर्णतया समर्पण करती है। इससे पति-पत्नी का संघर्ष भी समाप्त होता है।

चम्पा और गजराज की परस्पर विरुद्ध भावनाओं तथा विचारों का आंतरिक संघर्ष सूक्ष्म और प्रभावी संघर्ष है। इस संघर्ष की समाप्ति कृत्रिम रीति से की गया है।

चम्पा और मधुसूदन का बाह्य संघर्ष स्थूल संघर्ष है। इस संघर्ष की समाप्ति स्वाभाविक प्रतीत होती है। क्योंकि आंतरिक संघर्ष से मुक्त होने पर चम्पा पति के प्रति पूर्णरूपेण समर्पण करती है। परिणामस्वरूप पति पत्नी का संघर्ष समाप्त हो जाता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क कृत कैद (१९५०) नाटक में प्रेम और विवाह की समस्या के संदर्भ में अप्पी (अपराजिता) का कारुणिक आंतरिक संघर्ष है।

अप्पी का अवांछित दाम्पत्य जीवन उसके आंतरिक संघर्ष का कारण बन गया है। माता पिता के कारण अप्पी का ब्याह उसकी इच्छा के विरुद्ध प्राणनाथ से हुआ है। वह अपने दाम्पत्य जीवन में पति के साथ समझौता करने का प्रयत्न करती है पर उसका मन साथ नहीं देता है। अप्पी का कुण्ठाग्रस्त मन रह रह कर पति से हटकर अपने प्रथम प्रेमी (दिलीप) के प्रति झुकता है। वह किसी एक निर्णय पर पहुँचने में अपने को असमर्थ अनुभव करती है। फलतः उसमें आंतरिक संघर्ष चलता है। उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन बढ़ता है। उसे अपनी गृहस्थी कैद जैसी लगती है। पति के साथ शिमला में अवसर आता है, कहीं जाने का मजा नहीं आता है और अपना पति रैंकर प्राणनाथ सयानेक किशकाश का प्रतिरूप जैसा नजर आता है। ऐसी दशा में अप्पी न गृहस्थी को ठीक तरह से सम्भाल पाती है न बच्चों का लालन ठीक तरह से कर पाती है न पति की सेवा।

दिलीप के आगमन से अप्पी में उत्साह दिखाई देता है। लेकिन दिलीप के जाते ही अप्पी के उत्साह का भी अस्त हो जाता है। फिर वह अनिर्णय की अवस्था से मुक्ति के लिए छटपटाती रहती है। अप्पी जब तक कोई निर्णय नहीं कर पाती तब तक अप्पी के आंतरिक संघर्ष का अंत नहीं हो सकता।

अप्पी की परस्पर विरुद्ध भावनाओं का आंतरिक संघर्ष सूक्ष्म संघर्ष है। अप्पी की असंगत बातों तथा क्रियाओं से आंतरिक संघर्ष की अभिव्यंजना हुई है। अप्पी निर्णय नहीं कर पाती कि अपनी गृहस्थी से सम्बद्ध भावना को प्राधान्य दिया जाय या दिलीप से सम्बद्ध प्रेम भावना को ? नाटक के अंत तक अप्पी किसी एक निर्णय पर नहीं पहुँच पाती फलतः अप्पी का आंतरिक संघर्ष नाटक के अंत तक बना हुआ है। अप्पी का आंतरिक संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है।

वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'खिलौने की खोज' नाटक में डॉ० सुमित्र और

सरूपा का क्षीण आन्तरिक संघर्ष है। नाटक का आरम्भ डॉ० सलिल के आन्तरिक संघर्ष से हुआ है। आन्तरिक संघर्ष के कारण डा० सलिल की मानसिक स्थिति असन्तुलित हुई है।

डा० सलिल और सरूपा यौन ग्रन्थि के शिकार बन गय हैं। व दोनों परस्परानुरक्त थे। व परस्पर विवाह करना चाहते थे। लेकिन सरूपा का विवाह तालगाँव क सेठ सेतुचन्द स हो जान के कारण इन दोनो की इच्छा अधूरी रह गयी। तब से बीस वर्षों तक डॉ० सलिल और सरूपा एक दूसर को भूलन की कोशिश करत हैं, पर सफलता नही पात। फलत इनम आन्तरिक संघर्ष चलता रहता है।

संयोग म बीस साल के बाद डा० सलिल की सरूपा स भेंट हो जाती है। दोनो एक दूसरे की परिस्थिति स परिचित होते हैं। अपनी अपनी परिस्थिति स समझौता करन का निर्णय लेत हैं। दोनों आन्तरिक संघर्ष स मुक्त होकर स्वस्थ बन जात हैं।

आन्तरिक संघर्ष की समाप्ति के बाद डा० सलिल तालगाँव म फल हुए घातक अन्धविश्वासों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ता है। सरूपा का पुत्र केवल सलिल का पक्ष लेता है और अपने स्वार्थ के लिए गाँव म अन्धविश्वासों का फलान वाले विमटान द स संघर्ष करता है। इस संघर्ष म सलिल के क्रान्तिकारी पक्ष की जीत होती है।

घटनाओं की भरमार के कारण प्रस्तुत नाटक में सलिल और सरूपा का आन्तरिक संघर्ष भलीभाँति नही उभर पाया है।

डॉ० सलिल और सरूपा का सूक्ष्म आन्तरिक संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। प्रस्तुत संघर्ष भावनिक संघर्ष है। एक ओर अतीत से सम्बन्धित प्रेम भावना है तो दूसरी ओर प्राप्त वर्तमान स सम्बन्धित कर्त्तव्य की भावना है। जब डा० सलिल और सरूपा एक दूसरे के वर्तमान से परिचित हो जाते हैं, दोनो भी कर्त्तव्य की भावना को प्राधान्य देने का निर्णय करते हैं और आन्तरिक संघर्ष स मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार आन्तरिक संघर्ष स मुक्त हो जाना स्वाभाविक लगता है।

डा० सलिल का घातक सामाजिक परम्परा स जो बाह्य संघर्ष है वह उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष का प्रकाशन स्थूल है।

(२) इच्छानुकूल साथी चुनने के सन्दर्भ में संघर्ष

प्रसादोत्तर युग मे शिक्षित युवतियाँ और शिक्षित युवक अधिकाधिक बुद्धिवादी तथा स्वावलम्बी बनन लग। इनके सामन चुनाव का यह समस्या उपस्थित हुई कि अपनी योग्यता के अनुकूल किस अपना जीवनसाथी बनाया जाय ? इस सन्दर्भ म किसी एक निर्णय पर पहुचने के लिए युवतियों और युवकों को संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्ष के आधार पर कुछ सामाजिक नाटकों का निर्माण किया गया है।

कारण रजना में रजना के रूप में गाम्भीर्य आ सकता है न नीलिमा के रूप में। इस संघर्ष की समाप्ति करने के हेतु डॉ० मनोहर सानगोरकर ने नीलिमा रूपी अस्वस्थ व्यक्तित्व को निकाल बाहर कर दिया है। इससे रजना एकदम स्वस्थ हो जाती है।

रजना के स्वस्थ होने तक देवराज में भी आन्तरिक संघर्ष चलता है। देवराज यह निर्णय नहीं कर पाता कि रजना का कौन सा रूप वास्तविक है। निर्णय न कर पाने के कारण देवराज की समझ में यह नहीं आता कि रजना के साथ किस प्रकार का बर्ताव किया जाय। देवराज अपना आन्तरिक संघर्ष प्रकट करते हुए महेन्द्र से कहता है— वह यह भूल जाती है कि वह मेरी [illegible] है। एक नारी का मोह जाग आता है और मैं ... तुम मेरे मन का संघर्ष समझ सकते हो। वह दूसरों के साथ हँसती खेलती और खिलखिलाती है, वह यह भूल जाती है कि शादीशुदा औरत है, मुझे भूल जाती है, मेरी समझ में नहीं आता कि उसका कौन सा सही रूप है।[5]

प्रस्तुत नाटक में रजना और देवराज का आन्तरिक संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का संघर्ष है। रजना के संघर्ष की समाप्ति सानगोरकर के द्वारा हो जाती है। इस संघर्ष में रजना के स्वस्थ व्यक्तित्व की विजय हो जाती है। रजना का संघर्ष मिटने के पश्चात देवराज का आन्तरिक संघर्ष सहज समाप्त होता है।

कृष्णकिशोर श्रीवास्तव के 'आत्मा के स्वर' (१९६२) नाटक में निहित युवक और युवती का आन्तरिक संघर्ष है। तीस वर्ष की अवस्था वाले वकील अरुण बिहारी के जीवन में सुन्दर गाथा का प्रवेश होने पर अरुण में परस्पर विरुद्ध भावनाओं-प्रेम और घृणा का आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है।

एक समय था जब अरुण अपनी सुन्दरता पर बड़ा गर्व करता था। पर अब उसे सुन्दरता से घृणा है, तिरस्कार है। इसका कारण यह है कि एक मोटर दुर्घटना से अरुण का सुन्दर चेहरा कुरूप बन गया है। तब से अरुण सुन्दरता से इतनी नफरत करता है कि सुन्दर शब्द सुनते ही उसे गुस्सा चढ़ जाता है। वह आपे से बाहर हो जाता है। उसमें आन्तरिक संघर्ष आरम्भ हो जाता है।

गाथा भी सुन्दरता से सख्त नफरत करती है। इसी सुन्दरता के कारण गाथा पर कई आपत्तियाँ आ गयी हैं। इसी सुन्दरता के कारण दुष्ट जगभूषण गाथा को पाने का प्रयत्न करता रहा है। गाथा के पति की हत्या की गयी है। अतः गाथा अपनी सुन्दरता को अभिशाप समझती है।

अरुण के जीवन में गाथा का प्रवेश होता है और अरुण में आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है। अरुण का एक मन गाथा से प्रेम करना चाहता है तो दूसरा मन सुन्दर गाथा से सख्त नफरत करता है। अतः अरुण गाथा को अपना बनाने का अथवा उससे

५ कमलेश्वर—अधूरी आवाज—पृ० ६३-६४ (प्र० सं० सन् १९६२ ई०)

अपने का दूर रखने का निर्णय नही कर पाता । लेकिन जब अरूप को पता चलता है कि सुन्दर गाथा की मानसिक स्थिति अपनी जसी ही है तो वह गाथा को अपनाने का निर्णय करता है और जगभूषण के भय से गाथा को मुक्त कर देता है ।

इस नाटक म दुष्ट जगभूषण और सत्वशील गाथा का बाह्य संघर्ष भी है। जगभूषण सुन्दर गाथा को पाने के लिए अनेक षड्यन्त्र रचता है । गाथा यथा शक्ति प्रतिकार करती रहती है । अरूप की सहायता से गाथा जगभूषण को हराती है ।

प्रस्तुत नाटक बाह्य संघर्ष के कारण नही बल्कि अरूप के आन्तरिक संघर्ष के कारण रुचिकर बन गया है । अरूप का आन्तरिक संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का है । इस संघर्ष की परिणति अत्यन्त स्वाभाविक है ।

चिरजीत कृत "घेराव" (१९६७) मे विवाह के सन्दर्भ मे हास्य विनोद को जन्म देने वाला संघर्ष है ।

"घेराव" में शान्ति और उससे विवाह करने का प्रयास करने वाले युवका म संघर्ष चलता है । शान्ति कालेज की रूपवती एवं नटखट छात्रा है । मोटर की दुर्घटना से उसके माता पिता का अन्त हुआ है । शान्ति माता पिता की लाखो की सम्पत्ति की अकेली वारिस है । अत शान्ति से विवाह करने के लिये दिलीपकुमार बद्रीनाथ, फूलचन्द, जोरावरसिंह, कवि भृंग आदि प्रयत्न करते हैं । व शान्ति का घेराव करत है । शान्ति साहस पूर्वक सभी प्रतिकार करती है । वह सभी को चकमा देकर सुरेश से विवाह कर लेती है । शान्ति का हर एक के साथ जो संघर्ष है हास्य को जन्म देता है ।

प्रस्तुत नाटक का बाह्य संघर्ष स्थूल है । श्रेणी की दृष्टि से प्रस्तुत संघर्ष सामान्य श्रेणी का है ।

(३) विवाह-विषयक विशिष्ट धारणा के सन्दर्भ मे संघर्ष

उच्च शिक्षा प्राप्त युवक और युवतिया म अति बौद्धिकता के कारण यह धारणा बनी रहती है कि वैवाहिक जीवन आनन्ददायक तथा व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास के लिए अनुकूल नही होता है । इस धारणा के फलस्वरूप युवक अथवा युवती के जीवन म संघर्ष चलता है । कुछ सामाजिक नाटको म इस संघर्ष का उद्घाटन किया गया है ।

लक्ष्मीनारायण मिश्र लिखित 'आधी रात' नाटक म विलायती शिक्षा तथा सस्कारों स स्वेराचारी बनी हुई मायावती विवाह को अनावश्यक मानती थी । लेकिन भारत लौटने पर मायावती न नारी को स्वेराचारी बनाने वाले विलायती सस्कारा का त्याग कर अपने जीवनोद्धार के लिए भारतीय सस्कारो को ग्रहण किया । वह मानती है कि स्त्रीत्व का आनन्द और विकास अपनी भिन्नता मिटा कर पुरुष म लय हो जाना है । इसी आदर्श की प्राप्ति के लिए माया प्रकाशचन्द्र से विवाह कर

आध्यात्मिक प्रयोग करने लगती है। वह शारीरिक सुख भोग और रसमय जीवन के बदले सेवा और संयम के द्वारा आत्मोन्नति कर लेती है। इस समय उसका मन कभी शारीरिक सुख की ओर तो कभी आत्मिक सुख की ओर आकर्षित होता रहता है। उसमें आंतरिक संघर्ष चलता रहता है। वह निर्णय नहीं कर पाती कि अपने वैवाहिक जीवन में शारीरिक सुख को स्थान देना उचित है अथवा अनुचित ? इस आन्तरिक संघर्ष से मुक्ति पाने तथा अपनी आत्मोन्नति को सुरक्षित रखने के लिए माया आत्मघात कर लेती है।

मायावती का आन्तरिक संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का है। यह परस्पर विरुद्ध भावनाओं का संघर्ष है। एक ओर भोग से सम्बन्धित प्रबल इच्छा है तो दूसरी ओर आत्मोन्नति से सम्बन्धित प्रबल इच्छा है। आत्मोन्नति की ओर अधिक आकृष्ट होने वाली माया अनुभव करती है कि भोगासक्ति को टालना बहुत कठिन कार्य है। अतः मायावती आन्तरिक संघर्ष से मुक्त होने के लिए आत्मघात कर लेती है। वस्तुतः माया द्वारा स्वीकृत मार्ग स्वाभाविक नहीं अपितु कृत्रिम है।

पृथ्वीनाथ शर्मा कृत साध (१९४४) नाटक में उच्च शिक्षा प्राप्त कुमुद अपनी विशिष्ट धारणा के कारण विवाह का विरोध करती है। वह विवाह के अनन्तर घर में बच्चों का होना अच्छा नहीं मानती। उसे लगता कि घर में बच्चों के होने से स्त्री का जीवन बन्धन में बंधा रहता है। अन्त में स्वच्छन्दता प्रिय कुमुद प्रो० अजीत से इस शर्त पर विवाह कर लेती है कि अपने दाम्पत्य जीवन में बच्चे नहीं होने दिए जायेंगे। इस शर्त के अनुसार प्रो० अजीत अपनी पत्नी की स्वच्छन्दता पर अंकुश नहीं रख सकता। इस सन्दर्भ में मनोविज्ञ प्रो० अजीत एक युक्ति से काम लेता है। वह अपनी बीमार बहन के चार वर्षीय मोहन नामक बालक को अपने घर ले आता है। कुमुद को मोहन बहुत पसन्द आता है। वह मोहन को लाड प्यार करती है। लेकिन (अजीत की योजनानुसार) एक दिन मोहन का पिता मोहन को ले जाता है। इससे घायल हुई कुमुद को लगता है कि मोहन अपना बेटा नहीं है इसलिए वह अपने माँ-बाप के पास चला गया। यदि उसका अपना बेटा होता तो ? इस समय कुमुद की माँ आ जाती है और कुमुद को समझाती है कि बच्चे घर की शोभा होते हैं।

अब कुमुद में परस्पर विरुद्ध इच्छाओं का संघर्ष आरम्भ होता है। कभी उसे लगता है अपने घर में अपने बच्चे होने चाहिए तो कभी लगता है, अपने बच्चे अपनी स्वच्छन्दता को छीन लेंगे। वह निर्णय नहीं कर पाती कि उसे क्या करना चाहिए। अन्त में मातृत्व की इच्छा की जीत होती है। तब कुमुद प्रोफेसर अजीत पर अपनी साध प्रकट करती है— मैं चाहती हूँ तुम्हारा एक प्रतिरूप तुम्हें भेंट करूँ।[1]

१ पृथ्वीनाथ शर्मा-साध-पृ० ६१ (द्वि० सं० सन् १९५५)

प्रस्तुत नाटक मे आरम्भ ही से कुमुद के आन्तरिक सघर्ष को प्रधानता नहीं दी गयी है। नाटक के अन्त मे कुमुद के आन्तरिक सघर्ष का चित्रण हुआ है। कुमुद का परस्पर विरुद्ध इच्छाओं का आन्तरिक सघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का है। इस सघर्ष की परिणति सुष्ट इच्छा के विजय मे हुई है। यह विजय स्वाभाविक लगती है।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'मादा कैक्टस' (१९५९) नाटक मे अति बौद्धिकता के कारण प्रेम और विवाह के सन्दर्भ मे सघर्ष है। अरविन्द जीवन मे विवाह के बदले प्रेम सम्बन्ध को महत्वपूर्ण मानता है। फाइन आर्ट्स कॉलेज का प्रिन्सिपल अरविन्द अपने दाम्पत्य जीवन में अनुभव कर रहा था कि चित्र निर्माण के लिए चित्रकार को एक प्रेरणा मिलनी चाहिए, वह पत्नी से नहीं मिल रही है। अत वह अपनी पत्नी सुजाता से सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है और चित्रकला में निपुण लेक्चरार आनन्दा से घनिष्ट मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करता है। वह आनन्दा से प्रेरणा पाकर अनोखे चित्रों का निर्माण करता है। वह आनन्दा से विवाह नहीं करना चाहता। क्योंकि वह मानता है कि कला निर्माण मे पत्नी का स्थान बाधा का है, तो सहधर्मिणी का स्थान प्रेरणा और उत्तेजना का है। इस मान्यता के कारण अरविन्द विवाह के बदले प्रेम-सम्बन्ध को अधिक पसन्द करता है।

ठीक इस मान्यता के विरुद्ध दद्दा (अरविन्द के पिता) की मान्यता है। वे जीवन में उत्कर्ष के लिए विवाह को आवश्यक मानते हैं। उनकी धारणा है कि बिना विवाह के रहना स्त्री के लिए मौत के बराबर है और बिना बच्चों के घर शोभा नहीं देता। दद्दा और आनन्दा के माता पिता की धारणा एक-सी है। आनन्दा के पिता दद्दा से मिलकर कह देते हैं कि अरविन्द को आनन्दा से विवाह कर लेने के लिए मनाइए। दद्दा अरविन्द को आनन्दा से विवाह कर लेने का आग्रह करते हैं। इस आग्रह पर दद्दा और अरविन्द मे परस्पर विरुद्ध मान्यताओं में सघर्ष छिड़ता है—

"दद्दा— डाक्टर पाण्डे बहुत परेशान हैं। आनन्दा बेटी का कुछ फैसला कर डालो।

अरविन्द—(उठकर जैसे भागते हुए) फैसला यानी विवाह ?

दद्दा— जी हाँ।

अरविन्द—आप से मैंने कई बार कहा है कि किसी स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में ब्याह से भी बड़ी कोई चीज होती है। उसके सामने ब्याह तो महज एक बच्चों का घरौंदा है और घरौंदा भी ऐसा जो बहुत पुराना हो चला है।

दद्दा— तो उस पुराने घरौंदे को मिटाकर कोई मजबूत चीज बना लो नायाब और शानदार। पर बना लो जरूर इसे मिटने न दो।

अरविन्द—मैं तो उसे बिल्कुल ही मिटाना चाहता हूँ। मैं उस रास्ते पर चलकर देख आया हूँ उसमे गति नहीं है प्रेरणा नहीं है। सबसे बड़ी चीज है आपस की अण्डरस्टैण्डिंग, सिम्पेथी। मैं फिर विवाह नहीं करना चाहता। ...

> हम और आनन्दा एक दूसरे को बड़े भाग्य से मिले हैं। हम जीवन-पर्यन्त इसी भाँति आनन्द और प्रेरणा से एक दूसरे के संग रहेंगे।[1]

परस्पर विरुद्ध दृष्टिकोणों को लेकर पिता पुत्र में जो संघर्ष छिड़ता है वह नहीं मिटता। ऐसी स्थिति में लता अरविन्द के साथ न रहने का निर्णय करते हैं।

इस नाटक में आनन्दा का करुण आन्तरिक संघर्ष है। पर इस संघर्ष का प्रत्यक्षीकरण नहीं हुआ है। केवल अन्य पात्रों के कथनों में उसे व्यंजित किया गया है।

आनन्दा अरविन्द की सहधर्मिणी बनकर अपने आपको धोखा दे रही है। उसका हृदय मातृत्व के लिए प्यासा है। लेकिन अरविन्द के बहकावे में आकर अपने जीवन में शुष्क बौद्धिकता को महत्व देने वाली आनन्दा अरविन्द से अपने हृदय की बात कहकर विवाह के लिए आग्रह नहीं कर पाती। फलतः आनन्दा में बौद्धिकता और भावुकता का संघर्ष चलता है। कुछ निर्णय न कर पाने से वह मन ही मन में घुटती रहती है। वह यक्ष्मा का शिकार बन जाती है। विवाह के विरोध में अपनी जैसी ही किसी की दुरवस्था न हो, इसलिए आनन्दा मोद सुधार का एंगेजमेन्ट मिस मान से कराती है।

शुष्क आधुनिकता के पीछे पागल हुए अरविन्द ने न सुजाता के हृदय को समझने की चेष्टा की न आनन्दा के हृदय को। परिणामस्वरूप अरविन्द को अनुभव करना पड़ता है कि अपने सिद्धान्त पराजित हो रहे हैं।

प्रस्तुत नाटक आनन्दा के आन्तरिक संघर्ष के प्रत्यक्षीकरण से अधिक मार्मिक बन जाता। लेकिन नाटककार ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया है। आनन्दा का आन्तरिक संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का है। कोई निर्णय न कर पाने के कारण आनन्दा का आन्तरिक संघर्ष नाटक के अन्त तक बना रहता है।

लता और अरविन्द का बाह्य संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष का प्रकाशन स्थूल रूप में हुआ है।

राजेन्द्रकुमार शर्मा कृत 'रेल की तकरार' में रामनाथ और गुलाबराय का संघर्ष हास्योत्पादक है। अशोक का पिता गुलाबराय रमा को देखने के लिए अशोक को रामनाथ के घर ले आता है। अशोक और रमा सम्भाव्य सम्बन्ध को तोड़ने की योजना बनाते हैं। क्योंकि दोनों भी विवाह के विरोधी हैं। इस योजना के अनुसार रमा ने पिता (रामनाथ) से झूठ ही कहा कि गुलाबराय दहेज में मोटर चाहता है। यह सुनते ही रामनाथ का गुस्सा चढ़ जाता है। रामनाथ और गुलाबराय में संघर्ष छिड़ता है। इस संघर्ष में हास्य उत्पन्न होता है। आगे चलकर अशोक और रमा के विवाह सम्बन्धी मत में परिवर्तन होता है। दोनों अपने अपने पिता की बिना अनुमति लिए विवाह कर लेते हैं।

---

1 डा० लक्ष्मीनारायण लाल—मादा कैक्टस—पृ० ४७–४८ (प्र० सं० सन् १९५९)

रामनाथ और गुलाबराय का बाह्य संघर्ष स्थूल तथा अति साधारण श्रेणी का संघर्ष है।

(४) आत्मसम्मान की रक्षा के लिए नारी का संघर्ष

नयी चेतना के फलस्वरूप आधुनिक युवतियाँ आत्मसम्मान की रक्षा के प्रति जागरूक रहने लगी। वे आत्मसम्मान की रक्षा के लिए उन घातक तथा अपमानजनक बन्धनों के विरुद्ध संघर्ष करने लगी जो धर्म समाज और संस्कृति के नाम पर उन पर लाद जाते हैं। कुछ सामाजिक नाटकों में इस संघर्ष को महत्त्व का स्थान दिया गया है।

उपेन्द्रनाथ अश्क कृत 'उड़ान" (१९५०) नाटक में माया के रूप में आधुनिक युवती का आत्मसम्मान की रक्षा के लिए स्वार्थी एवं परम्परावादी पुरुषों से क्रांतिकारी संघर्ष है।

माया अपने प्रेमी मदन से बिछुड़कर शंकर और रमेश के पास संयोग से पहुँच गयी थी। शंकर और रमेश माया को फाँसने का प्रयास अपने अपने ढंग से कर रहे थे। लेकिन माया दोनों से नफरत करती थी। शंकर स्वभाव से शिकारी है, तो रमेश कवि। मदन के आने से माया को बहुत आनन्द हुआ था। लेकिन मदन के मन में सन्देह पैदा होता है कि माया के साथ शंकर या रमेश का अनुचित सम्बन्ध रह गया होगा। अतः वह माया की रक्षा के लिए शंकर का प्रतिकार करने को तत्पर नहीं होता।

स्वयं को असुरक्षित देखकर माया मदन से बन्दूक छीन लेती है और सीना तानकर शंकर को बन्दूक चलाने के लिए ललकारती है। माया का रौद्र रूप देखकर शंकर बन्दूक चलाना भूल जाता है। माया ऐसे ही गोली चलाकर शंकर को दिखाती है कि उसका निशाना कितना अचूक है। वह दृढ़ता के साथ शंकर रमेश और मदन से कह देती है—'असहाय, अबला स्त्री मैं नहीं जिसे मदन चाहता है और जो हर समय पुरुष के सहारे की आशा बाँधे, दासी की तरह खड़ी रहती है। वह बीमार हिरनी भी मैं नहीं जिसे तुम लोग गोद में भरकर मनमानी करना चाहते हो। मैं देवी भी नहीं, जो केवल अपने आसन पर बैठी रहे। (मदन शंकर और रमेश की ओर बारी बारी देखते हुए) *तुम एक दासी खिलौना या देवी चाहते हो संगिनी को तुममें से किसी को भी जरूरत नहीं।* '[1] यों फटकारकर माया अकेली चली जाती है। उसे रोकने की हिम्मत कोई नहीं कर सकता।

नाटक के अन्त में माया के संघर्ष का प्रभावोत्पादक चित्रण हुआ है। माया का अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए जो संघर्ष है वह उच्च श्रेणी का है। इस संघर्ष का उद्घाटन स्थूल रीति से किया गया है।

1 उपेन्द्रनाथ अश्क-उड़ान-पृ० १५९ (द्वि० सं० सन १९५५ ई०)

विष्णु प्रभाकर कृत 'डाक्टर' नाटक में डा० अनीला का महत्वपूर्ण आंतरिक संघर्ष है। डा० अनीला में आत्मसम्मान की भावना से सम्बन्धित प्रतिहिंसा और कर्तव्य की भावनाओं के बीच संघर्ष चलता है।

गाँव से लौटने पर डॉ० अनीला ने देखा कि उसकी अनुपस्थिति में इंजीनियर सतीशचन्द्र शर्मा की अस्वस्थ पत्नी को उपचारार्थ अपने अस्पताल में दाखिल कर लिया गया है। इस घटना से डॉ० अनीला में आंतरिक संघर्ष छिड़ता है। वह निर्णय नहीं कर पाती कि प्रतिशोध की इच्छा को प्राधान्य दिया जाय अथवा कर्तव्य निभाने की इच्छा को। उसमें प्रतिशोध की इच्छा प्रबल बनने लगती है। इसका एक कारण है।

पन्द्रह वर्ष पूर्व डा० अनीला इंजीनियर सतीशचन्द्र शर्मा की पत्नी थी। उस समय उसका नाम मधुलक्ष्मी था। इंजीनियर शर्मा ने अफसर बनने पर कम पढ़ी लिखी मधुलक्ष्मी का त्याग दिया और अधिक पढ़ी लिखी लड़की से दूसरा विवाह कर लिया। मधुलक्ष्मी मायके आकर दादा (बड़े भाई) की सहायता से पढ़कर डॉ० बन गयी। उसने अपने अस्पताल की स्थापना कर ली। मानिनी मधुलक्ष्मी ने पति के तिरस्कार को एक चुनौती के रूप में लिया और एक सफल डाक्टर बन कर दिखाया कि पुरुष द्वारा अपमानित नारी क्या से क्या बन सकता है।

अब वर्षों के बाद मधुलक्ष्मी को अपने अपमान का प्रतिशोध लेने का उचित अवसर प्राप्त हुआ है। उसमें सतीशचन्द्र शर्मा को मानसिक यंत्रणा देने की इच्छा प्रबल बनने लगती है। वह उस मरीजा को अस्पताल से निकाल देना चाहता है। लेकिन दादा डॉ० अनीला को समझाते हैं कि बीमार का इलाज करना डाक्टर का प्रथम कर्तव्य है। प्रत्युत्तर में डॉ० अनीला अहंकार कहती है कि अपना अस्पताल बीमारों के लिए है, न कि दुश्मनों के लिए। दादा डॉ० अनीला के आंतरिक संघर्ष को देखकर अपने समझदारी से काम लेते हैं। वे डॉ० अनीला को समझाते हैं कि बीमार न दुश्मन होता है न दोस्त। बीमार बीमार है और उसका इलाज करना डाक्टर का कर्तव्य है, क्योंकि वह डाक्टर की प्रतिज्ञा है। लेकिन डा० अनीला में सुलगी हुई प्रतिशोध की आग शान्त नहीं होती। वह दादा से स्पष्ट कह देती है— "मैं उसका इलाज नहीं करूँगी। मैं उसे मार डालूँगी।"[1]

दादा डॉ० अनीला से कहते हैं कि प्रतिशोध अवश्य लिया जाय पर हत्या से नहीं, बल्कि प्रेम से, उपकार से। डा० केशव भी डॉ० अनीला को अपना कर्तव्य निभाने को कहता है। आंतरिक संघर्ष से ग्रस्त डॉ० अनीला मरीजा की उपेक्षा आरम्भ करती है। इस समय डॉ० अनीला का आंतरिक संघर्ष चरम सीमा पर पहुँच जाता है। उसके हाथ काँपने लगते हैं। उसका प्रतिहिंसा से जलता हुआ मन

1 विष्णु प्रभाकर—डाक्टर—पृ० ५२ (प्रथम सं० सन् १९६६ ई०)

बोलता है–"डॉ० अनीला । यह सुनहरा अवसर है । अपनी इच्छा पूरी करो । अपना बदला लो, नारी के अपमान का बदला लो । सुनो अनीला मैं मधुलक्ष्मी हूँ, मुझे भूलो मत । मैं ही तुम्हारी प्रगति का कारण हूँ । मैं नारी का बदला चाहती हूँ । मैं पुरुष को तडपते देखना चाहती हूँ । बह जाने दो रक्त निकल जाने दो प्राण ।"[2] लेकिन डा० अनीला का दूसरा मन कर्तव्य निभाने की प्रेरणा देता है । इससे डॉ० अनीला मे परस्पर विरुद्ध भावनाओ का सघप तीव्र बन जाता है । इस सघप म डा० अनीला की कर्त य की भावना प्रबल बनने लगती है । फलस्वरूप डॉ० अनीला प्रतिहिंसा को दबाकर आपरेशन मे सफलता पाती है । इससे डा० अनीला को विशेष आनंद मिलता है । यहाँ पर अनीला के आन्तरिक सघप की समाप्ति हो जाती है ।

डा० अनीला का सुष्ट दुष्ट भावनाओ का आन्तरिक सघप सूक्ष्म तथा श्रेष्ठ श्रेणी का सघप है । इस सघप म डॉ० के कर्तव्य से सम्बद्ध सुष्ट भावना की जीत अत्यन्त योग्य तथा स्वाभाविक जीत है । अनीला के आन्तरिक सघप का निर्वाह बहुत प्रभावशाली रीति से किया गया है । अनीला का आन्तरिक सघप क्रमश चरम सीमा पर पहुँचकर समाप्त हुआ है । परिणामस्वरूप नाटक हृदयग्राही बन पडा है ।

नाटक के आरम्भ मे मरीजा को अस्पताल मे दाखिल कर लेने के पूव दादा मे भी आन्तरिक सघप का आरम्भ हुआ था । एक ओर कर्तव्य की भावना यह थी कि मरीजा को उपचार के लिए अस्पताल मे दाखिल कर लेना योग्य है । दूसरी ओर प्रतिशोध की भावना यह थी कि शत्रु की पत्नी को अस्पताल म दाखिल न कर लिया जाय । इस सघप म कर्तव्य की भावना प्रबल बन जाती है । फलत दादा मरीजा का अस्पताल मे दाखिल कर लेन का निणय करते हैं और सघप से मुक्त हो जाते हैं । दादा का आन्तरिक सघप सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का सघप है । दादा के आदर्शवादी विचारा क अनुसार आन्तरिक सघप की समाप्ति स्वाभाविक प्रतीत होती है ।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल लिखित 'दपन नाटक म नायिका दपन के आन्तरिक सघप की प्रधानता है । रूढ़िवादी तथा अन्धविश्वासी माता पिता और धर्मियो ने दपन को विवाह स वचित कर रखा है । लेकिन युवा दपन म दाम्पत्य जीवन का भोग करने तथा अपमानजनक धार्मिक ब धन से मुक्त होने की कांक्षा प्रबल बन जाती है । इस कांक्षा की पूर्ति के लिए दपन परम्पराबद्ध मा यताओ तथा अपनी ही अनिणयात्मक मन स्थिति से सघप करती है ।

प्रस्तुत नाटक का आरम्भ होन के पूव दपन को अपमानकारक धार्मिक बन्धन स बाह्य सघप करना पडा है । एक ओर धर्म का अटूट बन्धन रहा है जो दपन को विरक्ति का जीवन जीने के लिए विवश कर रहा था । दूसरी ओर दपन की दाम्पत्य

२ विष्णु प्रभाकर–डाक्टर–पृ० १२५–१२६ (पचम स० सन १९६६ ई०

जीवन का भोग करने की प्रबल इच्छा रही है। जड़ धर्म-बन्धन से मुक्त होने के हेतु दमन संघर्ष करता रहा है।

दमन के घरवालों ने पाँच वर्ष की अवस्था में बौद्ध मठ में दान कर दिया था। युवा दमन अपना वाञ्छा के अनुकूल साम्प्रत्य जीवन का भोग नहीं कर सकती था। अतः दमन मठ के नियमों के विरुद्ध संघर्ष करती रही।

मठ वालों ने दमन को पढ़ाकर डाक्टर बनाया था। वह दार्जिलिंग में गुम्मा के बौद्ध अस्पताल में उपचार का काम करने लगी था। मठ के विघातक नियमों को देखकर युवा दमन लामा से संघर्ष करती रही। इसी संघर्ष में दमन मठ को छोड़कर चार वर्षों तक इधर-उधर भटकता रहा।

संयोगवश दमन प्रोफेसर हरिप्रेम के घर आकर रहता है। यहाँ दमन परिचय में अपना वास्तविक नाम छिपाकर पूर्वी नाम रख लेता है। परिचय में वह यह भी कह देता है कि वह दार्जिलिंग का रहने वाला है और दार्जिलिंग में उसकी छोटी सगी बहन बौद्ध मठ में भिक्षुणी के रूप में रहती है जिसका नाम है दमन। इस प्रकार दमन पूर्वी के रूप में अपना भाग्य से संघर्ष करने लगता है।

पूर्वी (दमन) और प्रो० हरिप्रेम परस्परानुरक्त होते हैं। प्रो० हरिप्रेम पूर्वी से विवाह करने का निर्णय करता है। इस निर्णय के कारण हरिप्रेम और हरिप्रेम के पिताजी में संघर्ष चलता है। इसका कारण यह है कि पिताजी पूर्वी के बारे में बिना कुछ जाने विवाह की अनुमति देने को तैयार नहीं है। इस संघर्ष को लेकर नाटक का आरम्भ होता है। पिताजी को पुत्र की जिद को मानना पड़ता है। पिता-पुत्र का संघर्ष समाप्त हो जाता है।

हरिप्रेम के निश्चय को देखकर पूर्वी को लगता है अपना करमों का साथ अब पूरा होगा। लेकिन इस आनन्द के क्षण में पूर्वी आन्तरिक संघर्ष में फँसा रहता है। उसका सन्देहग्रस्त मन अस्थिर हो उठता है। पूर्वी को लगता है, यदि भिक्षुणी रूपा दमन प्रकट हो गयी तो अपना मधुर सपना टूट जायगा। अस्थिरता में पूर्वी सोचती है जो मुझसे इतना प्रेम कर रहे हैं उनके साथ मैं कितना बड़ा धोखा कर रही हूँ। इस प्रकार के विचारों के कारण पूर्वी का आन्तरिक संघर्ष तीव्र रूप धारण करता है। वह आन्तरिक संघर्ष से मुक्ति पाने के लिए दमन का मूलन का प्रयास करता है। उसका यह प्रयास निराले ढंग का है। वह हरिप्रेम, मुडान (हरिप्रेम का छोटा भाई) और पिताजी से दमन के बारे में बातचीत करती रहता है और दमन के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं को आजमाकर कोई निर्णय करने का प्रयास करता है। इस सन्दर्भ में पूर्वी बार-बार कहता रहता है— मुझे ऐसा लगता है मानो मेरे चारों ओर वह दमन खिंचा हो, और मैं उसी में चुपचाप बैठी हूँ। [1]

---

[1] डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल—दमन—पृ० ३० (द्वि० सं० सन १९६६ ई०)

हरिपदम जिज्ञासावश पूर्वी (दपन) से पूछता है—
"हरिपदम–अच्छा, एक बात सुनो, तुममे और दर्पन मे कभी लड़ाई नहीं हुई है ?
पूर्वी–(हरिपदम से) बहुत बार हुई है। मैं उससे इतनी दूर चली आई हूँ तब भी
मुझे लगता है कि अब भी उससे लड रही हूँ।"[1]

इससे दर्शित होता है कि दपन बराबर और बरबस पूर्वी का पीछा कर रही है। वह पूर्वी का पीछा नही छोड रही है। फिर भी पूर्वी विवाह के बन्धन मे बँधना स्वीकार करती है।

अपने सम्भाव्य विवाह मे किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो जाय, इसलिए पूर्वी अपने पूर्वायुष्य का परिचय देने वाले कागजो और चित्रो को फाडती और जलाती हुई अपने ही दर्पनरूपी रूप से कहती है—'मेरा पीछा करने वाली तू नही जानती, मैं क्या हूँ। मैं सोचती थी तू खत्म हो गयी है पर तू इस कदर मेरे पीछे लगी है। अपराधी निर्मम हत्यारी। तुझे अब जिन्दा नही रहने दूँगी। तेरे दपण का एक एक टुकडा मैं पीसकर रख दूँगी। मैं हूँ नियता अपने इस जीवन की। तेरा यह जड अस्तित्व मैं अब नही रहने दूँगी।'[2] पूर्वी अपनी आकाक्षा के अनुसार जीने के लिए दपन रूपी दुर्भाग्य से तथा (बलात् लादी हुई) विरक्ति से भरसक सघर्ष कर रही है। पर उसकी सन्देहात्मक दुर्बलता उसे सामर्थ्य नही प्रदान करती।

जसे जसे विवाह का दिन समीप आता है, पूर्वी का आन्तरिक सघर्ष बढ़ता रहता है। विवाह आठ दिन पर आता है। रिहर्सल के रूप में हरिपदम की बहन ममता और भाई सुजान पूर्वी को दुल्हन के शृगार से सजाते हैं। इस शृगार मे जीवनासक्त पूर्वी चाहती है कि उसका विवाह इसी क्षण सम्पन्न हो जाय–'जी करता है कि जयमाला की वह घडी इस क्षण जी लूँ।'[3] क्योंकि बाद म कहीं भिक्षुणी दपन ने बाधा उत्पन्न कर दी तो ? ममता तथा सुजान के आग्रह करने पर भी शृगारित दपन आयने मे अपना रूप देखना नही चाहती। ज्योंही वह आयने में देखने लगती है आयना हाथ से गिरता है और उसके कई टुकड होकर बिखर जाते हैं। इस घटना से पूर्वी का आन्तरिक सघर्ष चरम सीमा पर पहुच जाता है।

उसी दिन बौद्ध मठ का एक आदमी वहाँ पहुँच जाता है। उस आदमी की बातो से हरिपदम सुजान पिताजी और ममता को पता चलता है कि पूर्वी और दपन दोनो अलग-अलग युवतियां नहीं हैं बल्कि एक ही युवती के दो नाम हैं। इस रहस्य के प्रकट होने पर पूर्वी विवश होकर दपन रूपी भिक्षुणी का वेष धारण करती है और दार्जिलिंग के बौद्ध मठ से आये आदमी के साथ जाने को

१ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल–दपन–पृ० ४७–४८ (द्वि० स० सन १९६६ ई०)
२ वही, पृ० ५९।
३ वही, पृ० ६५।

तैयार होती है।

दमन (पूर्वी) का आन्तरिक संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का है। इस संघर्ष का प्रभावकारी निर्वाह किया गया है। परन्तु प्रस्तुत संघर्ष की समाप्ति जिस ढंग से की गया है वह ढंग स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता।

२ पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध सामाजिक नाटक और संघर्ष तत्त्व

मनुष्य के जीवन में पारिवारिक जीवन का स्थान अधिक महत्त्व का होता है। पारिवारिक जीवन मनुष्य के सद्भावों सद्विचारों और सद्व्यवहारों का कसौटी होता है। पारिवारिक जीवन में प्रत्येक को आत्मीयतापूर्ण समझौता करना पड़ता है। प्रत्येक को अपने लिए तथा दूसरे के लिए जीना अत्यावश्यक होता है। प्रत्येक को दूसरे के हित के लिए त्याग करना पड़ता है कष्ट उठाना पड़ता है। प्रत्येक को दूसरे के प्रति सहनशीलता बरतना पड़ता है। प्रत्येक को दूसरे के लिए जीने में संताप का अनुभव करना पड़ता है। अन्ततः समझौतों से स्वयं को तथा दूसरे को सँभालते हुए चलना पड़ता है। आदर्श पारिवारिक जीवन आदर्श समाज का निर्माण करने में बहुत बड़ा सहयोग देता है।

जब किसी कारण को लेकर परिवार के सदस्य एक-दूसरे से आत्मीयतापूर्ण समझौता करने को तैयार नहीं होते हैं, तब उनमें संघर्ष चलता है। प्रस्तुत संघर्ष पति-पत्नी पिता पुत्र भाई बहन आदि स्वजनों में चलता है। प्रस्तुत संघर्ष परिवर्तित जीवन मूल्यों के कारण भी चलता है।

प्रसादोत्तर युग में भारत देश के जीवन क्षेत्रों में आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक धार्मिक, राजनीतिक नैतिक, वैज्ञानिक तथा अन्य अनेक क्रांतिकारक परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के आघातों से परिवार का विघटन हो रहा है। आत्मीयतापूर्ण समझौते के नष्ट होने के फलस्वरूप पारिवारिक जीवन टूट रहा है विघटित हो रहा है।

पारिवारिक जीवन में आत्मीयतापूर्ण समझौते का स्थान बौद्धिक सहानुभूति ने लिया है। बौद्धिक जागृति के कारण प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के हित-अहित को लेकर अधिक सोचने विचारने लगा है। प्रत्येक व्यक्ति बौद्धिक दृष्टिकोण से माँ-बाप पिता पुत्र, पति-पत्नी आदि रिश्तों की व्याख्या करते हुए स्वयं के हित पर अत्यधिक बल देने लगा है। व्यक्ति स्वयं के हित तथा स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए सम्बन्ध विच्छेद को प्राधान्य देने लगा है। परिणामस्वरूप पारिवारिक जीवन में अनेक समस्याएँ उत्पन्न होने लगी हैं। इन समस्याओं के कारण परिवार का विघटन अपरिहार्य होने लगा है। इस संकट से बचने तथा पारिवारिक जीवन को अधिकाधिक सुखदायक बनाने की प्रेरणा देने के हेतु प्रसादोत्तर हिन्दी नाटककारों ने पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध नाटकों का सृजन किया है।

१ पति पत्नी का संघर्ष

अनेक कारणों से दाम्पत्य जीवन विषम, असंतुलित एवं कष्टदायक बन जाता है। विशिष्ट परिस्थिति अथवा विशिष्ट कांक्षा के कारण पति या पत्नी अथवा दोनों भी अपने वैवाहिक जीवन में सन्तोष नहीं पाते। इस असन्तोष की परिणति पति पत्नी के बीच संघर्ष चलने में होती है। इस संघर्ष की आधारशिला पर अनेक नाटकों का निर्माण किया गया है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में लिखे गये नाटकों में पति पत्नी का तीव्र संघर्ष है, जिससे पारिवारिक जीवन का अत्यधिक विघटन हो रहा है। स्वातन्त्र्य के अनन्तर उच्च शिक्षा प्राप्त नारी ने अपने जीवन में बौद्धिकता, स्वतन्त्रता, आत्म निर्भरता तथा महत्वाकांक्षा पूर्ति को अधिक महत्व दिया। उसमें समानाधिकार की कांक्षा बलवती होने के कारण वह जीवन की हर एक बात की व्याख्या स्वयं के नये दृष्टिकोण के अनुसार करने लगी। उसमें विवाह तथा दाम्पत्य जीवन से सम्बन्धित परम्परावद्ध आदर्शों एवं श्रद्धाओं के प्रति अनास्था तथा विद्रोह की भावना जाग्रत हो गयी। वह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्षशील हो गयी। वह आर्थिक, स्वावलम्बन के लिए धनार्जन की कोशिश करने लगी। परिणामस्वरूप पति-पत्नी के बीच तीव्र संघर्ष चलने लगा।

इन नाटकों में बाह्य संघर्ष के साथ साथ पति अथवा पत्नी से सम्बद्ध आन्तरिक संघर्ष भी है।

अ आदर्श विरुद्ध धनलोभ [ऐश्वर्य लोभ] के कारण संघर्ष

पति पत्नी की आदर्शवाद और धनलोभ से सम्बन्धित परस्पर विरुद्ध विचार धाराओं तथा क्रियाओं के कारण पति पत्नी में संघर्ष चलता है। इस संघर्ष को लेकर प्रसादोत्तर हिंदी नाटककारों ने कुछ सामाजिक नाटक रचे हैं।

अ १ पति का धनलोभ विरुद्ध पत्नी का आदर्शवाद

धनलोभी पति पत्नी की आदर्शवादी बातों की उपेक्षा करके धन प्राप्ति के लिए जो चाह करता रहता है। परिणामस्वरूप पति पत्नी में संघर्ष चलता है। जब तक पति की प्रवृत्ति में परिवर्तन नहीं हो पाता तब तक प्रस्तुत संघर्ष चलता रहता है। इस संघर्ष के सन्दर्भ में निम्नलिखित नाटक दृष्टव्य हैं।

डॉ० गोविन्ददास रचित दुःख क्यों (१९४६) नाटक में नेतागीरी और धन प्राप्ति के पीछे पागल हुए यशपाल और उसकी निस्वार्थ वृत्ति की पत्नी सुखदा का परस्पर विरुद्ध विचारों का संघर्ष है। यशपाल वकालत छोड़कर देश सेवा का स्वांग रचता है और धोखेबाज नेता बनकर स्वार्थ साधने लगता है। वह कौंसिल के चुनाव में उस ब्रह्मदत्त को नीचा दिखाने का प्रयत्न करता है, जिसकी सहायता

म यशपाल न ववाल्त म कुछ सफलता पायी है। यह बात यशपाल की पत्नी को अखरती है। वह ब्रह्मदत्त का पक्ष लेकर यशपाल का विरोध करने लगता है। फलत पति पत्नी म अमिट संघर्ष छिड़ता है। सुलना पति की दुष्ट चालों का डटकर सामना करती है। नाटक क अंत तक सुलना और यशपाल का संघर्ष बना रहता है। प्रस्तुत संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का वचारिक संघर्ष है।

क शवनलाल वमा कृत "मंगल सूत्र' (१९८७) नाटक म धनलोभी पति और नारी स्वातन्त्र्य का चाहन वाली पत्नी का संघर्ष है। पाँच हजार रुपया दहेज लेकर पीतामबर न अपन पुत्र क न्दनलाल स पढ़ी लिखी अलका का विवाह कराया है। कुन्दनलाल ससुर स और धन पान क लोभ स अलका का मार-पीट करता है।

कुन्दन— याद रखना तुम मेरी ब्याहता हो। मेरा अधिकार तुम पर है।

अलका—मेरे बाप क पाँच हजार रुपया क साथ आपका ब्याह हुआ है मर साथ नहीं। मर बाप न अपनी गाढ़ी कमाई क पाँच हजार रुपय भी फेंके और मुझको चूल्हे म झोंक दिया।

कुन्दन— बक ही जायगा मटयारियों की तरह।

अलका—खबरदार जो मुँह स अपनाद निकाला। प्राण दे दूंगी। (मुट्ठी तानकर खड़ी हो जाती है। कुन्दनलाल डरा सम्हालता है।) लम्बू। यह भी देखूँ। करो हिम्मत, दखू कसे हिम्मत करते हो?

कुन्दन— देखो मेरी हिम्मत![1]

(कुन्दनलाल अलका को छड़ी स पीटता है।)[1]

यहीं स व्यापक संघर्ष का आरम्भ होता है। अलका का पिता राहुल समाज सुधारक वृद्धाम्ब, युवक हारीलाल गोपीनाथ और अलका की सहपाठिनी कांता—सब मिलकर अलका को भगाते हैं। अलका को अत्याचारी पति स मुक्त करन क लिए नारी-स्वातन्त्र्य का आन्दोलन शुरू करते हैं। प्रचलित विवाह पद्धति तथा दहेज प्रथा का विरोध करते हैं। अलका का दूसरा विवाह की प्रेरणा देते हैं। इसस उत्तेजित होकर अलका स्वच्छापूर्वक गोपीनाथ स दूसरा ब्याह कर लेती है।

प्रस्तुत नाटक का बाह्य संघर्ष अति स्थूल तथा साधारण श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष क निर्वाह म कलात्मक कौशल्य का अभाव रहा है। अतः इस संघर्ष की समाप्ति कृत्रिम है।

रातरानी नाटक म डा० लक्ष्मीनारायण लाल न परिस्थिति विशेष क सन्दर्भ में आत्मदानी पत्नी और धनलोभी तथा व्यसनी पति का संघर्ष दिखाया है।

नाटक क आरम्भ में ही पति-पत्नी का संघर्ष है। जयदेव प्रेम का मालिक है। वह व्यसनी आत्मा क साथ व्यसनों में समय तथा पैसा बरबाद कर रहा है।

---

१ क शवनलाल वमा—मंगलसूत्र—प० ३२ (चतुर्थ स० सन १९६५ ई०)

अपने व्यवसाय पर उसका ध्यान नहीं है । अत प्रेस के मजदूरा को समय पर वेतन नही मिलता । कोई वेतन की माँग करता है, तो जयदेव के अन्याय का शिकार बन जाता है । इस अन्याय का प्रतिकार करने के लिए मजदूरो ने प्रेस म स्ट्राइक की है। जयदव को इस बात की चिन्ता नहा है । लेकिन पतिपरायण पत्नी कुन्तल को इस बात की चिन्ता है । वह मजदूरो स अन्याय का व्यवहार करना अनुचित मानती है । इस स्थिति को लेकर नाटक के आरम्भ में—पति पत्नी का सघर्ष है ।

[1]जयदेव—मेरा रातरानी । प्रेस म आज फिर स्ट्राइक है ।

कुन्तल—स्ट्राइक है ? तब तो प्रेस म तुम्हारा रहना और आवश्यक है ।

जयदेव—क्यो ? स्ट्राइक के सम्मान म प्रेस म बठा रहूँ, ताकि सडक पर प्रेस कमचारियो के गन्दे गन्दे नारे सुनूँ ? क्यो यही चाहती हो क्या ? (रुक कर) और यह स्ट्राइक तो चलेगी ही अभी ।

कुन्तल—क्यो चलेगी ?

जयदेव—प्रेस कमचारिया को मेरे इस घर की लक्ष्मी की सहानुभूति जो प्राप्त है।

कुन्तल—ओहो यह बात । उस दिन कमचारियो के बच्चे यहाँ सुबह ही सुबह आये । मुझे "माताजी माताजी माँ मा कहकर पुकारने लगे । किसी के तन पर न ठीक स कोई कपडा था न किसी का पिछले चार दिना स पेट भरा था । सब नगे और भूखे । क्या करती मैं ?

जयदेव—हाँ हाँ माँ और क्या करती । किसी बच्चे को कपडा किसी को रुपया, किसी को बगीचे का पेटभर फल और किसी को

कुन्तल—हाँ और किसी को ?

जयदेव—इतना कम क्या ! एक को माँ का प्यार मिला । और उससे उसके बाप दादो को शक्ति मिली—स्ट्राइक जिन्दाबाद !

कुन्तल—तो प्रस मे स्ट्राइक मेरे कारण से चल रही है ?

जयदेव—अच्छा अच्छा बात खतम बाबा ।"[1]

धनलोभी एव व्यसनी जयदेव कुन्तल को भी उपयोगिता की दृष्टि स देखता है । वस्तुत घर की आर्थिक दुदशा का वास्तविक कारण अविवकी जयदेव है । लेकिन वह घर की आर्थिक ददशा सुधारने क लिए कुन्तल को नौकरी करने को विवश कर देता है ।

जयदेव का कहना है—'आज स्त्री को पत्नी और लक्ष्मी दोनो एक साथ होना है ।'[2] वह पत्नी म दो रूप चाहता है—'आज हर स्त्री पुरुष को अपने दो व्यक्तित्त्व रखने पडेंगे । मैं कुन्तल को बेहद प्यार करता हू । पर मैं कुन्तल का समान

१ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल–रातरानी–प० २४ (त० स० सन १९६६ ई०)
२ वही, पृ० २६

रूप से उपयोगी भी देखना चाहता हूँ—यह मेरा उसका बाहर का व्यक्तित्व होना चाहिए।'[1] उत्तर में कुन्तल कहती है— मेरे पास सिर्फ एक व्यक्तित्व है।'[2] वह बाहर वाला व्यक्तित्व नहीं चाहती। फलस्वरूप पति-पत्नी का संघर्ष तीव्र बनने लगता है। इस संघर्ष के दुष्परिणाम से गृहस्थी को सुरक्षित रखने के विचार से कुन्तल नौकरी करती है।

जयन्त कुन्तल को आधुनिक बनने का आग्रह करता है। कुन्तल अपना विरोध प्रकट करता हुए कहती है— तुम्हें मैं देखती हूँ आज का सारा आधुनिक समाज केवल शरीर के स्तर पर जी रहा है। इसी का फल है आज समाज में इतना आडम्बर, अविश्वास और हृदयहीनता।'[3] लेकिन यह सब जयन्त की समझ में नहीं आता। तब कुन्तल बातें बनाने वाले जयन्त से पूछती है— मुझे भी अपने होटल में क्यों नहीं ले चलते? मुझे भी वही ताश खेलना क्यों नहीं सिखा देते?'[4] इस प्रश्न का उत्तर जयन्त नहीं दे पाता। क्योंकि वह केवल प्रयोजन के लिए पत्नी का बाहरवाला व्यक्तित्व चाहता है न कि अपने समान होटलों में गुलछर्रे उड़ाने के लिए।

कुन्तल को जब पता चलता है कि उस निरंजन (जिससे कुन्तल का विवाह होने वाला था, पर दहेज के कारण नहीं हो सका था) के प्रयास से नौकरी मिल गयी है, तो मानो कुन्तल अपनी नौकरी से त्याग पत्र देती है। इस त्याग-पत्र को लेकर जयदेव कुन्तल से संघर्ष छेड़ता है। धीरे धीरे जयदेव और कुन्तल का संघर्ष तीव्र बन जाता है।

लेकिन एक दिन जयन्त का अपने दुराचारी दोस्तों से झगड़ा होता है। इस झगड़े से जयदेव की आँखें खुल जाती हैं। वह कुन्तल को बताता है कि उसने बैंक में रखा हुआ सारा पैसा बर्बाद कर दिया है। इससे कुन्तल को दुःख नहीं होता, बल्कि पति में उचित परिवर्तन को देखकर वह फूली न समाती। वह बड़े उत्साह, साहस और विश्वास से उन मजदूरों के सामने चला जाता है जो जयन्त को मारने के इरादे से इधर आये हैं। किसी के द्वारा फेंके गये पत्थर से कुन्तल घायल हो जाता है। परन्तु असीम संताप से वह क्रुद्ध मजदूरों को शान्त कर देता है और उनकी माँगों की पूर्ति का आश्वासन देता है।

यहाँ पर दोनों ओर का संघर्ष चरमसीमा पर पहुँचकर समाप्त होता है।

बीच बीच में प्रसंग विशेष के संदर्भ में कुन्तल में आन्तरिक संघर्ष चलता

---

१ डा० लक्ष्मीनारायण लाल–रातरानी–पृ० ४६ (तृ० सं० १९६६ ई०)

२ वही, पृ० ४६

३ वही, पृ० ५९

४ वही, पृ० ८१

रहा है। जब जयदेव नौकरी के लिए कुतल को विवश कर देता है तब कुतल में आतरिक सघष छिडता है। वह निणय नही कर पाती कि ऐसे निमम पति के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाय ’ कभी लगता है पति की बात नही माननी चाहिए, तो कभी लगता है सभा य दुष्परिणामो को टालने के लिए नौकरी करनी चाहिए। इस प्रकार पति की विवेकहानता और निममता कुतल में आतरिक सघष के छेडने का कारण बनती है। लेकिन वह किसी भी हालत मे मर्यादा का उल्लघन नही करती।

कुतल का बाह्य सघष स्थूल है और आतरिक सघष सूक्ष्म है। दोनों सघष उच्च श्रेणी के हैं। दोनो सघर्षो मे कुतल के सदविचारो की जीत हुई है। इन सघर्षो का निवाह प्रभावक्षम रीति से किया गया है। दोना सघर्षो की समाप्ति स्वाभाविक तथा प्रभावोत्पादक है।

राजेद्रकुमार शर्मा कृत ‘अपनी कमाई’ (१९६९) नाटक म रिश्वत की समस्या के सदभ म आदशवादी पति और धनलोभी पत्नी का अत्यत क्षीण सघष है। एक अफसर के नाते वर्मा को रिश्वत लेकर दूसरा का काम करने म बुरा नही लगता। लेकिन वमा की पत्नी रमा रिश्वत स घृणा करती है। वह अपनी कमाई पर विश्वास करती है। अत वर्मा और रमा मे परस्पर विरुद्ध विचारो का सघष चलता है। इकलौते बच्चे की बीमारी से वर्मा के विचारो में परिवतन हो जाता है। पति पत्नी का सघष मिट जाता है।

प्रस्तुत नाटक म सघष का निर्वाह व्यवस्थित नही हो पाया है। प्रस्तुत नाटक म उपयुक्त सघष के बदले अय बातो को ही महत्त्व का स्थान दिया गया है। अत नाटक अपेक्षित प्रभाव करने म सफल नहीं हुआ है।

अ २ पति आदशवाद विरुद्ध पत्नी का धनलोभ

आदशवादी पति जीवन म आदश आचरण को जितना महत्त्व दता है, उतना और किसी बात को नही दता है। इसे पत्नी की धनलोलुपता और स्वाथ परायणता अखरती है। परिणामस्वरूप पति पत्नी में सघष चलता है।

‘महत्त्व किसे’ (१९४७) नाटक म डा० गोविन्ददास न आदशवादी कमचन्द और धनलोभी सत्यभामा (पति पत्नी) का वचारिक सघष दिखाया है। कमचन्द जीवन में निधनता तथा सवाभाव को महत्त्व दता है। ठीक इसके विरुद्ध सत्यभामा सम्पन्नता और स्वाथ को महत्त्व दती है। परस्पर के विरुद्ध विचारों के कारण पति पत्नी म वचारिक सघष चलता है। दोनो अपन अपन रास्ते पर अग्रसर होते हैं।

प्रस्तुत सघष सूक्ष्म तथा उच्च श्रणी का वचारिक सघष है।

रेवतीसरन शमा कृत चिराग की लौ (१९६२) नाटक में रिश्वत और भ्रष्टाचार की समस्या के सदभ म आदशवादी किशोर और धनलोभी तारा का

तीव्र संघर्ष है। यह संघर्ष व्यक्ति व्यक्ति का संघर्ष तो है ही, साथ साथ प्रतिनिधिक दृष्टि से यह संघर्ष व्यक्ति का समाज में फैले हुए घातक भ्रष्टाचार से संघर्ष है।

किशोर नवयुवक इनकमटैक्स इन्सपेक्टर है। रूपपति की बेटी तारा ने प्रेम में किशोर से विवाह किया है। प्रथम तो नहीं, आगे चलकर तारा किशोर की साधारण स्थिति से ऊबती है। तारा में वैभव पाने की इच्छा जग उठती है। वह पति के पद से लाभ उठाकर रिश्वत लेना चाहती है। रिश्वत के ल कर वैभव पाने का सपना देखती है। यह सपना ही किशोर और तारा में संघर्ष छेड़ता है। जीवन सम्बन्धी तथा अपने कार्य-सम्बन्धी किशोर के अपने विचार हैं। वह रिश्वत लेना नहीं चाहता। वह समाज तथा देश के लिए अपना सरकारी काम ईमानदारी से करना चाहता है। अतः उसे पत्नी का दृष्टिकोण अच्छा नहीं लगता। परिणामस्वरूप जीवन-सम्बन्धी परस्पर विरुद्ध सिद्धान्तों में संघर्ष छिड़ता है।

सेठ मागीलाल विलासीराम रिश्वत के रूप में देने के लिए बहुत सी चीजें लेकर किशोर के घर आता है। किशोर धमकाकर मागीलाल को उन चीजों के साथ भगाता है। तारा को यह अच्छा नहीं लगता वह गुस्से में आकर पूछती है—

तारा— यह कौन था?

किशोर—बेईमान रिश्वत देनेवाला।

तारा— साफ़ा काग़ज और रेडियो।

किशोर—(जोर से) हाँ। लकड़ी ऊन और प्लास्टिक से ईमान खरीदने आया था।

तारा— (क्रोध से घृणा से) ईमान ईमान—मेरे तो कान पक गये हैं।

किशोर—(चौंककर) क्या?

तारा— मेरे कान पक गए हैं।

किशोर—मेरे ईमान को सुनकर?

तारा— हाँ तुम्हारे ईमान को तुम्हारे आदर्शों को तुम्हारे सत्यासाधन को। सुन सुनकर—जिसने मुझे दुनिया की हर चीज से वंचित कर दिया है।[1]

यह संघर्ष क्रमशः उग्र बन जाता है। तारा रानी के बहकाव में आकर अपना अपमान कर लेती है। रानी जो तारा की पुरानी सहेली है अब मिल मालिक जयन्त की रंगीन पत्नी बन गई है। जयन्त अपना वास्तविक स्वरूप छिपाता है और इनकमटैक्स जितना भरना चाहिए उतना नहीं भर देता है। इस बात को छिपाकर रखने के लिए वह किशोर को रिश्वत देने की कोशिश करता है। लेकिन आदर्शवादी ईमानदार किशोर रिश्वत को ठुकराता है। तब अपना काम बनाने के लिए जयन्त रानी से तारा को फँसाता है। इस वक्त तथा रिश्वत के पाठ पढ़ा तारा बुरी तरह

1 स्वर्गीमरत प्रभा—चिराग की लौ—पृ० २० (प्र० सं० सन १९६२ ई०)

फस जाती है। जब कभी किशोर तारा को सचेत करता है तारा किशोर पर व्यंग्य बाण चलाती है और संघर्ष छेड़ती है। वह किशोर से स्पष्ट कह देती है कि मुझे तुम्हारे आदर्श नही चाहिए। बल्कि आराम और ऐश्वर्य से भरा हुआ रंगीला जीवन चाहिए।

जो रिश्वत दे देकर धनवानो का काम अफसरों से कराता है और धनवानो से अपना कमीशन लेता है, उस गिरीश के चक्कर में तारा उलझती है। किशोर ने जब्त की जो अनेक फाइलें जांच कर रखी थी उनमे से अत्यधिक महत्व की फाइल तारा के द्वारा पाने में गिरीश सफल होता है। गिरीश बदले में तारा को चाँदी के चंद टुकड़े देता है। यह घटना किशोर के अभिमानी, ईमानदार मन पर भारी आघात करती है। किशोर को अपने इर्द गिर्द अंधेरा ही अंधेरा दिखाई देता है। पति-पत्नी का संघर्ष चरम सीमा पर पहुँच जाता है।

किशोर इस स्थान से दूर कहीं तबादला कर लेने का और माता के पतन की छाया से सुरक्षित रखने के लिए बेबी को भी अपने साथ ले जाने का निश्चय करता है। उस निश्चय को देखकर तारा के पैर उखड़ने लगते हैं। क्योंकि जिस पद के आधार पर वह जो कुछ कर रही थी वही दूर चला गया तो बाजार में इसे कौन पूछेगा। ऐसा न हो, इसलिए तारा किशोर के साथ ही रहना चाहती है। लेकिन किशोर इस पाप को अपने साथ नहीं ले जा सकता। वह तारा को साफ-साफ बता देता है—

किशोर—(कटुता विषाद और वेदना से) अपने सपनों का पूरा करके मेरे ख्यालों का खून करके, मुझ मेरे ईमान और आदर्श से महरूम करके तुम आज मुझे सहारा देने आई हो ? (उसे कन्धों से पकड़ कर) दूर हो जाओ मेरी नजरों से (नीचे गिरा देता है।) अपने गर्तों से मिल गये। गर अंधेरो से मिल गए—(पूर्ण निश्चय और आत्मविश्वास के साथ) लेकिन मैं हारूंगा नही, क्योंकि मैं मैं नहीं हूं (अपने हाथ कुल्हों पर रख लेता है और ऊपर की ओर देखते हुए चिराग की लौ की तरह तनकर) अंधेरे के सीने को दागती हुई चिराग की लौ हूं। [1]

पति पत्नी का संघर्ष चरम सीमा पर पहुँचने पर नाटक समाप्त होता है। तारा और किशोर का संघर्ष तीव्र बनने पर नाटक में तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है। संघर्ष के उचित निर्वाह के कारण नाटक प्रभावकारी बन पड़ा है। प्रस्तुत संघर्ष श्रेष्ठ श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष की परिणति किशोर के निर्णय द्वारा होती है। किशोर का वह निर्णय अत्यन्त स्वाभाविक लगता है।

१ रेवती सरन शर्मा—चिराग की लौ—पृ० ८५–८६ (प्र० सं० सन १९६२ ई०)

आ आदर्शवाद विरुद्ध (मिथ्या) प्रतिष्ठा-लाभ या पदलाभ के कारण संघर्ष

पत्नी पति के आदर्शवाद को उपेक्षा करके अनुचित मार्ग से समाज में (झूठी) प्रतिष्ठा पाने का प्रयत्न करती है तब पति-पत्नी में संघर्ष चलता है। प्रस्तुत संघर्ष तब तक चलता है जब तक पत्नी की मिथ्या धारणा में परिवर्तन नहीं हो पाता है। इस संघर्ष के सन्दर्भ में कृष्णकिशोर श्रीवास्तव का 'रास्ते मोड़ और पगडण्डी' (१९५९) नाटक उल्लेखनीय है। इस नाटक में आदर्शवादी अमर और (मिथ्या) प्रतिष्ठा-कामी सरिता का संघर्ष है।

अमर की पत्नी सरिता समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए महारोग ग्रस्त ससुर (मुरारीलाल) को दूर रखना चाहती है। इससे पति पत्नी में संघर्ष छिड़ता है। अमर को सामाजिक प्रतिष्ठा की उतनी चिन्ता नहीं है जितनी अपने पिता की।

वस्तुतः मुरारीलाल सरिता से अमर का विवाह नहीं चाहता था। लेकिन अमर की जिद को देखकर मुरारीलाल ने अपनी सारी इच्छाएँ दबाकर इस विवाह के लिए अनुमति दी। उन दोनों का विवाह सम्पन्न होते ही मुरारीलाल अपने गाँव चला गया था। पूरे एक वरस के बाद—अमर की शादी की पहली सालगिरह के अवसर पर—मुरारीलाल आ जाता है तब उसकी ममता खींच लाई है। पर महारोगी मुरारीलाल का आगमन सरिता को अखरता है। वह उसके साथ घृणा का व्यवहार करती है। मुरारीलाल को गाँव लौटाने के लिए अमर पर दबाव डालने का प्रयास करती है। अमर सरिता की निर्ममता देखकर क्रुद्ध हो जाता है। पति पत्नी का संघर्ष उग्र रूप धारण करता है।

विवाह की प्रथम सालगिरह मनाने के लिए सरिता ने पार्टी का प्रबन्ध किया है। सरिता ने कामदेव चन्द (जो विवाह के पूर्व उसका मित्र था) को खास निमंत्रित किया है। अतः वह कामदेवचन्द की उपस्थिति में ससुर की उपस्थिति नहीं चाहती है। यह रहस्य ज्ञात होते ही अमर क्रोध में आता है और घर जाने के लिए तत्पर पिता को रोकता है।

'अमर— (कड़े स्वर में) आप नहीं जायेंगे पिता जी। (क्रोध से) जिसे आपका रहना बुरा लगेगा वह खुद चला जायगा।

सरिता— (आश्चर्य से) यानी मैं चली जाऊँ इस घर से ?

अमर— (कड़े स्वर में) जिसे पिता जी का घर में रहना बुरा लगे—चाहे वह कोई भी हो।[1]

---

१ कृष्णकिशोर श्रीवास्तव—रास्ते मोड़ और पगडण्डी—पृ० ६१ (दृ० सं० सन् १९५९ ई०)

क्रुद्ध अमर सरिता का खून करने को बढता है । इस सघष को रोकने के लिए मरारीलाल देहली पर सिर पटककर आत्मघात कर लेता है । अमर के भयकर क्रोध को देखकर भयभीत हुई सरिता अपनी रक्षा के लिए देहली पर सिर पटकने वाले मुरारीलाल को रोकने का प्रयत्न करती है । लेकिन सरिता का प्रयत्न मुरारीलाल को बचान मे व्यथ सिद्ध होता है । ससुर के बलिदान से सरिता म एकदम परिवतन होता है । पति पत्नी का सघष चरम सीमा पर पहुँचकर समाप्त होता है ।

नाटक के आरम्भ मे अमर का और मुरारीलाल का मार्मिक आ तरिक सघष है । कुछ दर तक अमर निणय नही कर पाता कि पत्नी के आकर्षण को अधिक महत्त्व दिया जाय अथवा पिता की ममता को । आखिर पिता की ममता को महत्त्व दने का निणय करता है ।

मुरारीलाल भी निणय नही कर पाता कि सरिता की घृणा को स्वीकार किया जाय अथवा अमर के पितृ प्रम को । इस अनिश्चयात्मकता को लेकर मुरारी लाल का आ तरिक सघष तीव्र रूप धारण करता है । इस सघष मे ही मुरारीलाल का अ त होता है ।

प्रस्तुत नाटक का बाह्य सघष उच्च श्रेणी का है । इसके प्रकाशन म स्थूलता आ गई है । इस सघष म सरिता की हार स्वाभाविक है । अमर और मुरारीलाल का आ तरिक सघष सूक्ष्म और उच्च श्रेणी का सघष है । प्रस्तुत नाटक म दोनो सघर्षो का निर्वाह प्रभावोत्पादक रीति से किया गया है ।

अधेरे का बेटा (१९६९) नाटक में रेवतीसरन शर्मा न भी दिखाया है कि जो पत्नी पति के आदशवादी विचारो पर ध्यान न देकर अपनी महत्त्वाकाक्षा पूर्ति के हेतु पति को ऊचे पद पर देखना चाहती है, वह दाम्पत्य जीवन मे सघष का कारण बनती है । प्रस्तुत नाटक मे मेजर नारग की पत्नी नीरू (निरुपमा) बहुत महत्त्वा काक्षी स्त्री है । नीरू की विचित्र महत्त्वाकाक्षा के कारण प्रस्तुत नाटक म आ तरिक तथा बाह्य सघष को स्थान मिला है ।

नाटककार न मेजर नारग के रूप मे सनिक के दोहरे यक्तित्व का प्रकाशन किया है । मेजर नारग की तरह प्रत्येक सनिक एक ओर सैनिक होता है, तो दूसरी ओर साधारण मानव । प्रसग विशेष मे सनिक के दोहरे व्यक्तित्वो मे सघष छिडता है। नाटक का आरम्भ होने के पूव मेजर नारग के दोहरे व्यक्तित्वा म सघष हुआ था ।

सन् १९६२ म चीन के साथ हुए युद्ध म भारत की स्वत त्रता की रक्षा के लिए मजर नारग लड रहे थे । एक दिन भयानक शत्रु को सामन देखकर मजर नारग के मन म मौत और जीवन म स किसी एक के चुनाव की समस्या पदा हो गई । मेजर नारग को एक सनिक के रूप मे अपने प्राणो की बलि दकर देश की रक्षा करनी थी । लेकिन मजर नारग ने साधारण मानव के रूप मे जीवन को

किया और बाल्गाहुस्सा तथा क्विन ब्रिज को वहीं छोड़ने के लिए छोड़कर स्वयं पीछे हट गये। मेजर नारंग बच गये। पर बाल्गाहुस्सा और क्विन ब्रिज का ह्रास हो गया।

मेजर नारंग इस घटना को अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल मानते हैं। मेजर नारंग के अफसरों को इस भूल का पता नहीं है। वे मेजर नारंग को कर्नल का प्रमोशन देना चाहते हैं। इस सन्दर्भ में मेजर नारंग में आन्तरिक संघर्ष शुरू होता है। नाटक के आरम्भ में इस आन्तरिक संघर्ष का प्रकाशन हुआ है।

एक ओर अपनी असम्य भूल है तो दूसरी ओर प्रमोशन है। मेजर नारंग के सामने समस्या यह है कि प्रमोशन को स्वीकार किया जाय अथवा न किया जाय? प्रमोशन को स्वीकार करने का अर्थ है अपने आपको तथा अपने अधिकारियों को धोखा देना। लेकिन प्रमोशन को न स्वीकार करने का अर्थ है अपने पारिवारिक जीवन में संघर्ष का आरम्भ। क्योंकि मेजर नारंग की पत्नी नीरू ने अपने प्रेमी मनोज को छोड़कर विशिष्ट महत्वाकांक्षा से मेजर नारंग से शादी कर ली है। महत्वाकांक्षी नीरू ने पति के रूप में हमेशा मिलिट्री आफिसर को चाहा है, जो लम्बा तगड़ा स्मार्ट तथा मौत जिन्दगी से बेपरवाह होगा। नीरू इस रूप में मेजर नारंग को पाती है और इस बात पर गर्व करती है। वह पति के प्रमोशन पर जोरदार पार्टी देने की योजना बना रही है। ऐसी स्थिति में प्रमोशन को स्वीकार न करने से पति पत्नी में संघर्ष के छिड़ने की सम्भावना है। अतः निर्णय करने तक मेजर नारंग में आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है। इस संघर्ष के कारण मेजर नारंग अपनी पत्नी से खुलकर बात भी नहीं कर सकते। क्योंकि वे जानते हैं कि महत्वाकांक्षी नीरू साधारण मानव के रूप में मेजर नारंग को भूलकर भी नहीं देखेगी।

आन्तरिक संघर्ष से मुक्ति पाने के हेतु मेजर नारंग साहसपूर्वक निर्णय करते हैं कि प्रमोशन को स्वीकार करना अनुचित है। अपनी भूल का प्रायश्चित करने के लिए मेजर नारंग अफसरों पर अपनी भूल प्रकट करते हैं और प्रमोशन के बदले सुपर सीशन को मानना स्वीकार करते हैं। यहीं से मेजर नारंग और नीरू में संघर्ष छिड़ता है।

मेजर नारंग ने नीरू को बता दिया है कि उसे प्रमोशन नहीं मिलेगा क्योंकि वह सुपरसीड हो गया है। नीरू से यह सहा नहीं जाता। चाहे जो हो, नीरू अपने अहं के संतोष के लिए पति का प्रमोशन ही चाहती है। इसलिए पति-पत्नी में संघर्ष का आरम्भ इस प्रकार होता है।

नारंग—(बहुत ठण्डे लहजे में) तुम प्रमोशन को इतना बड़ा मानती हो, मुझसे भी बड़ा।

नीरू— हाँ।

नारंग—बिना प्रमोशन के तुम मुझे कबूल नहीं कर सकती ?
नीरू— नहीं ।
नारंग—मैं प्रमोशन हूँ ।
नीरू— हाँ । तुम प्रमोशन हो क्योंकि प्रमोशन जीत है, आगे बढ़ना है और सिपाही आगे बढ़ता है ।
नारंग—यह ग्लेमराइज्ड व्यू है । चमकता हुआ झूठ है ।
नीरू— अगर यह झूठ है तो मुझे झूठ चाहिए । कच्चा रंग का, हाथ मुँह काला करने वाला सच नहीं चाहिए ।[1]

पत्नी की जिद मेजर नारंग को अशान्त कर देती है । मेजर नारंग इस कलंक को धोने के लिए हिन्दुस्तान पाकिस्तान के युद्ध में बहादुरी दिखाकर वीर मरण पाते हैं । पति के वीर मरण से नीरू सन्तुष्ट हो जाती है ।

प्रस्तुत नाटक में नीरू की महत्त्वाकांक्षा का प्रदर्शन बहुत अधिक है । फलतः प्रस्तुत नाटक में मेजर नारंग के सूक्ष्म आन्तरिक संघर्ष के बदले बाह्य संघर्ष को ही अधिक स्थान मिला है । इन दोनों संघर्षों की समाप्ति मेजर नारंग की वीरगति के साथ हुई है । संघर्ष की समाप्ति स्वाभाविक है ।

मेजर नारंग का आन्तरिक संघर्ष उच्च श्रेणी का है । इस संघर्ष में सद्विचार की जीत हुई है । प्रस्तुत जीत स्वाभाविक जीत है । मेजर नारंग का बाह्य संघर्ष भी उच्च श्रेणी का है ।

(इ) आदर्शवाद विरुद्ध जातिलोभ के कारण संघर्ष

धनाभाव के कारण माँ बाप दहेज देकर किसी योग्य वर के साथ कन्या का विवाह करने में असमर्थ होते हैं । ऐसी स्थिति में यदि स्वयं कन्या अपनी इच्छा के अनुकूल अन्य जाति के किसी युवक को पति के रूप स्वीकार करती है तो परिवार में संघर्ष शुरू होता है । यदि पिता परम्परावादी तथा जातिलोभी होंगे और माता यथार्थोन्मुख आदर्शवादी होगी, तो पति पत्नी में संघर्ष चलता है । इस दृष्टि से प्रेमनाथ दर का "घर की बात" (१९६१) नाटक दृष्टव्य है ।

प्रस्तुत नाटक का आरम्भ जातिलोभी पति महादेवप्रसाद और यथार्थोन्मुख आदर्शवादी पत्नी लीलावती के संघर्ष से होता है । इसका प्रमुख कारण यह है कि इनकी जवान बेटी इन्द्रा ने ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर भी, बनिया पुत्र जीवन से प्रेम विवाह किया है । इस घटना को लेकर महादेवप्रसाद मानता है कि उसके घर की बेइज्जती हुई है । लेकिन लीलावती मानती है कि यह अच्छा ही हुआ । क्योंकि दहेज का प्रबन्ध होना बड़ा कठिन था । अन्य इन्द्रा का विवाह अपनी जाति में किसी

---

१ रेवती सरन शर्मा-अधर का बेटा-पृ० ४३-४४ (प्र० स० सन् १९६९ ई०)

लिया और बाल्हासा तथा कप्तिन ग्रिज को वहाँ लड़ने के लिए छोड़कर स्वयं पीछे हट गये। मेजर नारंग बच गये। पर बाल्हासा और कप्तिन ग्रिज का देहान्त हो गया।

मेजर नारंग इस घटना को अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल मानते हैं। मेजर नारंग के अफसरों को इस भूल का पता नहीं है। वे मेजर नारंग को कनल का प्रमोशन देना चाहते हैं। इस सन्दर्भ में मेजर नारंग में आन्तरिक संघर्ष शुरू होता है। नाटक के आरम्भ में इस आन्तरिक संघर्ष का प्रकाशन हुआ है।

एक ओर अपनी असम्य भूल है तो दूसरी ओर प्रमोशन है। मेजर नारंग के सामने समस्या यह है कि प्रमोशन को स्वीकार किया जाय अथवा न किया जाय? प्रमोशन को स्वीकार करने का अर्थ है अपने आपको तथा अपने अधिकारियों को धोखा देना। लेकिन प्रमोशन को न स्वीकार करने का अर्थ है अपने पारिवारिक जीवन में संघर्ष का आरम्भ। क्योंकि मेजर नारंग की पत्नी नीरू ने अपने प्रेमी सुनाथ को छोड़कर विशिष्ट महत्त्वाकांक्षा से मेजर नारंग से शादी कर ली है। महत्त्वाकांक्षी नीरू ने पति के रूप में ऐसा मिलिट्री आफिसर को चाहा है, जो लम्बा तगड़ा, स्मार्ट तथा मौत जिन्दगी में बराबर होगा। नारू इस रूप में मेजर नारंग को पाती है और इस बात पर गर्व करती है। वह पति के प्रमोशन पर जोरदार पार्टी देने की योजना बना रही है। ऐसी स्थिति में प्रमोशन को स्वीकार न करने से पति पत्नी में संघर्ष के छिड़ने की सम्भावना है। अतः निर्णय करने तक मेजर नारंग में आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है। इस संघर्ष के कारण मेजर नारंग अपनी पत्नी से खुलकर बात भी नहीं कर सकते। क्योंकि वे जानते हैं कि महत्त्वाकांक्षी नारू साधारण मानव के रूप में मेजर नारंग को भूलकर भी नहीं देखेगी।

आन्तरिक संघर्ष से मुक्ति पाने के हेतु मेजर नारंग साहसपूर्वक निर्णय करते हैं कि प्रमोशन को स्वीकार करना अनुचित है। अपनी भूल का प्रायश्चित करने के लिए मेजर नारंग अफसरों पर अपनी भूल प्रकट करते हैं और प्रमोशन के बदले सुपर सेशन को सानन्द स्वीकार करते हैं। यहीं से मेजर नारंग और नारू में संघर्ष छिड़ता है।

मेजर नारंग ने नीरू को बता दिया है कि उसे प्रमोशन नहीं मिलेगा, क्योंकि वह सुपरसीड हो गया है। नारू से यह सहा नहीं जाता। चाहे जो हो नीरू अपने अहं के सन्तोष के लिए पति का प्रमोशन ही चाहती है। इसलिए पति-पत्नी में संघर्ष का आरम्भ इस प्रकार होता है।

"नारंग—(बहुत ठण्डे लहजे में) तुम प्रमोशन को इतना बड़ा मानती हो मुझसे भी बड़ा।

नीरू— हाँ।

नारग--बिना प्रमोशन के तुम मुझे कबूल नही कर सकती ?
नीरू-- नही ।
नारग--मैं प्रमोशन हूँ ।
नीरू-- हाँ । तुम प्रमोशन हो क्योकि प्रमोशन जीत है, आग बढ़ना है और सिपाही आग बढता है ।
नारग--यह ग्लैमराइज्ड व्यू है । चमकता हुआ झूठ है ।
नीरू— अगर यह झूठ है तो मुझे झूठ चाहिए । कच्चा, राग का, हाथ मुह काला करने वाला सच नही चाहिए । [1]

पत्नी की जिद मजर नारग को अनात कर देती है । मजर नारग, इस कलक को धोने के लिए हिन्दुस्तान पाकिस्तान के युद्ध म बहादुरी दिखाकर वीर मरण पात हैं । पति के वार मरण से नीरू सन्तुष्ट हो जाती है ।

प्रस्तुत नाटक म नीरू की महत्त्वाकाक्षा का प्रदशन बहुत अधिक है । फलत प्रस्तुत नाटक म मेजर नारग के सूक्ष्म आतरिक सघप के बदले बाह्य सघप को ही अधिक स्थान मिला है । इन दोनो सघर्षों की समाप्ति मेजर नारग की वीरगति के साथ हुई है । सघप की समाप्ति स्वाभाविक है ।

मजर नारग का आतरिक सघप उच्च श्रेणी का है । इस सघप में सद्विचार की जीत हुई है । प्रस्तुत जीत स्वाभाविक जीत है । मेजर नारग का बाह्य सघप भी उच्च श्रेणी का है ।

(इ) आदशवाद विरुद्ध जातिलोभ के कारण सघप

धनाभाव के कारण माँ बाप दहज देकर किसी योग्य वर के साथ कन्या का विवाह करने म असमथ होते हैं । ऐसी स्थिति मे यदि स्वय कन्या अपनी इच्छा के अनुकूल अन्य जाति के किसी युवक को पति के रूप स्वीकार करती है तो परिवार म सघप शुरू होता है । यदि पिता परम्परावादी तथा जातिलोभी होग और माता यथार्थोन्मुख आदशवादी होगी तो पति पत्नी म सघप चलता है । इस दृष्टि म प्रेमनाथ दर का 'घर की बात' (१९६१) नाटक दृष्टव्य है ।

प्रस्तुत नाटक का आरम्भ जातिलोभी पति महादेवप्रसाद और यथार्थोन्मुख आदशवादी पत्नी लीलावती के सघप से होता है । इसका प्रमुख कारण यह है कि इनकी जवान बेटी इन्द्रा ने ब्राह्मण के घर म जन्म लेकर भी बनिया पुत्र जीवन से प्रेम विवाह किया है । इस घटना को लेकर महादेवप्रसाद मानता है कि उसके घर की बेइज्जती हुई है । लेकिन लीलावती मानती है कि यह अच्छा ही हुआ । क्योकि दहज का प्रबन्ध होना बडा कठिन था । अत इन्द्रा का विवाह अपनी जाति म किसी

---

१ रेवती सरन शर्मा-अधरे का बेटा—पृ० ४३–४४ (प्र० स० सन १९६१ ई०)

योग्य वर से नहीं हो सकता था। इस धारणा को लेकर लीलावती महादेवप्रसाद से संघर्ष करती है। इस संघर्ष का और एक कारण है। वह यह है कि इन्द्रा और जीवन के विवाह में न महादेवप्रसाद सम्मिलित हुआ न महादेवप्रसाद ने लीलावती को सम्मिलित होने दिया। लीलावती इस बात से बड़ी दुःखी हो जाती है। इस दुःख के कारण वह तुरन्त क्रोध में आती है और पति की झूठी प्रतिष्ठा की बातों पर तीखे प्रहार करती रहती है--

'महादेव--महादेवप्रसाद ने अपना उम्र को बनिये के लिए नहीं पाला था।
लीलावती-तो ब्राह्मणों में ही देवता रखे हैं क्या ?
महादेव--देवता रखे हों, या नहीं अगर तुम बनिये के घर गयी समझो मुझसे गयीं।
लीलावती-मैं भी चली जाऊँगी, खातिर जमा रखो।
महादेव--चली जाओगी ?
लीलावती-जिस घर में बेटी की जगह नहीं उस घर की मैं ही कौन होती हूँ ?
महादेव--कहाँ जाओगी ?
लीलावती--जहाँ माँ बेटी दोनों रह सकें।
महादेव--ब्राह्मण की पत्नी बोल रही है। जिसका विधिपूर्वक विवाह हुआ था।
धार्मिक परिवार से धार्मिक परिवार में आई थी।
लीलावती-देख लिया धर्म तुम्हारा।'[1]

लीलावती की दो टूक बातों से महादेवप्रसाद का क्रोध चरम सीमा पर पहुँच जाता है। वह मायके चली आई इन्द्रा को अपने यहाँ आश्रय देना नहीं चाहता। उसे घर से बाहर निकालना चाहता है। लीलावती पति की बात का विरोध करती है और इन्द्रा को अपने यहाँ आश्रय देती है।

उधर जीवन का पिता जीवन को सम्पत्ति से बेदखल कर देता है। अतः धनाभाव से तंग आकर जीवन और इन्द्रा एक युक्ति से काम लेते हैं। इस युक्ति के अनुसार जीवन इन्द्रा को मायके भेज देता है। स्वयं पिता के पास जाकर वह कहता है कि मैंने इन्द्रा का त्याग किया है। पिता इसकी बात पर विश्वास करने को तैयार नहीं होता। पिता और जीवन का कुछ संघर्ष चलता है। बाद में लाला लक्ष्मीदास पुत्र जीवन पर विश्वास करता है। इस युक्ति से जीवन पिता से बीस हजार रुपया पाने में सफल होता है। अन्त में भेदभावों को भूलकर महादेवप्रसाद का परिवार और लक्ष्मीदास का परिवार--दोनों मिल जाते हैं। बाह्य संघर्ष समाप्त हो जाता है।

संघर्ष की दृष्टि से प्रथम अंक अधिक प्रभावशाली है। अन्य अंकों में क्षीण बाह्य संघर्ष है। संघर्ष का निपटारा कृत्रिम रीति से किया जाने के कारण नाटक अधिक प्रभावशाली नहीं बन गया है। प्रस्तुत बाह्य संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है।

---
१ प्रेमनाथ टंडन--घर की बात-पृ० १८-१९ (आठवाँ सं० सन् १९६० ई०)

यह परस्पर विरुद्ध विचारधाराओ का सघष है। इस सघष मे सदविचार की विजय हुई है। इस सघष का प्रकटीकरण स्थूल हुआ है।

(ई) स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखने की काक्षा के कारण सघष

आधुनिक युग के व्यक्ति स्व तन्त्र्य की नयी चेतना स प्रभावित होकर नारी अपने ववाहिक जीवन मे भी अपना स्वतत्र अस्तित्व बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील बन जाती है, तब पति पत्नी म सघष चलता है। पत्नी जब तक समभदारी से काम लेने को तैयार नही होती है, तब तक पति पत्नी का सघष नही मिट पाता। ठीक इसी प्रकार के सघष का निर्देश 'बिना दीवारो क घर" (१९६५) नाटक मे मन्नू भण्डारी ने किया है।

नाटककार ने प्रस्तुत नाटक मे नहर का मध्यमवर्गीय परिवार किस प्रकार टूट रहा है, यह दिखाते हुए अजित और गोभा (पति पत्नी) का तीव्र सघष दिखाया है। शोभा वतमान युग की उस पढी लिखी नारी का प्रतीक है कि जो अपना स्वतत्र अस्तित्व बनाए रखने के लिए सभी प्रकार के प्रचलित ब धनो को ठुकराना चाहती है। वह यह नही सोचती कि 'अपना करियर" बनाते समय अपनी गहस्थी किस प्रकार उजड रही है।

कम पढी लिखी शोभा अजित की सहायता से तथा अजित के मित्र जय त के प्रोत्साहन से एस० ए० पास कर काल्ज म लक्चरार बन गयी। गोभा को लेक्चरार बनाने में जय त ने अधिक सहायता की। अत शोभा अपना करियर' बनाने के लिए अजित के विरोध पर ध्यान न देती हुइ जय त की हर बात मानने लगती है। परिणामस्वरूप अजित और शोभा म तीव्र मघष छिडता है।

प्रस्तुत नाटक का आरम्भ अजित और शोभा के सघष से होता है। अजित को लगता है कि अब घर मे न पहले जसा सुख है न पहल जसी यवस्था। उसे लगता है कि अब इस घर में गृहिणी का निवास नही है। अत झल्लाकर वह गोभा से सघष छेडता है। दोनो एक दूसरे पर निष्ठुरता स ताने कसन रहते हैं। दानो भी भूल जाते हैं कि इनका पति पत्नी का सम्ब ध है और इनक एक बेटी भी है।

गोभा अपना करियर बनाने के लिए जय त की सलाह को हद से ज्यादा महत्त्व देती है। उसी के कहने के अनुकूल चलती है। वह यह भूल जाती है कि उसका पति अजित क्या चाहता है और क्या नही चाहता। अजित को यह अच्छा नही लगता कि जयन्त क कहने स शोभा का रेडियो पर गाना। शोभा बात बात मे जय त का नाम लती है। शोभा क मुख से 'जय त का नाम सुनत ही अजित चिढ जाता है, उसकी भृकुटि तन जाती है। अजित चाहता है कि अपनी पत्नी शाभा घर की तथा बच्ची की देख रेख अच्छी तरह करती रह जाय। इसके लिए पत्नी को नौकरी छोडनी पडी तो भी बेहतर है। लकिन शोभा नही मानती। क्योकि उसे

लगता है अजित उसके करियर से ईर्ष्या कर रहा है। वह उस (पत्नी को) घर की चहारदीवारी में बन्द कर देना चाहता है। वह सब शोभा नहीं चाहती। अतः शोभा और अजित में इस प्रकार संघर्ष चलता है—

'अजित—कौन कहता है औरत से कि नौकरी करे? छोड़ दे नौकरी। अब उसकी नौकरी के पीछे यह तो होगा नहीं कि पति बच्चे घर सब बेकार मारे मारे फिरें।

शोभा—क्या बीच में और कोई रास्ता ही नहीं है जग? विदेशों में इतनी औरतें काम करती हैं वहाँ क्या सब मारे मारे ही फिरते हैं?

अजित—आस्सह। विदेश की बात तुम अपने मन में तो किया ही मत करो।

शोभा—क्योंकि वह तुम्हें माफिक नहीं आती इसलिए न?

अजित—अब तुम घर-भर बैठकर कानून बघारोगी।'[1]

इससे पता चलता है कि परिवार की भलाई के लिए शोभा समझौता करने को बिलकुल तैयार नहीं है। इस संघर्ष में उस समय तीव्रता आ जाती है, जब शोभा अजित के विरोध की चिन्ता न करती हुई जयन्त के कहने के अनुसार महिला कालेज की प्रिंसिपल बन जाती है। वह इस रूप में अपनी योग्यता सिद्ध करने का प्रयास करती है। इससे शोभा और अजित में बराबर तनाव बना रहता है। अजित शोभा और जयन्त के सम्बन्ध पर सन्देह प्रकट करता है। यह शोभा से सहा नहीं जाता। शोभा घर छोड़कर कालेज के हास्टल में रहने लगती है। बीमार बच्चों को देखने के लिए शोभा लौट आती है। परन्तु पुनः संघर्ष होता है। वह अन्ततः घर छोड़ कर चली जाती है।

अजित और शोभा का परस्पर विरुद्ध इच्छाओं का संघर्ष स्थूल तथा साधारण श्रेणी का संघर्ष है। नाटक के अन्त तक अजित और शोभा अपनी अपनी हठधर्मी को नहीं छोड़ते हैं। फलतः इन दोनों का संघर्ष नहीं मिटता है। संघर्ष का निर्वाह प्रभावशाली रीति से किया गया है। प्रस्तुत संघर्ष क्रमशः चरम सीमा पर पहुँच गया है।

इसी प्रकार सिन्हा कृत 'मन के भँवर' (१९६८) में स्वतन्त्र अस्तित्व विषयक पत्नी की विचित्र धारणा के कारण डा० वशिष्ठ और छाया का संघर्ष है। इस संघर्ष के कारण डा० वशिष्ठ में परस्पर विरुद्ध भावनाओं प्रेम और घृणा का आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है। इस संघर्ष के कारण नाटक का अन्त हृदय विदारक रूप धारण करता है।

अपनी चंचल वृत्ति के कारण छाया पति से तीव्र संघर्ष छेड़ती है। नाटक का आरम्भ इस संघर्ष से हुआ है। मानसोपचार करने वाला डॉ० वशिष्ठ अपनी

1 मन्नू भण्डारी—बिना दीवारों के घर—पृष्ठ ३२ (प्र० सं० सन् १९६५ ई०)

छाया से प्रेम करता है, पर छाया अपने पति से प्रेम नही करती। छाया बात बात पर पति से झगडती है। वह अपने मायके के ऐश्वय पर घमण्ड करती है। वह पति को तथा सास को नीचा दिखाने और अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखने की चेष्टा करती है। वह बीमार सास की देखरेख ठीक तरह से नही करती। बीमारी में सास का देहान्त हो जाता है। इन बातो को लेकर पति पत्नी का संघर्ष चरम सीमा पर पहुँच जाता है। उस समय छाया की स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखने की काक्षा प्रबल बन जाती है। वह चचल युवक देवेन्द्र के साथ बम्बई भाग जाती है।

छाया के भाग जाने पर डॉ० वशिष्ठ ने समाचार पत्र में छपवाया कि छाया की मृत्यु हुई है। डा० वशिष्ठ मानसोपचार का अस्पताल खोलकर ख्यातिप्राप्त डॉक्टर बन जाता है। उसका एक मन अब भी छाया से प्रेम करता है, तो दूसरा मन घृणा करता है। प्रेम और घृणा को लेकर डा० वशिष्ठ में आन्तरिक संघर्ष बराबर चलता है। इस संघर्ष से मुक्ति पाने के लिए वह अपने व्यवसाय में धन पाने का नही, बल्कि सेवा का दृष्टिकोण रखता है। फिर भी डॉ० वशिष्ठ आन्तरिक संघर्ष से मुक्त नही हो पाता। एक दिन डॉ० वशिष्ठ सपने में आयी छाया से बातचीत करता है—

'डाक्टर—छाया तुम तो मर गयी थी ?
छाया—हाँ लेकिन अब जिन्दा हो गयी।
डाक्टर—क्यो ?
छाया—तुमसे मिलने।
डॉक्टर—क्यो ?
छाया—(हँसती है) क्योंकि तुम मुझसे प्रेम करते हो।
डाक्टर—नही, अब मैं किसी से न प्रेम करता हूँ और न घृणा।
छाया—तुम मुझसे प्रेम करते हो। (हँसती है)
डाक्टर—नहीं मैं तुमसे प्रेम नही करता। (छाया हँसती है) नहीं मैं तुमसे प्रेम नही करता।
छाया—तो घृणा करते हो। एक ही बात है।
डाक्टर—नही नहीं नही'[1]

एक ओर प्रेम है तो दूसरी ओर घृणा। यह परस्पर विरुद्ध भावनाओ का संघर्ष उस समय चरम सीमा पर पहुँच जाता है जब दस वर्षों के बाद प्रायश्चित करने के हेतु असहाय छाया डॉ० वशिष्ठ के पास आती है और आश्रय देने के लिए प्रार्थना करती है। डॉ० वशिष्ठ के सामने प्रश्न यह उपस्थित होता है कि छाया को आश्रय दिया जाय अथवा नही दिया जाय ? प्रेम को महत्त्व दिया जाय अथवा

१ दयाप्रकाश सिन्हा—मन के भँवर—पृ० ४३ (प्र० स० सन् १९६८ ई०)

घृणा को ? डॉ० वशिष्ठ का आन्तरिक संघर्ष तीव्र बन जाता है। इस संघर्ष में प्रेम के बदले घृणा की भावना प्रबल बन जाती है। डॉ० वशिष्ठ छाया को आश्रय न देने का निर्णय करता है। उसी क्षण छाया की मृत्यु होती है। डाक्टर वशिष्ठ आत्मघात कर लेता है।

बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष के कारण डॉ० वशिष्ठ के दाम्पत्य जीवन का करुण अन्त होता है।

प्रस्तुत नाटक के प्रारम्भ में स्थूल बाह्य संघर्ष है। तदुपरान्त बाह्य संघर्ष सूक्ष्म संघर्ष तक पहुंच जाता है। यद्यपि पत्नी के भाग जाने पर डा० वशिष्ठ परोक्ष रूप में अपनी पत्नी छाया से संघर्ष करता रहता है। वह छाया को भूलने का प्रयत्न करता है पर पूर्ण रूपेण नहीं भूल पाता है। अन्त डा० वशिष्ठ के बाह्य तथा सूक्ष्म आन्तरिक संघर्ष क्रमशः चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं और वहां डॉ० वशिष्ठ की मृत्यु हो जाती है। डॉ० वशिष्ठ के नाना संघर्ष उच्च कोटि के संघर्ष हैं। इन संघर्षों का निर्वाह ठीक ढंग से किया गया है।

'आधे अधूरे' (१९६९) नाटक में मोहन राकेश ने यह दिखाया है कि स्वतन्त्र अस्तित्व तथा विशिष्ट गुणप्राप्ति से सम्बद्ध कामना पर पत्नी द्वारा अधिक बल दिये जाने के फलस्वरूप पति पत्नी में कितना अनिष्ट संघर्ष उभरता है। इस संघर्ष के दुष्परिणाम स्वरूप इनकी सन्तान भी बड़ी निर्ममता से संघर्ष करती रहती है।

अपने बाईस साल के दाम्पत्य जीवन में महेन्द्रनाथ और सावित्री बहुत लड़ते झगड़ते रहे हैं। इसका प्रमुख कारण यह रहा है कि सावित्री ने महेन्द्र को कभी वह आदमी नहीं समझा जिसके साथ वह सुख समाधान पूर्वक जिन्दगी काट सकती है। सावित्री को महेन्द्र एक आधा अधूरा आदमी लगता है, जो सावित्री की कई इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाता है। वस्तुतः महेन्द्रनाथ सावित्री को सन्तुष्ट करने के लिए बहुत कुछ करता रहा है। पर वह मन सावित्री को पसन्द नहीं आया। वह अपने लिए 'एक पूरा आदमी' चाहती रही है जो उसकी सब इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है। एक पूरा आदमी पाने की धुन में सावित्री अपने घर में बड़ा बड़ा दावतों और निमन्त्रणों का सिलसिला चलाती रही है। इस भ्रम जाल की सहायता से सावित्री क्रमशः जुनेजा को, मनोज को, जगमोहन को पाने की कोशिश करती रही है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति की दृष्टि से सावित्री को जुनेजा भी आधा अधूरा लगा है और मनोज भी। केवल जगमोहन के साथ उसका जी रमता रहा है। वह जगमोहन के साथ होटलों में जाती रही है चाय जो खाती और पिलाती रही है घंटों बातें करती रही है। जगमोहन उसे अपनी बनाना चाहता रहा है। वह सावित्री को घर छोड़ने की सलाह देता रहा है। पर उस समय सावित्री महेन्द्र का घर छोड़कर जगमोहन की बन जाने का साहस नहीं कर पाती।

महेन्द्रनाथ अच्छी तरह जानता रहा है कि सावित्री के अध पात के कारण उसकी कमाई बरबाद हुई है। उस प्रेस तथा फक्टरी के धन्धे मे भारी घाटा उठाना पडा है। उसे एकदम कगाल आदमी बनना पडा है।

महेन्द्रनाथ सावित्री को अध पात से रोकने की भरसक चेष्टा करता है। इस समय सावित्री और महेन्द्रनाथ म भयानक संघष छिडता रहा है। महेन्द्रनाथ अपनी बात मनवाने तथा अपनी चाह क अनुकूल चलने का बाध्य करने के लिए सावित्री को खूब पीटता रहा है। फिर भी सावित्री महेन्द्रनाथ की आधे अधूरे आदमी की चाह के अनुसार नही चलती रही। वह महेन्द्रनाथ के परिवार म ही रह कर एक पूरा आदमी' खोजती रही है।

इनकी सन्तानो (बडी लडकी बीना, लडका अशोक और छोटी लडकी किन्नी) पर माता पिता भयकर संघष का अनिष्ट परिणाम होता है। सन्तानो को अपना घर, घर जसा कभी नही लगता। हरएक अपने अपने ढग स जीता है। हरएक अपनी अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए परस्पर शिकायत करता है, परस्पर लडता है। परिणामस्वरूप महेन्द्रनाथ का घर चिडियाघर का एक बन्द पिंजरा जैसा लगता है, जिसमे सभी बुरी तरह स फस गये हैं। इस पिंजरे से मुक्त होने के लिए हर एक अपने-अपने ढग स कोशिश कर रहा है, पर कोई भी मुक्त नही हो पा रहा है।

कगाल बना महेन्द्रनाथ अपने टूटते परिवार को नही संभाल पाता। क्योकि अब उसमे वह शक्ति नही है। अब महेन्द्रनाथ की पत्नी सावित्री, जो एक आदमी पाने म असफल हुई है नौकरी कर रही है और गृहस्थी की गाडी खीच रही है। इस बात को लेकर सावित्री चाहती है कि उसका कहा हुआ हरएक मानता रहे और ठीक उसी के अनुसार चलता रहे। लेकिन यहाँ कौन किसी का सुनता है। हरएक म एक-दूसरे के प्रति अनास्था है। वस्तुत हरएक म जीवन के प्रति अनास्था है। अत हरएक स्वच्छाचारी बन गया है। सब अपनी अपनी चाह को लेकर परस्पर लडते है।

ऐसी स्थिति म सावित्री अपने दफ्तर के अफसर से अशोक को नौकरी दिलवाना चाहती है। वह सोचती है कि यदि अशोक को नौकरी मिल गयी तो, गृहस्थी की गाडी खीचने के लिए उतनी ही आर्थिक सहायता होगी। इस विचार से वह अपने दफतर के अफसर सिंघानिया को अपने यहा बुलाती है। वह एक-दो बार आ भी चुका है। वह जिस समय आता है महेन्द्रनाथ घर म अनुपस्थित रहता है। अब भी सावित्री ने सिंघानिया को बुलाया है। अब भी महेन्द्रनाथ अनुपस्थित रहना चाहता है। सावित्री खीझकर संघष छेडती है।

"पुरुष एक (महेन्द्रनाथ)—तुम लडना चाहती हो ?

स्त्री(सावित्री)—तुम लड़ भी सकते हो इस वक्त' ताकि उसी बहाने चले जाओ घर

से । वह आदमी आयेगा, तो जाने क्या सोचेगा कि क्यों हर बार इसके आदमी को कोई-न कोई काम हो जाता है बाहर। शायद समझे कि मैं ही जान बूझ कर भेज देती हूँ ।

पुरुष एक— वह मुझ से तय करके तो आता नहीं कि मैं उसके लिए मौजूद रहा करूँ घर पर ।

स्त्री— कह दूँगी आगे से तय करके आया करे । तुम इतने बिजी आदमी जो हो । पता नहीं कब किस बोर्ड की मीटिंग जाना पड़ जाय ।'[१]

इससे पता चलता है कि पति पत्नी एक दूसरे के प्रति कितनी अनास्था रखते हैं और एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए कितने ताने तान कसते हैं । महेन्द्रनाथ का अनुभव है कि सावित्री जब किसी को चाहती है तो किसी-न किसी बहाने वह घर आता रहता है । अतः महेन्द्रनाथ ऐसा करारा ताना कसता है, जो सावित्री के मर्म पर आघात करता है । इससे घायल होकर सावित्री तड़पती रहती है । ऐसी स्थिति में वह घर छोड़कर चली जाना चाहती है । पर वह जा नहीं पाती ।

अशोक को भी सिंघानिया का आना पसंद नहीं है । क्योंकि सिंघानिया एकदम शिष्टाचारहीन आत्मा है । अतः सावित्री का उसकी खातिरदारी करना अशोक को अखरता है । सिंघानिया के चले जाने के पश्चात् अशोक सावित्री से संघर्ष छेड़ता है और शिकायत करता है कि ऐसे लोगों को क्या घर पर बुलाया जाता है जिनके आने से इस घर के लोग बहुत बहुत छोटे हो जाते हैं ।

माँ के बढ़ाने से बीना मनोज के साथ भाग गयी थी । वह उसकी पत्नी बनकर उसी के यहाँ रही थी । लेकिन अब वह माता पिता के पास आ जाती है । बीना के कथन से पता चलता है कि बीना और मनोज में अनबन है । अतः बीना को माता पिता के पास आना पड़ा है । यह जानकर महेन्द्रनाथ को क्रोध आता है । वह सावित्री पर गुस्सा उतारता है । क्योंकि उसी के कारण मनोज घर आता-जाता था ।

उधर मनोज बीना पर शासन और कहता रहा कि बीना अपने घर से अपने अन्दर कुछ ऐसी चीज लेकर आयी है जो किसी भी स्थिति में बीना को स्वाभाविक नहीं रहने देती । मनोज के इस ताने से बीना बचने होती रही और अब भी होती है । वह इस ताने के बदले में मनोज को कष्ट देना चाहती है, पर दे नहीं पाती । अतः उसमें आंतरिक संघर्ष छिड़ता है । वह उस चीज की खोज के लिए माता पिता के घर आ जाती है । आंतरिक संघर्ष से ग्रस्त बीना माँ से पूछती है— तुम बता सकती हो मम्मी, कि क्या चीज है वह ? और कहाँ से वह ? इस घर के खिड़कियों दरवाजों में ? छत में ? दीवारों में ? तुममें ? डैडी में ? किन्नी में ? अशोक में ?

---

१ मोहन राकेश—आधे-अधूरे—पृ० १९ २०(प्र० सं० सन् १९६९ ई०)

कहाँ छिपी है वह मनहूस चीज जो वह कहता है, मैं इस घर स अपने अन्दर लेकर गयी हूँ ? बताओ मम्मी, क्या है वह चीज ? कहाँ पर है वह इस घर म ?''[1]

दुविधाग्रस्त बीना पूरे परिवार की दुदशा का कारण पिता को मानती है। अत वह पिता से सघष छेडती है। इसस महेन्द्रनाथ बहुत चिढता है। वह क्रोध म पूछता है-- मैं जानना चाहता हूँ कि मेरी क्या यही हसियत है इस घर में कि जो जब जिस वजह स जो भी कह दे, मैं चुपचाप सुन लिया करूँ ? हर वक्त की घतकार, हर वक्त की कोच, बस यही कमाई है यहाँ मेरी इतने सालो की ? इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है एक भी ऐसी वजह कि क्यो मुझे रहना चाहिए इस घर म ? अधिकार, रुतबा इज्जत यह सब बाहर के लोगो से मिल सकता है इस घर को। इस घर का आज तक कुछ बना है, या आगे बन सकता है, तो सिफ बाहर के लोगो के भरोसे। मेरे भरोस तो सब कुछ बिगडता आया है। और आगे बिगड ही बिगड सकता है। (लडके की तरफ इशारा करके) यह आज तक बेकार क्या घूम रहा है ? मेरी वजह स ? (बडी लडकी की तरफ इशारा करके) यह बिना बताये एक रात घर स क्या चली गयी थी ? मेरी वजह स । (स्त्री के बिल्कुल सामने आकर) और तुम भी इतने सालो स क्या चाहती रही हो कि ? मुझे पता है मैं एक कीडा हूँ जिसने अन्दर ही अन्दर इस घर को खा लिया है।''[2] इस प्रकार महेन्द्रनाथ स्वय को कोसते हुए अपना घर छोडकर जुनेजा के यहाँ चला जाता है। वह अपने घर नहीं लौटना चाहता।

सावित्री भी घर छोडने का और जगमोहन के साथ रहने का निणय करती है। लेकिन जगमोहन सावित्री को अब अपनी बनाना नहीं चाहता है। वह उसे बताता है कि वह समय बीत गया जब वह सावित्री को अपना बनाना चाहता था। सावित्री की आशा चूरचूर हो जाती है। ठीक उसी समय अशोक, ब्लड प्रेशर का दौरा पडने से अत्यन्त व्याकुल हुए महेन्द्रनाथ को अपने घर ले आता है।

प्रस्तुत नाटक का सघष नाटक के अन्त तक बना रहता है। प्रस्तुत नाटक का सघष वतमानकालीन मध्यवर्गीय परिवार की विचित्र परिस्थिति के बारे में कई प्रश्नों को जन्म देता है। परिणामस्वरूप प्रस्तुत नाटक अत्यधिक मार्मिक बन पडा है। महेन्द्रनाथ का सघष उच्च श्रेणी का सघष है। सघष का निर्वाह प्रभावकारी रीति से किया गया है। सघष क्रमश चरम सीमा को पहुँच गया है। सन्तानों का पारस्परिक सघष स्थूल तथा साधारण श्रेणी का सघष है। बीना का आन्तरिक सघष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का है।

---

१ मोहन राकेश--आधे अधूरे--पृ० ३२ ३३ (प्र० स० सन् १९६९ ई०)

२ वही, पृ० ४३ ४४ ४५ ।

(उ) पति-पत्नी के एक-दूसरे के प्रति सन्देह के कारण संघर्ष

सन्देह का कारण चाहे जो हो वह पति-पत्नी में संघर्ष का निर्माण सहज करता है। पारस्परिक विश्वास दाम्पत्य जीवन का सुदृढ़ आधार होता है। पति के मन में पत्नी के विषय में अथवा पत्नी के मन में पति के विषय में सन्देह उत्पन्न होने पर विश्वास को धक्का पहुँच जाता है और पति पत्नी में संघर्ष का आरम्भ होता है। प्रस्तुत संघर्ष सन्देह की समाप्ति तक चलता रहता है। इस संघर्ष को आधार बनाकर डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने 'अंधा कुआँ' (१९५५) और 'नाटक तोता मैना' (१९६२) इन नाटकों का निर्माण किया है।

अंधा कुआँ नाटक का आरम्भ भगौती और सूका (पति-पत्नी) के संघर्ष से होता है। इस संघर्ष का कारण सूका की सुन्दरता और इस सुन्दरता को लेकर भगौती में उत्पन्न सन्देह है। भगौती का ध्यान खेतीबारी में नहीं है। खेतीबारी का काम छोटा भाई अलगू करता है। भगौती अलगू के परिश्रम पर मनमानी करता है। भगौती गँजेड़ी है। वह ऐसे ही दोस्तों में रहता है। भगौती के बदचलन दोस्त उसके मन में सुन्दर सूका के बारे में सन्देह पैदा करते हैं। भगौती सूका को बहुत मार पीट करता है। चुगलखोर ननद नन्दो भी आग में तेल डालती है।

ब्याह हुआ है तब से सूका खूब पिटती रही। इससे तंग आकर सूका एक बार इन्दर नामक युवक के साथ कलकत्ता भाग गया। भगौती ने पुलिस से उसको पकड़वाया और महीनों मुकद्दमा चलने के बाद भगौती सूका को घर ले आया। तब से सूका की बहुत पिटाई होती है।

एक दिन आत्मघात करने के इरादे से सूका कुएँ में गिर जाती है। लेकिन वह कुआँ अंधा कुआँ निकलता है और सूका बच जाती है। उस समय सूका का पेट भगौती की लातों से पीटा जाता है। इससे सूका की कोख बाँझ हो जाती है।

अलगू और उसकी पत्नी राजी भगौती का विरोध करते हैं। इससे अलगू और भगौती में संघर्ष छिड़ता है। इसका परिणाम जायदाद के बँटवारे में होता है।

इन्दर सूका को फिर से भगाने का प्रयत्न करता है। लेकिन अब सूका भगौती का साथ छोड़ना नहीं चाहती। वह इन्दर का विरोध करती है। सूका अब समझती है कि उसके भाग्य में अच्छे दिन हैं ही नहीं। वह भगौती के अत्याचारों को स्वीकार करती है और कहती है-- मुझे खूब मालूम है—ऐसे कुएँ में एक बार गिरकर आजतक कोई जिन्दा बाहर नहीं निकला है—लेकिन मैं निकली हूँ। अंधा कुआँ यही है जिसके संग मैं ब्याही गयी हूँ—जिसमें एक बार मैं गिरी, और ऐसी गिरी कि फिर न उबरी। न कोई मुझे निकाल पाया न मैं खुद निकल सकी और न कभी निकल ही पाऊँगी। बस धीरे धीरे इसी में घुटकर मर जाऊँगी।"[1]

---

१ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल—अंधा कुआँ—पृ० १२९ (प्र० सं० सन १९५७ ई०)

इसमें सूका की, एक स्त्री की, एक पत्नी का अत्यन्त हृदयद्रावक विवशता व्यक्त हुई है।

भगौती सूका को संतान के लिए १८ वर्ष की लच्छी को सूका की सौत बनाता है। गँजेड़ी भगौती से भयभीत लच्छी को सूका माँ जैसी लगती है। निरीह लच्छी को देखकर सूका को लगता है कि लच्छी के रूप में उसे बेटी मिली है और वह (सूका) माँ बन गयी है। इस वात्सल्य के कारण सूका लच्छी को हीरा (जो लच्छी का मंगेतर रहा है) के साथ भगाती है।

भगौती को लगता है, लच्छी के भाग जाने में सूका और इंदर का हाथ है। वह पहले से ही इंदर से बदला लेना चाहता था। अतः भगौती इंदर से बदला लेने के इरादे से इंदर का घर जलाता है, उसे जलाता है, हरी फसल काटता है। परिणामस्वरूप एक दिन भगौती और इंदर में लाठी से लड़ाई होती है। इस लड़ाई में भगौती बुरी तरह घायल हो जाता है।

घायल भगौती को देखकर सूका का कलेजा फटता है। वह दिनरात भगौती की सेवा करती है। अगर वह सेवा न करती तो चोटों में कीड़े पड़कर भगौती मर जाता। कई बार सूका को लगा कि उस पर किये गये अत्याचारों का बदला लेने के लिए अच्छा मौका आया है। उस समय सूका में आंतरिक संघर्ष छिड़ता है। एक मन कहता है, अत्याचारी भगौती को मरने दो तो दूसरा मन कहता है सेवा से भगौती को जीत लो। सूका कुछ निर्णय नहीं कर पाती। फिर भी वह भगौती की सेवा करती है। सूका की सेवा से भगौती का कलेजा पसीजता है। वह सूका को प्रिय पत्नी के रूप में देखता है।

एक दिन मध्य रात के समय इंदर हाथ में नंगी कटार लिये भगौती के घर आ जाता है। घायल भगौती खाट पर सोया हुआ है। इंदर सूका को बताता है कि वह भगौती की हत्या कर सूका को ले जाने आया है। सूका इंदर का विरोध करती है। इंदर सूका की बात पर ध्यान नहीं देता। वह भगौती की ओर बढ़ता है। सूका क्षणभर भयभीत हो जाती है। लेकिन दूसरे ही क्षण सूका हाथ में गंडासा लेकर इंदर के विरोध में तनकर खड़ी हो जाती है और मर्दानी आवाज में गरजती है—"नामर्द कहीं का। यह घायल है लेकिन बेआसरा नहीं है।"[1]

सूका के मर्दानी रूप को देखकर इंदर सहम जाता है। सूका आगे बढ़ कर इंदर के हाथ पर गंडासे का प्रहार करती है। इंदर के बायें हाथ में चोट लगती है। उन्मत्त इंदर सूका के हाथ से गंडासा छीनने की कोशिश करता है। सूका इंदर को धमकाती है— मेरे जिन्दा रहते तू उसे नहीं मार सकता। मैं तेरा खून पी

---

1 डा० लक्ष्मीनारायण लाल–अंधा कुआँ–पृ० १५२ (प्र० सं० सन १९५७ ई०)

लूंगा।"[1] इन दोनों की छीना झपटी से भगौती नींद से जाग उठता है। लेकिन घायल भगौती खाट पर से उठ नहीं सकता। वह हाथ में जो भी कुछ लगता है, फेंक फेंक कर इन्दर को मारता है। इन्दर मूका के हाथ से गंडासा छीन लेता है। वह बायें हाथ में कटार और दायें हाथ में गंडासा लेकर भगौता की ओर झपटता है। मूका झटपट बीच में कूदता है। इन्दर के दोनों उठे हुए वार मूका पर सहा उतर जाते हैं। मूका भगौता की छाती पर गिर जाता है। बाहर से बलगू आदि लौटकर आते हैं और इन्दर को घेरते हैं। अपने स्थान पर दम तोड़ता हुई मूका को अपनी बाँहों से जकड़े भगौता करुण आवाज में चिल्लाता है—'मूका। मैंने अपनी मूका को मार डाला, मूका मूका मूका।'[2]

इस प्रकार बाह्य संघर्ष तथा आन्तरिक संघर्ष के कारण प्रस्तुत नाटक हृदय स्पर्शक बन गया है।

प्रस्तुत नाटक में स्थूल बाह्य संघर्ष की प्रधानता है। सबा और भगौता का बाह्य संघर्ष सामान्य श्रेणी का संघर्ष है। पर मूका का इन्दर से जो संघर्ष है वह उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष से मूका की पति विषयक सम्भावना का उद्घाटन हुआ है। इस दृष्टि से मूका का आन्तरिक संघर्ष भी उच्च श्रेणी का है। दोनों संघर्षों का निर्वाह प्रयत्न कुशलता से किया गया है। अतः दोनों संघर्षों की परिणति स्वाभाविक है।

नाटक तोता मैना (१९६२) नाटक में डा० लक्ष्मीनारायणलाल ने सन्देह से सम्बन्धित विश्वास अविश्वास को लेकर पति-पत्नी में जो संघर्ष चलता है, उसका प्रतीकात्मक ढंग से उद्घाटन किया है।

इस नाटक में तोता और मैना क्रमशः पुरुष और स्त्री के प्रतीक हैं। तोता स्त्री को विश्वासघाती, अविवेकी हठी तथा कान की कच्ची मानता है। मैना पुरुष को निर्दय तथा विश्वासघाती मानती है। परस्पर विरुद्ध दृष्टिकोणों को लेकर तोता और मैना में संघर्ष चलता है। दोनों अपने अपने दृष्टिकोण को सप्रमाण सिद्ध करने के हेतु लोगों में प्रचलित कंचनपुर के राजा अमरजीत और रानी चन्द्रमुखी की कथा का आधार लेते हैं। तोता और मैना कथा का वर्णन करते समय बीच बीच में वह कथा चलती हुई दिखायी गयी है। मैना के बहकावे में आयी हुई रानी में राजा के प्रति सन्देह उत्पन्न होता है। इस सन्देह के कारण रानी राजा से विश्वासघात करती है। फलतः राजा और रानी में संघर्ष चलता है। इस संघर्ष में रानी की मृत्यु होती है।

तोता राजा का पक्ष लेकर मैना से संघर्ष करता है, तो मैना रानी का पक्ष

१ डा० लक्ष्मीनारायण लाल—अंधा कुआँ—पृ० १५६ (प्र० सं० सन् १९५७ ई०)
२ वही, पृ० १५७

लेकर तोते से सघर्ष करती है। अन्त मे दोनों म समझौता होता है। दोनो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सभी पुरुष एक स नही होते हैं, सभी स्त्रियाँ एक सी नही होती। दोनो (जीवन रूपी) रथ की धुरी हैं।

प्रस्तुत नाटक के बाह्य सघर्ष के उदघाटन मे स्थूलता आ गयी है। बाह्य सघर्ष उच्च श्रेणी का सघर्ष है। इस सघर्ष म विवेक की जीत होती है और अविवेक को पराजित होना पडता है। सघर्ष का निर्वाह विशिष्ट कलात्मक कौशल स किया गया है। अत राजा और रानी क सघर्ष के साथ साथ तोता और मना के सघर्ष का अन्त भी स्वाभाविक प्रतीत होता है।

(ऊ) विशिष्ट धुन के कारण सघर्ष

पति अथवा पत्नी अथवा दोनो के भी विशिष्ट धुन के शिकार बन जाने के फलस्वरूप पति पत्नी मे सघर्ष चलता है। जब तक कोई अपनी विशिष्ट धुन त्यागने को तयार नही होता है, तब तक प्रस्तुत सघर्ष चलता रहता है। इस सघर्ष के सदभ म "सौदय प्रतियोगिता' और 'पाँच बडे" नाटक उल्लेखनीय हैं।

गोपाल शर्मा कृत सौंदय प्रतियोगिता" (१९५७) नाटक म पति की विशिष्ट धुन के कारण पति पत्नी म हास्य व्यग्यात्मक सघर्ष चलता है।

मध्यम वर्गीय धनीराम अपनी पचास वर्ष की उम्र मे सस्ती नेतागिरी की धुन मे अपने को अधिकाधिक आधुनिक तथा फशनबल बनान मे व्यस्त है। इस व्यस्तता के कारण धनीराम यह जानने की चेष्टा नही करता कि अपन घर मे क्या हो रहा है? पुत्र मदुल और कन्या विमला क्या करते हैं? पत्नी क्या चाहती हैं? धनीराम इस बात पर खुश है कि आज उसकी अध्यक्षता म "सौंदय प्रतियोगिता होने वाली है। इस खुशी म धनीराम, नाटक के आरम्भ मे, बालों का सँवारता हुआ नजर आता है। अपने पति को इस दशा मे दख कर माँ (धनीराम की पत्नी) झल्लाती है। वह पति की सस्ती नेतागीरी की धुन पर कडी चोट करती है। इस चोट से तडपता हुआ धनीराम प्रतिकार म बोल उठता है—

'धनीराम—मैंने कहा न, इन बडी बातो को समझने की तुम मे अक्ल नही है। अगर कल नौकरो की सभा मे भाषण देकर नाम न कमाता तो आज की सौंदय प्रतियोगिता मे मुझे कोई जज न बनाता। कितना बडा सम्मान मिला है मुझे। (फिर बाल सँवारने लगता है)

माँ— (चौककर) सौंदय प्रतियोगिता। हय हय हय (आकर कोच पर धम्म से बैठती है और रूमाल पर हाथ मारती है।) हाय भगवान! तो भले घर की लडकियो पर आँखें गडाकर भारत का झण्डा ऊँचा उठाने जा रह हो? अब समझी यह सौंदय बार बार तुम्हारे मुँह से लार की तरह क्यों टपक पड़ता था। मैं तो पहले ही उड़ती चिड़िया पह

चली गई थी ।

घनीराम— (बाल संवारकर कपड़ों के स्टैण्ड के पास टोपी उठाने के लिए आता हुआ रुकता है) तुम उड़ती चिड़िया भले ही पहचान लो मदुल की माँ मगर (अपनी ओर इशारा करता हुआ) इस पिंजरे में बन्द पखेरू को नहीं पहचान पाईं। (टोपी लगाकर मदुल के दरवाजे के पास खड़े होकर) मदुल, ओ मदुल।

माँ— (उस तरफ मुँह पलट कर) मदुल। ओ बेटा मदुल। इस तरह सायजा पचास की उमर में जवान छोकरियों को परखने

घनीराम— (झिड़क कर) चुप भी रहो। [1]

०० ०० ००

माँ— मैं हल्ला करूँगी। सारे मोहल्ले में शोर मचाऊँगी घर घर जाकर कहूँगी मदुल के सायजा को फागुन लग गया है

घनीराम— (चिल्लाकर) मदुल की माँ।

माँ— तुम्हारी धुड़कियों से अब मैं डरने की नहीं। जरा इन खिचड़ी बालों की लाज तो करो। अभी महीना नहीं हुआ दो दाँत निकलवाकर आए हो चले उन निर्लज्ज लड़कियों को परखने।

घनीराम— चुप रहो नहीं तो (बाहर के दरवाजे की ओर मुड़ता है।)

माँ— (दरवाजे की ओर झपटती हुई) मैं क्यों चुप रहूँ। कहे देती हूँ तुमने एक कदम भी घर के बाहर रखा तो मेरी लाश पर पैर रखकर जाना होगा। [2]

लेकिन माँ के दुर्भाग्य से पुत्र मदुल भी बाप की भाँति ही निकला। वह आज होने वाली सौन्दर्य प्रतियोगिता देखने के लिए बड़ा उत्सुक है। अतः वह भी माँ की बातों का विरोध करते हुए कहता है—

'मदुल— फिजूल बकवास बन्द करो माँ। तुम समय से बहुत पीछे हो।

माँ— मैं समय से पीछे हूँ? तुम तो इसी घर के चिराग बनकर निकले। जैसा बाप वैसा बेटा। अरे नारी की खूबसूरती तो उसकी लाज है लाज! छुपाओ नहीं तो इस मांस के लोंदे में धरा ही क्या है ?

घनीराम— मांस का लोंदा (जोर से हँसता है फिर गम्भीर होकर) हर एक चीज में एक रिदम— एक लय होती है। और जिस चीज में जितनी लय है इससे उसका सौन्दर्य परखा जाता है। [3]

---

१ गोपाल शर्मा-सौन्दर्य प्रतियोगिता-पृ० ८० (प्र० सं० सन १९५६ ई०)
२ वही, पृ० १५
३ वही पृ० १७

इस मामले में पुत्री विमला तो सबसे बढ़कर निकली। वह तो 'सौन्दय प्रतियोगिता' में भाग लेने के लिए स्वीमिंग सूट लाती है। उसे थोड़ा भी चिन्ता नहीं है कि आज उसे देखने के लिए जलगाँव वाले आने वाले हैं। वह माता पिता तथा भाई का बहिष्कार बता देती है कि वह सौन्दय प्रतियोगिता में भाग लेने जा रही है। यह सुनकर मृदुल विमला को मारने दौड़ता है। लेकिन विमला किसी से नहीं डरती। इससे धनीराम के सामने समस्या पैदा होती है। इस समस्या को सुलझाने के लिए वह विमला को समझाता है कि वह सौन्दय प्रतियोगिता में भाग न ले। लेकिन विमला किसी की नहीं सुनती। हर एक बात का जवाब उसके पास है।

'धनीराम— मुझे जरा लोक समाज का भी खयाल है।

विमला— यह खयाल सिर्फ मेरे ही लिए, आप के लिए कुछ नहीं ?

धनीराम— (भड़ककर) विमला (दाँत पीस कर–एकदम गुस्सा पीता हुआ) फिर यह सोचो कि मैं तुम्हें उस लिबास में कैसे देखूँगा ?

विमला— (कनखियों में देखकर शरारत भरी मुस्कान के साथ) आब्जेक्टिवली।

धनीराम— (तिलमिलाकर, ओठ चबाता हुआ स्तम्भित हो जाता है। भौंहे एक बार उठकर गिरती हैं फिर अपने को सम्हालकर) नहीं प्यारी बेटी, ऐसा नहीं हो सकता।

विमला— (दृढ़ता से) तो आप अच्छे जज नहीं होंगे।

धनीराम— (गुस्से से तमतमाकर) मैं सब तरह से समझा चुका हूँ विमला। मेरी बात मानकर तुम्हें यह इरादा छोड़ना होगा।

विमला— (उत्तेजित होकर) अगर आप इतने स्वार्थी हैं सायाजी तो हम दोनों में से कोई न जाएगा।

धनीराम— (जोर से) वनम स्टक।।

विमला— आप चाहे जितने नाराज हो लें मगर इस सौंदर्य प्रतियोगिता में न आप जाएँगे और न मैं।

धनीराम— प्यार और उपेक्षा की भी कोई हद होती है।

माँ— (प्रवेश करती हुई) और न दी महत्त्वाकांक्षा की कोई सीमा नहीं होती ?

धनीराम— तुम यहाँ क्या आई ? क्या आई यहाँ (जल्दी जल्दी अपना बैग और छड़ी उठाकर) मैं चला (दरवाजे की ओर बढ़कर) तुम सब पागल हो पागल। (रुककर पलटते हुए) और देखो विमला डोंट एक्ट फूलिशली समझी।

माँ— तुम गए तो मैं इस स्विमिंग सूट पहनाकर ही जलगाँव वालों के सामने ला दूँगी—हाँ।'[1]

धनीराम— (चिल्लाकर) जहन्नुम में जाओ तुम सब । यह घर क्या है नरक है नरक ।

माँ— अगर यह नरक है तो तुम उसके जमराज हो ।

धनीराम— (गरजकर) चुप रहो । तुम सब मेरा दिमाग पत्थर बनाए दे रहे हो । सौन्दर्य के मुलायम भाड़ों को रखने का मुझ में कोई ताकत बाकी न छोड़ोगे ।''[1]

धनीराम के निश्चय को स्वीकर माँ नारी सम्मान के लिए सौन्दर्य प्रतियोगिता" का विरोध करने का निश्चय करती है । माँ अपने निश्चय के अनुसार उस भवन के सामने विरोध प्रदर्शित करती रही जहाँ सौन्दर्य प्रतियोगिता हो रही थी । लेकिन धनीराम अपने निश्चय में परिवर्तन कर उस भवन पर नहीं गया था ।

संघर्ष की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक का प्रथम अंक ही महत्त्वपूर्ण है । इसमें पति-पत्नी की चिंता दृष्या की मार पत्नी की संघर्ष चरम-सीमा पर पहुँच जाता है । यह व्यक्ति व्यक्ति का संघर्ष हास्य विनोद का कारण बन गया है ।

प्रस्तुत बाह्य संघर्ष स्थूल संघर्ष है । धनीराम और उसकी पत्नी का संघर्ष सामान्य श्रेणी का संघर्ष है । पिता-पुत्री और भाई-बहन का संघर्ष भी सामान्य श्रेणी का संघर्ष है ।

चार द्वन्द्व के पाँच दृष्य नाटक में भी अपनी-अपनी विशिष्ट धुन के कारण पति पत्नी में संघर्ष है । भगवन्दास के परिवार का हर एक व्यक्ति धनी है । इन सबों का पारस्परिक संघर्ष है । भगवप्रसाद घर में दट-दट स्विराज संगीत की साधना करता है । वह संगीत शिरोमणि बनने का सपना देखता है । इनकी पत्नी चित्रा चित्रकला की साधना में निमग्न है । वह बड़ा चित्रकार बनने का सपना देखता है । दर सविता कविता करती रहती है । वह बहुत बड़ा लेखक बनने की इच्छा रखती है । पुत्र चन्द्रहास (मोन) अभिनय की साधना करता है । वह बहुत बड़ा सिनेमा हीरो बनने का सपना देखता है । हर एक सनकी और लापरवाह है । हर एक अपनी कला को श्रेष्ठ मानता है और दूसरे की कला की निन्दा करता है । वे एक-दूसरे पर व्यंग्य-बाण चलाते रहते हैं । इसमें संघर्ष छिड़ता है और हास्य का निर्माण होता है ।

प्रस्तुत नाटक का आरम्भ भाई-बहन के संघर्ष से होता है । यह संघर्ष हास्य व्यंग्य का सृजन इस प्रकार धारण करता है—

सविता—(चन्द्रहास की ओर मुड़ कर) क्यों ' पसन्द आया न तुम्हें मेरा कविता ? (चन्द्रहास मो लखन मुखातिब होता है) बर पागल । अभी तो मैं एक ही छन्द रच पाई हूँ । पूरी कविता

---

१ गणेश प्रसाद—सौन्दर्य प्रतियोगिता—पृ० २३–२९ (प्र० सं० सन १०५९ ई०)

चन्द्रहास—(कुछ बिचकाते हुए) क्या कहा दीदी ? तुमने कविता रची है। तुमने और कविता ? (बहुत जोर से हँसता है।)

सविता— (लगभग डाँटते हुए) चन्द्रहास। मैं कहती हूँ

चन्द्रहास—(हँसते हुए ही) हाँ हाँ, दीदी। तुम भी हँसो अपनी मूर्खता पर इस तरह (खिलखिलाता है)

सविता— (खड़ी होकर) मनस सीखो चन्द्रहास, मनम। हँसते वक्त तुम अच्छे खासे क्रैक दीखते हो।

चन्द्रहास—(थोड़ा आगे बढ़ता हुआ) क्यों नहीं, क्यों नहीं ! लेखक या कवियों को छोड़ कर तुम्हें सारी दुनिया में आदमी क्रैक ही तो नजर आते होंगे।"[1]

ठीक इसी प्रकार प्रस्तुत नाटक में अपनी-अपनी धुन को लेकर पति पत्नी का भी संघर्ष चलता है। नाटक के अन्त तक किसी का संघर्ष नहीं मिटता है।

प्रस्तुत नाटक का बाह्य संघर्ष स्थूल स्वरूप तथा अत्यन्त सामान्य श्रेणी का संघर्ष है। संघर्ष का निर्वाह ठीक ढंग से किया गया है।

२ माँ-बाप और उनकी सन्तान का संघर्ष

परिस्थिति विशेष में परस्पर विरुद्ध विचारधाराओं, जीवन विषयक दृष्टियों तथा मान्यताओं के कारण माँ बाप और उनकी संतानों में संघर्ष छिड़ता है। इस संघर्ष को लेकर लिखे गये नाटकों में से अधिकतर नाटकों में नयी-पुरानी धारणाओं को लेकर नयी पुरानी पीढ़ियों का संघर्ष है। स्वातन्त्र्योत्तर कालीन नाटकों में इस संघर्ष ने तीव्र रूप ग्रहण किया है जिसमें पुराने आदर्शों पुराने जीवन मूल्यों पर कठोर आघात हो रहे हैं।

इन नाटकों में बाह्य संघर्ष की प्रधानता है। तीव्र बाह्य संघर्ष के कारण इन नाटकों ने उद्‌बोधक रूप ग्रहण किया है।

(त) समझदार युवती का माता पिता से संघर्ष

आधुनिक युग की शिक्षित तथा बुद्धिवादी युवती का दावा है कि वह अपना हित-अहित सोचने समझने में समर्थ है। इस धारणा को लेकर वह अपने स्वतन्त्र अधिकारों के प्रति जागरूक है। अब वह माता पिता के कहने के अनुसार किसी युवक से विवाह करने के बदले स्वेच्छानुसार किसी युवक से विवाह करना अधिक हितकारक मानती है। परिणामस्वरूप माता पिता और कन्या में संघर्ष चलता है। इस संघर्ष को आधार बनाकर हिन्दी नाटककारों ने नाटकों का निर्माण किया है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत 'सिन्दूर की होली' (१९३४) नाटक में प्रेम और

---

१ वीरेन्द्र कश्यप—पाँच बड़े पृ० ११-१२ (प्रथमबार अभिनीत—सन् १९५७)

विवाह के बारे में परस्पर विरुद्ध दृष्टिकोणों के कारण मुरारीलाल और चन्द्रकला (पिता-पुत्री) का संघर्ष है। मुरारीलाल परम्परावादी है तो चन्द्रकला प्रगतिवादी तथा क्रान्तिकारी है। अतः चन्द्रकला का अपने पिता से जो संघर्ष है, वह प्रचलित वैवाहिक रूढ़ि से संघर्ष है।

रजनीकान्त को देखकर चन्द्रकला के मन में पहली बार प्रेम भावना जाग्रत हुई थी। उसी क्षण चन्द्रकला मन से रजनीकान्त की हो गई थी। चन्द्रकला ने रजनीकान्त को उस समय देखा था कि जब वह अत्याचारी भगवन्तसिंह के विरुद्ध शिकायत करने और संरक्षण पाने के उद्देश्य से डिप्टी कलक्टर मुरारीलाल के यहाँ आया था। इस प्रेम भावना के कारण ही चन्द्रकला अपने परम्परावादी तथा भ्रष्टाचारी पिता से संघर्ष छेड़ती है।

भगवन्तसिंह के साथियों द्वारा खूब पिटाई होने पर रजनीकान्त को उपचार के लिए अस्पताल में रख दिया गया। चन्द्रकला को ज्ञात हो जाता है कि इस अपराध को छिपाने के लिए अपने पिता ने भगवन्तसिंह से पचास हजार की रिश्वत ली है। चन्द्रकला का मन भ्रष्टाचारी पिता के विरुद्ध विद्रोह कर उठता है। वह पिता के विरोध तथा प्रतिष्ठा का विचार न करती हुई निर्भयता से अस्पताल जाती है और घायल रजनीकान्त की सेवा करने लगती है। इसमें मुरारीलाल की झूठी प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने की आशा और चन्द्रकला की सच्चे प्रेम को सुरक्षित रखने की आशा में संघर्ष आरम्भ होता है।

रजनीकान्त की मृत्यु के समय चन्द्रकला अस्पताल में ही रही। उसने रजनीकान्त की मृत्यु के पूर्व रजनीकान्त के हाथ से अपने माथे पर सिन्दूर लगाया। मुरारीलाल अनुभव करने लगा कि अपनी प्रतिष्ठा को चन्द्रकला ने बहुत बड़ा धक्का पहुँचाया है। वह क्रुद्ध हो कर चन्द्रकला को डाँटने लगता है। इसमें पिता-पुत्री का संघर्ष तीव्र बन जाता है। कम वय उम्र की चन्द्रकला पिता से स्पष्ट शब्दों में कह देती है कि वह आज विधवा हो गई। इतना कहने पर भी चन्द्रकला को सन्तोष नहीं मिलता। वह किसी भी स्थिति में पिता से तथा विवाह सम्बन्धी प्रचलित रूढ़ियों से समझौता करने को तैयार नहीं होती। अतः चन्द्रकला इस संघर्ष में पिता के घर का त्याग कर स्वावलम्बन के पथ पर अग्रसर होने का निर्णय करती है। मुरारीलाल चन्द्रकला को रोक नहीं सकता। क्योंकि वह अपनी (मिथ्या) प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपनी भी चिन्ता को छोड़ नहीं पाता।

उपर्युक्त बाह्य संघर्ष के साथ-साथ प्रस्तुत नाटक में मनोज और बालविधवा मनोरमा का क्षीण आन्तरिक संघर्ष है। मनोज को बताया गया है कि उसके पिता ने आत्मघात कर लिया है। मनोज का मन विश्वास नहीं करता कि अपने पिता ने आत्मघात कर लिया होगा। उसके सामने प्रश्न यह उठता है कि क्या वह सचमुच

आत्मघाती पिता का पुत्र है ? इस प्रश्न को लेकर मनोज हीन ग्रंथि का शिकार बन जाता है। कभी उसे लगता है, पिता न आत्मघात नहीं किया होगा तो कभी लगता है किया होगा। इससे मनोज में विश्वास-अविश्वास का सघर्ष छिड़ता है। मनोज को इस सघर्ष से तभी मुक्ति मिलती है जब उसे ज्ञात होता है कि उसके पिता ने आत्मघात नहीं कर लिया है बल्कि मुरारीलाल द्वारा हत्या की गई है।

समाज की परम्परागत मान्यता के अनुसार बालविधवा मनोरमा पुनर्विवाह नहीं कर सकती। अत मनोरमा जब मनोज के प्रति आकर्षित हो जाती है, उसमे प्रेम और परम्परागत मान्यता का सघर्ष आरम्भ होता है। मनोरमा मे चन्द्रकला की भाँति रूढ़ि भजन का साहस नही है। फलत वह अपने वैधव्य को ही सार्थक मानती है और मनोज से पुनर्विवाह न करने का निर्णय करती है।

चन्द्रकला का बाह्य सघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का वैचारिक सघर्ष है। इस सघर्ष का निर्वाह व्यवस्थित हो पाया है। इस सघर्ष के सन्दर्भ मे चन्द्रकला का निर्णय ठीक प्रतीत होता है।

मनोज और मनोरमा का आन्तरिक सघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का सघर्ष है।

विनोद रस्तोगी न "नये हाथ" (१९५८) नाटक मे जमींदार की बदली हुई परिस्थिति के सन्दर्भ मे नये मूल्यों का पुराने मूल्यों से सघर्ष दिखाकर नये मूल्यों को हितकारी सिद्ध किया है। इस सघर्ष के सन्दर्भ मे तीसरे अक मे नवमतवादी माला का परम्परावादी माता पिता से क्रातिकारी सघर्ष है।

जमीदारी चली जाने के कारण अजयप्रताप की आर्थिक स्थिति अच्छी नही है। फिर भी वे अपनी पुरानी शान बनाये रखना चाहते हैं। अजयप्रताप और उनकी पत्नी माधुरी पुराणमतवादी हैं। ये दोनो राजा नरेन्द्रपाल के कर्ज से मुक्त होने के लिए एक युक्ति की सहायता लेते हैं। अपनी सयानी, पढ़ी लिखी बेटी माला का विवाह नरेन्द्रपाल के बड़े महेन्द्रपाल से करने का निश्चय करते हैं। महेन्द्रपाल और उसकी बहन शालिनी ने योरोप मे उच्च शिक्षा प्राप्त की है। दोनो नये विचारों के समर्थक हैं। दोनो भी जाति पाति आदि भेद भावो को नही मानते। दोनों नारी स्वातन्त्र्य के समर्थक हैं। ये दोनों प्रचलित वैवाहिक मर्यादाओं के प्रति विद्रोह करते हैं।

महेन्द्रपाल और शालिनी अजयप्रताप के घर अतिथि के रूप मे आ जाते हैं। इनके आने से पुरानी और नई मान्यताओं का सघर्ष चलता है। महेन्द्रपाल ने देखा कि माला सहपाठी सतीश से प्रेम करती है जो धनाभाव के कारण गरीब है। सतीश की गरीबी के कारण माला का विवाह सतीश से नहीं किया जा सकता। माला माता पिता के सामने दब्बू बनकर रहती है। महेन्द्रपाल को यह अच्छा नहीं लगता। वह

माला को अपना अधिकार पाने के लिए माता पिता से संघर्ष करने को प्रेरित करता है। सुन्दर की बातों से उत्तेजित होकर माला माँ बाप के पुराने विचारों से संघर्ष करती है। वह माता पिता को स्पष्ट कह देती है कि मैं अब बड़ी हूँ, अपना भला बुरा सोच-समझ सकती हूँ। अन्त में सत्यप्रकाश और मालती को माला की बात को स्वीकार करना पड़ता है। वे माला की सगाई कराने में लग गए हैं। सुन्दरलाल भी अजयप्रकाश की नौकरानी बाला (वास्तव में जो अजयप्रकाश की जाई कन्या है) से विवाह निश्चित करता है। क्योंकि दोनों एक दूसरे को चाहते हैं। अन्त में व्यक्ति व्यक्ति का तथा नये पुराने मूल्यों का संघर्ष समाप्त होता है-संघर्ष की दृष्टि से नाटक अति प्रभावशाली है।

प्रस्तुत नाटक का बाह्य संघर्ष श्रेष्ठ श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष में नई पीढ़ी के क्रांतिकारी विचारों की जीत हुई है। यह जीत अत्यन्त स्वाभाविक है।

प्रस्तुत नाटक के तीसरे अंक में संघर्ष का चित्रण कलात्मक कौशल से किया गया है।

(ध) बुद्धिवादी युवक का पिता या दादी से संघर्ष

आधुनिक युग का शिक्षित तथा बुद्धिवादी युवक अपने अधिकारों के प्रति बहुत जागरूक है। वह स्वेच्छानुसार किसी युवती से विवाह करना पसन्द करता है। वह यह नहीं देखता कि युवती किस जाति या किस धर्म की है। परिणामस्वरूप युवक और उसके रूढ़िवादी पिता में संघर्ष का आरम्भ होता है। इस संघर्ष का चित्रण 'नया समाज' (१९५) और 'न धर्म न ईमान' (१९७०) इन नाटकों में किया गया है।

"नया समाज' में उदयशंकर भट्ट ने रमाशंकर के परिवार में नई धारणाओं और पुरानी धारणाओं के सम्बन्ध में सुधारवादी पुत्र और परम्परावादी पिता का संघर्ष दिखाया है।

मुनहुव जमींदार मनोहरसिंह अपनी रईसी शान को सदा ही बनाये रखने का प्रयास करता है। वह पुराने विचारों का है। लेकिन उसका बड़ा चन्द्र बी० ए० तक पढ़ा लिखा नये विचारों का युवक है। परिणामस्वरूप पिता-पुत्र में संघर्ष चलता है। चन्द्र ईसाई लड़की रोज से प्रेम करता है। हिन्दू धर्म को मानने वाले पिता को यह पसन्द नहीं आता। मनोहर मानता है कि रोज के आगमन से अपना घर अपवित्र हुआ है। अतः घर को पवित्र बनाने के लिए वह घर में गंगाजल छिड़कना चाहता है। इस बात को लेकर पिता-पुत्र में इस प्रकार संघर्ष होता है—

'चन्द्र—दुनिया बहुत बदल गई है।
मनोहर—शायद तुम्हारी आँखें भी।
चन्द्र—मेरी आँखें दुनिया के साथ हैं।

मनोहर–इसलिए कि कमजोर हैं । हमारे बाप-दादा कमजोर नही थे ।
चन्दू— लेकिन आज सबके बाप दादा कमजोर हो गए हैं ।
मनोहर–आँखें बन्द कर लेने पर सब जगह अधेरा दीखता है बेटा ।
चन्दू—यह तो मुझे कहना चाहिए ।''[1]

इस प्रकार बाप बेटे का सघप पुरातनता और आधुनिकता के सघप का रूप धारण करता है । आगे चलकर मनोहरसिंह में मत परिवतन हो जाता है। पिता पुत्र का सघप समाप्त होता है लेकिन रीटा चन्दू को धोखा देती है । तब चन्दू रूपा से विवाह करना चाहता है । लेकिन रूपा मनोहरसिंह की जारज कन्या होने के कारण रूपा से चन्दू का विवाह नही हो सकता । रूपा का विवाह धीरू से होता है ।

इस नाटक म जमीदार मनोहरसिंह की लडकी कामना मे अन्तद्वन्द्व है । कामना को किताबें पढ़ने का शौक है । धीरू कामना को बहुत चाहता है । कामना भी उसका आदर करती है, पर उससे प्रेम नही कर सकती । क्योकि धीरू कुरूप है। कामना उसे प्रेम करना चाहती है जिसकी आखें मनोहरसिंह की आँखो की भाँति सुन्दर होगी । इसे वह यूरॉसिस कहती है, एलॅक्ट्राकाम्पलेक्स कहती है। इस कारण से वह पुरुष वेशधारी रूपा से प्रेम करती है । क्योकि उसकी आँखें पिता की आँखो के समान हैं । अत कामना निणय नही कर पाती कि धीरू को अपना बनाया जाय या रूपा को ?

प्रस्तुत नाटक का वचारिक बाह्य सघप उच्च श्रणी का है । इस सघप की समाप्ति स्वाभाविक है । इस सघप मे नई धारणाओ की जीत हुई है । कामना का आन्तरिक सघप सूक्ष्म तथा साधारण श्रेणी का सघप है ।

रेवतीसरन शर्मा कृत "न धम न ईमान' नाटक म प्रेम और विवाह से सम्बन्धित परस्पर विरुद्ध मान्यताओ के कारण दिनेश का दादी तथा पिता से सघप है । दिनेश बुद्धिवादी तथा नवमतवादी युवक है । दिनेश के पिता और दादी परपरा वादी हैं । इसका परिणाम दिनेश और दादी म तीव्र सघप चलने म होता है।

दिनेश और दया एक-दूसरे से प्रेम करत हैं । दिनेश दया को अपनी पत्नी बनाना चाहता है । दिनेश जानता है कि दया का परिवार अपने दादा और पिता का आश्रित रहा है । इस कारण से ही दया अपने यहाँ नौकरानी है । दिनेश प्रेम म उच्च नीच भेदभावो का नही मानता । वह दया को अपनी बनाने के लिए प्रतिबन्धो से सघप करने का दृढ निश्चय करता है । इस निश्चय के कारण ही दिनेश दादी (पिता की विमाता) के विरोध पर तीव्र सघप छेड़ता है । दिनेश भी जिद्दी है और दादी भी । दोनो अपनी अपनी मान्यता पर डटे रहते हैं । फलत दिनश और दादी का सघप नाटक के आरम्भ से अन्त तक चलता रहता है ।

---

१ उदयशकर भटट–नया समाज–पृष्ठ १३ (द्वि० स० सन् १९६३ ई०)

दादी पुराना प्रथाओं को मानने वाली है। दादी दिनेश का विवाह लता से नहीं करना चाहती। इसके दो कारण हैं। एक यह कि दादी सामाजिक स्थिति का ध्यान में रखकर ऊँच-नीच के भेद भाव को मानती है और अपने को उच्च घर की तथा लता को नीच घर का मानती है। दूसरा कारण यह है कि दादी जानती है कि लता के बाप रामप्रसाद दूर के रिश्ते में दिनेश के पिता के भाई लगते हैं। अतः दादी बहन भाई के विवाह को अस्वीकार करती है। उसकी यह धारणा है कि रिश्ता दूर का हो या पास का रिश्ता रिश्ता होता है।

लेकिन दिनेश दादी की धारणा का तिरस्कार करता है। परिणामस्वरूप अपमान से क्रुद्ध हुए दादी और अपनी इच्छापूर्ति के लिए विद्रोही बने हुए दिनेश में संघर्ष चलता है। विमाता के स्वाद में पड़ा दिनेश का पिता दादी और पोते का संघर्ष पुरानी आस्था और नवीन आस्था का संघर्ष रोक नहीं पाता। दादी और पोता अपनी अपनी आस्था को लेकर एक-दूसरे की मान्यता पर प्रहार करते हैं—

दिनेश—(पलटकर) लेकिन मैं करूंगा यह सब बचपन की बात बिलकुल बकवास है।

दादी— (क्रोध में) क्या ?

पिता— (जोर से टूटे स्वर में) तू खामोश हो जा दिनेश।

दादी— यह खामोश क्यों होगा। अपना कहने से जा।

दिनेश—(भावावेश में मुट्ठी भींचकर) लता मेरा बहन नहीं है।

दादी— (उतने ही जोर से) वह है।

दिनेश—वह नहीं है, क्योंकि बहन वह होती है जो बाप के पराग से फूटती है माँ की कोख से लगती है।

दादी— और जो रिश्ते का होता है ?

दिनेश—वह नाम और शायम के उन पेड़ों की तरह होता है जो पास-पास और नीम और जामुन होते हुए भी एक-दूसरे के भाई-बहन नहीं होते।

दादी— मगर यह आदमियों की बात है। उनकी शादियाँ नहीं हो सकतीं।

दिनेश—क्यों नहीं हो सकती ?

दादी— क्योंकि शास्त्र मना करते।

दिनेश—किस लिए मना करते ?

पिता— (तनिक क्रोध में आकर) दिनेश, इसमें बहस न करो। शास्त्रों की हर बात के पीछे कारण होता है।

दिनेश—इसके पीछे क्या कारण है ?

पिता— शायद यह है कि एक ही खून में शादी करने से नस्ल कमजोर हो जाती है।

दिनेश—गलत। मुसलमानों में यह रिवाज है। अंग्रेजों में रिवाज है। उनकी नस्ल कमजोर है ?

दादी– मैं अपन धम की बात करती हूँ ।

दिनेश–मैं भी उसी की बात करता हूँ । अगर शास्त्र नस्ल अच्छा बनाने की खातिर ही ऐसा कहते हैं तो फिर वे अपनी ही जात और अपने ही धम मे शादी करने को क्यो कहते हैं ? क्या नही कहते दूसरी जातो, दूसरे धर्मों और दूसरी नस्लो में शादी करने को ? ताकि खून ज्यादा से ज्यादा बच सके ? नस्ल अच्छी से अच्छी बन सके ?

दादी– तुझे बनानी है तो तू बना । दया छोड किसी महरी कहारी से शादी कर ले ।

दिनेश–कर लेता (अपने पर सयम करते हुए) अगर मुहब्बत हो जाती । लेकिन मेरा फैसला हो चुका है । मैं शादी करूँगा तो दया से करूँगा, वरना नही करूँगा ।

दादी– तो न कर । तेरे क्वारा रहने से यह दुनिया खाली न हो जायगी ।'[१]

इस सघष म दिनेश पिता का घर छोडकर बाहर चला जाता है । इधर दादी दया का विवाह एक अधेड उम्र के–रामदयाल नामक–मुनीम से कर देती है । वहाँ दया भीतर ही भीतर घुटकर तपेदिक का मरीज बनती है । एक दिन खून की उल्टी होकर दया की दशा गम्भीर बन जाती है । दिनेश एक अच्छे डाक्टर के द्वारा दया का इलाज कराता है । इस इलाज म दिनेश अपना खून दया को देता है । इस इलाज से स्वस्थ हुई दया विद्रोही बन जाती है और सभी बधनो को तोडकर दिनेश के पास चली आती है ।

"दया—आज मैं आजाद हूँ । उनका जो कुछ मुझ मे था, मैंने खून के साथ थूक दिया है । आज अगर मुझ म किसी का कुछ है, तो तुम्हारा है ।

दिनेश– (चौंककर) दया ।

दया— हाँ दिनेश । आज पहली बार मैं अपनी हूँ । बेझिझक उसकी हो सकती हूँ जिसकी थी ।"[२]

दया ब्याह के पहले दिनेश की थी । अत वह दिनेश की होकर रहने का निणय करती है । अब दादी की कुछ नहीं चलती । इसके अतिरिक्त दिनेश का पिता भी खुलकर दादी का विरोध करता है और दिनेश दया के मिलन का समर्थन करता है । फलत दया दिनश की बन जाती है ।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक के प्रथम और ततीय अक में व्यक्ति व्यक्ति का सघष अत्यन्त प्रभावशाली है । इस सघष ने स्थूल स्वरूप धारण किया है । श्रेणी की दृष्टि से प्रस्तुत सघष उच्च श्रेणी का है । इस सघष मे नए विचारो का जीतना स्वाभाविक है ।

---

१ रेवतीसरन शमा–न धम न ईमान–पृ० १४–१६ (प्र० स० सन १९७० ई०)

२ वही, पृ० ७५ ।

(द) बुद्धिवादी भाई-बहन या रूढ़िवादी माता पिता से संघर्ष

बुद्धिवादी तथा क्रान्तिकारी भाई-बहन समाज सुधार की क्रान्ति का आरम्भ अपने घर से करते हैं। वे अपने माता पिता के रूढ़िग्रस्त विचारों पर निष्ठुर प्रहार करते हैं। परिणामस्वरूप क्रान्तिकारी भाई-बहन और परम्परावादी माता पिता में तीव्र संघर्ष चलता है।

अलग अलग रास्ते (१९५४) नाटक में उपेन्द्रनाथ अश्क ने नारी स्वातन्त्र्य का समर्थन करने वाले क्रान्तिकारी भाई बहन का पुराणपंथी पिता से संघर्ष दिखाया है।

दहेज में मकान और मोटर न मिलने के कारण रानी का पति त्रिलोक और उसके रिश्तेदार रानी को बहुत अपमानित कर घर से बाहर निकाल देते हैं। उधर रानी की छोटी बहन राज का पति प्रोफेसर मदन गुलशन नामक स्त्री से दूसरा ब्याह कर लेता है। राज का दाम्पत्य जीवन उजड़ता है। इन अन्यायकारी घटनाओं से पूरन और रानी क्रुद्ध हो जाते हैं। ताराचन्द का बेटा पूरन और बेटी रानी दोनों पढ़े लिखे हैं। साथ ही साथ दोनों भी स्पष्टवक्ता, त्याग का पक्षपात करनेवाले, जाति पाँति को न मानने वाले विघातक परम्पराओं को नष्ट करने के लिए क्रान्ति चाहने वाले हैं। अतः इन्हें पुराणमतवादी पिता की तथा पिता के साथियों की बातें पसन्द नहीं आतीं। दोनों क्रान्तिकारी बन जाते हैं। दोनों को भी यह पसन्द नहीं आता कि धर्म तथा परम्परा के नाम पर किसी पर अत्याचार होता रह जाय। दोनों भी पति को पत्नी का परमेश्वर नहीं बल्कि साथी मानते हैं, जिसका अपनी पत्नी के प्रति कुछ उत्तरदायित्व होता है। वे सोचते हैं कि इस देश में पुरुष को निर्दोष स्त्री पर मनमाना अत्याचार करने का स्वातन्त्र्य है। परन्तु पुरुष के अत्याचारों से पीड़ित स्त्री को मुक्त होने का स्वातन्त्र्य नहीं है। तभी तो परम्परावादी ताराचन्द वगैरह आदि रानी और राज को अपने-अपने पति के घर भेजने का प्रबन्ध करते हैं। राज तो पति के घर जाने को तैयार होती है। लेकिन रानी तैयार नहीं होती।

अपने मान तथा स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिए रानी विद्रोह के मार्ग को अपनाती है। वह दृढ़ता पूर्वक पिता से कह देती है— 'मैं वहाँ नहीं जाना चाहती। जिस व्यक्ति के समीप चन्द हजार के एक मकान का मूल्य मेरे मान से कहीं अधिक है जो मुझे नहीं मकान को चाहता है मैं उस लोलुप की शक्ल तक नहीं देखना चाहती।'[1] लेकिन ताराचन्द रानी की क्रान्तिकारी बातों को अधर्म की बातें मानता है। रानी ताराचन्द के पुराणमतवाद पर तीखा व्यंग्य कसती है— "आपके धर्म की बातें मैंने बहुत सुन लीं पिताजी आपका धर्म भी पुरुषों का धर्म है।"[2] इस व्यंग्य से घायल होकर

१ उपेन्द्रनाथ अश्क—अलग-अलग रास्ते—पृ० १४४ (द्वि० सं० सन् समय का अनुल्लेख)
२ वही पृष्ठ १४६।

ताराचन्द धमकाने के स्वर में रानी को पति के घर जाने का आदेश देता है । रानी निर्भीकता से कह देती है-- 'मैं इस आदेश का पालन नहीं कर सकती ।'[1] ताराचन्द चिल्लाकर रानी से पूछता है--"तू अपने पति के घर जायगी या इस घर में भी न रहेगी !"[2] उत्तर में रानी साफ साफ कह देती है--'मैं इस घर को भी नमस्कार करती हूँ।'[3] इससे कुपित होकर ताराचन्द रानी तथा पूरन को अपने घर से बाहर निकल जाने की आज्ञा देता है । उस समय पूरन रानी से कह देता है-- चलो रानी इन पिताओं और पतियों में कोई अन्तर नहीं ।[4] यहाँ संघर्ष चरम सीमा पर पहुँचता है ।

इस संघर्ष में रानी और पूरन पिता के घर का त्याग कर नये क्रान्तिकारी एवं स्वावलम्बी मार्ग पर अग्रसर हो जाते हैं । प्रतिनिधिक दृष्टि से रानी और पूरन किसी व्यक्ति से नहीं, बल्कि व्यक्ति को रूढ़ि रूपी बन्धन में जकड़ने वाले समाज से संघर्ष कर रहे हैं । इस वास्तविकता के अनुसार प्रस्तुत नाटक का संघर्ष सूक्ष्म संघर्ष है । इस संघर्ष में रानी और पूरन का निर्णय स्वाभाविक है । अतः प्रस्तुत संघर्ष श्रेष्ठ श्रेणी का है । इस संघर्ष का निर्वाह अत्यन्त कलात्मक कौशल से किया गया है ।

इन्द्रसेनसिंह 'भावुक' ने 'परिवार के शत्रु' नाटक में नवीन सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के सन्दर्भ में जमींदार के परिवार में नारी स्वातन्त्र्य का समर्थन करने वाले भाई बहन का परम्परावादी पिता से संघर्ष दिखाया है । प्रस्तुत संघर्ष पुरानी मान्यताओं और नवीन मान्यताओं का संघर्ष है ।

ठाकुर रणविजयसिंह का बड़ा पुत्र रामसिंह दुराचारी है । वह मक्कार फेरुसिंह और पहाड़सिंह की सहायता से अनेक दुष्कर्म करता रहा है । राम का पुत्र कमल सदाचारी तथा परिश्रमी है । कमल की दुराचारी पिता से नहीं पटती । अतः पिता पुत्र में संघर्ष चलता रहता है । कमल अपने परिवार की दुरवस्था का कारण ठाकुर की ढीलढाल को मानता है । अतः कमल की ठाकुर से भी नहीं पटती । क्योंकि ठाकुर अपनी वास्तविकता को छिपाकर पुरानी शान बनाये रखने का प्रयास करते हैं तो कमल बदली हुई परिस्थिति के अनुकूल नये जीवन का आरम्भ कर देना चाहता है ।

कमल की बहन भगवती ससुराल वालों से तंग आकर मायके लौट आती है । दहेज में सौ तोला सोना न मिलने के कारण भगवती को सताया गया । कमल अत्याचारियों को सबक सिखाने के हेतु भगवती के ससुरालवालों पर मुकदमा चलाता है ।

---

१ उपेन्द्रनाथ अश्क--अलग अलग रास्ते--पृष्ठ १४७ ।

२ वही--पृष्ठ १४७ ।

३ वही--पृष्ठ १४७ ।

४ वही--पृष्ठ १४७ ।

इस मुकदमे में हारने की संभावना देखकर भगवती का पति समझौते के लिए आ जाता है। लेकिन कमल और भगवती किसी की बात नहीं मानते। दोनों नारी के स्वावलम्बन का तथा सम्मान का समर्थन करते हैं। कमल भगवती को पति के पास नहीं भेजता। भगवती भी पति के पास जाने को अस्वीकार कर देती है। पुराणपंथी पिता और उनके साथी कहते रहते हैं कि भगवती को किसी भी हालत में पति के पास ही रहना चाहिए। लेकिन कमल और भगवती नारी के स्वावलम्बन तथा सम्मान के लिए विघातक परम्परा से विद्रोहात्मक संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष में कमल और भगवती को नये पथ पर अग्रसर होने के लिए गृह-त्याग करना पड़ता है। कमल और भगवती का निर्णय योग्य तथा स्वाभाविक है।

प्रस्तुत संघर्ष उच्च श्रेणी का वैचारिक संघर्ष है।

नरेश मेहता रचित 'खण्डित यात्राएँ' (१९६२) नाटक में परम्परावादी पिता से नवमतवादी भाई बहन का वैचारिक संघर्ष है। पुराने रईस मुरलीबाबू को अपनी सन्तान का साधारण नौकरी करना अच्छा नहीं लगता है। वे चाहते हैं कि बड़ी नन्दिता और बेटे मदन को कोई अच्छी नौकरी करनी होगी। क्योंकि इससे ठीक ढंग से जीवन निर्वाह भी होगा और घराने की पुरानी प्रतिष्ठा भी सुरक्षित रहेगी। लेकिन नन्दिता और मदन पिता की इच्छा की उपेक्षा करते हैं और जो नौकरी अपने को प्रिय लगती है वही करते हैं। नन्दिता कालेज में पढ़ाने की नौकरी करती है। मदन अखबार की नौकरी करता है। नन्दिता और मदन जानते हैं कि उन्हें नई परिवर्तित परिस्थिति में जीवित रहना है, तो अपनी इच्छा के अनुकूल नौकरी करना ही ठीक है। फलस्वरूप नौकरी की बात को लेकर पिता और भाई बहन में वैचारिक संघर्ष चलता रहता है। दोनों पक्ष अपनी अपनी बात पर अड़े रहते हैं।

मुरलीबाबू मदन का विवाह वीना वर्मा के बजाय किसी और लड़की से करना चाहते हैं। लेकिन मदन वीना वर्मा से ही विवाह करना चाहता है। क्योंकि वह वीना से प्रेम करता है। वह इस प्रेम में पिता की किसी भी बात को स्वीकार करने को तैयार नहीं होता है। इस सम्बन्ध में वह वीना से कहता है-- मैं सब कुछ अस्वीकारना चाहता हूँ। मैं किसी आरोपित मूल्य परम्परा को नहीं स्वीकारता। ये सब भुस भर गए हैं। पापा अपना जीना जी चुके हैं मैं इन विक्टोरियन युग की यात्रा की लाशों को नहीं ढो सकता। मैं अपना मार्ग चाहता हूँ। मैं अपनी शान्ति चाहता हूँ।[1] मदन की इच्छा के कारण पिता पुत्र में संघर्ष चलता है मदन वीना से ही विवाह करता है।

विवाह के पश्चात वीना न मुरलीबाबू से न नन्दिता से न मदन से अच्छा बर्ताव करती है। चारों ओर से निराश हुए मुरलीबाबू की दुःखद मृत्यु हो जाती है।

---

१ नरेश मेहता–खण्डित यात्राएँ–पृ० ३८ (प्र० सं० सन् १९६२ ई०)

इस मृत्यु के बाद बीना की फैशन परस्ती के कारण महेन और बीना मे इतना अनिष्ट सघर्ष छिडता है कि उसकी परिणति बीना के घर छोडकर चले जाने म होती है।

प्रस्तुत नाटक म पिता पुत्री का सघर्ष तथा पिता पुत्र का सघर्ष सूक्ष्म वैचारिक सघर्ष है। यह उच्च श्रेणी का सघर्ष है। परन्तु इस सघर्ष मे न पिता के न भाई बहन के विचारो की जीत होती है। नाटककार न इस सघर्ष का निर्वाह समुचित रीति से नही किया है। आगे चलकर महेन और बीना के सघर्ष को अधिक स्थान दिया गया है। यह सघर्ष साधारण श्रेणी का है।

विष्णु प्रभाकर कृत "युगे-युगे क्राति (१९६९) नाटक म राजनीतिक सामाजिक तथा पारिवारिक समस्याओ के स दभ म पुरानी पीढी और नयी पीढी का, पुरानी आस्था और नयी आस्था का, पुरानी मान्यताओ और नयी मान्यताओ का सघर्ष है। यह सघर्ष हर एक युग मे हुआ है और हो रहा है। प्रस्तुत सघर्ष प्रति क्रियावादी माता पिता और उनके नवमतवादी बेटी-बेटे के बीच चल रहा है।

इस सघर्ष को व्यक्त करने के लिए नाटककार ने विशिष्ट ढग को अपनाया है। नाटक के आरम्भ मे सूत्रधार को देवी प्रसाद से भेंट दिखायी है। सूत्रधार देवी प्रसाद से कह दता है-- मैं क्राति की खोज मे निकला हूँ और उसे मैं अपने नाटक के पात्रो के माध्यम से खोजना चाहता हूँ। [1] इस कथन के पश्चात कुछ व्यक्ति आपस में सघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। इन व्यक्तियो म से कोई सन् १८५७ के आस पास के युग का प्रतिनिधि है, तो कोई सन १९०१ क युग का है, कोई सन् १९२० २१ के युग का है कोई सन १९४२ के युग का, तो कोई अति आधुनिक युग का प्रतिनिधि है। हर एक अपन को सच्चा क्रातिकारी सिद्ध करने के लिए दूसरे से लडता है।

तदन तर सूत्रधार देवीप्रसाद को दिखाता है कि हर एक व्यक्ति अपने अपने युग मे किस प्रकार क्रातिकारी रहा है। सन १८५७ के प्रतिनिधि व्यक्ति कल्याण सिंह और रामकली हैं। इन दोनो का रिश्ता पति-पत्नी का है। उन दिनो मे दिन म पत्नी का मुँह देखना निषिद्ध माना जाता था महापाप माना जाता था। कल्याण सिंह रामकली का मुख देखने क लिए बहुत अधीर होता है। इसके लिए वह प्रथा के विरुद्ध क्रातिकारी कदम उठाने का निश्चय करता है। लेकिन रामकली परम्परा गत मर्यादा का उल्लघन नहा करना चाहती है। तब कल्याणसिंह उस समझाने की कोशिश करता है--'इसमे बेशर्मी और बेअदबी की क्या बात है? क्या तुम मेरी घरवाली नही हो?' [2] लेकिन रामकली पति की बातो म नहा आना चाहती।

१ विष्णु प्रभाकर--युगे-युग क्राति--पृष्ठ ८ (प्र० स० सन १९६९ ई०)
२ वही पृ० १३ १४।

कल्याणसिंह फिर एक बार पत्नी को समझाने की कोशिश करता है। वह बहुत हृदयस्पर्शी प्रश्न पूछता है--

कल्याण- सच सच बताना तुम्हारा मन नहीं करता कि तुम मुझे देखो ?

रामकली--यह सच है कि मेरा मन तुम्हें अच्छी तरह देखने को करता है।

कल्याण--तो देखती क्यों नहीं ?

रामकली--डर जो लगता है।

कल्याण--उसमें भला डरने की क्या बात है ? तुम मुझे प्यार करती हो मैं तुम्हें प्यार करता हूँ और जो किसी को प्यार करता है वह उसे देखना भी चाहता है। हम दोनों अगर एक दूसरे को देखना चाहते हैं तो इसमें गुनाह कहाँ से आ गया।[1]

दोनों ने एक रास्ता निकाला और दिन में एक दूसरे के मुँह को देख लिया। इस क्रांतिकारी बात से क्रुद्ध हुए पिता ने कल्याणसिंह को खूब पीटा। लेकिन युवक कल्याणसिंह अपनी क्रांतिकारी बात पर अड़ा रहा। वह पिता से नहीं डरा।

पच्चीस वर्ष बाद सन् १९०१ में कल्याणसिंह के बड़े पुत्र प्यारेलाल ने विधवा से विवाह कर क्रांतिकारी कदम उठाया। इस बात से क्रुद्ध होकर प्रतिक्रियावादी कल्याणसिंह पुत्र को खून करने की धमकी देता है। सुधारवादी प्यारेलाल पिता की धमकी से नहीं डरता। वह पिता का घर छोड़ता है और विधवा कलावती से विवाह कर लेता है। प्यारेलाल विश्वास करता है कि विधवा से विवाह करने में समाज तथा धर्म का हित ही है। लेकिन प्रतिक्रियावादी कल्याणसिंह समझ रहा था कि इससे समाज तथा धर्म का अहित होगा। इसलिए पिता पुत्र में संघर्ष छिड़ता है।

सन् १९२०-२१ में महात्मा गांधी के नेतृत्व में आरम्भ हुए असहयोग आन्दोलन में प्यारेलाल की पुत्री शारदा सम्मिलित होती है। प्यारेलाल को यह अच्छा नहीं लगता कि शारदा घर की चारदीवारी लाँघकर समाज में खुले मुँह घूम रही है। वह भरे बाजार में शारदा के गाल पर थप्पड़ मारता है। उस समय से शारदा नारी स्वातन्त्र्य का समर्थन करती है। वह स्वयं संयुक्त प्रान्त की अग्रवाल होते हुए भी पंजाब के मित्र विमल से विवाह कर लेती है। प्यारेलाल खूब विरोध करता रहा पर असफल रहा।

सन् १९४२ में शारदा का पुत्र प्रदीप कोर्ट में जाकर ईसाई जनेट से शादी कर लेता है। वह माता पिता के साथ संयुक्त परिवार में नहीं रहता। वह अपनी पत्नी को लेकर अपना घर बसाता है। शारदा की कन्या सुरेखा अपने भाई की क्रांति का समर्थन करती है। शारदा और विमल का विरोध व्यर्थ सिद्ध होता है।

पच्चीस वर्ष बाद प्रदीप का पुत्र अनिरुद्ध और उसकी अविवाहिता मुक्त भोगी बन

---

1 विष्णु प्रभाकर--युग-युग क्रान्ति--पृ० २१।

जाते है, किसी से भी प्रेम करते हैं। अविता अपने विवाह का निमन्त्रण पत्र माता पिता को भेजती है। प्रदीप का विरोध कुछ कर नही पाता।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक मे प्रत्येक नयी पीढी का पुरानी पीढी से संघर्ष है। यह संघर्ष पुराणपंथी और नवपंथी का है, प्रतिक्रियावादी और सुधारवादी का है। इस संघर्ष मे नये विचारो की जीत स्वाभाविक लगती है। प्रस्तुत संघर्ष उच्च श्रेणी का वचारिक संघर्ष है। इस संघर्ष के निर्वाह के लिए नाटककार ने विशिष्ट ढंग तथा कौशल को अपनाया है। क्योकि नाटककार ने प्रस्तुत नाटक मे शाश्वत संघर्ष पर प्रकाश डाला है। यह संघर्ष इसलिए शाश्वत संघर्ष है कि आज की विद्रोही पीढी कल की सनातनी पीढी बन जाती है। अत प्रस्तुत संघर्ष सदा बना रहने वाला संघर्ष है।

(घ) सन्तान की धनलोलुपता के कारण संघर्ष

धनलोलुप संतान धन से अधिक प्रेम करती है। वह उसी व्यक्ति से प्रेम करती है जिससे धनलाभ होगा। धनलोलुप संतान माँ बाप का आदर भी धन प्राप्ति के आधार पर करती है। यदि धन प्राप्ति नही होती है तो वह माता पिता से भी घृणा करने लगती है। ऐसी स्थिति मे माता पिता और उनकी संतान मे संघर्ष का आरम्भ हो सकता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क के 'छठा बेटा' (१९४०) नाटक मे स्वार्थ परायण तथा धनलोलुप पुत्रो से वृद्ध तथा असहाय पिता का संघर्ष है। प० बसन्तलाल के कठोर व्यवहार से तंग आकर दयालचन्द्र (छठा बेटा) घर से भाग गया है। कोई उसे ढूँढने की चेष्टा नही करता है। सभी अपने-अपने कामो मे मग्न रहते हैं।

प० बसन्तलाल के रिटायर होने पर कोई बेटा पिता को अपने पास रखने को तैयार नही होता। प० बसन्तलाल ने अधिकाधिक पैसा व्यसनो मे खर्च किया है। अत निर्धन पिता को कोई बेटा अपने पास रखना नही चाहता। प्रत्येक बेटा पिता से घृणा करता है। असहाय प० बसन्तलाल बडे बेटे हंसराज के पास हठात रहते हैं। पुत्रो की घृणा से व्याकुल हुए प० बसन्तलाल का मन स्वार्थी पुत्रो से संघर्ष करने लगता है।

एक दिन अचानक प० बसन्तलाल को लाटरी मे तीन लाख रुपये मिल जाते हैं। धनलोभी बेटे पिता की खुशामद करते है और अपने अपने नाम कई हजार रुपये लिखवा लेते हैं। पिता के पुन निर्धन बनने पर पाँचो पुत्र पिता से पुन घृणा करने लगते हैं। पुत्रो की कृतघ्नता को देखकर पंडित बसन्तलाल चिन्तित हो जाते हैं। उनका मन पुत्रो के प्रति विद्रोही बन जाता है। परन्तु प्रत्यक्ष विरोध अथवा संघर्ष के रूप मे कुछ कर नही पाते। इस प्रकार की स्थिति मे प० बसन्तलाल सपने मे, अपने आधार के रूप में अपने छठे बेटे दयालचन्द को देखते हैं। लेकिन नींद खुलने पर प० बसन्तलाल देखते हैं कि उनके पास आधार के रूप मे न दयालचन्द है न

कार्ड और पुत्र। पुत्रों की घृणा से मुक्त होकर सम्मान से जीने की इच्छा करने वाले पं० बसंतलाल को उसी घृणा के साथ रहना पड़ता है। उनका संघर्ष उन्हें सम्मान का जीवन प्रदान करने में असफल रहता है।

पं० बसंतलाल का बाह्य संघर्ष सूक्ष्म स्वरूप का संघर्ष है। क्योंकि बातों अथवा क्रियाओं के द्वारा उस संघर्ष की अभिव्यक्ति बहुत कम हुई है। श्रेणी की दृष्टि से पं० बसंतलाल का संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। परन्तु उस संघर्ष में उनकी सद्भावना को पराजित होना पड़ता है। क्योंकि उनकी सद्भावना सपने की ही वस्तु रह जाती है। वह यथार्थ में उतर नहीं जाता।

भगवतीचरण वर्मा रचित 'रुपया तुम्हें खा गया' में परिवार की विचित्र स्थिति में मानिकचन्द का क्षीण आंतरिक संघर्ष है।

मानिकचन्द ने अपने मित्र किशोरीलाल को धोखे में डालकर दस हजार रुपया चुरा लिया था। उन्हीं रुपयों के बल पर मानिकचन्द बड़ा व्यापारी बन गया। मानिकचन्द ने अपने जीवन का उद्देश्य बना रखा—धन कमाना, अकारण धन संग्रह करना। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि मानिकचन्द अपने मानसिक संतोष को भी बैठा। वह आंतरिक संघर्ष का शिकार बन गया।

नाटक का आरम्भ मानिकचन्द की बीमारी और अर्धविक्षिप्त-सी मनःस्थिति को लेकर होता है। मानिकचन्द अपने ही घर में बीमार है। पर उसकी देखरेख के लिए न पत्नी को, न पुत्र को, न कन्या को फुरसत है। तीनों पैसा पाने में और पैसे के बल पर सुख भोजन में व्यस्त हैं। इस वास्तविकता को देखकर मानिकचन्द में आन्तरिक संघर्ष आरम्भ होता है। उसमें परस्पर विरुद्ध भावनाओं—मोह और घृणा का संघर्ष छिड़ता है। मानिकचन्द में पैसे और अपनों के प्रति घृणा की भावना प्रबल बनती है। परन्तु मोह की भावना मानिकचन्द को पैसे तथा अपनों से सम्बन्ध विच्छेद नहीं करने देती। परिणामस्वरूप मानिकचन्द निर्णय नहीं कर पाता। उसका आन्तरिक संघर्ष चलता रहता है।

मानिकचन्द का आंतरिक संघर्ष परस्पर विरुद्ध विचारों का सूक्ष्म संघर्ष है। इस संघर्ष के निर्वाह में नाटककार की कलात्मकता बहुत कम दिखाई देती है।

३ बहन भाई और भाई-भाई का संघर्ष

पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित कुछ नाटकों में बहन भाई तथा भाई भाई के संघर्ष को स्थान दिया गया है। इन नाटकों में परस्पर विरुद्ध मान्यताओं, इच्छाओं के फलस्वरूप संघर्ष का आरम्भ हुआ है।

उपेन्द्रनाथ अश्क लिखित 'अंजो दीदी' (१९५५) नाटक में बहन भाई के संघर्ष के रूप में परस्पर विरुद्ध दो मान्यताओं का संघर्ष है।

अनुशासनप्रिय अंजली मानती है कि हर एक को अपना-अपना काम नियम

पूवक करना चाहिए। इस मा यता के अनुसार अजली अपने घर को घडी सा बना रखने मे सफलता पाती है। इस सफलता को बनाय रखन के लिए अजली बहुत सत कता बरतती है। वह पति इन्द्रनारायण और पुत्र नीरज को अपनी इच्छा के अनु सार बर्ताव करने को स्वात त्र्य नहीं देती।

लेकिन एक दिन अजली का भाई श्रीपत एक जबदस्त चुनौती के रूप में अजली के सामन उपस्थित होता है। श्रीपत का आगमन होते ही परस्पर विरुद्ध दो मा यताओ का सघष छिडता है। श्रीपत पारिवारिक जीवन को नीरस बनाने वाले अनुशासन को ठकराता है। वह घर की हँसी खुशी को नष्ट करन वाले शिष्टाचारो को नही चाहता। श्रीपत की अनुशासनहीन बातों से अजला की सफलता को भारी ठेस लग जाती है। इससे अजली और श्रीपत की भिन्न मा यताओ म सघष आरम्भ होता है। यह सघष क्रमश तीव्र बन जाता है। अपने पति को श्रीपत की बाता म रुचि लेते हुए देखकर अजली प्रक्षुब्ध हो जाती है। श्रीपत के साथ इन्द्रनारायण के मदिरा पीने पर अजली की सफलता चूर चूर हो जाती है। वह इस धक्के का जीते जी सहन नहीं कर पाती। वह आत्मघात कर लेती है।

अजली की मृत्यु के पश्चात नीरज की पत्नी ओमी अजली का रोल निभाती है। पर तु श्रीपत फिर एक वार आता है और इस परिवार को हानिकारक अनु शासन से सदव के लिए मुक्त करता है।

सघष की दृष्टि से प्रथम अक अधिक मार्मिक बन पडा है। श्रीपत और अजली का वचारिक सघष उच्च श्रेणी का सघष है। इस सघष का निवाह प्रभाव शाली रीति स किया गया है। प्रस्तुत सघष क्रमश चरमसीमा की ओर अग्रसर हुआ है।

विनोद रस्तोगी कृत 'बफ का मीनार' (१९६६) नाटक मे आरम्भ से अ त तक ममी और विलियम के सघष क रूप में बहन भाइ का, व्यक्ति व्यक्ति का और परस्पर विरुद्ध जीवननिष्ठाओं का सघष है। नाटक के अ त मे ममी और विलियम का सघष चरम सीमा पर पहुँचता है और ममी से सम्बन्धित एक रहस्य जाहिर होता है।

विलियम और ममी की लडकी मोना मे आ तरिक सघष चल रहा है, जो भीतर ही भीतर भयकर रूप धारण कर रहा है। ततीय अक म बाह्य तथा आ त रिक सघष का विस्फोट हो जाने पर विलियम और मोना ममी के कैदखाने से मुक्त हो जाते हैं।

निडर तथा स्पष्टवक्ता विलियम अच्छा तरह जानता है कि ममी कितनी चालाक, कितनी धूत्त और स्वार्थी है। वह मौका पाते ही ममी की वक्त की पाबन्दी पर तथा ममी के ढोंग पर तीखे प्रहार करता है। इससे भाई-बहन का सघष तीव्र

बन जाता है और नाटक म तनाव उत्पन्न होता है ।

विलियम और ममी क जीवन विषयक दृष्टिकोणों म अंतर है । ममी वक्त की पाबन्दी को महत्वपूर्ण मानती है तो विलियम इंसान का वक्त से बहुत बड़ा मानता है । विलियम को ममी का कृत्रिम शिष्टाचार, दिखावा बहुत अखरता है । लेकिन अपनी विवशता क कारण वह ममी क यहाँ ठहरा हुआ है । ममी विलियम का उपकार क बोझ क नीचे दबाकर तथा उस पर अधिकार जताने की चेष्टा करती है । पर मतवाला विलियम ममी की पकड़ म नहीं आ पाता ।

विलियम ममी स सम्बन्धित एक रहस्य जानता है । वह इस रहस्य का प्रकट करने क बारे म निर्णय नहीं कर पाता । फलस्वरूप उसम आन्तरिक संघर्ष तीव्र बन जाता है । वह आन्तरिक संघर्ष का भुलाने क लिए ममी स पैसे लेकर बहुत शराब पीता है । वह कभी शराब क लिए पैसे का माँग करता है ममी स संघर्ष छिड़ता है । इस संघर्ष म विलियम और ममी वहन नफरत क साथ एक दूसर पर प्रहार करते हैं । ऐसी स्थिति म ममी को विलियम का व्यंग्य भरी हँसी बहुत चुभती है । तिलमिलाती हुई ममी विलियम को डाँटती है—

'ममी—डोंट लाफ आई से ! हँसना बन्द करो ! विलियम !
मुझे तुम्हारी हँसी स डर लगता है ।
विलियम—मेरी हँसी स नहीं, तुम्हें अपने स डर लगता है सिस्टर ।
(हाथ बढ़ाकर) लाओ पाँच का नोट ।
ममी—तुम्हारा माँगें मैं कब तक पूरा करती रहूँगी ? तुम्हारा यह शराब सारा कब खत्म होगा ?
विलियम—मेरी जिन्दगी क साथ । लाओ रुपये दो । मुझे देर हो रही है सिस्टर, जब मैं होश म रहता हूँ तो मुझे व बातें याद आती हैं जिन्हें मैं भूलना चाहता हूँ । उनमें स कुछ बातें ऐसी भी हैं जिन्हें शायद तुम भी (गूढ़ दृष्टि स देखता हुआ वाक्य अपूर्ण छोड़ देता है ।)'[1]

इस प्रकार विलियम और ममी बड़ी निर्ममता स लड़ते झगड़ते हैं । ममी ने पैसा पाने के लिए अपने यहाँ पत्रकार सरोज, कवि एवं चित्रकार राजीव और हर दीप (यह मोना का प्रेमी है इसका वास्तविक नाम अल्बर्ट है) को पेइंगगेस्ट क रूप में रखा है । ममी पैसे पाने में देर होने पर किसी पेइंग गेस्ट को भोजन नहीं देती । लेकिन वह अपनी उदारता क दिखावे क लिए पशु पक्षी को खाना खिलाती है । एक दिन ममी राजीव और विलियम को भोजन नहीं देती । विलियम गरज कर ममी स कहता है—

विलियम—मैं नदी म नहीं हूँ । मैं कुत्ता नहीं हूँ । इंसान हूँ । राजीव भी इंसान

१ विनोद रस्तोगी—बर्फ की मीनार—पृ० २३-२४ (प्र० सं० सन् १९६६ ई०)

है । तुमने कुत्ते को खाना दिया, मगर इंसान को भूखा रखा । तुम्हें शर्म आनी चाहिए ।

ममी--(लगभग चीखकर) गेट आउट फ्राम हियर ।

विलियम--(उसी तरह चीखकर) चीखो मत । डोंट शाउट आई से । मैं तुम्हारे हुक्म पर दुम हिलाने वाला टामी नहीं हूँ मैं विलियम हूँ । विलीदगुड । और तुम । तुम क्या हो ? तुम्हारा घिनौना चेहरा तुम्हें दिखाऊँ ? (हँसता है) डरो मत आज नहीं फिर कभी दिखाऊँगा । जब मैं बेहोशी की हालत में हूँगा । आज तो होश में हूँ होश में हूँ । (ममी के विरोध करने पर भी विलियम भूखे और बीमार राजीव को एक गिलास दूध मोना द्वारा दिलवाता है ।)

ममी-- (तेजी से) तुम मेरे सब कायदे कानून तोड़ रहे हो ।

विलियम--हाँ हाँ । क्योंकि विलीदगुड इस मुर्दाघर में जिन्दगी फूँकना चाहता है इस काली झील की वह मनहूस काई हटाना चाहता है जिसके नीचे जिन्दगी के खूबसूरत फूल दफन हैं, इस कैदखाने को घर बनाना चाहता है । होम स्वीट होम ।"[1]

भाई-बहन का संघर्ष क्रमश उग्र रूप धारण करता है । विलियम राजीव को अपनी कला के द्वारा सच्चाई के लिए बेबसों के हित के लिए लड़ने की प्रेरणा देता है । इस प्रेरणा से राजीव अपनी शक्ति को पहचानता है और ममी के कैदखाने को छोड़कर दुनिया के मैदान में उतर जाता है । सरोज भी विलियम की प्रेरणा से ममी की कैद से मुक्त हो जाता है ।

विलियम मोना को भी ममी की कैद से आजाद होने की चेतावनी देता है । मोना को विलियम का कहना पसन्द आता है, पर वह स्वतंत्र होने का निर्णय नहीं कर पाती । एक ओर ममी है, तो दूसरी ओर प्रेमी अलबर्ट । इनमें से किसी एक के चुनाव के बारे में मोना तब तक निर्णय नहीं कर पाती जब तक उसमें आन्तरिक संघर्ष चलता है । अन्त में विलियम की ही प्रेरणा से मोना ममी का साथ छोड़ने और अलबर्ट के साथ चले जाने का निर्णय करती है । इससे मोना का आन्तरिक संघर्ष समाप्त हो जाता है ।

स्वयं विलियम भी ममी की कैद से मुक्त होने का निर्णय करता है । लेकिन ममी का घर छोड़ने के पहले विलियम मोना के सामने ही ममी के घिनौने चेहरे पर पड़ा शराफत और मासूमियत का नकाब उठाता है । इससे यह रहस्य प्रकट होता है कि ममी (मिसेज चार्ल्स) ने अपने पति चार्ल्स का खून किया है । मिसेज चार्ल्स ने किसी दूसरे सम्बन्ध से मोना को जन्म दिया है । प्रिय बहनोई की हत्या में अत्यन्त दुखी होकर विलियम (जिसने फिलासफी से एम० ए० किया है) फौज में भरती हुआ

१ विनोद रस्तोगी-बर्फ की मीनार-पृ० ६४ (प्र० सं० सन् १९६६ ई०)

था। वहाँ युद्ध में उसने मरने की कोशिश की थी पर एक टाँग खोकर लौटा है। इस रहस्य को जानने के कारण विलियम में निरन्तर आन्तरिक संघर्ष चलता रहा है। वह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि यह रहस्य प्रकट किया जाय अथवा न किया जाय? लेकिन अन्त में वह निर्णय करता है और यह रहस्य प्रकट कर माला को ममी की कैद से स्वतन्त्र कर देता है। विलियम चले जाते समय ममी पर व्यंग्य के साथ प्रहार करता है— तुमने मास्टर का खून किया, मुझे जिन्दा लाश बनाया, माला की खुशियों पर नागिन बनकर कुण्डली मार बैठी हो। (तेज स्वर में) तुम बीवी, बहन और माँ नहीं बल्कि औरत के नाम पर एक कलंक हो कलंक।[1]

विलियम और ममी के तीव्र संघर्ष के कारण नाटक के अन्त तक तनाव बना रहता है। प्रस्तुत संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष के प्रकाशन में स्वच्छता आ गया है। इस संघर्ष में ममी की पराजय स्वाभाविक है। इस संघर्ष की परिणति विलियम आदि के घर छोड़कर चले जाने में होती है। इस संघर्ष के प्रभावकारी अंकन में नाटककार को सफलता मिली है। विलियम और माला का आन्तरिक संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का है।

कृष्णकिशोर श्रीवास्तव के 'नींव की दरारें' नाटक में माँ बेटों की दंवर भौजाई का व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष है। इसमें परिवार में सम्पत्ति बँटवारे की समस्या है।

पिता की मृत्यु के पश्चात् बड़ा पुत्र हेमन्त घर पर अपना पूरा अधिकार जताता है। पत्नी कंचन की बातों में आकर हेमन्त केवल अपनी सुविधा का विचार करता है। वह अन्य भाई छोटे भाइयों से बिना परामर्श किए अपने मन की करता रहता है। परिणामस्वरूप छोटे भाई शरद और हेमन्त में संघर्ष छिड़ता है। शरद और हेमन्त की पत्नी कंचन में भी संघर्ष छिड़ता है। मँझला भाई वसन्त मकान का बँटवारा चाहता है। माँ बेटों में एकता स्थापित करने का प्रयत्न करती है, पर उसे सफलता नहीं मिलती। एक दिन घर का बँटवारा हो ही जाता है। इस बँटवारे में माँ को जो कमरा दिया जाता है उसकी दीवार में दरारें हो दरारें हैं। कोई इन दरारों की चिन्ता नहीं करता। एक दिन भारी वर्षा में उस कमरे की पीछे की दीवार गिर जाती है, माँ का कमरा भी गिर जाता है और माँ नीचे दबकर मर जाती है।

नाटक के अन्त तक भाई भाई का संघर्ष चलता है। प्रस्तुत संघर्ष स्थूल तथा साधारण श्रेणी का संघर्ष है। प्रस्तुत संघर्ष का निर्वाह ठीक रीति से किया गया है।

३ आर्थिक विषमता से सम्बद्ध सामाजिक नाटक और संघर्ष तत्त्व

प्रसादोत्तर युग में साम्यवाद, समाजवाद और म० गांधी के ग्रामोद्धार सम्बन्धी

---

1. विनोद रस्तोगी—बर्फ की मीनार—पृ० १४८। (प्र० स० सन् १९६६ ई०)

सिद्धान्तों से प्रभावित होकर हिंदी नाटककारों ने आर्थिक विषमता से सम्बद्ध नाटकों की रचना करके विषम अर्थव्यवस्था मिटाने और सम अर्थव्यवस्था स्थापित करने का क्रांतिकारी संदेश दिया है। इस संदेश के संदर्भ में आर्थिक विषमता से सम्बद्ध सामाजिक नाटकों में अपने उद्धार के प्रति जागरूक शोषितों का धनलोभी शोषकों से संघर्ष है।

१ शोषित मजदूरों का संघर्ष

कुछ नाटकों में मालिक मजदूर के वर्ग संघर्ष को स्थान दिया गया है। इन नाटकों में एक ओर शोषक वर्ग अपना शोषण नीति की रक्षा के लिए सजग है तो दूसरी ओर शोषित वर्ग आर्थिक समता के लिए सतर्क है। समुचित अधिकारों को पाने के हेतु मजदूर पूँजीवादी तथा बुर्जुआ मिल मालिक की शोषण-नीति के विरुद्ध हड़ताल करते हैं प्रक्षोभक घोषणा तथा भाषण देते हैं।

कुछ नाटकों में विषम अर्थव्यवस्था से पीड़ित दीन दलित तथा मध्यम-वर्गीय लोग क्रांतिकारी व्यक्ति के नेतृत्व में पूँजीपतियों के विरुद्ध योजनापूर्वक संघर्ष छेड़ते हैं।

इन नाटकों में बाह्य संघर्ष की प्रधानता है। परस्पर विरुद्ध मान्यताओं को लेकर जो व्यक्ति व्यक्ति का संघर्ष है वह प्रातिनिधिक दृष्टि से समूह-समूह का संघर्ष है। क्योंकि इनमें से कोई व्यक्ति पूँजीवादी शोषकों का प्रतिनिधि है तो विरोध करने वाला व्यक्ति जनक्रांतिकारियों का प्रतिनिधि है।

वर्ग संघर्ष क्रमशः चरम सीमा पर पहुँचकर समाप्त होता है। मजदूरों के सामने मिल मालिक के झुकने पर संघर्ष मिट जाता है।

इन सभी नाटकों में संघर्ष की परिणति स्वाभाविक नहीं, अपितु कृत्रिम है। पूँजीवादियों में जो परिवर्तन दिखाया गया है वह स्वाभाविक तथा संगत नहीं लगता है। इस संघर्ष का प्रदर्शन स्थूल है। इस संघर्ष में क्रांतिकारियों के सद्विचार कार्य कर रहे हैं। अतः प्रस्तुत संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है।

डा० गोविन्ददास कृत 'हिंसा या अहिंसा' नाटक वर्ग संघर्ष पर आधारित है। इसमें अत्याचारी मिल मालिक से पीड़ित मिल मजदूरों का आर्थिक न्याय की माँग के लिए संघर्ष है।

मिल मालिक माधवदास की द्वितीय भार्या सौदामिनी महत्त्वाकांक्षी स्त्री है। वह धन को बढ़ाने के लिए हिंसा के मार्ग को पसन्द करती है। दुर्गादास (माधवदास की प्रथम पत्नी का पुत्र) भी धन वृद्धि के लिए हिंसा के मार्ग को पसन्द करता है। सौदामिनी और दुर्गादास अपनी अन्यायकारी नीति की रक्षा के हेतु मजदूरों का दमन करते हैं। परिणामतः वर्ग संघर्ष का आरम्भ हो जाता है।

त्रिलोचनपाल के नेतृत्व में मिल मजदूर आर्थिक न्याय की माँगों के लिए संघर्ष छेड़ते हैं। दुर्गादास गोली चलाकर त्रिलोचनपाल की हत्या करता है। इस

हृदया के बाद स्वयं दुर्गादास आत्मघात कर लेता है। इस घटना के घटने से माधव दास की भी मृत्यु हो जाती है। सौदामिनी की हिंसा प्रिय वृत्ति के कारण संघर्ष भयंकर परिणाम में परिणत होता है।

इस नाटक में वर्ग-संघर्ष के रूप में व्यक्ति और समूह का संघर्ष है ही, साथ साथ व्यक्ति और व्यक्ति का भी संघर्ष है। व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष परस्पर विरुद्ध दो जीवन निष्ठाओं का संघर्ष है। सौदामिनी अपने जीवन में धन और हिंसा को महत्व को स्थान देती है। सौदामिनी की छोटी बहन अलकनन्दा सेवा और अहिंसा को महत्वपूर्ण मानती है। परन्तु सौदामिनी और अलकनन्दा में संघर्ष छिड़ता है। अलकनन्दा बहन की अन्यायकारी नीति के विरुद्ध आवाज उठाती है। वह मजदूरों का साथ देती है। सौदामिनी और अलकनन्दा का संघर्ष नाटक के अंत तक चलता है। श्रमी की दृष्टि में अलकनन्दा का संघर्ष उच्च श्रमी का संघर्ष है। इस संघर्ष में अलकनन्दा का सद्विचार प्रकट हुआ है।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन रचित 'मुकुट' में भी आर्थिक समस्या के संदर्भ में ही संघर्ष है। मिल मालिक रायबहादुर जगन्नाथचन्द्र का बेटा कल्याण पूरा कारोबार अपने हाथों में लेता है और मजदूरों के साथ अन्याय का बर्ताव करता है। कल्याण की बहन कमला मजदूरों का साथ देती है। डा० मोहन (मिल मजदूर के अस्पताल में डाक्टर हैं) भी मजदूरों का साथ देता है। मजदूर अपनी माँगों के लिए मिल मालिक से संघर्ष छेड़ते हैं। यह संघर्ष तभी भड़कता है जब कल्याण के षड्यंत्र में मजदूर गोपाल की एक टाँग टूट जाती है एवं हाथ बेकाम हो जाता है। डा० मोहन और कमला के नेतृत्व में मजदूर गोपाल के लिए तथा अपने लिए कुछ अधिकार पाने की इच्छा से हड़ताल करते हैं। मोहन मजदूरों को उत्तेजित करते हुए कहता है-- 'तुम लोग उस स्वर्ण युग के निर्माता हो जिसमें कि गरीबी और उससे उत्पन्न दुःख नहीं रह जायगा। तुम्हारा फौलाद चाहे जितना ठोस हो उस स्वर्ण युग के निर्माण में सहायक होगा। धीरज पूर्वक उसके लिए कष्ट सहन को तैयार रहो। सोना तपने पर ही चमकता है।'[1] मोहन के कहने के अनुसार मजदूर अपना संघर्ष तीव्र बनाते हैं। संघर्ष चरम सीमा पर पहुँचने पर रायबहादुर जगन्नाथचन्द्र अत्याचारी कल्याण को घर से दूर भेजते हैं और स्वयं मजदूरों की माँगें पूरी करने का वचन देते हैं। इसमें मालिक मजदूर का संघर्ष समाप्त होता है।

इस नाटक में मालिक मजदूर (शोषक शोषित व्यक्ति समूह) के संघर्ष के साथ-साथ व्यक्ति-व्यक्ति का भी संघर्ष है। रायबहादुर जगन्नाथचन्द्र को कमला का डा० मोहन से प्रेम करना अखरता है। परिणामस्वरूप पिता-पुत्री में संघर्ष चलता है। कल्याण को कमला तथा डा० मोहन का मजदूरों के प्रति हमदर्दी रखना अच्छा

१ सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन-मुकुट-पृ० ६५ (सं० सं० सन् १९६० ई०)

नहा लगता है । फलस्वरूप भाई बहन मे सघष छिडता है।

व्यक्ति और समूह के सघष के साथ ही व्यक्ति और व्यक्ति के सघष की समाप्ति होती है ।

हरिकृष्ण प्रेमी कृत "बन्धन" नाटक भी मिल मालिक और मजदूरो के वग सघष पर आधारित है । एम० ए० तक पढा हुआ मोहन और उसकी बहन सरला मिल मजदूरो की दुरवस्था सुधारने का प्रयास करते हैं । मिल मालिक का बेटा प्रकाश और बेटी मालती भी अत्याचारी पिता के विरुद्ध सघष छेडते हैं और मजदूरो की दुरवस्था सुधारने के लिए मोहन का साथ देते हैं । मोहन अत्याचारी सेठ का प्रतिकार गांधीवादी माग से करता है । अत मजदूर अहिंसात्मक माग के अनुसार हडताल करते हैं ।

सेठ अपने लाभ के लिए मिल बन्द कर देता है । पर मजदूर अपनी हडताल ब द नही कर देते । मोहन मजदूरो को पूँजीवाद को समाप्त करने की प्रेरणा देकर सघष तीव्र बनाता है । तीन महीनो के पश्चात सेठ का हृदय परिवतन होता है । वह मजदूरो की माँगो की पूर्ति का वचन देता है । इससे व्यक्ति और समूह के सघष की समाप्ति होती है ।

इस नाटक म प्रकाश और मालती का अपने पिता स जो सघष है, वह व्यक्ति व्यक्ति का सघष है । यह सघष परस्पर विरुद्ध विश्वासों का सघष है । इस सघष की भी समाप्ति वग सघष के साथ ही होती है ।

विनोद रस्तोगी कृत 'आजादी के बाद नाटक म भी मजदूर नेता अजित के नेतृत्व म मजदूर आर्थिक न्याय की माँग के लिए हडताल के रूप म सघष छेडते हैं । अन्त म मिल मालिक मानिकच द को मजदूरो के आगे झुकना पडता है । इसस व्यक्ति और समूह के सघष की समाप्ति होती है ।

इस नाटक म क्रान्तिकारी पुत्र रमेश और कन्या नीला का अत्याचारी पिता (मानिकचन्द) से सघष है । बुजुआ मानिकच द के विचारो में और क्रान्तिकारी रमेश तथा नीला के विचारो म आकाश पाताल का अन्तर है । इस अन्तर के कारण पिता और उसकी स तानो म वचारिक सघष छिडता है । अन्त मे रमेश और नीला के विचारो का जीत होती है । इस प्रकार इस नाटक में व्यक्ति-व्यक्ति के सघष के रूप म वचारिक सघष है ।

डा० लक्ष्मीनारायणसिंह विरचित धरती और आकाश नाटक में पूँजीवादी लक्ष्मीपति स छोटे भाई ज्ञानच द का सघष है । ज्ञानचन्द अत्याचार पीडित मजदूरो का पक्ष लेकर भाई से सघष करता है । अन्त में ज्ञानचन्द के न्याय पक्ष की जीत होती है ।

इस नाटक म मालिक और मजदूर के सघष के रूप मे व्यक्ति और समूह का

संघर्ष है। इस संघर्ष के मूल में ही भाई भाई व्यक्ति व्यक्ति का संघर्ष है।

सेठ गोविन्ददास कृत 'तीन दिन तीन घर' नाटक में भी मालिक मजदूर का संघर्ष है। वे जीवानी मिल मालिक के विरुद्ध मजदूर हड़ताल के रूप में संघर्ष छेड़ते हैं। लेकिन इस संघर्ष में मजदूरों को ही हानि उठानी पड़ती है।

प्रस्तुत नाटक में घटनाओं की भरमार होने के कारण मालिक मजदूर संघर्ष का सघन प्रस्तुतीकरण नहीं हुआ है। मालिक मजदूर संघर्ष के बारे में निवेदन की अधिकता है। फलस्वरूप प्रस्तुत नाटक में मालिक और मजदूर का संघर्ष प्रभावहीन है।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'रक्तकमल' नाटक का नायक कमल पूंजीवाद जातिवाद प्रान्तवाद, सम्प्रदायवाद गणशासन अमीरी और गरीबी के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है। कमल ने समाज तथा देश के कल्याण के लिए संघर्ष का आरम्भ अपने घर ही से किया है।

कमल का बड़ा भाई महावीर बुजुआ वर्ग का उद्योगपति है। वह अपनी शोषण नीति को सुरक्षित रखने के लिए पूंजीवाद का समर्थक बन गया है। उसने गरीब कनू (कन्हैया) के पिता की दो बीघे जमीन पर अन्याय से अधिकार कर लिया है। इस मामले में कनू के पिता की हत्या हुई है। बदले में कनू कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि शासन भी पूंजीवादी महावीर का ही साथ देता है। भ्रष्टाचारी एवं अवसरवादी नेताओं से महावीर की सांठ-गांठ है। इस प्रकार महावीर और उसके साथी शोषकों के प्रतिनिधि हैं।

जनहितवादी समतावादी तथा मानवतावादी कमल शोषण-नीति को नष्ट करने के हेतु महावीर और उसके साथियों से संघर्ष छेड़ता है। महावीर का रक्षणशील पक्ष भी प्रबल है और कमल का आक्रमणशील पक्ष भी।

कनू की बहन अमृता और स्वयं कनू तथा मारग कमल के साथ रहकर संगठित होकर पूंजीवादी महावीर और अवसरवादी नेता गुरुराम से संघर्ष कर रहे हैं। इस संघर्ष के साथ ही नाटक का आरम्भ हुआ है।

महावीर की कोठी के पास खुला मैदान है। वहाँ चिराग जल रहा है। महावीर उस चिराग को जूते से कुचलने वाला था इतने में अमृता प्रवेश करती है।

'अमृता—नहीं मेरे चिराग को तुम नहीं बुझा सकते।

महावीर—क्या कहा ?

अमृता—बाबू आज मंगलवार है न आज ही के दिन इस मेले के लिए मेरे दादा की हत्या हुई थी।

महावीर—ओहो यह बात। तो तुम यहाँ श्मशान में अपने पिता की उस याद में चिराग जलाती रही हो ? बोलो बताओ न या जब से यहाँ मेरा वह छोटा भाई कमल आया है। दरवान कुचलकर फेंक दो इस

चिराग को।

अमता--(चिराग के सामने खडी होकर) नही । यह मेरी जमीन है । यह मेरा खेत है । क्या मैं इस मे एक चिराग भी नही जला सकती ?

महावीर--(चिराग को अपने जूते की ठोकर से मारता हुआ) जाकर चिराग अपन घर जलाओ।

(अमता देखती रह जाती है । बायी ओर मे सारग का प्रवेश)

सारग--और जिसके पास घर ही न हो वह ?

महावीर--ओह तुम ।

सारग--जी हाँ सारग, अदाब अर्ज ।

महावीर-मेरे सिर पर बठ कर अभी तक गाना गा रहे थ, और अब मुझ स जबान लडाने आया है । (अमता से) जा यहाँ स, खडी क्या है बेवकूफो की तरह ?

(दायी ओर स गुरुराम का प्रवेश)

गुरुराम--यह इस तरह से थोडे ही जायेगी । इसके लिए डण्डे की पालकी चाहिए ।

सारग--और तुझे ।

गुरुराम--तू भी यहाँ खडा है म्लेच्छ मुसलमान ।

अमता--खबरदार । वह मेरा भाई है ।

गुरुराम--आहो । यह बात है । यह सब कमलबाबू का जादू है । (व्यग्य से) चेतना चेतना । जाग नव भारतेर जनता, एक जाती एक प्रा त एकता । (क्रोध से) बदमाश कहीं के । (अमता हँस पडती है । गुरु आवेश में उसकी ओर झपटता है सीढियो से लडखडाकर गिर पडता है ।--वे दोनो हँसत हुए निकल जाते है ।)'[1]

महावीर गुस्से मे आकर अमृता के भाई कनू (कन्हैया) को बुलाता है और धमकाता है--

'महावीर--अच्छा तो सुनो । तेरी बहन अमृता आज यहाँ अपने पिता की स्मृति मे एक चिराग जलाने आई थी, खबरदार । आइन्दा अगर मैंने देखा तो हाथ काट लूँगा उसक ।

(सारग और अमता के साथ कमल का प्रवेश)

कमल--ये हाथ मिट्टी के नही है कि कोई इन्हे काट ले जाए । ये हाथ दिशाएँ हैं दिशाएँ ।

महावीर--बन्द करो यह अपना उपदेश ।

कमल--जो अपने चारो ओर सिफ झूठ, फरेब गन्दगी और बेईमानी देखता है पता

---

१ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल--रक्तकमल--पृ० २७-२८ (तृ० स० सन् १९६६ ई०)

नहीं वह अपने आप को क्या और कम समझना होगा ।

महावीर—भाई ना भाई मेरा ।

कमल—यही तो बात है आप अपने को नहीं जानते । आप समझते हैं आप एक हैं और समाज दूसरा है । आप समझते हैं कि कुछ बुरा है वह समाज है और जितना अच्छा है वह आप हैं । [1]

प्रस्तुत संघर्ष क्रमशः तीव्र बनकर नाटक के अंत तक चलता रहता है । कमल रूप को नवीन रूप प्रदान करने का संकल्प लेता है । वह जनक्रान्ति की प्रेरणा देता है । वह इस कार्य में ऊँची श्रेणी के लोगों की सहायता नहीं लेना चाहता है । क्योंकि ऊँची श्रेणी के लोग शरीर और नैतिकता दोनों दृष्टियों से मरे हुए हैं । वह इस कार्य के लिए परिश्रमियों किसानों और मजदूरों को संगठित करना चाहता है । वह इन्हीं लोगों के साथ रहने के लिए अपने पूँजीपति भाई का घर छोड़ता है । कमल यहां से जनक्रान्ति का आरम्भ करता है उसकी जनक्रान्ति का घोष-वाक्य है—आज नवमानवेर जनता एक जाति एक प्राण एकता ।

इस नाटक में कमल और महावीर का संघर्ष एक ओर से व्यक्ति व्यक्ति का संघर्ष है तो दूसरी ओर से सामाजिक तथा प्रातिनिधिक दृष्टि से समूह-समूह का संघर्ष है । महावीर पूँजीवादी वर्ग का प्रतिनिधि है । कमल की जनक्रान्ति की प्रबल इच्छा पूँजीवादी महावीर के आगे कदापि नहीं झुकती । अतः नाटक के अंत तक संघर्ष चलता रहता है । यहीं तक कि नाटक की समाप्ति के पश्चात् भी प्रस्तुत संघर्ष चलने वाला है । यह शोषक शासित के अस्तित्व तक चलने वाला संघर्ष है ।

कमल का संघर्ष स्थूल तथा सूक्ष्म संघर्ष है । कमल का अपने बड़े भाई से जो संघर्ष है वह स्थूल संघर्ष है । प्रातिनिधिक दृष्टि से कमल का संघर्ष समाजविघातक पूँजीवादी के विरुद्ध है । प्रस्तुत संघर्ष सूक्ष्म संघर्ष है । नाटककार ने कमल के संपूर्ण श्रेणी के संघर्ष का निर्वाह अत्यंत कलात्मकता से किया है ।

रामकुमार लाल गुप्त 'पत्थर माना' लिखित—'नया भगवान' नाटक में अभावों से ग्रस्त कलाकार मोहन अपने आदर्श सिद्धान्तों तथा स्वाभिमान की रक्षा के लिए प्रतिकूल परिस्थिति से संघर्ष कर रहा है । वह सत्यमार्गीय के जीवन दर्शन में विश्वास करता है । वह मूर्तियों का कलाकार है । अपने आदर्शों के अनुसार वह मूर्तियाँ बनाता है । लेकिन मूर्तियाँ नहीं बिकतीं । पैसे को भगवान मानने वाली दुनियाँ में मोहन के आदर्शों का दम घुट रहा है । अतः वह सभी की भलाई के लिए समाज में क्रान्ति चाहता है । लेकिन इस क्रान्ति का आधार रक्तपात नहीं बल्कि सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्यमार्गीय का जीवन दर्शन होगा । मोहन के मित्र धर्मराज और शेखर के विचार भी इसी प्रकार के हैं । अतः इन लोगों का उग

1 डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल—रक्तकमल—पृष्ठ ३७ (प्र० सं० सन् १९६६ ई०)

साथी से संघर्ष छिड़ता है जो म० गांधी के जीवन दर्शन में विश्वास नहीं करता है और समाज में क्रांति के लिए पूँजीवादियों का खून बहाना चाहता है। मोहन समाज सुधार के लिए सत्य और अहिंसा के बल पर शोषकों में हृदय परिवर्तन करना चाहता है। वह अपने आदर्शों की रक्षा के लिए अहिंसक संघर्ष को स्वीकार करता है।

प्रस्तुत नाटक में स्थूल संघर्ष के साथ साथ सूक्ष्म वैचारिक संघर्ष को महत्व का स्थान मिला है। इस दृष्टि से मोहन का उच्च श्रेणी का संघर्ष उल्लेखनीय है।

२ शोषित किसानों का संघर्ष

कुछ नाटकों में दुष्ट शोषकों से शोषित किसान का क्रांतिकारी संघर्ष है। स्वातन्त्र्यपूर्व भारत में अंग्रेजों की कृपा से पोषित जमींदारी व्यवस्था और महाजनी प्रथा की सहायता से ठाकुर, जमींदार और महाजन ग्राम के अभावग्रस्त किसानों का निर्मम शोषण कर रहे थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर भारत सरकार ने किसानों की दयनीय दशा सुधार तथा ग्राम सुधार पर जोर दिया। फलस्वरूप क्रांतिकारी युवकों के नेतृत्व में संगठित होकर किसान अत्याचारी जमींदारों और महाजनों से संघर्ष करने लगे। इस संघर्ष को लेकर लिखे गये नाटकों में बाह्य संघर्ष की प्रधानता है।

इन नाटकों में व्यक्ति-व्यक्ति का तथा व्यक्ति समूह का संघर्ष परस्पर विरुद्ध मान्यताओं तथा इच्छाओं का संघर्ष है। यह संघर्ष क्रांतिकारी व्यक्ति अथवा क्रांतिकारी समूह का पूँजीवादी जमींदार तथा महाजन से है। अतः श्रेणी की दृष्टि से प्रस्तुत संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष में समाज की भलाई चाहने वालों की विजय होती है। यह विजय नाटककार के उद्देश्य के अनुसार स्वाभाविक होती है। इस संघर्ष का प्रकाशन स्थूल रूप में हुआ है।

शील के 'किसान' नाटक में ग्राम सम्बन्धी तथा किसान सम्बन्धी समस्या के सन्दर्भ में व्यक्ति-व्यक्ति का, समूह-समूह का, शोषक शोषित का संघर्ष है।

गाँव का लखपाल ठाकुर (जमींदार) अगदसिंह के पैसों का गुलाम बनकर किसी की जमीन किसी के नाम लिख देता है। गाँव का साहू भी भोले भाले किसानों को फँसाकर जमीन हड़पता है। साहू जुआरी जोधा को फँसाकर नौतोड़ पर कब्जा पाना चाहता है। लेकिन साहू के पहले ठाकुर ही नौतोड़ पर कब्जा पाता है। इससे जोधा की भौजाई सुखिया को बहुत दुःख होता है। वह पति (जोधा का बड़ा भाई धारज) से झगड़ा शुरू कर देती है। जोधा का बेटा पूरन भी जुआरी पिता से घृणा करता है। यह घृणा पिता-पुत्र में संघर्ष छेड़ती है। जोधा की मूर्खता के कारण पति पत्नी में, देवर भौजाई में और पिता पुत्र में संघर्ष छिड़ता है।

गाँव पंचायत अत्याचार पीड़ित किसान की सहायता नहीं कर सकती। वह तो अत्याचारी की हाँ में हाँ मिलाती है। स्वतन्त्र भारत में जमींदारी चली गई पर वह आदमी नहीं गया जिसकी नाड़ी में आदमी का खून लगा है। अब ऐसे आदमी किसानों का शोषण कर रहे हैं।

पूरन इस शोषण को रोकने के लिए सहकारी खेती करने का नमूना बनाना चाहता है। उसे कुछ साथी भी मिल जाते हैं। पर दुश्मनों को यह अच्छा नहीं लगता। पूरन अन्याय का प्रतिकार लाठी से भी करना चाहता है। पूरन सुन्दर और सुमेर जैसे साहसी साथियों के बल पर पंचायत इलेक्शन में सफलता पाता है। पूरन गाँव का सभापति बन जाता है। वह नौगाँव पर कब्जा पाता है। सम्मिलित खेती होने लगती है। गाँव वालों ने मिलकर दुश्मन से संघर्ष किया और जीत भी पाई। ठाकुर दुर्जन को लेकर गाँव वालों में आपसी संघर्ष की आग लगाने की कोशिश करता है। पर उसे सफलता नहीं मिलती। ठाकुर साहू की हत्या करता है और स्वयं आत्मघात कर लेता है।

इस प्रकार इस नाटक में क्रान्तिकारियों का शोषक जमींदारी तथा साहूकारी प्रथा से संघर्ष है।

आनन्द अग्निहोत्री कृत 'माटी जागी रे' नाटक में ग्राम सुधार की समस्या के सन्दर्भ में व्यक्ति व्यक्ति के संघर्ष को अत्यन्त महत्त्व का स्थान मिला है।

साहू आनन्दपाल भोली भाली बातों से भोले भाले व्यक्तियों को फँसाता है और उनकी उपजाऊ जमीन हड़पता है। वह भोला किसान की उपजाऊ जमीन हड़पने के लिए भोला को कर्जा देना चाहता है। लेकिन भोला साहू के कर्जा के जाल में फँसना नहीं चाहता है। साहू भोला के पुत्र गंगा को कर्जा लेकर तीर्थ यात्रा कर आने को बताता है। गंगा साहू की बात को सच मानता है। अब गंगा और भोला में संघर्ष छिड़ जाता है। इस संघर्ष से नाटक का आरम्भ होता है।

उधर साहू और उसकी बेटी बिन्दिया में, परस्पर विरुद्ध स्वभाव के कारण संघर्ष छिड़ता है। बिन्दिया बड़ी नेक निडर दयालु है। वह कंजूस अधर्मी अत्याचारी पिता का विरोध करता है। वह भोला के पढ़े लिखे लड़के बसन्तू से प्रेम करता है। भोला की निर्भीक लड़की राधिया और बिन्दिया में मित्रता है।

साहू दूगा के पिता को फँसाकर दूगा की उपजाऊ जमीन हड़पता है। दूगा इस बात का बदला लेने का निश्चय करता है।

बसन्तू और उसका शहर निवासी मित्र प्रकाश, दोनों मिलकर गाँव वालों को गाँव की उन्नति की तथा खेती के विकास की अनेक योजनाएँ समझाते हैं। इनकी योजनाएँ कार्यान्वित होने से किसानों को लाभ होता है। इससे चिढ़कर साहू प्रकाश

की हत्या का षडयन्त्र रचता है और अपने लठतो से प्रकाश को पिटवाता है। लेकिन प्रकाश बच जाता है।

बिंदिया इस दुष्कृत्य से ऊबकर पिता का धिक्कार करती है। बसन्त, दुर्गा और बनवारी साहू का अन्त करना चाहते हैं। साहू भयभीत होकर अपने ही खण्डहर में आश्रय लेता है वहाँ उसे काला नाग डसता है उसका अन्त हो जाता है। पूँजीपति साहू की काली करतूत उसे नष्ट कर देती है। इस सघर्ष मे गाव का कल्याण चाहने वालो की जीत हो जाती है।

रामावतार चेतन के "धरती की महक' नाटक म ग्राम की अनेक समस्याओ क सन्दभ मे व्यक्ति व्यक्ति का बाह्य सघर्ष है। गोविन्दपुर ग्राम म स्कूल मे पढ़ाने वाले-नवयुवक सागर का दुष्ट ठाकुर से सघर्ष है। सागर एम० ए० तक पढ़ा है। वह पचायत का सदस्य है। वह गाव के लड़कों को लेकर ग्राम सुधार का प्रयास करता है। दुष्ट ठाकुर को यह अच्छा नही लगता। वह गुण्डे साथियो से सागर और उसके परिवार को सताता है। पुलिस भी अन्यायी, अत्याचारी ठाकुर का ही साथ देती है। सागर बिस्तौल की गोलियाँ चलाकर ठाकुर के दुष्ट साथी लाखन, काशी और जग्गू का खात्मा कर देता है। सागर खुद पुलिसो के हवाल हो जाता है। जाने के पहल वह गाव वालो को सन्देश देता है कि अपनी रक्षा आप करनी चाहिए। इस सन्देश म गाव वालो को ग्राम की भलाई के लिए सघर्ष की प्रेरणा दी जाती है।

यह वस्तुस्थिति है कि ग्रामोद्धार की समस्या का लेकर लिखे गए नाटकों म प्रचारात्मकता पर अधिक जोर दिया गया है। परिणामस्वरूप इन नाटको मे कलात्मकता की अवहेलना को गई है। इन नाटको मे या तो अत्यन्त क्षीण बाह्य सघर्ष है अथवा सघर्ष का एकदम अभाव है। इस सन्दभ में परिगण्य नाटक निम्नलिखित हैं-

अजयकुमार कृत 'पच परमेश्वर', ए० रमेश चौधरी 'आरिगपूडि' कृत "कोई न पराया', उदयसिंह भटनागर कृत 'जागीरदार', जगदीश चतुर्वेदी कृत 'कपास के फूल", डी० के० राय चौधरी 'आनन्द' कृत 'अनजान रास्ता', दयानाथ झा कृत "कमपथ', बाबूरामसिंह लमगोडा' कृत 'गाव का ओर", रमेश महता कृत "हमारा गाव', रामकृष्ण शर्मा कृत 'युगान्तर' रामगोपाल शर्मा "दिनेश' कृत "लोकदेवता जागा', रामदीन पाण्डेय कृत ज्योत्स्ना रामाश्रय दीक्षित कृत 'एक भेंट" सत्य प्रकाश मिलिन्द कृत 'बदलती दिशा, हरिकृष्ण प्रमी कृत "नई राह' सयद कासिम अली कृत 'ग्राम सुधार" और 'निर्माण"।

४ जातीय तथा साम्प्रदायिक एकता से सम्बद्ध सामाजिक नाटक और सघर्ष तत्त्व

म० गाधी ने स्वातत्र्य आन्दोलन के साथ साथ समाज सुधार के आन्दोलन

का भी आरम्भ किया। स्वातन्त्र्य आन्दोलन के दिनों में म० गांधी और डॉ० बाबा साहब आम्बेडकर ने समाज-सुधार तथा अस्पृश्यता निर्मूलन के क्रांतिकारी आन्दोलनों का भारत भर प्रचार और प्रसार किया। इन आन्दोलनों से प्रभावित होकर हिंदी नाटककारों ने समाज एवं राष्ट्र की एकता की दृष्टि से जातीय तथा साम्प्रदायिक एकता का महत्त्व प्रतिपादन के हेतु नाटकों की रचना की। इन नाटकों में जातीय तथा साम्प्रदायिक संघर्ष को स्थान दिया गया है। इस संघर्ष में जातीयता, अस्पृश्यता तथा साम्प्रदायिकता को नितान्त अहितकारी तथा अवैज्ञानिक सिद्ध किया गया है।

१ अस्पृश्यता-निर्मूलन के लिए संघर्ष

अस्पृश्यता निर्मूलन सम्बन्धी नाटक बाह्य संघर्ष पर आधारित हैं। इनमें परम्परावद्ध धारणाओं से नई धारणाओं का संघर्ष है। राष्ट्र हित तथा मानवीयता की दृष्टि से अस्पृश्यता निर्मूलन चाहने वाले व्यक्ति अथवा समूह स्वार्थ के लिए अस्पृश्यता को चाहने वाले व्यक्ति अथवा समूह से संघर्ष करता है। यह संघर्ष क्रमशः तीव्र तथा व्यापक रूप ग्रहण करता है। चरम सीमा पर पहुंचने पर संघर्ष समाप्त होता है। क्योंकि उस समय अत्याचारी पक्ष में परिवर्तन होने से दोनों पक्ष समाज हित के लिए समझौता कर लेते हैं। यह समझौता नाटककार के उद्देश्य के अनुसार होता है। श्रेणी की दृष्टि से इन सभी नाटकों में उच्च श्रेणी का बाह्य संघर्ष है।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'निस्तार' नाटक में भी अस्पृश्योद्धार की समस्या के सन्दर्भ में व्यक्ति-व्यक्ति का, समूह समूह का संघर्ष है। नाटक का आरम्भ व्यक्ति-व्यक्ति के संघर्ष से होता है।

गांव के स्पृश्य अस्पृश्यों को कुएं पर पानी भरने नहीं देते। उन्हें पानी के लिए दूसरों का मुंह ताकना पड़ता है। बालक नन्दू को माँ चाई (महतराइन) सबेर सबेर, पनघट के पास पानी के लिए तरस रही है। जो भी स्पृश्य आता है चाई की प्रार्थना पर ध्यान ही नहीं देता। अपनी माँ के साथ आए हुए बालक नन्दू की समझ में कुछ नहीं आता। वहीं किसी स्पृश्य को न देखकर वह पनघट पर चढ़ जाता है। उसे नीचे उतारने के लिए चाई भी पनघट पर चढ़ जाती है। नन्दू पानी भर लेने के लिए जिद करता है। चाई इधर-उधर देखकर निश्चय कर लेती है और पानी खींचती है। उस समय कुछ स्पृश्य आ जाते हैं और चाई को घेर लेते हैं। वे चाई को अपशब्द सुनाते हैं, उसका घड़ा लोटा के आघात से फोड़ते हैं। वहीं प्रतिक्रियावादी पुराणमतवादी जटाशंकर आ जाता है और स्पृश्यों को अस्पृश्यों पर अत्याचार करने को भड़काता है। इससे सुधारवादी उपेन्द्र और पुराणमतवादी जटाशंकर में संघर्ष छिड़ता है—

"उपेन्द्र-- यह धर्म ? मानव को नीच समझना कहाँ का धर्म है ?

जटाकिकर- मानव को नीच नहीं समझते, उसके कर्म को नीच समझते हैं।

उपेन्द्र-- हम तुम ही कौन से ऊंचे कर्म करते हैं ? ऊंची जाति के कहे जाने वालों मे ही इतने नीच और कुकर्मी हैं कि परमात्मा को अपनी सृष्टि पर ग्लानि होती होगी। चाई का घड़ा क्यों फोड़ डाला गया ?

जटाकिकर- मैं उसे चार घड़ों का दाम देता हूँ। (जेब में हाथ डालता है। उपेन्द्र की आकृति भयावनी हो जाती है। जटाकिकर का हाथ जेब में अकड़कर वहीं रह जाता है।) कुआँ अशुद्ध हो गया। सारा जल फिकवाना पड़ेगा। देंगे तुम्हारे मेहतर उसका खर्चा ?

जटाकिकर का एक साथी--हम तो कहत हैं कि एक दिन जमकर हो जाये। जिसके जी मे मरी हो सामने आय। धर्म का यह संकट हमारी लाठी से ही टूटेगा।

उपेन्द्र-- अंधे को दिन में भी नहीं दिखाई पड़ सकता।

वही-- रोक लो पंडित दादा हमारी लाठी उठने के बाद बैठना नहीं जानती।[1]

जटाकिकर और बरसातीलाल ग्राम के धूर्त और स्वार्थी नेता हैं। बरसाती लाल पुर पंचायत का प्रधान है। ये दोनों भी मेहतरों चमारों के साथ मनुष्यता का बर्ताव करना नहीं चाहते। लेकिन जटाकिकर की छोटी बहन कादम्बिनी और बरसातीलाल की बेटी सेवती दोनों सुधारवादी है। अतः कादम्बिनी और सेवती अस्पृश्यों का पक्ष लेकर सुधार का कार्य करने का निश्चय करती हैं। कादम्बिनी नंदू को अपने घर बुलाती है और उसे पढ़ाती है।

मेहतर स्पृश्यों के अत्याचारों के विरुद्ध हड़ताल करना चाहते हैं। लालाधर विधानसभा का एक अस्पृश्य सदस्य है। अस्पृश्य रामदीन पढ़ा लिखा है। उपेन्द्र, लीलाधर और रामदीन के नेतृत्व में मेहतर और चमार मिलकर क्रान्ति का नारा लगाते हैं-- क्रान्ति चिरजीवी हो। छुआ छूत का नाश हो। हमारा वेतन बढ़ाओ। हमे कुआ से पानी भरने दो। मन्दिरों मे प्रवेश करने दो। अत्याचार का धुआँ बन जावे। हम सत्याग्रह करेंगे।[2] इस प्रकार नारे लगाते हुये सभी सत्याग्रही जटाकिकर के पड़ोस वाले कुयें पर पानी खीचने को चले जाते हैं। यहाँ संघर्ष समूह समूह के संघर्ष का रूप धारण करता है।

लीलाधर पानी खीचने को पनघट की सीढ़ी पर चढ़ता है तो स्पृश्य लठत

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा निस्तार--पृ० ९ (चतुर्थ सं० सन १९६० ई०)

२ वही--पृ० १७।

उसे धक्का देकर गिरा देते हैं। उपेन्द्र ऊपर पहुँच जाता है। वह गरज कर कहता है—
उपेन्द्र—मुझे मारो। है दम ?
एक लठैत—(हाँफता हुआ) तुम्हें नहीं तुम ब्राह्मण हो।
उपेन्द्र—इस घड़ी मुझे भंगी समझो।
एक हरिजन लठैत—(आगे बढ़कर) मुझसे निबटो मोपड़ा खोल दूँगा।"[1]

गाँव से ऊँची जाति वालों के लठैत दौड़ते हुए आ जाते हैं अस्पृश्यों की बस्ती में भी लठैत दौड़ते हुए आ जाते हैं। दोनों समूह एक-दूसरे को पीटने को पैंतरा लेते हैं। जब कुछ अस्पृश्य लठैत कुएँ पर चढ़ जाने का प्रयास करते हैं तब मारधाड़ शुरू हो जाता है। संघर्ष चरम सीमा पर पहुँच जाता है। कादम्बिनी उपेन्द्र सून खराबी को रोकते हैं।

अब मंदिर प्रवेश की समस्या उलझती रहती है। राधा कृष्ण के मंदिर में प्रवेश करने को अस्पृश्यों का जुलूस आ जाता है। बख्तावरलाल और पुजारी अस्पृश्यों को मन्दिर में प्रवेश करने नहीं देते। नन्दू और लालधर मन्दिर में थोड़ा सा भीतर पहुँच जाते हैं। उनके पीछे भाई भी आता है। बरसाती की लाठी के एक प्रहार से भाई अचेत होकर गिर जाती है। इससे संघर्ष भयानक रूप धारण कर सकता था पर उपेन्द्र कादम्बिनी और सेवा समाज के सम्मान और शान्त करने में सफल होते हैं।

भाई चेत में आ जाता है। रामदीन की आपत्ति में फमान के हत बरसाती का रचा हुआ षड्यन्त्र असफल हो जाता है। पण्डित बरसाती को पकड़ना चाहता है। लेकिन उसमें तथा जटाशंकर में परिवर्तन होता है। स्वतन्त्रता दिन पर सभी में मेल मिलाप होता है।

प्रस्तुत नाटक में बाह्य संघर्ष की समाप्ति कृत्रिम रीति से की गई है। प्रतिक्रियावादियों में जो परिवर्तन दिखाया गया है वह स्वाभाविक और यथार्थ नहीं लगता है। परिवर्तन का आधार अधिक स्वाभाविक और यथार्थ होना चाहिए था।

प्रस्तुत नाटक का बाह्य संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष की उद्घाटन स्थूल है।

हरिश्चन्द्र खन्ना के 'अमर बेल' (१९५३) नाटक में जमींदार के परिवार में नव-पुरातन जीवन मूल्यों के सम्बन्ध में व्यक्ति व्यक्ति का माता-पुत्र का पुरानी और नई मान्यताओं का संघर्ष है।

जमींदारी चली गई है पर बड़ी मां (घर की मालकिन) पुरानी शान बनाये रखने का भरसक चेष्टा करती है। उसका बहू समाज सुधारवादी होने के कारण

1 वृन्दावनलाल वर्मा—निस्तार—पृ० ८२ (चतुर्थ सं० सन् १९६० ई०)

अस्पृश्योद्धार का काय कर रही है। फलस्वरूप मदन और छोटी बहू पुराणमतवादी दीदी स सघप छेडत हैं।

नाटक के आरम्भ म बडी दीदी और शरबती भगिन का सघप है। यह सघप पुरानी और नई मा यताओ का सघप है।

'बड़ी दीदी-- जाने तुम लोगो के मिजाज इतने क्यो बिगड गये हैं ? दिमाग फिर गया है बडे घरो म कमा खाकर।

शरबती-- अब जुग बदल गया है माँ जी, अब न सहत हैं हम एसी बातें। और यह रोज रोज की झिडकी धुडकी भी नहा सही जाती हमसे। कम्मी सही पर हैं तो हम भी इ सान।

बडी दीदी-- जबान सम्हाल नही खिंचवा दू गी खडी खडी की।

शरबती-- ऐ, खाने को क्या दौडती है। ल जा रही हूँ। अब देख लना कोई नही आयेगा इस हवेली मे हमन भी एका कर रखा है। तुम्हारे पास धन है तो हमारे पास भी एके का बल है।'[1]

इससे सूचित होता है कि अब अछूतो ने, दलितो न अपन उद्धार के लिए सग ठन किया है। वे अपने अधिकारो को पाने के लिए सघप करना चाहते हैं। अब जमीदारों का मनमाना हुक्म उन पर नही चलेगा।

मदन की पत्नी (छोटी बहू) दलितो का पक्ष लेती है। वह अछूतो की बस्ती म जाकर अपन उद्धार के लिए अछूता का प्रेरित करती रहती है। इस कारण से बडी दीदी और छोटी बहू म सघप छिडता है।

बडी दीदी-- हमने नहा देखे ऐसे जमाने। आय हाय। यह कम्मी लोग भी हमारे आगे जबान खोलेंगे यह किसे मालूम था ? जाने किस ज म के कर्मों का फल मिल रहा है हम।

छोटी बहू-- यह उस अ याय का बदला है माँ जी जो हमारा समाज शताब्दियो स इन कम्मियो पर करता चला आ रहा है।

बडी दीदी-- अरी तुम पढी लिखी लडकियो की बुद्धि भ्रष्ट कर दी है अग्रजी पढ़ाई न। समाज की वण-व्यवस्था किस के लिए की गई थी।

छोटी बहू-- वण यवस्था स्वार्थी जन नेताओ और विशेष वर्गों के हितो का सर क्षण करने के लिए की गई थी। कम्मी का इसलिए नही उभरने दिया गया कि कहीं व अपन मानवीय अधिकार न माँगने लगे। और धम तथा समाज के नाम पर स्वार्थी वर्गों न नीच जात वालो को यह बताया कि तुम्हारी दासता कर्मों का फल है तुम्हें ईश्वर के याय स सन्तुष्ट रहना चाहिए। समाज की सवा करते हुए अपन धम का

---

१ हरिश्च द्र खन्ना--अमर बल--पृ० २१ (प्र० स० सन १९५३ ई०)

पालन करना ही सबसे ऊंचा जीवन है। लेकिन हम जानते हैं कि भाग्यवाद और धर्मवाद के नाम पर कितना अन्याय हुआ है।

बड़ी बहू— यही बात मुझसे एक बार नहीं मानी। जब देखो मुझसे झूठ बताती हो और कमियाँ भंगियों चमारों के लिए घर में महाभारत मचाने को तैयार रहती हो।[1]

इस प्रकार पुरानी और नई मान्यताओं को लेकर बड़ी दीदी और छोटी बहू में संघर्ष छिड़ता है। बड़ी दीदी का छोटा लड़का मदन भी नई मान्यताओं को मानने वाला है। वह अपनी पत्नी और डॉ० मीना के साथ दलितोद्धार के लिए अछूतों की बस्ती में जाता है और सेवा कार्य करता है। मदन जमींदारी प्रथा से घृणा करता है। जिस जमींदारी के (पाप के) आधार पर जो हवेली खड़ी है मदन उसे छोड़कर नहर चला जाना चाहता है। इससे मदन और बड़ी दीदी में संघर्ष छिड़ता है। मदन घर छोड़ता है और अपनी पत्नी को लेकर नहर चला जाता है।

बड़ा बेटा अमर मदन की भाँति एकदम मुँह फट और क्रांतिकारी नहीं है। उसमें आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है। न वह क्रान्तिकारी भाई का साथ दे सकता है, न पुराणमतवादी माता का। वह डॉ० मीना से विवाह करना चाहता है। अमर दुविधा से मुक्त होकर खुलकर विरोध करता है। अन्त में माता को मानना पड़ता है। वह मीना से विवाह करने के लिए अमर को अनुमति देती है। मदन को भी वापस बुलाती है।

प्रस्तुत नाटक का बाह्य संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष में नये तथा क्रान्तिकारी विचारों की विजय होना स्वाभाविक है। संघर्ष का निर्वाह प्रभावशाली ढंग से किया गया है।

श्री ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने 'मास्टरजी' (१९६०) नाटक में देहात के वातावरण के सन्दर्भ में अस्पृश्योद्धार की समस्या का अंकन किया है। प्रस्तुत नाटक में उक्त समस्या को लेकर आदि से अंत तक व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष, व्यक्ति-समूह का संघर्ष, समूह-समूह का संघर्ष है। नाटक के आरम्भ में व्यक्ति व्यक्ति का संघर्ष छिड़ता है। आगे चलकर व्यक्ति व्यक्ति के संघर्ष का रूपांतर सामूहिक संघर्ष में होता है।

गिरधारी और घमंडीराम—दो उद्दंड लड़के—मास्टर जी के यहाँ चोरी कर भाग रहे थे, चमार धनुवा उन दोनों को पकड़ कर मास्टर जी के पास ले आया है। यहीं से संघर्ष का आरम्भ होता है।

घमण्डी, गुण्डा गिरधारी नौकर तथा मास्टर को धमकाता है। वह नौकर के मुँह पर तीन चार तमाचे लगाता है। मास्टर को भी मारने बढ़ता है। नौकर गिरधारी का हाथ पकड़ता है। मास्टर आवेश में गिरधारी के मुँह पर एक जोर

१ हरिश्चन्द्र द्रष्टव्य–अमर बेल–पृ० २–२८ (प्र० सं० सन १९५३ ई०)

का थप्पड़ लगाते हैं। शकर भी उग्र रूप धारण करता है। गिरधारी और घसीटा राम भाग जाते हैं।

सघष बढने लगता है। गुण्डा लडको के गुण्डा बाप मास्टर तथा चमार शकर को धमकाने आ जाते हैं। गिरधारी का पिता चौधरी जीवनराम और घसीटा राम का पिता पडित सुखराम दोनो धूत्त, मक्कार स्वार्थी नेता हैं। चौधरी जीवन राम मास्टर को धमकाकर पूछता है– मैं पूछू हूँ कि तुम्हे यू हिम्मत कसे हुई कि तुम हमारे लडक पै हाथ उठाओ और उसे मारमार के अधमरा कर दो ? मास्टर जी, मैं बहुत दिनों से देख रहा हूँ इन चमारो ने सरकशी पर कमर बाँध रखी है इनकी इतनी मजाल कि हमारे लडके पर हाथ उठाते हैं कल को हमारे ऊपर हाथ उठाने लगेंगे देख लेना।'[1] मक्कार पडित सुखराम भी आग मे घी डालने का काम करता है।

इन दोनो की विघातक बाता पर प्रहार करत हुए मास्टर जी की पत्नी विद्या पूछती है––'क्यो क्या हरिजन आदमी नही होते ?'[2] मास्टर जी भी सवाल करत हैं–– चौधरी साहब, मरी समझ म तो यही नही आता कि इस बात म ऊँच नीच का सवाल कहाँ से आ गया ?'[3] मास्टर जी तथा उनकी पत्नी विद्या जाति पाँति को नही मानते। अपने यहाँ सभी के साथ समता का व्यवहार करत हैं। लेकिन चौधरी जीवनराम और पडित सुखराम की समझ म मास्टर जी की बातें नही आता। दोनो न चले जाने क पूव मास्टर जी को धमकाया कि––चमारो स अपना सम्बध तोड दो नहा तो पाठशाला ब द की जायेगी। जात बिरादरी मे बाहर कर दिया जायगा हुक्का पानी बन्द कर दिया जायगा।

मास्टर जी बदमाशा के धमकान से भयभीत नही होते बल्कि व दढ़ता के साथ अपने सत्य पक्ष का समथन करते हैं। बदमाशो के चले जाने के बाद मास्टर जी शकर तथा अपनी पत्नी विद्या से कहते है––'जात बिरादरी क्या ससार की आँखो पर परदा पड जाए फिर भी सत्य तो सत्य ही रहगा।'[4]

चमार शकर को लगता है कि अपने कारण मास्टर जी पर आपत्ति आ रही है। वह सोचता है हम नीच जाति वालो को इस प्रकार का सघष नही छेडना था। लकिन मास्टर जी भोलेभाले शकर को समझाते हैं कि तुम अपने को नीच न समझो–– देख शकर भाई यही बात तो सारे झगडे की जड है। अरे अपने मन मे चार है तो गैरो का क्या रोना ? मैं पूछता हूँ कि वे लोग ऊँची जात के हैं तो क्या

१ आनन्द प्रकाश जैन–मास्टर जी–पृ० १२–१३ (प्र० स० सन १९६० ई०)

२ वही, पृ० १४।

३ वही, पृ० १४।

४ वही, पृ० १९–२०।

उनके आठ हाथ पर हैं और तुम जो अपने को नीचा जाति का समझते हो तो क्या तुम कामधाम करने में उनसे कमजोर हो ?

नफर—अजी मास्टर जी पर भी ऊँची जातवालों का थोड़ा-बहुत जोर तो चलता ही है। वो चाहें तो एक दिन में हमें गाँव से निकाल दें। पुराने जमींदार हैं—नजर पर चढ़ें तो किसी मजूरी तक मिलनी मुश्किल होगी।

मास्टर जी—इस जोर के भय में हो तो सच्चे सेवक अपने हो गए और जोर के डर से दास बन गए। पर याद रखो जमींदार भी, चाहे किसान मजदूर, भगवान की नजरों में सब एक हैं।

नफर—म्हारे तो जनम से ही भाग फूटे हैं। फिर म्हारा साथ छोड़ दो मास्टर जी। म्हारे साथ रह के क्यों अपने भाग में भी आग लगाओ ?

मास्टर जी—यह क्या कहते हो नफर भाई ? जिन्हें मैं अपना भाई समझता हूँ, जिनकी सेवा करना मैं अपना धर्म समझता हूँ उन्हें छोड़ दूँ। एक आँख दूसरी आँख से कहे कि तू मेरा साथ छोड़ दे। हूँ। संसार इधर से उधर हो जाए नफर भाई अपनी जान देकर भी मास्टर दीनानाथ सच्चाई की टेक को नहीं छोड़ सकता। (नम) छोटेपन की भावना को मन से निकालो। संसार में बड़ा मनुष्य मरकर होता है जो सीना तानकर चलता है।[1]

मास्टर जी नफर में छिपी हुई हीनता की भाव निकाल बाहर कर देने में सफलता पाते हैं। मास्टर जी नफर और विद्या सच्चाई के लिए अगस्त्य से भलाई के लिए अत्याचारियों अन्यायियों से संघर्ष करने को प्रस्तुत होते हैं।

चौधरी जीवनराम और पंडित सुखराम के भड़काने पर गाँव के गुण्डे लोग मास्टर और नफर को लाठियों से पीटते हैं। नफर लाठी से प्रतिकार करने को होता है पर मास्टर जी रोकते हैं और अहिंसात्मक प्रतिकार को अपनाते हैं।

मास्टर जी पर आर्थिक आपत्ति आ जाय इसलिए पाठशाला बन्द की जाती है। सवर्णों के इन अत्याचारों को देखकर सभी अन्त्यज प्रतिकार के लिए कमर कसते हैं। मास्टर जी को मन से अन्न, गेहूँ, फल-फूल आदि लाकर देते हैं। मास्टर जी बड़े प्रेम से उन चीजों को स्वीकार करते हैं। इससे गुण्डे लोग जल उठते हैं और मास्टर जी तथा अन्त्यजों को अधिकाधिक तंग करने के लिए तरकीबें सोचते हैं।

एक दिन स्कूल देखने गए रामू (मास्टर जी का इकलौता बेटा) को गिरधारी और घमण्डीराम खूब पीटते हैं। इससे रामू का अन्त होता है। पुलिस गिरधारी और घमण्डीराम को पकड़कर ले जाती है। अपने बेटे के हत्यारों को सजा से मुक्त कराने के लिए चौधरी और पंडित मास्टर जी से क्षमा याचना करते हैं। गाँव की

---

१ ज्ञान के प्रकाश जन-मास्टर जी—पृ० ७०-७१ (प्र० सं० सन् १९६० ई०)

भलाई के लिए प्रयत्न करने का वचन लेकर मास्टर जी चौधरी और पडित को क्षमा कर देते हैं। मास्टर जी शकर के बेटे हरिया को अपना रामू मानने लगते हैं।

प्रस्तुत नाटक मे सघर्ष की समाप्ति कृत्रिम है। जिस घटना के आधार पर चौधरी और पडित का हृदय परिवर्तन दिखाया गया है, वह स्वाभाविक एव समय मीय नही लगता है। प्रस्तुत नाटक का वचारिक सघर्ष उच्च श्रेणी का सघर्ष है।

रमश मेहता के रोटी और बटी' (१९६०) नाटक म सूचित किया गया है कि ऊँच नीच भेद भावो को मिटाकर रोटी और बटी का व्यवहार होना चाहिए। इस सन्दभ मे प्रस्तुत नाटक म बाह्य सघर्ष को स्थान मिला है।

मोची रविदास का बेटा राजू कानून की परीक्षा पास कर मजिस्ट्रेट बन गया है। वह पढ़ी लिखी ब्राह्मण युवती नलिनी से प्रेम करता है। दोनो एक दूसरे को चाहते हैं। परन्तु नलिनी को पता नही है कि राजू मोची का पुत्र है। राजू माँ बाप स कह देता है कि उसन प्रेम म नलिनी का बहुत कुछ झूठ कह दिया है। यहाँ तक कि अपन माता पिता मर गये हैं ऐसा भी उसन कह दिया है। इस बात पर खेद प्रकट करते हुए राजू कहता है—

"राजू—काश कहने के बाद मैं अपनी जबान काट सकता लेकिन तीर कमान स निकल चुका था।

रविदास—तीर, अरे तेरे इस तीर ने मिटे हुए सब घाव हरे कर दिए हैं जालिम। आज फिर वह स्कूल दिखाई द रहा है जहाँ से हम धक्के मारकर निकाला जाता था। वह गाँव का कुँआ जहाँ पानी पीने के लिए मौत का सामना करना पडता था। वह मदिर और शिवालय जहाँ पशु तो आजादी से घूम सकते थे मेरे जस इन्सान नही। यह सब कुछ होते हुए भी दिल की जोत टिमटिमाइ हा थी, बुझी नही। इस आस पर कि एक दिन इन्सान इन्सान को परखेगा, उसकी जात को नहीं। वक्त पलटा—स्कूलों के किवाड खुल गए, कुआ न हम आवाज दी, मादरो न हमें अपना लिया और आज आज तून सब कुछ पाकर माँ-बाप को खो दिया।"[1] पिता का अन्तिम वाक्य राजू के हृदय म तीर जसा चुभता है। वह अपराध का अनुभव करन लगता है।

नलिनी को पता चलता है कि राजू चमार है तो वह राजू क घर आकर राजू का अपमान करती है। इससे राजू मे परिवतन होता है। वह स्वाभिमान की रक्षा के लिए मर मिटने तैयार होता है—

राजू—क्या हम इन्सान नहीं हैं? हमारा मजहब हिन्दू नहा है?

रविदास—क्या नही। हम इन्सान भी हैं, और हिन्दू भी।

---

१ रमश महता—रोटी और बेटी—पृष्ठ ४९ (प्र० स० सन १९६० ई०)

राजू—तो फिर हमने पाप क्या ? कौन से वेद में लिखा है इसान जन्म से छोटा या बड़ा होता है। कौन से शास्त्र में लिखा है कि खून के रंग से अधिक रंग होता है ?

रविदास—लिखा नहीं नहीं मिस्टर समाज ने ऐसा हमें समझाया है।

राजू—तो क्यों न आप लोग ए आए उस समाज को जो इंसान को इंसान नहीं मान समझता है।[1]

इस प्रकार राजू समाज की विघातक परिपाटी से संघर्ष करने को प्रवृत्त होता है। उधर नलिनी को पता चलता है कि उसके चाचा प्रमथनाथ शास्त्री (अब रिटायर्ड जज) की अपनी जवानी में एक निम्न जाति की स्त्री से सम्बन्ध था। उस सम्बन्ध से मस्तराम का जन्म हुआ है जो चमारों की बस्ती में पाला पोसा गया है। इस जानकारी से नलिनी में परिवर्तन होता है। वह राजू से विवाह करने के हेतु राजू के घर जाती है।

इस बात का अनुचित लाभ उठाने तथा गरिमा की इज्जत को मिट्टी में मिलाने के दुष्ट उ, य से हीरालाल ने तथा गुलजारीलाल ने गुन्डों का सहयोग है। लोगों की भीड़ मार लगाती है और राजू से नलिनी का विवाह न होने देना चाहती। तब मयानक संघर्ष छिड़ने वाला था, पर पुलिस इंस्पेक्टर और प्रमथनाथ शास्त्री आ जाते हैं और भड़की हुई भीड़ को समझाते हैं। प्रमथनाथ शास्त्री जाति भेद को मिटाने के लिए राजू और नलिनी के विवाह का समर्थन करते हैं।

इस प्रकार इस नाटक में समाज की विघातक प्रथा के विरुद्ध क्रान्तिकारी स्पन्यों तथा अस्पृश्यों का संघर्ष है।

प्रस्तुत नाटक में संघर्ष की समाप्ति स्वाभाविक है। इस संघर्ष में सुनिश्चित नलिनी और प्रमथनाथ शास्त्री में जो वैचारिक परिवर्तन हुआ है वह स्वाभाविक तथा यथार्थ लगता है। प्रस्तुत वैचारिक संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष के प्रभावशाली निर्वाह में नाटककार को सफलता मिली है।

अस्पृश्योद्धार की समस्या को लेकर लिखे गये अन्य नाटकों में संघर्ष नहीं के बराबर है। इस प्रकार नाटकों में रतन बी० ए० लिखित 'अछूत नहीं नहीं' रघुनाथ चौधरी लिखित 'अछूत का लड़का' और कमलाकान्त पाठक लिखित 'अभ्युदय' इन नाटकों को समाविष्ट किया जा सकता है।

(२) समाज तथा राष्ट्र की एकता लिए के संघर्ष

राष्ट्र हित की दृष्टि से साम्प्रदायिकता तथा धार्मिक अलगाव की निरर्थकता दिखाने के हेतु लिखे गये नाटकों में क्षीण बाह्य संघर्ष है। कणादऋषि भटनागरकृत

1 रमेश मेहता—रोटी और बेटी—पृ० ५७ (प्र० सं० सन १९६० ई०)

'सगम', राजा राधिकारमणप्रसादसिंह कृत 'धर्म की धुरी' और 'अपना पराया' में हिन्दू मुसलमान का क्षीण सघर्ष है। इस सघर्ष की परिणति हिन्दू मुसलमान मे एकता स्थापन म होती है। लेकिन इन नाटकों मे सघर्ष का प्रत्यक्ष रूप से चित्रण बहुत कम हुआ है।

ओंकारनाथ दिनकर ने भी भावनात्मक एकता का महत्त्व निर्देशित करने के हेतु नवविहान नाटक का निर्माण किया है। पर इसमे सघर्ष का नितान्त अभाव है।

५ शासकीय अन्याय एव त्रुटियो से सम्बद्ध सामाजिक नाटक और सघर्ष तत्त्व

शासकीय अन्याय एव त्रुटियो से सम्बद्ध नाटको मे स्वातन्त्र्यपूर्व तथा स्वातन्त्र्योत्तर कालीन सत्ताधारियो की धूर्तता, स्वार्थान्धता और प्रजाहित के प्रति कर्त्तव्य विमुखता को उजागर किया गया है। इन नाटको के लिखने का उद्देश्य अन्यायी शासन के मूलोच्छेदन की प्रेरणा देने का है। इस दृष्टि से इन नाटको में राजनीति से सम्बन्धित वातावरण को स्थान दिया गया है।

उक्त उद्देश्य के अनुसार इन नाटको मे स्वातन्त्र्यपूर्व तथा स्वातन्त्र्योत्तर कालीन सत्ताधारियो से सम्बन्धित राजनैतिक परिवेश के सन्दर्भ मे क्रान्तिकारी व्यक्ति अथवा अभाभाव तथा अन्याय से पीडित प्रजा का सत्ताधारियों, पूँजीवादियो एव अवसरवादी नेताओ की घातक नीतियों से सघर्ष है। अतएव इन नाटकों म समाज तथा प्रजा के हित अहित सम्बन्धी परस्पर विरुद्ध विचारधाराओ के सघर्ष की प्रधानता है।

डा० गोविन्ददास ने स्वातन्त्र्यपूर्व काल के राजनीतिक परिवेश को लेकर प्रकाश, सेवा पथ और 'सिद्धान्त स्वातन्त्र्य नाटकों का निर्माण किया है।

प्रकाश (१९३५) मे पूँजीपति और व्यापारी दामोदर गुप्ता मिनिस्टर धनपाल हिन्दू महासभाई पण्डित विश्वनाथ मुस्लिम लीगी शहीद बख्श पत्रकार कन्हैयालाल, वकील नसफील्ड आदि नेताओ ने राजनीति को अपने स्वार्थ का माध्यम बनाया है। अंग्रेजी सरकार मे इन लोगो की साठगाठ है। इनका कार्य है अंग्रेजी अफसरो की चापलूसी और जनता के साथ विश्वासघात करना। जमीदार अजयसिंह ने भी स्वार्थ के लिए अंग्रेजी सरकार से सम्बन्ध बना रखा है। नाटक के आरम्भ म ही जमीदार अजयसिंह ने उपर्युक्त नेताओ की उपस्थिति मे अंग्रेजी गवर्नर के लिए प्रीति भोज आयोजित किया है। वहाँ साधारण व्यक्तियो के बैठने का व्यवस्था अलग की गयी है। यह प्रकाश (अजयसिंह का पुत्र) से सहा नही जाता। वह भेद भाव का विरोध करता है। वह प्रीति भोज स असहयोग कर साधारण लोगो का नेता बन जाता है। वह 'सत्य समाज की स्थापना कर स्वार्थी नेताओ

के ढोंग का पर्दाफाश करता है। वह समाज हित के लिए महात्मा गांधी के मार्ग का अनुसरण करता है और दुष्ट नेताओं की अवसरवादी नीति के विरुद्ध संघर्ष करता है। प्रस्तुत संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। पर इस संघर्ष का प्रकाशन अतिशय स्थूल है।

सिद्धान्त स्वातन्त्र्य में युवक त्रिभुवनदास बंगाल के एकीकरण के लिए बहिष्कार का आन्दोलन चलाना चाहता है। अंग्रेजों के लाभ के लिए लार्ड कर्जन ने बंगाल के दो टुकड़े कर हिन्दू मुसलमान के संघर्ष को बढ़ावा दिया है। इसके विरोध में त्रिभुवनदास अपने साथियों के साथ असहकार का आन्दोलन करना चाहता है। लेकिन त्रिभुवनदास के पिता चतुर्भुजदास अपने धन की रक्षा के लिए अंग्रेज सरकार की नीति का समर्थन करते हैं। अतः वे नहीं चाहते कि अपना पुत्र सरकार की नीति का विरोध करे। त्रिभुवनदास पिता की मान्यता पर ध्यान नहीं देता। वह स्वयं को सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य का पूजक मानता है। वह सरकार से संघर्ष करने लगता है। संघर्ष करते हुए त्रिभुवनदास बड़ा नेता बन जाता है।

त्रिभुवनदास बड़ा नेता बनने पर पद का पुजारी बन जाता है। वह लाभ के लिए सरकार का पक्ष लेकर प्रान्तीय होम मेम्बर बन जाता है। इस समय त्रिभुवनदास का पुत्र मनोहरदास विद्रोही बन कर अंग्रेजों की अन्यायकारी नीति का विरोध करता है। इस विरोध में पिकेटिंग करने वाले मनोहर और उसके साथियों पर सरकार गोली चलाती है। मनोहर घायल हो जाता है। मनोहर के घायल होने पर लाला चतुर्भुजदास सरकार की राजनीति का धिक्कार करते हैं। पर त्रिभुवनदास में अनुकूल परिवर्तन नहीं होता।

इस प्रकार नाटक में राजनीतिक परिवेश के सन्दर्भ में बाहर भी संघर्ष है और घर में माँ-पिता पुत्र का संघर्ष है। पिता पुत्र का संघर्ष राजनीति की दृष्टि से परस्पर विरुद्ध मान्यताओं का संघर्ष है। प्रस्तुत संघर्ष उच्च श्रेणी का वैचारिक संघर्ष है।

सेवापथ (१९४०) नाटक में संघर्ष का अभाव है। वृन्दावनलाल वर्मा कृत धीरे धीरे नाटक में भी संघर्ष का अभाव है। इन नाटकों में स्वातन्त्र्यपूर्व राजनीतिक वातावरण की झलक मिलती है।

हरिकृष्ण प्रेमी के संरक्षक (१९५५) नाटक में भी स्वातन्त्र्यपूर्व काल के राजनीतिक परिवेश के आधार पर कोटा की गद्दी के सन्दर्भ में बाह्य संघर्ष दिखाया गया है। उम्मेदसिंह का संरक्षक जालिमसिंह कोटा की राजसत्ता पर अपना पूरा पूरा नियन्त्रण चाहता है। अतः वह उम्मेदसिंह की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठे किशोरसिंह (उम्मेदसिंह के पुत्र) को अपने हाथ का खिलौना बनाने का प्रयास करता है। लेकिन इस प्रयास में जालिमसिंह को सफलता नहीं मिलती। जालिमसिंह और

उसका बेटा माधोसिंह अंग्रेजों की सहायता लेकर कोटा की राजसत्ता हस्तगत करने का प्रयत्न करते हैं।

जालिमसिंह का (देशभक्त) दासीपुत्र गोवर्धन और उसकी प्रेयसी दुर्गा महाराव किशोरसिंह का पक्ष लेकर अंग्रेजों से लडते हैं। प्रजा भी किशोरसिंह का पक्ष लेकर अंग्रेजो से लडती है। इस संघर्ष में गोवर्धन का भाई पृथ्वीसिंह वीरगति पाता है। संघर्ष रुक जाता है। दोनों पक्षों में सुलह हो जाती है।

गोवर्धन का संघर्ष उच्च श्रेणी का संघर्ष है। प्रस्तुत संघर्ष क्रमशः चरम सीमा पर पहुँच कर समाप्त हुआ है।

लक्ष्मीनारायण लाल का 'सूखा सरोवर' (१९६०) एक प्रतीकात्मक नाटक है। इसमें काल्पनिक राजा की कथा के द्वारा दिखाया गया है कि स्वार्थी तथा लोकहित की दृष्टि से उत्तरदायित्वहीन राजकर्ता के कारण राज्य में किस प्रकार संघर्ष छिडता है। यह संघर्ष एक ओर से राजकर्ताओं का आपसी संघर्ष होता है, तो दूसरी ओर असंतुष्ट एवं विद्रोही प्रजा का स्वार्थी सत्ताधारी से होता है।

छोटे राजा की सिंहासन पर अभिषिक्त होने की तीव्र इच्छा है। अतः वह इच्छा पूर्ति के लिए बडे राजा अर्थात बडे भाई से संघर्ष छेडता है। बडे राजा की हत्या का प्रयत्न किया जाता है। इस संघर्ष को रोकने के लिए बडा राजा संन्यास लेता है। छोटा राजा नगरी का राजा बन जाता है।

छोटा राजा अपनी कन्या का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध मनापुरी के राजा के साथ कराना चाहता है। इससे मुक्त होने के लिए राजकुमारी सरोवर में डूब कर आत्मघात कर लेती है। आत्महत्या से सरोवर का पानी सूख जाता है। प्यासी प्रजा में असंतोष उभरता है। संन्यासी (बडा राजा) लोगों को अपना अधिकार पाने के लिए विद्रोह की प्रेरणा देता है। प्रजा अन्यायी राजा को पदच्युत करने के लिए उग्र संघर्ष करने लगती है। नगरी का राजा भाग जाता है। राजकन्या का प्रेमी वीर पुरुष सरोवर में अपना बलिदान कर देता है। सरोवर में पानी ही पानी भर आता है।

प्रस्तुत नाटक में जो प्रजा का अत्याचारी शासक के विरुद्ध बाह्य संघर्ष है वह उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष की समाप्ति स्वाभाविक है। इस संघर्ष का निर्वाह कलात्मकता से किया गया है।

ज्ञानदेव अग्निहोत्री कृत प्रतीकात्मक नाटक 'शुतुरमुर्ग' (१९६८) में सत्ताधारियों की अवसरवादिता के संदर्भ में संघर्ष को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। इस नाटक में काल्पनिक राजा और उसका मन्त्रिमंडल है। साथ ही साथ विरोध करने वाले विरोधी नेता भी हैं। प्रस्तुत नाटक में राजकर्ताओं की तथा विरोधी नेताओं की स्वार्थी विश्वासघाती और अमर्यादित राजनीति है। यह तथ्य किसी भी

युग के (लेकिन नाटककार का ध्यान आज के युग पर अधिक है।) स्वार्थी विश्वासघाती, छली शासकों तथा विरोधियों पर लागू होता है। प्रस्तुत नाटक में आज के राजनीतिक क्षेत्र में उपलब्ध सभी प्रकार की चालाकियों, धोखेबाजियों और संघर्षपूर्ण बातों को स्थान मिला है।

चतुरनगरी का राजा केवल शुतुरमुर्ग जैसी प्रवृत्ति का नहीं अपितु एक सचेतन शुतुरमुर्ग जैसी प्रवृत्ति का है। आपत्ति के समय शुतुरमुर्ग की एक विशेष प्रवृत्ति दिखाई देती है जो उसे भ्रम में डालती है। किसी आपत्ति के कारण अपने को असुरक्षित देखकर शुतुरमुर्ग आँखें बंद कर अपनी चोंच रेत में डुबा लेता है और पलायन की इस सम्पूर्ण अनुभूति में यह कल्पना करता है कि उसे कोई नहीं देख रहा है—उसे कोई नहीं समझ रहा है, उसे कोई नहीं जान रहा है और वह सुरक्षित है। लेकिन सचेतन शुतुरमुर्ग की प्रवृत्ति इससे भिन्न होती है। सचेतन शुतुरमुर्ग अच्छी तरह जानता है कि उसे सब देख रहे हैं, सब समझ रहे हैं, सब जान रहे हैं और वह सुरक्षित नहीं है।

सचेतन शुतुरमुर्ग की प्रवृत्ति किसी भी शासक में दिखाई देती जो अपने लोकहित के कर्तव्य को नहीं निभाता, जानबूझकर लोगों की आँखों में धूल झोंकता है और अपना स्वार्थ साधने में व्यस्त रहता है। चतुरनगरी का राजा उक्त प्रवृत्ति का सचेतन शुतुरमुर्ग है। वह लोगों को इस प्रकार का अवसर नहीं देना चाहता कि लोगों का ध्यान राजा का विरोध करने पर केंद्रित हो जाय। अतः वह अपनी शक्ति एवं सत्ता को सुरक्षित रखने के लिए लोगों का ध्यान एक महान कार्य की ओर आकर्षित करता है। वह महान कार्य है सोने की 'शुतुर प्रतिमा' का निर्माण और उस पर स्वर्णछत्र की स्थापना। राजा इस वस्तुस्थिति को जानता है कि शुतुर की प्रतिमा के निर्माण में और उस पर स्वर्णछत्र की स्थापना में राज्य के अर्थ कोष से धन का बहुत अधिक व्यय हो रहा है। इस बहुत अधिक व्यय का प्रमुख कारण राजा जानता है। वह कारण यह है कि इस कार्य के प्रधान विकास मंत्री, महामंत्री तथा मंत्री, भाषण मंत्री राज्य के धन का अपहरण कर रहे हैं, भ्रष्टाचार कर रहे हैं। लेकिन यह जानते हुए भी राजा किसी मंत्री का विरोध नहीं करता। क्योंकि वह जानता है कि इन्हीं मंत्रियों के कारण वह असंतुष्ट जनता से सुरक्षित है। अतः वह मंत्रियों की स्वार्थपरता एवं धूर्तता को लेकर विवाद पैदा नहीं करता अपितु उन्हीं की आड़ में अपने को, जहाँ तक हो सके सुरक्षित रखने का प्रयास करता है। वास्तव में वह यह भी जानता है कि वह बहुत असुरक्षित है। इसके दो कारण हैं—एक है मंत्रियों की धूर्तता और स्वार्थपरता, दूसरा है, भूखी नंगी जनता की असंतुष्टता। ऐसी स्थिति में राजा अपनी सुरक्षितता के लिए जहाँ तक सम्भव है, मंत्रियों की ही सहायता लेता है और असन्तुष्ट प्रजा को भ्रम में डालता रहता है। राजा

इस प्रकार का काय गत बीस वर्षों से कर रहा है।

जब राजा के मत्री राजा को बताते हैं कि शुतुर प्रतिमा के निर्माण का काय अब बीसवें वष मे है, तो राजा राष्ट्र के नाम सन्देश प्रसारित करता है कि शुतुरमुग का दशन राष्ट का परम सत्य बने और उसका आचरण, राष्ट्रीय आचरण सहिता। जिस समय भाषण मन्त्री राजा का सन्देश प्रसारित करता है उस समय भूखी पीडित जनता क्रुद्ध होकर नारे लगाती है--राजा मुरदाबाद शुतुरमुग का नाश हो। इस क्रुद्ध भीड के नेता विरोधीलाल का कहना है कि देश का सारा धन, सारी प्रतिभा सारे उपकरण महज एक शुतुरमुग की प्रतिमा बनाने में लगाये जा रहे हैं। देश म गरीबी है लोग भूखो मर रहे हैं, तन ढँकने को कपडा नही रहने को मकान नहीं। देश में सूखा पडने से लोगो की दशा और अधिक दयनीय बन गयी है।

राजा अपनी सुरक्षितता के लिए कुछ यवतियो की सहायता स क्रुद्ध भीड का प्रतिकार करता है। राजा विरोधीलाल को बुलवाकर उसकी शिकायत सुनता है। विरोधीलाल राजा स कह देता है कि शुतुर प्रतिमा पर सुनहरी छतरी नही बनी है उसका सारा धन विकास मत्री हडप गया है। उस समय राजा विरोधीलाल म छिपी हुई स्वाथ वत्ति का पहचानता है और बडी चतुराई स भ्रष्टाचारी विकास मत्री को पदच्युत करके विरोधीलाल को स्वणमुद्राएँ दता है और उस अपना विकास मन्त्री बनाता है। विरोधीलाल के नाम म परिवतन किया जाता है। उसका नाम सुबोधी लाल रखा जाता है।

विरोधीलाल मामूलीराम (जो विरोधीलाल के बाद क्रुद्ध भीड का नता बन गया है) को समझाता है कि उसने जनता की भलाई के लिए मत्री पद को स्वीकार किया है। लेकिन राजा मामूलीराम के द्वारा प्रजा का विश्वास पाने के लिए मामूलीराम पर विरोधीलाल की स्वाथपरता प्रकट करता है। साथ ही साथ लोगो का ध्यान किसी दूसरी समस्या की ओर आकर्षित करने के लिए राजा घोषित करता है कि शुतुर नगरी की सीमाओ पर राजा रक्तवर्षी और रक्तबीज की सेनाओ का भयकर आक्रमण हुआ है। अत राष्ट्र की रक्षा के लिए वह राष्ट के नाम सन्देश प्रसारित करता है--'आगे एक लम्बा और कटु सघष है। हम अपनी प्रजा को कष्ट, आँसू और पीडा के अलावा और कुछ भी देने का वचन नही करते।'[1]

राजा भूख समस्या का समाधान पाने के लिए रानी की अध्यक्षता मे जाँच समिति का निर्माण करता है। इस समिति से प्राप्त विवरण के आधार पर राजा भूख की परिभाषा मे परिवतन करता है और घोषित करता है-- भूख अब एक शारीरिक स्थिति नही बल्कि मन स्थिति मानी जायगी। पेट मे भूख लगकर मरने का राज्य जिम्मदार है--परन्तु मस्तिष्क मे भूख लगने का नही। और चूकि हमारी

१ ज्ञानदेव अग्निहोत्री-शुतुरमुग-पृ० ३८ (प्र० स० सन १९६८ ई०)

घोषणा के अनुसार भूख मिटा मस्तिष्क को दिया सकती है। अतः इस नई परिभाषा के अनुसार सत्य के लिए भूख समस्या का अंत। सत्यमेव जयते।[1]

लेकिन इतना करने पर भी राजा और प्रजा का संघर्ष नहीं रुकता। इस स्थिति से लाभ उठाने के लिए मंत्रिमण्डल राजा का अनुमति लेकर प्रजा को शांत करने के लिए गुरुर प्रतिमा तुड़वाने की योजना बनाता है और इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए राज्य के अर्थ कोष से धन देता है। उस समय राजा को मामूलीराम से मालूम होता है कि छली मंत्रियों ने न गान के नाम पर वानरमुग का निर्माण किया है न सुनहरी छत्री की स्थापना। (वस्तुतः राजा यह सब पहले से ही जानता है।) राजा अपनी सत्ता की सुरक्षितता के लिए मामूलीराम के द्वारा जनता का विश्वास पाने का निश्चय करता है। लेकिन ठीक उसी समय राजा के मंत्री राजा को पदच्युत कर महामंत्री को राजा बनाने का प्रयत्न करते हैं राजा और मामूलीराम को बन्दी बनाते हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में आरम्भ से अंत तक राजा और प्रजा का संघर्ष बराबर चल रहा है। यह संघर्ष प्रजा हित के उत्तरदायित्व को न निभाने वाले शासक और पीड़ित प्रजा का है। पीड़ित प्रजा संगठित होकर अपनी दुरवस्था को हटाने के लिए उत्तरदायित्व हीन शासक से संघर्ष कर रही है। अतः यह संघर्ष व्यक्ति और समूह का है।

प्रस्तुत नाटक में हास्य-व्यंग्य को प्रचुर स्थान मिला है। राजा संघर्षशील प्रजा का प्रतिकार जिन युक्तियों से करता है, वे सब हास्यास्पद हैं। हर एक पात्र बड़ी चतुराई से एक दूसरे पर व्यंग्य तीर चलाता है। इससे प्रस्तुत नाटक मार्मिक बन गया है।

प्रस्तुत नाटक में स्वार्थी राजा और पीड़ित प्रजा का संघर्ष सूक्ष्म संघर्ष है। इस संघर्ष का प्रत्यक्ष रूप से चित्रण नहीं हुआ है। प्रस्तुत संघर्ष अन्य पात्रों के कथनों और राजा की क्रियाओं से व्यंजित हुआ है। नाटक के अंत में प्रस्तुत संघर्ष चरम सीमा पर पहुँच गया है। श्रेणी की दृष्टि से प्रजा का संघर्ष उच्च श्रेणी का है।

राजा और मंत्रियों का संघर्ष भी सूक्ष्म संघर्ष है। केवल नाटक के अन्त में इस संघर्ष ने स्थूल स्वरूप ग्रहण किया है। प्रस्तुत संघर्ष अतिशय साधारण श्रेणी का संघर्ष है। क्योंकि दोनों पक्ष स्वार्थ-साधन के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

स्वातंत्र्य के अनन्तर भारत की राजनीतिक तथा आर्थिक दुरवस्था को लेकर गुरुदत्त कृत वन्दे मातरम् नाटक संघर्ष शून्य है।

अमृतराय रचित 'चिन्दियों की एक झालर' (१९६९) नाटक में सूक्ष्म संघर्ष की प्रमुखता है। प्रस्तुत संघर्ष स्वातंत्र्योत्तर काल के शासकीय अन्याय एवं त्रुटियों के

---

१ ज्ञानदत्त अग्निहोत्री—शुतुरमुर्ग—पृ० ५८ (प्र० सं० सन १९६८ ई०)

विरुद्ध है । नाटक के आरम्भ म न दन और दीपा के मन में प्रस्तुत सघप,से सम्बन्धित असतोष है । न दन और दीपा म वतमान सत्ताधारियो की पाखण्डता तथा स्वार्था घता के प्रति तीव्र असन्तोष है । परन्तु नन्दन और दीपा अपन आदश जीवन मूल्यों को छोडकर सत्ताधारियो के विरुद्ध प्रखर सघप नही कर पाते । व दोना तीक्त तान कसते हैं और अपना असतोष प्रकट करत हैं ।

न दन और दीपा (पति-पत्नी) स्वातत्र्यपूव काल मे क्रान्तिकारी स्वातत्र्य सनिक रहे हैं । इ होने देश को स्वतन्त्र करन के लिए क्रान्तिकारियो के साथ अनेक क्रान्तिकारी काय किये हैं । इस क्रान्ति मे इनके कई साथियों का बलिदान हुआ है, जिनकी अनेक तसवीरें इनक पास सुरक्षित हैं, जो झालर के रूप मे लटकाई गई हैं । उस समय इन लोगो के सीने म एक जाग था एक आग थी, एक भूचाल था । एक महान ध्येय की पूर्ति के लिए वे प्राणो पर खेल रहे थे । अब इनके कई सपने अधूरे हो रह हैं । धनाभाव म भी व आदर्शों का पालन कर रहे हैं । अ य पाखण्डी देश-भक्तो न स्वतन्त्रता पाते ही स्वाथ पूर्ति मे बहुत कुछ पाया । परन्तु आदशवादी नन्दन स्वाथ पर्ति के लिए किसी के सामने अपना गौरवशाली सर नही झुकाता । वह अभाव म भी अपन आदर्शों को निभाता रहता है । यहीं उसका सतोष है । लकिन नन्दन का यथाथवादी बेटा मगल इस सतोष पर कडा आघात कर देता है । इससे सूक्ष्म सघप स्थूल बन जाता है ।

अपने पास शक्षणिक योग्यता होते हुए भी मगल कही नौकरी पाने में अस फल रहता है । जहाँ तहाँ अपन आदमी" को ही नौकरी दी जाती है । यदि न दन कही सिफारिश करने जाता तो मगल को नौकरी मिल सकती थी । लेकिन अपने आदशवाद पर आँच न आ जाय, इसलिए नन्दन पुत्र की सिफारिश करने कही नही जाता । इन बातो से तग आया हुआ मगल स्वर दुराचार में फँस जाता है । वह दुराचारी लडके-लडकियो की टोली म फँस जाता है । शराब पीकर उन सभी के साथ नाचता गाता हुडदग मचाता रहता है । एक दिन नन्दन अपनी आँखा से यह सब दखता है । इससे पिता-पुत्र मे सघर्ष छिडता है । इस सघप मे मगल बडी निम मता से पिता क आदशवाद के टुकडे-टुकडे कर देता है । पिता पुत्र म इस प्रकार सघप छिडता है—

"नन्दन— बहुत दिनो से सुनता आ रहा था-जिसके तिसके मुँह से आज अपनी आँखा से दख लिया

मगल— हाँ हाँ मैं शराबी हूँ जुआरी हूँ, बदचलन हूँ सब हूँ, किसी को मतलब ?

नन्दन— समाज में रहने के कुछ नियम भी होते हैं—

मगल— वाह रे आपका समाज और वाह रे उसके नियम यू सब पाखड है, झूठ का यापार यहाँ से वहाँ तक

क्रुद्ध मगल एक एक तसवीर नोचकर फेंकता है। नन्दन से सहा नही जाता, जोर स हाथ घुमाकर एक झापड मगल को रसीद करता है। न दन पागल की भाँति अन्दर के कमरे मे भागता है और आत्मघात कर लेता है।

पिता पुत्र का (आदशवाद और यथाथवाद) सघप चरम सीमा पर पहुँच जाता है और नाटक एकाएक रुक जाता है।

प्रस्तुत नाटक म शासकीय अन्याय एव त्रुटियो क विरुद्ध न दन दोपा और मगल का सूक्ष्म तथा प्रतिनिधिक सघप है। प्रस्तुत सघप उच्च श्रेणी का सघप है।

मगल उन युवको का प्रतिनिधि है, जो स्वातन्त्र्योत्तर कालीन भ्रष्टाचारी शासन से तग आकर विद्रोही एव अनास्थावादी बन गय हैं। इस दृष्टि से विद्रोही मगल का सघप भ्रष्टाचारी शासन के विरुद्ध है। मगल का आदशवादी पिता से जो सघप है वह साधारण श्रेणी का सघप है।

६ इतर विषयों से सम्बद्ध सामाजिक नाटक और सघर्ष तत्व

विवचित सामाजिक नाटको के अतिरिक्त समाज सम्बन्धी विविध प्रकार क विषयों को लेकर अन्य अनेक नाटक रचे गय हैं। इन नाटका मे से कुछ नाटको म सघप को स्थान दिया गया है।

नौकरी न मिलन क कारण अनेक शिक्षित युवको को बकार रहना पडता है। इस स्थिति को लेकर शील न हवा का रुख' (१९६२) नाटक लिखा है। पर इस नाटक म सघप का अभाव है। स तोष नारायण नौटियाल लिखित 'चाय पार्टियाँ' (१९६३) नाटक म बकारी का प्रतिकार करने क सन्दभ म सघप को स्थान मिला है।

'चाय पार्टियाँ' नाटक में रमश अपन बकार रिश्तेदारा को नौकरी दिलवान क लिए प्रयत्न करता है। वह सोचता है कि रिश्तदारो को नौकरी मिल गई ता अपनी भी आर्थिक दुरवस्था मिट जायगी। इस धारणा का लेकर रमेश प्रतिकूल परिस्थिति को अनुकूल बनाने के लिए सघप करता है।

रमेश अपने स्वजना को नौकरो दिलवान क लिए अपने यहाँ चाय पार्टी का प्रब ध करता है और किसी न किसी अफसर को निमत्रण देता है। इस रूप मे रमेश प्रतिकूल परिस्थति स सघप कर रहा है। यह सघप बहुत हास्यजनक है। रमेश "चाय पार्टी' के प्रबन्ध के लिए जिन बहानों की मदद लेता है, वे बहुत ही हास्यास्पद हैं। वह घर मे किसी भी अपन का जन्म दिन दो दो, तीन-तीन बार मनाता है। लेकिन सतीश (रमेश का छोटा भाई) को यह दौडधूप अनुचित लगती है। अत भाई भाई म सघप छिडता है। सतीश एम० ए० तक पढ़ा हुआ है। वह नौकरी पान के लिए किसी का खुशामद करना नही चाहता। इसलिए उस कहीं

नौकरी नहीं मिल रही है। इससे रमेन चिढ़ता है। फलत भाई भाई में संघर्ष छिड़ता है।

बजरंग साहब के ऑफिस में इन्सपेक्टर की एक जगह खाली है। रमेन अपने मनोज (विश्वम्भर) को यह जगह दिलवाने के लिए बजरंग की खुशामद करना चाहता है। इसके लिए रमेन चाय पार्टी का प्रबन्ध करना चाहता है। लेकिन सतीश विरोध करता है। इससे भाई भाई में संघर्ष इस प्रकार छिड़ता है—

इस संघर्ष में रमेन की पत्नी विमला भी पति का विरोध करती है।

सतीश—लेकिन भय्या यह तो झूठ है।

रमेन— (सतीश की ओर गुस्से से देखकर) यह झूठ है ?

विमला—झूठ नहीं तो और क्या है ?

रमेन— यह है टैक्ट डिप्लोमसी, कूटनीति यानी दुनियादारी। लेकिन तुमने मेरा सवाल क्यों बातों में उड़ा दिया। कब है तुम्हारा जन्म दिन ?

विमला—इस साल तो चार तो मेरा जन्म दिन मना चुके हो।

सतीश—तुम्हारा हो क्या मामा मेरा ख्याल है कि अब तक तो कुत्ते बिल्ली और गुड्डे-गुड़ियों के जन्म दिन भी कई कई बार मनाये जा चुके हैं।

रमेन— तुम चुप रहो। (विमला से) अरे भाई जब अपना काम निकालना है तो जहाँ दो बार मनाया वहाँ एक बार और सही।

विमला—ऐसा ही है तो अपना जन्म दिन क्या नहीं मनाते ?

रमेन— चार बार तो मना चुका हूँ और कितनी बार मनाऊँ ?[१]

इससे स्पष्ट होता है कि रमेन अपनी आर्थिक दुरवस्था को सुधारने के लिए प्रतिकूल परिस्थिति से किस प्रकार संघर्ष कर रहा है। बजरंग जब चाय पार्टी में सम्मिलित होता है तब विमला भी अपने भतीजे (महेश) को नौकरी दिलवाने के लिए प्रयत्न करती है। लेकिन बजरंग न विमला की सुनता है, न रमेन की। वह तो किसी की खुशामद न करने वाले सतीश को नौकरी देता है।

सतीश और रमेन का बाह्य संघर्ष स्थूल संघर्ष है। लेकिन रमेन का अपनी दुरवस्था से जो संघर्ष है, वह सूक्ष्म संघर्ष है।

राजकीय कार्यालयों तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में फैले हुए भ्रष्टाचार पर प्रकाश डालने के हेतु चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने न्याय की रात (१९५८) नाटक लिखा है। लेकिन इस नाटक में संघर्ष को विशेष स्थान नहीं दिया गया है।

कर्तार सिंह दुग्गल कृत जहर (१९६६) नाटक में संघर्ष को बहुत कम स्थान मिला है। नाटक के आरम्भ में आन्दोलनों बिना बजबिहारी और मुनाफाखोरी, चोरबाजारी तथा भ्रष्टाचार में लीन पुत्र श्यामचरण का संघर्ष है। परन्तु आगे चल

१ सत्यनारायण नौटियाल—चाय पार्टियाँ—पृ० ७-८ (प्र० सं० सन् १९६३ ई०)

कर अन्य बातो को ही अधिक स्थान दिया जाने के परिणामस्वरूप पिता-पुत्र का सघर्ष आगे नही बढ़ पाया है।

"जनता का सेवक" (१९६३) नाटक मे वृन्दावनलाल भटनागर ने भ्रष्टाचार वादी पिता और आदर्शवादी पुत्र का सघर्ष दिखाया है। इस नाटक का निर्माण इस उद्देश्य से किया गया है कि आम चुनावो के समय प्रदर्शित भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति को मुखर करना। सेठ बाँकेलाल और उनके मित्र शीतलप्रसाद धन के लोभी हैं। बाँके लाल अपना उल्लू सीधा करने के हेतु शीतलप्रसाद को चुनाव के लिए खडा करता है। बाँकेलाल का पुत्र कुमार एक समाज सुधारक नवयुवक है जो पदयात्रा करके जनता को अपने कर्त्तव्यो के प्रति जागरूक रहने का सन्देश देता है। वह अपने सुधार वादी मित्र किशोर को चुनाव के लिए खडा करता है। परिणामत बाँकेलाल और कुमार मे सघर्ष छिडता है। दोनो भी अपनी अपनी मान्यता पर अडे रहते हैं। अन्त मे कुमार के पक्ष की जीत होती है। यह जीत स्वाभाविक है। कुमार का सघर्ष उच्च श्रेणी का सघर्ष है। इस सघर्ष के निर्वाह मे नाटककार का विशेष कौशल दृष्टिगत नही होता है।

फैशन की समस्या को लेकर लिखे गए नाटको में सघर्ष का विशेष स्थान नही मिला है। इन नाटकों मे इस बात पर बल दिया गया है कि फैशन के कारण कितना नुकसान उठाना पडता है। अत निम्नलिखित नाटको में अनुकूल परिस्थिति के होते हुए भी सघर्ष नहीं उभर पाया है--डा० गोविन्ददास कृत प्रेम या पाप", उदयशंकर भट्ट कृत पार्वती , वृन्दावनलाल वर्मा कृत देखा देखी' रमेश मेहता कृत 'अण्डर सेक्रेटरी तथा बडे आदमी" और लक्ष्मीनारायणलाल कृत "सुन्दर रस'। 'सुन्दर रस में फैशनपरस्त देवियाँ (पण्डितराज की पत्नी) स्वय अधिका धिक सुन्दर बनने की धुन मे चचल बन जाती है। देवी माँ की छोटी बहन बीना को यह अच्छा नही लगता। परिणामस्वरूप परस्पर विरुद्ध दृष्टिकोण के कारण, बहन बहन मे सघर्ष छिडता है। आगे चलकर देवी मा के दृष्टिकोण मे परिवर्तन होता है। वह बीना के दृष्टिकोण को अपनाती है। तत्पश्चात बहनो का सघर्ष समाप्त हो जाता है।

प्रस्तुत सघर्ष उच्च श्रेणी का सघर्ष है। इस सघर्ष मे बीना के सदविचार की जीत हो जाती है। यह जीत स्वाभाविक है।

रमेश मेहता के फैसला' नाटक मे विधवा विवाह के सन्दर्भ मे थोडा बाह्य सघर्ष है। विधवा राधा का चचेरा देवर बिहारी क्रांतिकारी, प्रगतिवादी और विधवा का विवाह चाहने वाला है। अत बिहारी विधवा राधा पर अत्याचार करने वाले चाचा और चाची से सघर्ष छेडता है। लेकिन चाची चालाकी से बिहारी को जहर पिलाकर पागल बनाती है। इससे सघर्ष समाप्त होता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क के "अन्धी गली" (१९५६) नाटक में मकान की समस्या है। इस समस्या के साथ ही साथ शरणार्थी समस्या आर्थिक समस्या भ्रष्टाचार की समस्या आदि समस्याओं को स्थान मिला है। लेकिन प्रस्तुत नाटक के छठे अक म ही बाह्य सघष को स्थान मिला है। बिन्दा बाबू के यहाँ ठहरे हुए किरायेदारों को दीनदयाल बहकाकर अपने यहाँ किराये पर ठहराने का प्रयास करता है। इससे गुस्से म आकर श्रीमती बिन्दासरन दीनदयाल पर करारा ताना कसती है। उधर से दीन दयाल की पत्नी (चाची) प्रतिकार आरम्भ करती है। बातो बातो म सघष बढता है। इस सघष म श्रीमती बिन्दासरन, चाचा मिसेज लोकू मिसेज गुप्ता डाकू की माँ रामचरण का घरवाली रघुनाथसिंह करतारसिंह आदि भाग लेते हैं और एक दूसरे को नीचा दिखाते हैं। इसमें व्यक्ति व्यक्ति का सघष एक व्यापक रूप धारण करता है और चरम सीमा पर पहुँचकर समाप्त होता है। इस सघष के कारण छठा अक अधिक रोचक और प्रभावशाली बन गया है।

प्रस्तुत अक म विभिन्न स्वार्थों को लेकर व्यक्ति व्यक्ति म सघष चलता है। अत प्रस्तुत सघष स्थूल तथा साधारण श्रेणी का सघष है। इस सघष का निर्वाह अत्यन्त कलात्मकता से किया गया है।

बाबा डिके कृत "मगू (१९५८) म डाकू के उद्धार की समस्या के सन्दभ म बाह्य सघष को स्थान मिला है। नवयुवक गिरधारी डाकू मगू के दल का साहस पूवक मुकाबला करता है। गिरधारी की मानवता से डाकू मगू म परिवतन होता है। मगू डकैती को त्यागता है और गाव के उद्धार के लिए गिरधारी का पक्ष लेकर अत्याचारी ठाकुर से लडता है। वृन्दावनलाल वर्मा कृत केवट म तथा कृष्ण बहादुरचन्द्र कृत सरहद म भी 'डाकू की समस्या के सन्दभ म अत्यन्त क्षीण सघष है।

डा० लक्ष्मीनारायणलाल ने तीन आँखो वाली मछली (१९६०) नाटक म श्याम बिहारी के आन्तरिक और बाह्य सघष के द्वारा यह दिखाया है कि मृत्यु तथा भाग्य के भय म मुक्त होने पर ही मनुष्य अपने जीवन का नियता बन सकता है।

प्रस्तुत नाटक की प्रस्तावना म डा० लक्ष्मीनारायणलाल लिखते हैं— जो मृत्यु एडवोकेट श्यामबिहारीलाल के लिए प्रथम अक म भय है, त्रास है, वही मृत्यु आगे सघष है, और उत्तरोत्तर वही मृत्यु उन्हे मुक्तिदायक अनुभूति देती है–जब पुराण की माया की वह छाया सी मछली एक जीवन को काटती हुई उसमे आत्म विकास करता हुई मृत्यु के अन्धकार से चलकर मुक्तिमय, गहन प्रशान्त सागर म पहुँच जाती है।[1]

---

१ डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल–तीन आँखो वाली मछली–(प्र० स० सन १९६० ई०)

श्यामबिहारी का ज्योतिष पर अटूट विश्वास है। श्यामबिहारी का बड़ा पुत्र रामचन्द्र पिता के इस विश्वास से अनुचित लाभ उठा रहा है। उसने पंडित हरेराम को सवा सौ रुपये देने का वादा करके एक षडयंत्र रचा है। भृगुसंहिता पर विश्वास करने वाले श्यामबिहारी को बताया गया है कि उनकी आयु के बावन साल पूर्ण होते होते दो नवम्बर को रात्रि के ठीक ग्यारह बजे शांति के साथ उनकी मृत्यु होगी। तब से श्यामबिहारी में मृत्यु का भय बराबर बना रहा है। इस भय के कारण श्यामबिहारी ने अपने घर में अपनी इच्छाओं के अनुकूल वातावरण बना रखा है। कोई उनके नियम का विरोध नहीं कर सकता।

लेकिन कमलनयन ने (श्यामबिहारी के छोटे पुत्र ने) पिता के विश्वास का विरोध किया था। उसने ज्योतिष को झूठ कहा था। वह जानता था कि यह बड़े भाई का रचा हुआ षडयंत्र है जिससे उसे जायदाद का बहुत अधिक लाभ होगा। अतः कमलनयन पिता के विश्वास का तथा पिता के नियमों का विरोध करता रहा। क्रोध में आकर श्यामबिहारी ने कमलनयन को घर से निकाल बाहर कर दिया। किसी झूठे अपराध के कारण कमलनयन को चार साल की सजा हुई। लेकिन एडवोकेट श्यामबिहारी ने उसे मुक्त करने का प्रयत्न नहीं किया। यहाँ तक कि श्यामबिहारी ने अपनी पूरी जायदाद बड़े बेटे रामचन्दर और मझले बेटे गोपाल में बाँट दी। कमलनयन के लिए कुछ भी नहीं रखा। वे इस घर में कमलनयन का नाम लेना भी अशुभ मानते हैं।

जैसे जैसे समय बीतता है श्यामबिहारी बहुत बेचैन हो जाते हैं। उनके मानस में द्वन्द्व चलता है। कभी उन्हें लगता है कि ज्योतिष पर विश्वास करना अनुचित है तो कभी लगता है, ज्योतिष पर विश्वास करना उचित ही है। इससे उनके मानस में मृत्यु और जीवन का भयंकर द्वन्द्व छिड़ता है। वे निर्णय नहीं कर पाते कि मृत्यु को स्वीकार किया जाय अथवा जीवन को? लेकिन श्यामबिहारी अपना आंतरिक संघर्ष प्रकट नहीं होने देते। उसे भीतर ही छिपाकर रखते हैं। लेकिन हरेराम और रामचन्दर जान बूझकर श्यामबिहारी को संभाव्य मृत्यु के क्षण का स्मरण दिलाते रहते हैं। यहाँ तक कि वे दोनों श्याम के अंत का पूरा पूरा प्रबंध करते हैं। इससे श्यामबिहारी का आंतरिक संघर्ष तीव्र बन जाता है। मृत्यु से भयभीत हुए श्यामबिहारी अपने को अमर बनाने के लिए अपने परिवार के साथ फोटो खिंचवाते हैं। तीन घड़ियाँ अपने पास रखकर समय की गिनती करते हैं। वे अपने जीवन का प्रत्येक पल मौत के लिए जीते रहते हैं। अस्थिर श्यामबिहारी मौत पर विजय पाने के लिए सोचते हैं— 'मेरे सामने मेरी तीन पीढ़ियाँ हैं। मैं इन्हीं में अमर रहूँगा।'[1]

१ डा० लक्ष्मीनारायण लाल—तीन आँखों वाली मछली—पृष्ठ १३ (प्र० सं० सन् १९६० ई०)

लेकिन सोचने पर भी वे आंतरिक संघर्ष से मुक्त नहीं होते ।

जब समाप्य मृत्यु का दिन एकदम पास आता है तब श्यामविहारी का आंतरिक संघर्ष तीव्र बन जाता है। रामचन्द्र हरराम के द्वारा पूजा-पाठ का प्रबन्ध करता है गंगाजल लाता है। इन बातों को देखकर श्यामविहारी का अन्तर्द्वन्द्व चरम सीमा पर पहुँच जाता है। तीव्र अन्तर्द्वन्द्व में ग्रस्त श्यामविहारी को अचानक नींद आती है। नींद में श्यामविहारी स्वप्न देखते हैं। उस स्वप्न में देखते हैं कि उनका देहान्त हुआ है कमलनयन को छोड़कर सब उनकी लाश के चारों ओर खड़े हैं पर कोई नहीं रो रहा है सब स्वार्थी दिखाई देते हैं। इस स्वप्न से श्यामविहारी में एकदम परिवर्तन हो जाता है। वे अन्तर्द्वन्द्व से मुक्त हो जाते हैं। मृत्यु के भय से मुक्त होकर जीने का निश्चय करते हैं। अब वे ज्योतिष को असत्य सिद्ध करने के लिए जीने का निर्णय करते हैं। वे कमलनयन को अपने घर बुलाना चाहते हैं। अब उनकी समझ में आता है कि कमलनयन ही निस्वार्थ और सच्चा है। वे हरराम और रामचन्द्र की असत्य बातों का प्रतिकार करने लगते हैं जो केवल मरने के लिए जा रहे थे वे अब जीने के लिए जाते हैं। वे गोपाल से कहते हैं— मौत के इस भयानक राज्य में इन्सान जो कहीं रहता है। वह तो जन्म से ही डरा हुआ है। जिस दिन से इन्सान जीने लगेगा न सचमुच यह संसार बदल जायगा।[1] इस क्रान्तिकारी ज्ञान को लेकर श्यामविहारी निर्भयपूर्वक जीने लगते हैं। अब वे पश्चात्ताप का अनुभव करते हैं। वे बन्दू से कहते हैं— मेरी कथा में ऐसा कुछ भी नहीं है। यह एक ऐसी कथा है जो अपने को मार कर अमर होना चाहता था मारकर अमर।[2]

क्रान्तिकारी परिवर्तन के पश्चात श्यामविहारी स्वयं के ही अपने मन से संघर्ष करने लगते हैं। वे अपने जीवन को नियता बनकर ज्योतिष से भाग्य से नियति से संघर्ष छेड़ते हैं। ऐसी स्थिति में वे जेल से मुक्त होकर आये हुए कमलनयन का स्वागत करते हैं।

इस नाटक में श्यामविहारी का भतीजा बद्री नाटक के आरम्भ से ही, ज्योतिष पर आधारित अन्धविश्वासों से संघर्ष करता है। इसलिए ही वह षडयन्त्री रामचन्द्र और हरराम से संघर्ष करता है। प्रस्तुत नाटक में पिता पुत्र का संघर्ष स्थूल संघर्ष है। यह साधारण श्रेणी का संघर्ष है। श्यामविहारी का आन्तरिक संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इस संघर्ष की परिणति स्वाभाविक लगती है।

सीताराम चतुर्वेदी कृत पाप की छाया (१९६०) में कमलाकान्त के आंतरिक संघर्ष की प्रधानता है। इस संघर्ष के साथ ही नाटक का आरम्भ होता

१ डा० लक्ष्मीनारायण लाल—तीन आँखों वाली मछली— पृष्ठ ५४।
२ वही—पृष्ठ ८१।

है और इसी संघर्ष की समाप्ति के साथ ही नाटक भी समाप्त होता है। इस संघर्ष का कारण यह है कि कमलाकान्त द्वारा अपने मित्र का विश्वासघात किया जाना।

कमलाकान्त के मित्र श्याममोहन ने आसाम जाने के पूर्व कमलाकान्त के पास बीस हजार के गहने और दस हजार रुपये रख दिये थे। श्याममोहन ने विश्वास पूर्वक कह दिया था कि यह धन उसकी सन्तान को दिया जाय। पर कमलाकान्त वचन पूर्ति के पूर्व दस हजार रुपये अपने पुत्र श्रीकान्त को देता है और उसे पढ़ाई के लिए अमरीका भेजता है। गहने बेचकर शेयर खरीदने में मानिकचन्द को भारी घाटा उठाना पड़ता है। अतः मानिकचन्द इस चिन्ता से बेचैन हो जाता है कि श्याम मोहन का धन किस प्रकार लौटाया जाय।

श्याममोहन की बीमार पत्नी अपने पुत्र को लेकर कमलाकान्त से पैसे लेने आती है। कमलाकान्त से केवल दस हजार रुपया पाने के कारण अस्पताल में श्याम मोहन की पत्नी मर जाती है। उसी क्षण अमरीका से तार आता है कि मोटर अपघात में श्रीकान्त सख्त घायल हुआ है। इन घटनाओं को लेकर धन लौटाने के सन्दर्भ में कमलाकान्त में आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है—

"कमलाकान्त का पहला स्वर–यदि न दूँ तो।

दूसरा स्वर– पराया धन है इसे दबाओगे तो सर्वनाश हो जायगा।

तीसरा– कौन जानता है ?

चौथा– ईश्वर ! ईश्वर ! ईश्वर !

पाँचवाँ स्वर– ईश्वर को किसने देखा है ?"[1]

अन्त में कमलाकान्त की सदभावना दुष्ट भावना को दबाकर प्रबल बन जाती है। फलतः कमलाकान्त धन लौटाने का निर्णय करता है और आन्तरिक संघर्ष पर विजय पाता है। कमलाकान्त का आन्तरिक संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का संघर्ष है।

डॉ० गोविन्ददास ने भारतेन्दु तथा सर्वोदयवादी आचार्य विनोबा भावे और लक्ष्मीनारायण मिश्र ने "कवि भारतेन्दु" को लेकर सामाजिक नाटक का निर्माण किया है।

डा० गोविन्ददास का 'भूदान–यज्ञ' (१९५४) नाटक तेलंगना में हुई "साम्यवादी क्रान्ति से तथा आचार्य विनोबा जी प्रणीत "सर्वोदयवाद" से सम्बद्ध है। नाटक के आरम्भ में यह दिखाया गया है कि तेलंगना में क्रूर जमींदारों के अत्याचारों से पीड़ित सर्वहारा वर्ग साम्यवादी बन गया है। साम्यवादी युवक जमींदारों का खून बहाने के लिए प्रतिज्ञापूर्वक सशस्त्र क्रान्ति का आरम्भ करते हैं। इस क्रान्ति से भयभीत हुए जमींदार आचार्य विनोबा जी के पास पहुँचते हैं। आचार्य

१ सीताराम चतुर्वेदी–पाप की छाया—पृ० २० (प्र० सं० सन् १९६० ई०)

विमाता की सन्तान शान्ति को तथा जमींदारों की शोषण नीति को रोकने के लिए भूदान यज्ञ (सर्वोदयवाद) का आरम्भ करते हैं। इससे साम्यवादियों में भी और जमींदारों में भी समुचित परिवर्तन होता है।

प्रस्तुत संघर्ष उच्च श्रेणी का वैचारिक संघर्ष है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत 'कवि भारतेन्दु' (१९५५) और डॉ० गोविन्ददास कृत 'भारतेन्दु' (१९५६) में क्षीण बाह्य संघर्ष है। 'कवि भारतेन्दु' में संघर्ष का बीज है, परन्तु उसका विकास नहीं हुआ है। भारतेन्दु बड़े पवित्र और त्याग वाले व्यक्ति हैं। अतः अपने परिवार में भाई गोकुलचन्द से उनकी नहीं पटती। इस अनबन (विरोध) ने संघर्ष का रूप धारण नहीं किया है। क्योंकि भारतेन्दु अपने सगों से संघर्ष करना नहीं चाहते। अतः वे कहते हैं— सगे भाई से विमाता से वैर करना मुझसे न हो सकेगा। वे लोग जिसमें सुखी रहें मन भी उसी में सुखी है।[1] फलस्वरूप प्रस्तुत नाटक में संघर्ष का अभाव है।

डॉ० गोविन्ददास कृत 'भारतेन्दु' में भी संघर्ष का अभाव ही है। इस नाटक में भी भाई-भाई और पति-पत्नी की अनबन ने संघर्ष का रूप धारण नहीं किया है।

उपर्युक्त विवेचित सामाजिक नाटकों के अतिरिक्त नाटकों में संघर्ष को विशेष स्थान नहीं मिल पाया है इस वास्तविकता के कारण निम्नलिखित नाटकों का विवेचन करना अपरिहार्य नहीं प्रतीत होता है।

अभयकुमार यौधेय कृत 'टूटते तारे', उदयशंकर भट्ट कृत 'अन्तहीन अन्त', उपेन्द्रनाथ अश्क लिखित 'स्वर्ग की झलक', 'पैतरे' और 'बड़े खिलाड़ी', कृष्णकुमार मुखोपाध्याय कृत 'डाक्टर बनाम पहलवान', 'रेखा', गुरुदत्त कृत 'मेरी पसन्द', गुलाब खण्डेलवाल कृत 'भूल', डॉ० गोविन्ददास रचित 'त्याग या ग्रहण', 'ललित कुसुम', 'पतित सुमन' और 'सन्तोष कहाँ', गोविन्दवल्लभ पन्त कृत 'अंगूर की बेटी' और 'सुहागिनी' (सुहाग बिन्दी), जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द कृत 'समर्पण', दयाशंकर पाण्डेय 'हरीश' लिखित 'एक ही रास्ता', नरेश मेहता कृत 'सुबह के घण्टे', परितोष गार्गी लिखित 'छलावा', पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र कृत 'चुम्बन' और 'डिक्टेटर', पृथ्वीनाथ शर्मा रचित 'अपराधी' और 'नया रूप', प्रकाश साथी रचित 'आराम हराम है', बाबू रामसिंह लमगोड़ा रचित 'धाता का मारगी', भगवतीप्रसाद वाजपेयी कृत 'छलना', मोहनलाल महतो वियोगी लिखित 'कमाई', यज्ञदत्त शर्मा कृत 'गिरस्तर कमरा', रमेश मेहता कृत 'अपराधी कौन', 'उलझन', 'जमाना', 'ढोंग' और 'शामाल', राजकुमार कृत 'काला आदमी', 'चार भाग' और 'सड़ी रस्सी', राम अवध शास्त्री लिखित 'घरना का दाग', रामनरेश त्रिपाठी प्रणीत 'कन्या का तपोवन' (प्रेम लोक)

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र—कवि भारतेन्दु—पृष्ठ ८५ (प्र० सं० सन् १९५४ ई०)

और 'जयन्त', रामाश्रय दीक्षित रचित नया जन्म, रूपसिंह कृत 'आदर्श पत्नी', रेवती सरन शर्मा कृत अपनी धरती, विजय शुक्ल कृत 'पतिता विजयकुमार गुप्त कृत 'मुर्दा जी उठा, विमला रैना कृत 'तीन युग वीरदेव वीर कृत 'याम', भूख' और 'संघर्ष', व दावनलाल वर्मा लिखित नीलकण्ठ और बास की फाँस', वकुण्ठनाथ दुग्गल कृत 'नारी' शारदादेवी मिश्र कृत विवाह मण्डप', शम्भूदयाल सक्सेना रचित सगाई' सीताराम चतुर्वेदी कृत 'बेचारा केशव' युग बदल रहा है' और विश्वास', सुदर्शन बब्बर कृत 'गुस्ताकी माफ' और सब चलता है, सुरेन्द्रकुमार घुन्ना रचित स्वप्नपूर्णा' और सूर्यनारायण अग्रवाल लिखित 'माँ, हरिकृष्ण प्रेमी कृत 'छाया' और 'ममता'।

निष्कर्ष

सामाजिक नाटक और संघर्ष तत्त्व की विवेचना करने के उपरान्त निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि संघर्ष ने सामाजिक नाटकों में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व का रूप ग्रहण किया है।

१ प्रेम और विवाह से सम्बन्धित नाटकों में आन्तरिक संघर्ष की प्रधानता है। यह आन्तरिक संघर्ष परस्पर विरुद्ध भावनाओं और इच्छाओं का संघर्ष है। इस संघर्ष के कारण दर्पन' 'डाक्टर और कद ने हृदयस्पर्शी रूप धारण किया है।

२ पति पत्नी के संघर्ष से सम्बद्ध नाटकों में बाह्य संघर्ष के साथ साथ आन्तरिक संघर्ष का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस विशेषता के कारण ही रातरानी 'आधे अधूरे, अंधेरे का बेटा आदि नाटक अत्यन्त मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं। इन नाटकों में बाह्य संघर्ष और आन्तरिक संघर्ष परस्पर पोषक हैं। परस्पर विरुद्ध धारणाओं, विचारों तथा इच्छाओं के कारण पति पत्नी में बाह्य संघर्ष है। इस संघर्ष के कारण पति अथवा पत्नी के सामने निर्णय करने की समस्या उपस्थित होती है। जब तक निर्णय नहीं किया जा सकता तब तक पत्नी अथवा पति को अपनी अनिर्णयात्मक मन स्थिति से संघर्ष करना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप बाह्य संघर्ष तीव्र बनता रहता है।

३ पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित अन्य नाटकों तथा पति पत्नी के संघर्ष से सम्बन्धित कुछ नाटकों में केवल बाह्य संघर्ष है। इन नाटकों में परस्पर विरुद्ध विचारधाराओं तथा जीवन विषयक दृष्टिकोणों के कारण प्रखर संघर्ष छिड़ता है। माँ बाप और उनकी सन्तान का संघर्ष परम्परावादी पुरानी पीढ़ी और क्रान्तिकारी नई पीढ़ी के संघर्ष का रूप धारण करता है। इस संघर्ष में नये जीवनमूल्यों के समर्थन के हेतु पुराने जीवन मूल्यों पर कड़े आघात किए जाते हैं। इस कारण 'अलग अलग रास्ते न धर्म न ईमान, 'युगे-युग क्रान्ति' आदि नाटक मार्मिक बन पड़े हैं।

जिन नाटकों में परस्पर विरुद्ध इच्छाओं और नई-पुरानी मान्यताओं के कारण पति-पत्नी में प्रखर संघर्ष छिड़ता है, वे नाटक भी उद्बोधक बन पड़े हैं। इस सन्दर्भ में 'अधेरे बन्द कमरे', 'चिराग की लौ', "बिना दीवारों के घर", 'रास्ते मोड़ और पगडण्डी' आदि नाटक उल्लेखनीय हैं।

४ आर्थिक विषमता से सम्बन्धित नाटकों में केवल बाह्य संघर्ष है। इनमें आन्तरिक संघर्ष का अभाव है। इन नाटकों में तब संघर्ष छिड़ता है जब शोषित मजदूर और शोषित किसान अपने अधिकारों के लिए अत्याचारी धनवानों से लड़ने को उद्युक्त हो जाते हैं। इन नाटकों में व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष प्रातिनिधिक दृष्टि से समूह-समूह के संघर्ष का रूप धारण करता है। यहाँ शोषित व्यक्ति शोषितों का प्रतिनिधि होता है और शोषक व्यक्ति शोषकों का प्रतिनिधि। प्रस्तुत संघर्ष धीरे धीरे प्रखर बनता है और चरम-सीमा पर पहुँचकर समाप्त होता है।

५ अस्पृश्यता निर्मूलन से सम्बद्ध नाटकों में सुधारवादियों का पुरातनवादियों से तीव्र बाह्य संघर्ष है। यहाँ परस्पर विरुद्ध विचारधारा के कारण व्यक्ति-व्यक्ति में, व्यक्ति-समूह में तथा समूह समूह में संघर्ष छिड़ता है। इन नाटकों में भी आन्तरिक संघर्ष का अभाव है।

६ राजनीति से सम्बन्धित तथा इतर विषयों से सम्बन्धित सामाजिक नाटकों में केवल बाह्य संघर्ष है। इन नाटकों में आन्तरिक संघर्ष की नितान्त कमी है।

७ कुछ नाटकों में वैचारिक संघर्ष को अधिक महत्व का स्थान मिला है। इस संघर्ष के कारण अत्यधिक मार्मिक रूप ग्रहण किए हुए नाटकों में 'अलग-अलग रास्ते', 'रातरानी', 'रक्तकमल', 'आधे अधूरे' आदि नाटकों का अन्तर्भाव किया जा सकता है।

८ उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, रेवतीसरन शर्मा, मन्नू भण्डारी, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, अमृतराय और विनोद रस्तोगी ऐसे नाटककार हैं जिन्होंने संघर्ष तत्व के आधार पर अपने नाटकों को मर्मस्पर्शी, प्रभावशाली एवं मनोहर रूप प्रदान किया है।

सातवाँ अध्याय

प्रसादोत्तर हिन्दी नाटको के अन्य तत्त्वो पर सघर्ष तत्त्व का प्रभाव

(एक निर्देश)

अध्याय प्रवेश

प्रस्तुत अध्याय म ' एक निर्देश" के रूप मे यह विश्लेषण किया जायगा कि प्रसादोत्तर हि दी नाटको के अ य तत्त्वों पर सघप तत्व का क्या प्रभाव पडा है ।

वास्तव में नाटक के सभी तत्त्वों का सघर्ष तत्त्व से प्रभावित होना अत्यधिक स्वाभाविक है । सघर्ष और नाटक के परस्पर महत्त्वपूण तथा अविच्छिन्न सम्ब घ को ध्यान म रखकर नाट्यमर्मज्ञ ब्रुनेतिएर ने कहा है कि मनुष्य की सघर्षशील इच्छा का प्रस्तुतीकरण ही नाटक है । इस सिद्धा त से यह व्यजित होता है कि मनुष्य की सघर्षशील इच्छा जिन माध्यमों से प्रस्तुत होती है, वह उन सभी माध्यमो को प्रभा वित करती है और उन सभी के सगठन को नाटक का रूप प्रदान करती है । जो नाटककार इस तथ्य को ध्यान मे रखकर नाटक का निर्माण करता है उसके नाटक के सभी तत्त्व सघर्ष तत्त्व से प्रभावित होते हैं । अत प्रसादोत्तर हि दी नाटको के अ य तत्त्व पर सघर्ष तत्त्व का क्या प्रभाव पडा है यह देखना उपयुक्त होगा ।

प्रस्तुत अध्याय के विवेचन से यह निर्देशित हा जायगा कि प्रसादोत्तर हि दी नाटको के कथानक चयन पर, कथानक के विकास पर, पात्र चयन पर, पात्र के चरित्र प्रकाशन पर कथोपकथन की शली पर, वातावरण की सज्जा पर, शैली की रोच कता पर तथा उद्देश्य की अभिव्यक्ति पर सघर्ष तत्त्व का क्या प्रभाव पडा है ।

१ कथानक पर सघर्ष तत्त्व का प्रभाव

(१) कथानक-चयन पर सघर्ष तत्त्व का प्रभाव

प्रसादोत्तर युग के नाटको के कथानक चयन पर सघप तत्त्व का अत्य त उपयुक्त प्रभाव पडा है ।

प्राय नाटककार दो दृष्टिकोणों के अनुसार किसी कथानक का चयन कर के नाटक का निर्माण करता है। प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार नाटककार किसी विषय की ओर आकृष्ट हो जाता है। नाटककार उस विषय पर विचार एवं चिन्तन करने लगता है। तदुपरान्त नाटककार उस विषय का प्रकाशन करने के हेतु विशिष्ट कथानक को स्वीकार करके नाटक का सृजन करता है। द्वितीय दृष्टिकोण के अनुसार नाटककार किसी कथानक की ओर आकृष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति में नाटककार किसी विषय पर ध्यान न देते हुए उपलब्ध कथानक के आधार पर नाटक का निर्माण करता है।

जो नाटककार प्रथम दृष्टिकोण को अपनाकर सृजन प्रक्रिया का आरम्भ करता है वह संघर्ष तत्त्व की दृष्टि से प्रथम किसी व्यापक संघर्ष की ओर आकृष्ट हो जाता है और उस व्यापक संघर्ष को नाट्य विषय के रूप में अपनाता है। तत्पश्चात नाटककार उस संघर्ष के प्रकाशन के लिए विशिष्ट संघर्ष को नाट्य कथा के रूप में चुनता है और नाटक का प्रणयन करता है। स्वीकृत कथानक के अन्तर्गत इस प्रकार का संघर्ष होता है कि जो व्यापक संघर्ष को समग्र रूप में दर्शाने के बदले उसके एक पहलू अथवा एक से अधिक पहलुओं को उजागर करते हुए व्यापक संघर्ष को व्यंजित करता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार नाटककार का ध्यान नाट्य विषय और नाट्य कथा के रूप में किसी व्यापक संघर्ष और उससे सम्बद्ध विशिष्ट संघर्ष पर केन्द्रित होता है। तात्पर्य यह कि नाट्य विषय तथा नाट्य कथा दोनों भी संघर्ष से सम्बद्ध होते हैं।

द्वितीय दृष्टिकोण के अनुसार नाटककार किसी कथानक की ओर आकृष्ट होता है और उस कथानक के आधार पर नाटक का निर्माण करता है। उस कथानक में संघर्ष होगा, तो नाटक में भी संघर्ष होगा। यह संघर्ष किसी व्यापक संघर्ष से सम्बन्ध न रखने वाला विशिष्ट संघर्ष होगा।

(अ) प्रसादोत्तर युग के कुछ नाटककारों को अपवाद के रूप में छोड़ दिया तो अनेक नाटककारों ने पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों का निर्माण करते समय संघर्ष तत्त्व की दृष्टि से प्रथम दृष्टिकोण को अपनाया है।

देवराज दिनेश चन्द्रप्रकाश शर्मा डॉ० गोविन्ददास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल जगदीशचन्द्र माथुर और उदयशंकर भट्ट ने पौराणिक नाटकों का निर्माण करते समय संघर्ष तत्त्व की दृष्टि से प्रथम दृष्टिकोण को अपना कर विशिष्ट कथानकों का चयन किया है।

१ जो व्यक्ति स्वयं पर अथवा अपने स्वजन पर किये गए अन्याय का प्रतिकार करने की क्षमता रखता है वह स्वयं पर अथवा अपने स्वजन पर किए गए अन्याय का प्रतिकार करने को उद्युक्त होता है और संघर्ष करता है। क्या ऐसा व्यक्ति

अपनी बहन पर किए गए अन्याय को सहन कर सकता है ? क्या वह बहन के अप मान का प्रतिशोध लेने के हेतु संघर्ष प्रवृत्त नहीं हो सकता ? वास्तव में बहन के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए भाई का संघर्ष प्रवृत्त होना स्वाभाविक है । प्रस्तुत संघर्ष सार्वत्रिक तथा सार्वकालिक होने के कारण व्यापक संघर्ष होता है। देवराज दिनेश और चन्द्रप्रकाश शर्मा ने इस व्यापक संघर्ष को नाट्य विषय के रूप में स्वी कार किया और इस संघर्ष का उद्घाटन करने के हेतु राम रावण संघर्ष को नाट्य कथा के रूप में चुनकर क्रमशः रावण और 'त्रेता' नाटक का निर्माण किया । इन नाटकों में दिखाया गया है कि राम-लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा पर किए गए अन्याय का प्रतिशोध लेने के हेतु रावण संघर्षशील बन गया है ।

२ उदयशंकर भट्ट ने नाट्य विषय के रूप में उस नारी के संघर्ष को चुना है जो पुरुष द्वारा किये गये अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए संघर्षशील बन गई है। इस व्यापक संघर्ष का उद्घाटन करने के लिए उदयशंकर भट्ट ने नाट्य कथा के रूप में अम्बा के संघर्ष का चयन करके 'विद्रोहिणी अम्बा' नाटक का निर्माण किया है ।

३ डॉ० गोविन्ददास ने नाट्य विषय के रूप में उस प्रतापी पुरुष के संघर्ष को स्वीकार किया है जो कुलीनता के नाम पर किए गए अपमान का प्रतिशोध लेने के हेतु संघर्षशील बन गया है । इस संघर्ष की अभिव्यक्ति के लिए डा० गोविन्ददास ने प्रतापी कर्ण के संघर्ष को नाट्य कथा के रूप में चुनकर "कर्ण" नाटक का सृजन किया है ।

४ जिस वीर युवक के वीर पिता को युद्ध में प्रतिपक्ष की अनीति के फल स्वरूप प्राण त्यागने पड़ते हैं उस युवक का पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के हेतु प्रतिपक्ष के विरुद्ध प्रखर संघर्ष छेड़ना स्वाभाविक है । लक्ष्मीनारायण मिश्र ने इस संघर्ष को नाट्य विषय के रूप में स्वीकार किया है और इसके प्रकटीकरण के लिए वीर अश्वत्थामा के संघर्ष को नाट्य कथा बनाकर 'अपराजित' नाटक का निर्माण किया है ।

५. विमाता और सौतेले पुत्र का पारस्परिक प्रेम संघर्ष की दृष्टि से कितनी नाट्यपूर्ण घटना होती है । इस प्रेम की सफलता के लिए जब प्रेमी सीना तान कर प्रतिकूल समाज के सामने एक चुनौती के रूप में खड़े रहते हैं तब प्रखर संघर्ष छिड़ता है । एक ओर समाज के नीति नियमों का भंग करने वाले दो प्रेमी होते हैं तो दूसरी ओर नीति नियमों तथा परम्पराओं को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करने वाला समाज होता है । संगठित समाज के विरुद्ध व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष प्रवृत्त होना अत्यधिक नाट्यपूर्ण घटना होती है । डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने इस संघर्ष को नाट्य विषय के रूप में स्वीकार किया है और इस संघर्ष के प्रकाशन के लिए नाट्य **कथा के रूप में**

प्रद्युम्न और वनुरति के द्वारा रूढ़िबद्ध समाज के विरुद्ध किए गए संघर्ष को चुनकर 'सूर्यमुख' नाटक का निर्माण किया है। इस नाटक में प्रद्युम्न और वनुरति का जो आन्तरिक संघर्ष है, वह भी व्यापक संघर्ष का मापक है। विमाता और सौतेले पुत्र को मिलन के समय वास्तविक सम्बन्ध का स्मरण होने पर उनमें आन्तरिक संघर्ष का आरम्भ होना स्वाभाविक है। इस आन्तरिक संघर्ष की अभिव्यक्ति प्रद्युम्न और वनुरती के आन्तरिक संघर्ष के द्वारा हो गई है।

६ सत्ताधारी बनने पर भी जिसे अपने स्वत्व तथा प्रजा के हित की उपेक्षा कर कठपुतली की भांति स्वार्थपरायण वरिष्ठों के आज्ञा का पालन करना पड़ता है वह व्यक्ति आन्तरिक संघर्ष का शिकार बनता है। जगदीशचन्द्र माथुर ने इस आन्तरिक संघर्ष को नाट्य विषय के रूप में स्वीकार किया है और उसके प्रकाशन के लिए नाट्य कथा के रूप में पृथु के आन्तरिक संघर्ष को चुनकर 'पहला राजा' नाटक का सृजन किया है।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने 'सूर्यमुख' और जगदीशचन्द्र माथुर ने 'पहला राजा' नाटक में नाट्य विषय (व्यापक संघर्ष) तथा नाट्य-कथा (विशिष्ट संघर्ष) पर समान रूप से ध्यान केन्द्रित किया है। इन नाटकों में न नाट्य विषय पर अधिक बल दिया गया है न नाट्य कथा पर। इन नाटकों में आरम्भ से अन्त तक नाट्य विषय तथा नाट्य कथा का समीचीन समन्वय करने के फलस्वरूप दोनों नाटक उत्कृष्ट श्रेणी के बन पड़े हैं।

'विद्रोहिणी अम्बा' और 'कर्ण' में नाट्य कथा पर अधिक बल दिया गया है। इन नाटकों में व्यापक संघर्ष को विशिष्ट संघर्ष के द्वारा उजागर करने वाली नाट्य कथा का संगठन समुचित नहीं हो पाया है। इन नाटकों में व्यापक अथवा विशिष्ट संघर्ष से सम्बन्ध न रखने वाली घटनाओं को भी स्थान दिया गया है। फलतः दोनों नाटक प्रभावशाली बनने में असफल रहे हैं।

व्यापक संघर्ष तथा विशिष्ट संघर्ष के समुचित समन्वय की दृष्टि से 'अपराजित" नाटक उत्कृष्ट बन पड़ा है।

द्वितीय दृष्टिकोण के अनुसार बिना कथानक की ओर आकृष्ट होकर लिखे गए पौराणिक नाटकों में से कुछ नाटकों में संघर्ष को स्थान मिला है। लेकिन इन नाटकों में नाट्य कथा पर अधिक बल दिए जाने के कारण संघर्ष के बीज का उचित विकास नहीं हो पाया है।

(आ) प्रसादोत्तर युग में प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार कई ऐतिहासिक नाटक लिखे गये हैं। किसी देश के देशभक्त व्यक्तियों को अपने देश के स्वातंत्र्य की रक्षा करने के लिए बाहरी आक्रमणकारों तथा देशद्रोही व्यक्तियों के विरुद्ध संघर्षशील बन

जाना स्वाभाविक है। हिंदी नाटककारों ने नाट्य विषय के रूप में इस व्यापक संघर्ष को स्वीकार किया है और इस संघर्ष के उद्घाटन के लिए पंचनद नरेश पुरु चन्द्रगुप्त मौर्य, आचार्य चाणक्य, सम्राट समुद्रगुप्त, पृथ्वीराज चौहान, वीर हम्मीर, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवा जी महाराज झांसी की रानी लक्ष्मीबाई तात्या टोपे तथा अन्य अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के संघर्ष को नाट्य कथा के रूप में चुनकर अनेक नाटकों का निर्माण किया है। लेकिन इन नाटकों में नाटककारों का ध्यान नाट्य कथा पर अधिक केन्द्रित होने के कारण व्यापक संघर्ष को उजागर करने वाले विशिष्ट संघर्ष के समुचित विकास की उपेक्षा हुई है। इन नाटकों में कई संघर्षहीन घटनाओं को भी स्थान मिला है।

१ संन्यास का स्वीकार करने के लिए गृह त्याग करने को उद्युक्त हुए व्यक्ति में आसक्ति विरक्ति को लेकर आन्तरिक संघर्ष का छिड़ना स्वाभाविक है। गणेशप्रसाद श्रीवास्तव ने नाट्य विषय के रूप में इस आन्तरिक संघर्ष को स्वीकार किया है और उसका उदघाटन करने के हेतु नाट्य कथा के रूप में सिद्धार्थ के आन्तरिक संघर्ष को चुनकर 'सिद्धार्थ का गृहत्याग' नाटक का निर्माण किया है। लेकिन इस नाटक में नाट्य कथा पर अधिक बल दिए जाने के कारण व्यापक संघर्ष का प्रकाशन व्यवस्थित नहीं हो पाया है।

२ मोहन राकेश ने आसक्ति और विरक्ति से सम्बद्ध व्यापक आन्तरिक संघर्ष को नाट्य विषय के रूप में स्वीकार किया है और उसका प्रकाशन करने के हेतु नाट्य कथा के रूप में नन्द के आन्तरिक संघर्ष को चुनकर 'लहरों के राजहंस' नाटक का निर्माण किया है। इस नाटक में नाटककार को नाट्य विषय तथा नाट्य कथा का समुचित समन्वय करने में सफलता मिली है। फलत प्रस्तुत नाटक अत्युत्कृष्ट कलाकृति बन पड़ा है।

३ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने नाट्य विषय के रूप में उस निर्भय युवक के संघर्ष को स्वीकार किया है, जो समाज में अन्धविश्वासों को फैलाकर स्वार्थ साधन वाले के विरुद्ध प्रखर संघर्ष छेड़ता है। इस संघर्ष को प्रकाशित करने के हेतु नाटककार ने नाट्य कथा के रूप में हेरूप के संघर्ष को चयन करके 'कलंकी' नाटक का निर्माण किया है। इस नाटक में नाट्य विषय और नाट्य कथा का समीचीन समन्वय किया है। फलत प्रस्तुत नाटक उत्कृष्ट बन गया है।

४ कलाकार का कलाकृति तथा कलाकार की स्वाधीनता की रक्षा के हेतु अत्याचारी के विरुद्ध प्रखर संघर्ष करना स्वाभाविक है। जगदीशचन्द्र माथुर ने नाट्य विषय के रूप में इस संघर्ष को स्वीकार किया है और इस संघर्ष के उद्घाटन के लिए नाट्य कथा के रूप में शिल्पी विशु के संघर्ष को चुनकर "कोणार्क" नाटक का सृजन किया है। इस नाटक में व्यापक संघर्ष और उससे सम्बन्धित विशिष्ट संघर्ष पर

समान रूप से उठ लिए जाने के कारण प्रस्तुत नाटक ने अपूर्व कलाकृति का रूप ग्रहण किया है।

५ त्याग ही कुलीनता की कसौटी है यह सिद्ध करने के हेतु कोई प्रतापी पुरुष रूढ़िबद्ध समाज के विरुद्ध संघर्ष करता है। डॉ० गोविन्ददास ने नाट्य विषय के रूप में इस संघर्ष को स्वीकार किया है और इस संघर्ष के प्रकाशन के लिए नाट्य कथा के रूप में गौड़ यदुराय के संघर्ष को चुनकर कुलीनता नाटक का निर्माण किया है। लेकिन इस नाटक में नाट्य कथा पर अधिक बल दिए जाने के फलस्वरूप व्यापक संघर्ष के प्रकाशन में तर्कसंगति लक्षित नहीं होती है।

अनेक ऐतिहासिक नाटक दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार लिखे गए हैं। इन नाटकों में भी संघर्ष को महत्त्व का स्थान मिला है। सम्राट अशोक और राजपूतों के पारस्परिक संघर्ष से सम्बन्धित नाटकों में संघर्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन इन नाटकों में कथानक पर अधिक ध्यान दिए जाने के फलस्वरूप व्यापक संघर्ष की व्यंजना तर्कसंगत नहीं है।

(ट) प्रसादोत्तर युग में लिखे गए सभी राजनीतिक नाटक प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार लिखे गए हैं। पराधीन जन हृदय एवं देश के युवकों का देश की स्वाधीनता के लिए संघर्षशील बन जाना स्वाभाविक है। हिन्दी के अनेक नाटककारों ने नाट्य विषय के रूप में इस संघर्ष को स्वीकार किया है और इस संघर्ष के प्रकाशन के लिए साम्राज्यवादी एवं अत्याचारी अंग्रेजों के विरुद्ध चन्द्रशेखर आजाद, शहीद भगतसिंह, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस तथा अन्य क्रान्तिकारियों के द्वारा किए गए संघर्ष को नाट्य-कथा के रूप में चुनकर अनेक नाटकों का निर्माण किया है।

देश प्रेमी तथा स्वातन्त्र्य प्रेमी व्यक्ति बाहरी आक्रमणकारी का प्रतिकार करने के हेतु प्रखर संघर्ष करते हैं। अनेक हिन्दी नाटककारों ने इस संघर्ष को नाट्य विषय के रूप में स्वीकार किया है। उसके उद्घाटन के लिए नाट्य कथा के रूप में उन भारतीयों के संघर्ष को चुना है और जिन्होंने आक्रमणकारी चीन और पाकिस्तान का प्रतिकार करने के हेतु संघर्ष किया है।

घाटियाँ गूँजती हैं, नेफा की एक शाम और वतन की आबरू इन नाटकों में नाट्य विषय तथा नाट्यकथा का समीचीन समन्वय किया गया है। फलस्वरूप तीनों नाटकों ने उत्कृष्ट रूप ग्रहण किया है। विशेषकर 'घाटियाँ गूँजती हैं' नाटक अपूर्व बन पड़ा है। इन तीनों के अतिरिक्त अन्य नाटकों में कथानक पर बल दिए जाने के कारण संघर्ष के प्रकाशन में तर्कसंगति का अभाव है।

(ठ) प्रसादोत्तर युग के सामाजिक नाटकों में से बहुसंख्य नाटकों का निर्माण प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार किया गया है। समाज में जब तक विषम अर्थव्यवस्था का अस्तित्व बना रहेगा तब तक अपने अधिकारों को पाने के लिए मजदूरों का

अन्यायी मालिक के विरुद्ध संघर्ष चलता रहेगा । अनेक हिन्दी नाटककारों ने नाटय विषय के रूप में इस संघर्ष को स्वीकार किया है और इस संघर्ष के प्रकाशन के लिए नाटय कथा के रूप में विशिष्ट मजदूर मालिक के संघर्ष को चुनकर अनेक नाटको का निर्माण किया है । लेकिन इन नाटकों में प्रचारात्मकता की प्रधानता होने के फलस्वरूप संघर्ष का स्वाभाविक विकास नहीं हो पाया है ।

१ समाज में आर्थिक समानता की स्थापना के लिए क्रांतिकारी बने हुए युवकों और पूँजीवादी का समर्थन करने वाले धनवानों के बीच सदा संघर्ष चलता है । डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने इस संघर्ष को नाटय विषय के रूप में स्वीकार किया है और इसका प्रकाशन करने के हेतु क्रांतिकारी युवक कमल और उसके पूँजीवादी बड़े भाई महावीर प्रसाद के बीच चलने वाले संघर्ष को नाटय कथा के रूप में चुनकर "रक्त कमल" नाटक का निर्माण किया है । इस नाटक में नाटय विषय और नाट्य-कथा का समीचीन समन्वय किया गया है । फलस्वरूप प्रस्तुत नाटक ने उत्कृष्ट कलाकृति का रूप ग्रहण किया है ।

२ तरुण पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी का संघर्ष शाश्वत संघर्ष होता है । क्योंकि आज की विद्रोही पीढ़ी कल की सनातनी पीढ़ी बन जाती है । इस व्यापक संघर्ष को नाट्य विषय बनाकर विष्णुप्रभाकर ने इस संघर्ष के उद्‌घाटन के लिए नाटय कथा के रूप में विशिष्ट व्यक्तियों के संघर्ष को चुनकर 'युग युगे क्रांति' नाटक का निर्माण किया है ।

३ नयी पीढ़ी परिवर्तित परिस्थिति में अपने जीवन को नया रूप प्रदान करने के हेतु परम्परावद्ध पुरानी पीढ़ी से संघर्ष करती है । उपेन्द्रनाथ अश्क ने नाटय विषय के रूप में इस संघर्ष को स्वीकार किया है और इस संघर्ष को उजागर करने के लिए नाटयकथा के रूप में क्रांतिकारी रानी और पूरन के द्वारा पुरानी पीढ़ी से किए गए संघर्ष को चुनकर 'अलग अलग रास्ते' नाटक का निर्माण किया है ।

४ पति अथवा पत्नी के कारण पारिवारिक जीवन में आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध नष्ट होने पर पति और पत्नी में तीव्र संघर्ष चलता है । मोहन राकेश और मन्नू भण्डारी ने इस संघर्ष को नाटय विषय के रूप में स्वीकार किया है और इस संघर्ष का उद्घाटन करने के लिए विशिष्ट पति पत्नी के संघर्ष को नाट्य कथा के रूप में चुनकर क्रमशः 'आधे अधूरे' और 'बिना दीवारों के घर' इन नाटकों का निर्माण किया है । 'आधे अधूरे' नाटक में नाटय विषय और नाट्य कथा का समीचीन समन्वय किया गया है । फलस्वरूप इस नाटक ने उत्कृष्ट रूप ग्रहण किया है ।

५ अपमानित नारी अथवा पुरुष को जब अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए अवसर मिलता है तब उसमें सुप्त और दुष्ट भावनाओं को लेकर आंतरिक संघर्ष चलता है । विष्णु प्रभाकर ने इस व्यापक संघर्ष को नाटय विषय के रूप में

स्वीकार किया है और इसको प्रकाशित करने के हेतु नाट्य कथा के रूप में अनीला के आन्तरिक संघर्ष को चुनकर 'डाक्टर' नाटक का निर्माण किया है।

८. शासकीय अन्याय तथा त्रुटियों से असन्तुष्ट व्यक्तियों तथा प्रजा के द्वारा शासकों के विरुद्ध संघर्ष छिड़ना स्वाभाविक है। आनन्द अग्निहोत्री और अमृतराय ने इस संघर्ष को नाट्य विषय के रूप में स्वीकार किया है और इस संघर्ष को प्रकाशित करने के हेतु नाट्य कथा के रूप में प्रजा और विशिष्ट व्यक्तियों के द्वारा किए गए संघर्ष को चुनकर क्रमशः 'पुनर्मुग' और 'चिन्दियों की एक झालर' इन नाटकों का निर्माण किया है। इन नाटकों में नाट्य विषय तथा नाट्य कथा एक समान रूप में ढल लिया गया है। फलतः इन नाटकों ने मार्मिक रूप ग्रहण किया है।

उपर्युक्त विवेचन से विदित होता है कि पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा सामाजिक नाटकों के कथानक चयन पर संघर्ष तत्व का उचित प्रभाव हुआ है। इस प्रभाव के फलस्वरूप ही संघर्षयुक्त कथानकों के आधार पर अनेक नाटकों का निर्माण हुआ है।

२. घात प्रतिघात के कारण कथानक का समुचित विकास

(अ) जिन पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा सामाजिक नाटकों में संघर्ष तत्व को स्थान दिया गया है उनके कथानक का विकास संघर्षरत पक्षों के घात प्रतिघात से हुआ है। 'अपराजित' नाटक के कथानक का विकास तब होता है जब अश्वत्थामा का पक्ष और पाण्डवों का पक्ष एक दूसरे पर घात प्रतिघात करते हैं। इस घात प्रतिघात के कारण 'अपराजित' का कथानक तनाव अंक में संघर्ष की चरम सीमा पर पहुँचकर अत्यधिक आकर्षक एवं कुतूहलवर्द्धक बन जाता है।

(आ) जब स्वाधीनताप्रिय शिल्पियों का पक्ष और अत्याचारी चालुक्य का पक्ष एक दूसरे पर घात प्रतिघात करते हैं तब 'कोणार्क' का कथानक विकसित होकर संघर्ष के चरम बिन्दु पर पहुँच जाता है और अत्यधिक मार्मिक एवं कुतूहलवर्द्धक रूप ग्रहण करता है।

(इ) जब स्वाधीनताप्रिय भारतीयों का पक्ष और आक्रमणकारी चीनियों तथा पाकिस्तानियों का पक्ष एक दूसरे पर घात प्रतिघात करते हैं तब 'घाटियाँ गूँजती हैं' और 'वतन की आबरू' के कथानक विकसित होकर संघर्ष की चरम-सीमा को पहुँच जाते हैं और ममस्पर्शी तथा कुतूहलवर्द्धक रूप धारण करते हैं।

(ई) पति पत्नी तथा परिवार के अन्य सदस्य जब एक-दूसरे पर निर्मम घात प्रतिघात करने लगते हैं तब 'आधे-अधूरे' का कथानक विकसित होकर संघर्ष के चरम बिन्दु को पहुँच जाता है और अत्यधिक कुतूहलवर्द्धक तथा मार्मिक रूप धारण करता है।

संघर्षशील पक्षों के घात प्रतिघात के कारण उपर्युक्त नाटकों के कथानकों का समुचित विकास भी हुआ है और साथ ही साथ उन कथानकों तथा उनसे सम्बन्धित संघर्षों ने अधिकाधिक मूर्तता ग्रहण की है। इस विशेषता के कारण इन नाटकों ने जीवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापन करने में सफलता पाई है।

उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि संघर्षशील पक्षों के घात प्रतिघात के कारण प्रसादोत्तर युग के नाटकों के कथानक के विकास पर अत्यन्त उपयुक्त प्रभाव हुआ है।

२ पात्र पर संघर्ष तत्त्व का प्रभाव

१ पात्र चयन पर बाह्य संघर्ष का प्रभाव

नाटक में पात्र ही संघर्ष का निर्माता होता है। पात्र के इच्छापूर्ति के हेतु संघर्षशील बनने पर ही नाटक नाटक का रूप ग्रहण करता है। अतः नाटक में निरीच्छ निष्क्रिय तथा संघर्षहीन पात्र के बदले इच्छाशील क्रियाशील तथा संघर्षशील पात्र का चयन महत्त्वपूर्ण तथा समीचीन होता है।

नाटक में बाह्य संघर्ष की दृष्टि से उस संघर्षशील पात्र का चयन महत्त्वपूर्ण होता है, जिसकी संघर्षशील इच्छा तीव्र और दृढ़ होती है। इस पात्र की अपेक्षा उस पात्र का चयन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है जिसकी संघर्षशील इच्छा तीव्र दृढ़ और गुणात्मक होती है। प्रसादोत्तर युग के कुछ हिंदी नाटकों में बाह्य संघर्ष की दृष्टि से उन पात्रों को अत्यधिक महत्त्व का स्थान दिया गया है जिनकी संघर्षशील इच्छा तीव्र, दृढ़ और गुणात्मक है।

(अ) इच्छा के कारण ही 'रावण' 'त्रेता', 'विद्रोहिणी अम्बा' और "अपराजित" इन पौराणिक नाटकों में क्रमशः संघर्षशील रावण अम्बा और अश्वत्थामा को महत्त्व का स्थान दिया गया है।

(आ) प्रसादोत्तर युग में लिखे गए अनेक ऐतिहासिक नाटकों में उन व्यक्तियों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है जिसमें देश की स्वाधीनता की रक्षा करने की प्रखर प्रबल तथा गुणात्मक इच्छा है। इस इच्छा के कारण ही पुरु, चन्द्रगुप्त मौर्य, आचार्य चाणक्य सम्राट समुद्रगुप्त पृथ्वीराज चौहान आदि वीर पुरुष बाहरी आक्रमणकारी से संघर्ष करते हैं। इस इच्छा की पूर्ति के लिए ही वीर हम्मीर, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी महाराज तथा अन्य हिन्दू राजा मुसलमान राजाओं से संघर्ष करते हैं। इस इच्छा को लेकर ही झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे तथा अन्य क्रांतिकारी व्यक्ति साम्राज्यवादी अंग्रेजों से संघर्ष करते हैं। 'कोणार्क' 'कलकी' और 'कुलीनता' इन नाटकों में क्रमशः संघर्षशील धर्मपद, हूरूप और गोंड यदुराय को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। ये तीनों भी दृढ़ तथा गुणात्मक इच्छा

विरुद्ध कण प्रद्युम्न और वेनुरती ने किसी एक निणय पर पहुच कर अपनी दुबलता पर विजय पायी है।

(आ) 'लहरो के राजहस म परस्पर विरुद्ध इच्छाओ के सघप से ग्रस्त नन्द निणय करन और अपनी दुबलता पर विजय पाने म असफल रहता है। सिद्धाथ का गहत्याग और 'नवप्रभात" मे क्रमश सिद्धाथ और अशोक निणय करन मे और अपनी कमजोरी पर जय पाने में सफल होत है। 'कोणाक मे विशु भी कला कार के स्वातत्र्य की रक्षा करन का निणय करक अपनी दुबलता स मुक्त होन मे सफलता पाता है।

(इ) घाटियाँ गूँजती हैं नाटक म आ तरिक सघप स ग्रस्त शीकू पुत्र प्रेम क बदले देश प्रम को प्राधा य दन का निणय करता है और अपनी कमजोरी पर विजय पाता है।

(ई) 'डाक्टर नाटक म अनीला डाक्टर के कत्तव्य स सम्बद्ध इच्छा को प्राधा य देन का निणय करती है और दुबलता से मुक्त हो जाती है। लकिन 'कद" और भँवर म क्रमश अप्पी और प्रतिभा निणय करने और अपनी दुबलता पर विजय पान म असफल रहती हैं।

उपयुक्त विवचन स यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रसादोत्तर युग के पौराणिक, एतिहासिक, राजनीतिक तथा सामाजिक नाटका के पात्र चयन पर वाह्य तथा आ तरिक सघप का समुचित प्रभाव पडा है।

३ पात्र के चरित्र प्रकाशन पर वाह्य सघप का प्रभाव

इच्छा पूर्ति के लिए पात्र क सघप शील बन जाने के फलस्वरूप नाटक अधिका धिक मत हो जाता है। एसी स्थिति म पात्र के काय यापारा तथा कथनो से पात्र के चरित्र का उदघाटन अपन आप हो जाता है। इस दष्टि से भी प्रसादोत्तर नाटको के पात्रो के चरित्रोदघाटन पर वाह्य सघप का अत्यन्त उपयुक्त प्रभाव पडा है।

(अ) रावण और त्रेता इन नाटको मे रावण के सघप स यह स्पष्ट होता है कि रावण दुष्ट नही बल्कि सुष्ट तथा विचारक है। अपराजित म अश्व त्थामा की वीरता का प्रकाशन सघप स हो जाता है। विद्रोहिणी अम्बा' म अम्बा का सघप उसके यक्तित्व को तजस्वी रूप प्रदान करता है।

(आ) अनेक एतिहासिक नाटका म सघप के माध्यम स पुरु च द्रगुप्त मौय आचाय चाणक्य पथ्वीराज चौहान, शेरशाह, महाराणा प्रताप छत्रपति शिवाजी महाराज रानी लक्ष्मीबाई तात्या टोपे आदि वीर भारतीयो का देश प्रेम तथा स्वातत्र्य प्रेम यक्त होता है। सम्राट अशाक स सम्बधित नाटका म अशोक की वीरता, उद्दण्डता और मनुष्यता का उदघाटन सघप से होता है। कोणाक' मे

बाह्य संघर्ष के द्वारा कलाकार अमरनाथ और बिन्दु का स्वातन्त्र्य प्रेम व्यक्त होता है। 'रामानुज' में रामानुज की समाज सुधार तथा धर्म सुधार विषयक क्रान्तिकारी भूमिका संघर्ष के द्वारा व्यक्त होता है।

(इ) राजनीतिक नाटकों में संघर्ष के द्वारा चन्द्रशेखर आजाद, शहीद भगत सिंह, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस आदि क्रान्तिवीरों का देश प्रेम, स्वातन्त्र्य प्रेम और महान त्याग प्रकाशित होता है। भारत चीन और भारत पाकिस्तान संघर्ष से सम्बद्ध नाटकों में संघर्ष के माध्यम से नाकू, विरक (धान्त्यिां गुजरी ⁵) मार्क स्वरूप नीमों (नया की एक नाम) हलहाबरन नपमाला रतमा (वतन का आवरु) आदि काल्पनिक पात्रों का देश प्रेम स्वातन्त्र्य प्रेम और शौर्य प्रकट होता है।

(ई) अन्य सामाजिक नाटकों में संघर्ष के द्वारा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का प्रकाशन होता है। अलग-अलग रास्ते में पूरन और राधा की नारी स्वातन्त्र्य विषयक क्रान्तिकारी दृष्टिकोण संघर्ष के माध्यम से व्यक्त होता है। रक्त कमल में कमल के क्रान्तिकारी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति संघर्ष के द्वारा होती है। वास्तव में जिन सामाजिक नाटकों में परम्परागत आदर्शों, अंधविश्वासों तथा जीवन मूल्यों के विरुद्ध क्रान्तिकारी दृष्टि रखने वाले पात्रों ने संघर्ष छेड़ा है उन नाटकों में क्रान्तिकारी और पुराणमतवादी पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन संघर्ष के द्वारा होता है। इस दृष्टि से सिन्दूर की होली, नये धान के ईमान, युग युग क्रान्ति, रात और दिन तथा अन्य अनेक नाटक उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में तरुण पीढ़ी का क्रान्तिकारित्व संघर्ष के द्वारा अपने आप व्यक्त होता है।

परिस्थिति विशेष में परस्पर विरुद्ध इच्छाओं, भावनाओं तथा विचारों के कारण जो संघर्ष छिड़ता है उसमें प्रत्येक पात्र के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का प्रकाशन होता है। इस संदर्भ में आधे-अधूरे, 'बिना दीवारों के घर', रातरानी, निराला की रो, 'अंधेर का वन' आदि नाटकों में पति-पत्नी का संघर्ष उल्लेखनीय है। इन नाटकों में संघर्ष के माध्यम से पति-पत्नी के स्वतन्त्र दृष्टिकोणों और मान्यताओं का प्रकटीकरण हुआ है। वक्त की मीनार और नींव की दरारें में संघर्ष के द्वारा भाई बहन और भाई भाई के स्वतन्त्र दृष्टिकोणों की अभिव्यक्ति हुई है। 'गुनरमुग' में राजा और उसके मन्त्रियों की स्वार्थी वृत्ति की अभिव्यंजना संघर्ष से हुई है।

४ पात्र के चरित्र-प्रकाशन पर आन्तरिक संघर्ष का प्रभाव

(अ) आन्तरिक संघर्ष के प्रभाव के फलस्वरूप पात्रों की चारित्रिक विशेषताएं अपने आप व्यंजित होती हैं। कर्ण नाटक में कर्ण का आन्तरिक संघर्ष उसकी मुग्धता का परिचायक है। पहला राजा में आन्तरिक संघर्ष से पृथु की चरित्रगत दुर्बलता व्यंजित होती है। 'सूर्यमुख' में आन्तरिक संघर्ष के द्वारा प्रद्युम्न, वनुरती और रुक्मिणी की चारित्रिक उदात्तता अभिव्यंजित होता है।

(आ) 'सिद्धार्थ का गृहत्याग" नाटक में सिद्धार्थ का आंतरिक संघर्ष उसकी सारासार विवेक बुद्धि का परिचायक है। "लहरों के राजहंस' में नन्द और सुन्दरी का आंतरिक संघर्ष उनकी मानवीयता तथा दुर्बलताओं का ज्ञापक है। जय जनतंत्र' में आंतरिक संघर्ष के द्वारा आम्रपाली के लोकहितकारी विचारों का प्रकाशन होता है। 'कोणार्क' में आंतरिक संघर्ष के माध्यम से शिल्पी विशु की चारित्रिक मानवीयता तथा महानता अभिव्यंजित होती है।

(इ) घाटियाँ गूंजती हैं में गीतू के आंतरिक संघर्ष से उसका ज्वलंत राष्ट्राभिमान और स्वातंत्र्य प्रेम प्रकट होता है।

(ई) प्रसादोत्तर युग के जिन सामाजिक नाटकों के पात्रों में परस्पर विरुद्ध इच्छाओं, भावनाओं तथा विचारों का आंतरिक संघर्ष चलता है उन पात्रों की असंतुलित मानसिक स्थिति अपने आप प्रकट होती है। आंतरिक संघर्ष के कारण ही दपन (दपन), अनिला (डाक्टर) अप्पी (कद), प्रतिभा (भँवर) और मेजर नारंग (अंधेरे का बेटा) की असन्तुलित मानसिक स्थिति का उद्घाटन हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से निर्देशित होता है कि प्रसादोत्तर हिंदी नाटकों के पात्रों के चरित्र प्रकाशन पर बाह्य तथा आंतरिक संघर्ष का उपयुक्त प्रभाव पड़ा है।

३ कथोपकथन पर संघर्ष तत्व का प्रभाव

संघर्ष के प्रभाव के फलस्वरूप नाटक के कथोपकथन विविध प्रकार की शैलियाँ ग्रहण करते हैं। साथ ही साथ कथोपकथन क्रिया सूचक रूप भी धारण करते हैं।

(अ) संघर्ष के प्रभाव के फलस्वरूप पौराणिक नाटकों के कथोपकथनों ने विशिष्ट शैलियाँ ग्रहण की हैं। अपराजित" नाटक में तीव्र संघर्ष के कारण अश्वत्थामा के कथनों ने अत्यंत व्यंग्यात्मक, आवेशात्मक घात प्रतिघातात्मक तथा प्रश्नात्मक शैली धारण की है।

"अश्वत्थामा--सुनो अर्जुन! द्रौपदी की प्रेरणा से तुम लोग ऐसे दारुण नरसंहार के कारण बने। राज्य के अधिकारी तुम नहीं थे। पाण्डु के औरस पुत्र तुम पाँच में एक भी नहीं हो। कोई धर्म का, कोई वायु का, कोई इन्द्र का, कोई अश्विनीकुमार का, पर पाण्डु का कोई नहीं। इन्द्र का, वायु का धर्म या अश्विनीकुमार का पुत्र कुरु सिंहासन का भागी किस विधि से बनता ?"[1]

इस संदर्भ में पृथु (पहला राजा) का एक कथन द्रष्टव्य है। जब राजा पृथु क्रोध के आवेग में मुनियों की कपटनीति पर प्रहार करता है तब उसका कथन व्यंग्यात्मक आवेशात्मक तथा प्रश्नात्मक शैली ग्रहण करता है—

---

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र–अपराजित–पृ० १३७ (तृ० सं० सन् १९६४)

पृथु—जनता की जिस भीड़ को मैं सामने करके आ रहा हूँ उसके द्वारा देव की कथाएँ सुनकर मुझे करुणा नहीं आई, गुस्सा आया। मैं पूछता हूँ आप लोगों से क्या मैंने आप लोगों को जो वचन दिए थे पूजा के दिन उस समय की गाँठें बाँध कर वे पूरे किए या नहीं?

गर्ग—आपने सब वचन पूरे किए।

पृथु—तो फिर मेरे राज्य में अकाल क्यों है?[1]

इस प्रकार पौराणिक नाटकों के संघर्षशील पात्रों के कथनों और उनकी भाषा ने व्यंग्यात्मक भावनात्मक तथा प्रश्नात्मक शैली ग्रहण की है।

तीव्र आन्तरिक संघर्ष के कारण कर्ण[2] (कर्ण) और राजा पृथु (पहला राजा) के कथनों ने अर्द्धोक्तियों का रूप धारण किया है। प्रद्युम्न और अनुराधा के भावात्मक एवं काव्यात्मक कथनों का आधार आन्तरिक संघर्ष ही है।

(आ) ऐतिहासिक नाटकों के कथोपकथनों पर भी संघर्ष तत्त्व का प्रचुर मात्रा में प्रभाव परिलक्षित होता है। इन नाटकों में भी संघर्षशील पात्रों के कथोप कथनों ने व्यंग्यात्मक भावनात्मक तथा प्रश्नात्मक शैली ग्रहण की है। संघर्ष के कारण ही अम्बिका और मल्लिका[6] नन्द और सुन्दरी[7] के कथोपकथनों ने मार्मिक, व्यंग्यात्मक रूप धारण किया है। संघर्ष के कारण ही हूण और तारिक[8] के कथोपकथन प्रश्नोत्तरात्मक घात प्रतिघातात्मक तथा वाद विवादात्मक शैली ग्रहण करते हैं। 'वितस्ता की लहरें'[9] में पुरु और सिकन्दर के युद्धात्मक संघर्ष को व्यक्त करने के लिए नाट्य कथन का प्रयोग किया गया है।

तीव्र आन्तरिक संघर्ष से ग्रस्त पात्रों के कथन भावात्मक काव्यात्मक और प्रतीकात्मक बन गए हैं। इस सन्दर्भ में मल्लिका[10] और नन्द[11] के स्वगत कथन

---

१ जगदीशचन्द्र माथुर—पहला राजा—पृ० ६७ (प्र० सं० सन् १९६०)
२ डॉ० गोविन्ददास—कर्ण—पृ० १४–१५ (द्वि० सं० सन् १९५८)
३ जगदीशचन्द्र माथुर—पहला राजा—पृ० ४१, ५९ ६० (प्र० सं० सन् १९६०)
४ डा० लक्ष्मीनारायण लाल—सूर्यमुख—पृ० ६० ६१ १०६ (प्र० सं० सन् १९६८)
५ वही—पृ० ४० ४३ ५४ ५५,५६।
६ मोहन राकेश—आषाढ़ का एक दिन—पृ० ८–१० (द्वि० सं० सन् १९६२)
७ मोहन राकेश—लहरों के राजहंस—पृ० ४७–४९ (सन् १९६८ का संस्करण)
८ डा० लक्ष्मीनारायण लाल—[illegible]—पृ० ३८–३९ (प्र० सं० सन् १९६०)
९ लक्ष्मीनारायण मिश्र—वितस्ता की लहरें—पृ० १००–१०१ (चतुर्थ सं० सन् १९६२)
१० मोहन राकेश—आषाढ़ का एक दिन—पृ० ५६–५७ (द्वि० सं० सन् १९६३)
११ मोहन राकेश—लहरों के राजहंस—पृ० १३७–१४०, १४९–५० (सन् १९६८ का संस्करण)

उल्लेखनीय है । आंतरिक संघर्ष के कारण बिन्दु[1] के कथनों ने भी भावात्मक शैली ग्रहण की है ।

(इ) संघर्ष के कारण सशस्त्र क्रांति आन्दोलन भारत चीन और भारत पाक संघर्ष से सम्बन्धित नाटकों के कथोपकथनों ने आवेशपूर्ण तथा आह्वानात्मक शैली ग्रहण की है । क्रांतिवीर चन्द्रशेखर अपने साथियों से आह्वानात्मक शैली तथा उत्तेजना के स्वर में कहते है--'हमारी लड़ाई न्याय की लड़ाई है ।'[2] 'इस समय भारत के सामने स्वतंत्रता प्राप्ति का एकमात्र कारगर उपाय निस्संदेह सशस्त्र क्रांति ही है ।'[3] इस प्रकार सुभाषचन्द्र बोस भी अपने मित्र हेमन्त से कहते हैं-'न यह शांति से बैठने का समय है और न मौज उड़ाने का । यह क्रांति का बिगुल बजाने का समय है ।'"[4]

"घाटियाँ गूँजती हैं" में सम्वाददाता विवक रोज से आवेशपूर्ण शैली में कहता है-- हम अब सब कुछ उस तरह करना पड़ेगा जैसे एक जीवित और संघर्षरत राष्ट्र के निवासी करते हैं ।[5]

तीव्र संघर्ष के कारण कथोपकथनों ने तीक्ष्ण व्यंग्यात्मक तथा घात प्रतिघातात्मक शैली का भी रूप ग्रहण किया है । इस संदर्भ में हलाही बहन[6] और आबेद (वतन की आबरू) के कथोपकथन उल्लेखनीय हैं । भारतीय कश्मीरी मुसलमान परिवार की सलमा का भाई फारुक पाकिस्तान की ओर से लड़ने आ जाता है । तब सल्मा व्यंग्यपूर्वक मुस्कराती हुई द्रोही फारुक से कहती है कश्मीर तो तब मिलेगा भाईजान, जब हममें से कोई बाकी न होगा और आप जानते ही हैं इस मुल्क में पैंतालीस करोड़ आदमी हैं चींटियाँ पहाड़ नहीं खोदा करता । आप चले जाइए ।' यहाँ सल्मा के कथन ने अत्यन्त तीक्ष्ण व्यंग्यात्मक शैली का रूप ग्रहण किया है । फारुक के देशद्रोह से प्रक्षुब्ध हुए कासिम (फारुक के पिता) भावावेग पूर्ण तथा प्रश्नात्मक शैली में कहते हैं जलील कुत्ते । तूने चन्द पैसों की खातिर अपनी वफा बेच दी ? और आज जिन्दगी की खातिर यहाँ गिड़गिड़ाने आया है ? दफा हो यहाँ से ।'[7] इस प्रकार तीव्र बाह्य संघर्ष के कारण राजनीतिक नाटकों के कथोपकथनों

१ जगदीशचन्द्र माथुर-कोणार्क-पृ० ६९-७३ (नवाँ सं० सन १९६४)
२ देवीप्रसाद धवन 'विकल'-चन्द्रशेखर आजाद-पृ० १३ (सन् १९६१ का सं०)
३ जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द-वीर चन्द्रशेखर-पृ० ५३ (प्र० सं० सन १९६७)
४ लालचन्द जैन-अमर सुभाष-पृ० ३ (सन १९६४ प्रथम सं०)
५ डा० शिवप्रसाद सिंह-घाटियाँ गूँजती हैं-पृ० ८८ (द्वि० सं० सन १९६५)
६ शानदेव अग्निहोत्री-वतन की आबरू-पृ० ६२-६३ (प्र० सं० सन् १९६६)
७ रामकुमार भ्रमर-खून की आवाज-पृ० ५६-५७ (प्र० सं० सन् १९६६)
८ वही, पृ० ६६ ।

के सम्वाद संघर्ष के कारण व्यंग्यपूर्ण, आवेगपूर्ण, आह्वानात्मक, खण्डन मण्डनात्मक तथा प्रश्नोत्तरात्मक हैं। दिनेश दया से शादी करना चाहता है। अतः दादी के विरोध करने पर दिनेश पूछता है--

'दिनेश--क्यों नहीं हो सकती ?

दादी--क्योंकि शास्त्र नहीं कहते।

दिनेश--किसलिए नहीं कहते ?

पिता--(तनिक क्रोध में आकर) दिनेश, इनसे बहस न करो। शास्त्रों की हर बात के पीछे कारण होता है।

दिनेश--इसके पीछे क्या कारण है ?

पिता--शायद यह है कि एक ही खून में शादी करने से नस्ल कमजोर हो जाती है ?

दिनेश--गलत। मुसलमानों में यह रिवाज है। अंग्रेजों में रिवाज है। उनकी नस्ल कमजोर हुई है ?

दादी--मैं अपने धर्म की बात करती हूँ ?

दिनेश--मैं भी उसी की बात करता हूँ। अगर शास्त्र नस्ल अच्छी बनाने के खातिर ही ऐसा कहते हैं तो फिर वे अपनी ही जात और अपने ही धर्म में शादी करने को क्यों कहते हैं ? क्यों नहीं कहते दूसरी जातों, दूसरे धर्मों और दूसरी नस्लों में शादी करने को ? ताकि वह ज्यादा से ज्यादा बच सके ? नस्ल अच्छी से अच्छी बन सके ?

दादी--तुझे बनानी है तू बना। दया छोड़ किसी मेहरी कहारी में शादी कर ले।

दिनेश--कर लेता (अपने पर संयम करते हुए) अगर मुहब्बत हो जाती। लेकिन मेरा फैसला हो चुका है। मैं शादी करूँगा तो दया से करूँगा, वरना नहीं करूँगा।''[2]

'चिड़ियों की एक झालर' में आदर्शवादी पिता नंदन और यथार्थवादी तथा अनास्थावादी पुत्र मंगल के संवाद संघर्ष के कारण अत्यंत उपहासात्मक संकेतात्मक और वाद विवादात्मक हैं।

'नन्दन--समाज बहुत बड़ी चीज है मंगल

मंगल--क्या कहने बहुत बड़ी बहुत बड़ी और उतनी ही गड़मड़ जैसे उलझा हुआ ऊन का गोला जिसका सिरा नहीं मिलता।

नन्दन--अपने भीतर खोजने से सब मिल जाता है

मंगल--क्या मिला ? खोज तो रहे हैं आज चालीस साल से ?

नन्दन--मिला जो कुछ मिलना था तुम नहीं समझोगे

मंगल--चाहता भी नहीं अपने पास ही रखिए अच्छी तरह संभालकर छाती से लगाकर जैसे बर्फानी सर्दी के मुल्क वाले अपनी कांगड़ी रखते हैं। ठिठुरन

---

२ रेवतीसरन शर्मा--न धर्म न ईमान--पृ० १७-१८ (प्र० सं० सन् १९७० ई०)

मैं उमर भर बिना काम भी तो नहीं चल सकता। मगर मैं क्या करूँगा उसका ? आपको मुबारक हो आपकी वो सच्ची इज्जत ... चबाये हुए पान की सीठी जैसी ... कूड़े के ढेर में गिरी हुई ... मैं तो दुनिया के साथ दौड़ूँगा ...।"

यहाँ मनोद्वन्द्व से सम्बन्धित भावावेग के कारण नन्दन और मगन के संवाद टूट फूट तथा असंगत हैं। भावावेग के कारण ही नन्दन और मगन के संवादों ने छोटा अथवा बड़ा रूप ग्रहण किया है।

आन्तरिक संघर्ष के कारण भी कुछ नाटकों के संवादों ने विशिष्ट रूप धारण किया है। आन्तरिक संघर्ष से ग्रस्त व्यक्ति मानसिक तनाव की अभिव्यक्ति, एकान्त में कहे हुए स्वगत-कथनों तथा असंगत क्रियाओं में व्यक्त करता है। 'रक्तदान' नाटक में आन्तरिक संघर्ष से ग्रस्त पूर्वी अपने कमरे में उन कागजों को फाड़ती है जो उसके पूर्व जीवन का परिचय करा सकते हैं। उस समय पूर्वी स्वयं के ही स्वप्न रूपी रूप से कहती है-- मेरा पीछा करने वाली। तू नहीं जानती मैं क्या हूँ। मैं सोचती थी तू खत्म हो गयी है पर तू इस कदर मेरे पीछे लगी है। अपराधी निर्मम ... (कापी को फाड़ने लगती है) हत्यारा। तुझे अब जिन्दा नहीं रहने दूँगी। तेरे दर्पण का एक एक टुकड़ा मैं पीस कर रख दूँगी। मैं हूँ नियता अपने इस जीवन की। तेरा वह जड़ अस्तित्व मैं अब नहीं रहने दूँगी। ' इतना कहकर वह फटे हुए कागजों में आग लगा देती है।

'आधे अधूरे' नाटक में अपने पारिवारिक जीवन से ऊबी हुई सावित्री का मन जगमोहन के साथ रहना चाहता है। अतः सावित्री निश्चय से कह देती है कि अब वह जगमोहन के साथ रहेगी। उस समय बिन्नी सावित्री को और सोचने के लिए कहकर चली जाती है। एकान्त में सावित्री में आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है वह गृह त्याग करने अथवा न करने के बारे में निर्णय नहीं कर पाती। तब वह स्वयं से ही बोलती रहती है और असंगत क्रियाएँ भी करती रहती है।

'स्त्री--(सावित्री)--कब तक और ?

(गले की माला को उंगली से लपेटते हुए झटका लगाने से माला टूट जाती है। परेशान होकर वह माला को उतार देती है और जाकर कबर्ड से दूसरा माला लेती है।)

माला पर माला ... इसका यह हो जाय, उसका वह हो जाय ! (मालाओं को हाथ में रखकर कबर्ड को बन्द करना चाहती है। पर बीच की चीजों के अव्यवस्थित हो जाने से कबर्ड ठीक से बन्द नहीं होता।)

एक दिन ... दूसरा दिन।

---

१ अमृतराय-चिन्दियों की एक झालर-पृ० ८५-८६ (प्र० सं० सन् १९६१ ई०)
२ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल-रक्तदान-पृ० ५९ (द्वि० सं० सन् १९६६ ई०)

(नहीं ही बन्द होता, तो उसे पूरा खोलकर झटके से बन्द करती है।) एक साल दूसरा साल।
(कबड के नीचे रखे जूते चप्पलों को पैर से टटोलकर एक चप्पल निकालने की कोशिश करती है। पर दूसरा पैर नहीं मिलता, तो सब को ठोकरें लगाकर पीछे हटा देती है।)
अब भी और सोच थोड़ा!
(ड्रेसिंग टेबल के सामने चली जाती है। कुछ पल असमंजस में रहती है कि वहाँ क्यों आयी है। फिर ध्यान हो आने से आईना में देख कर माला पहनने लगती है। पहन कर अपने को ध्यान से देखती है कब तक? क्यों?)
(फिर समझ में नहीं आता कि क्या करना है। ड्रेसिंग टेबल की कुछ चीजों को ऐसे ही उठाती रखती है।)
घर दफ्तर घर दफ्तर! सोचो सोचो। चख चख किट किट चख चख किट किट! क्या सोचो?[1]

यहाँ सावित्री की अर्द्धोक्तियों से सावित्री का आन्तरिक संघर्ष अभिव्यंजित हो रहा है।

इस प्रकार अनेक पौराणिक ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा सामाजिक नाटकों के कथोपकथनों ने बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष के प्रभाव के फलस्वरूप विशिष्ट शैलियाँ ग्रहण की हैं। उपर्युक्त कथोपकथनों के उदाहरणों से यह भी सूचित होता है कि संघर्ष के कारण कथोपकथनों के शब्दों ने क्रिया सूचक रूप ग्रहण किया है।

४ वातावरण पर संघर्ष तत्त्व का प्रभाव

संघर्षतत्त्व के प्रभाव के फलस्वरूप नाटक के वातावरण का संघर्षयुक्त होना अत्यन्त स्वाभाविक है। इस वास्तविकता के कारण प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों का विविध प्रकार का वातावरण संघर्ष से युक्त है।

१ वातावरण पर बाह्य संघर्ष का प्रभाव

बाह्य संघर्ष के प्रभाव के फलस्वरूप प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों का धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक, राजनीतिक आदि प्रकार का वातावरण संघर्ष से युक्त है।

(अ) पौराणिक नाटकों में संघर्ष के प्रभाव के फलस्वरूप विविध प्रकार का वातावरण संघर्ष से युक्त है। 'कर्ण' नाटक में आरम्भ से लेकर अन्त तक संघर्षयुक्त धार्मिक सामाजिक तथा राजनीतिक वातावरण है। एक ओर पाण्डवों का वह पक्ष

---

१ मोहन राकेश–आधे अधूरे–पृ० ७७–७९ (प्र० सं सन १९६९ ई०)

है जो विशिष्ट धर्म व्यवस्था तथा समाज व्यवस्था के आधार पर अपने को उच्चकुलीन और वर्ण को नीच कुलीन मानता है और वर्ण को बार बार अपमानित करता है। दूसरी ओर वर्ण है जो अपमान का प्रतिशोध लेने के हेतु हठी बन गया है। परिणाम स्वरूप दोनों पक्षों में बराबर संघर्ष चलता है। इस संघर्ष से प्रभावित होकर धार्मिक तथा सामाजिक वातावरण संघर्ष से युक्त बन जाता है।

इस नाटक में अपने राजनीतिक अधिकारों की मांग करने वाले पाण्डव एक ओर हैं, तो दूसरी ओर पाण्डवों को राजनीतिक अधिकार न देने वाले कौरव हैं। फलस्वरूप इन दो पक्षों में नाटक के अंत तक संघर्ष चलता है। इस संघर्ष के कारण नाटकभर संघर्षयुक्त राजनीतिक वातावरण बना रहता है।

'अपराजित' नाटक में भी संघर्षयुक्त राजनीतिक वातावरण नाटक की समाप्ति तक बना रहता है। प्रस्तुत नाटक में एक ओर राजनीतिक विजय पाने के लिए पाण्डवों की चालबाजी है तो दूसरी ओर पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने की अश्वत्थामा की दृढ़ इच्छा है। परिणामस्वरूप पाण्डवों और अश्वत्थामा में संघर्ष चलता रहता है और सम्पूर्ण नाटक में संघर्षयुक्त राजनीतिक वातावरण बना रहता है।

अतः नाटक में दो भिन्न संस्कृतियों के संघर्ष के कारण नाटकभर संघर्षयुक्त सांस्कृतिक वातावरण बना रहता है। एक ओर राम के पक्ष के रूप में उत्तरापथ की संस्कृति संघर्ष प्रवृत्त हुई है तो दूसरी ओर रावण के पक्ष के रूप में दक्षिणापथ की संस्कृति संघर्ष प्रवृत्त हुई है। अतः इन संस्कृतियों के संघर्ष के फलस्वरूप संघर्षयुक्त सांस्कृतिक वातावरण बना रहता है।

'पहला राजा' में एक ओर अभाव से पीड़ित प्रजा प्रक्षुब्ध हुई है तो दूसरी ओर वैभवसम्पन्न मुनि स्वार्थ की रक्षा के लिए सतर्क हैं। इसका परिणाम संघर्ष के छिड़ने और संघर्षयुक्त राजनीतिक वातावरण के बने रहने में हो जाता है।

(आ) प्रसादोत्तर ऐतिहासिक नाटकों में संघर्ष के अभाव के फलस्वरूप विविध प्रकार का वातावरण संघर्ष से युक्त है। 'कुलीनता' नाटक में संघर्षयुक्त धार्मिक, सामाजिक वातावरण है। एक ओर कुलीनता की परम्परागत धारणा है। इसके विरुद्ध दूसरी ओर पौरुष पर आधारित कुलीनता की क्रान्तिकारी धारणा है। इन दो धारणाओं में संघर्ष छिड़ने के फलस्वरूप पूरे नाटक में संघर्षयुक्त धार्मिक सामाजिक वातावरण बना रहता है। 'सिंहलद्वीप', 'धर्म विजय', 'कलकी', 'रामानुज', 'स्वप्न भंग', 'विष' आदि ऐतिहासिक नाटकों में संघर्ष के प्रभाव के फलस्वरूप संघर्षयुक्त धार्मिक सामाजिक तथा साम्प्रदायिक वातावरण बना रहा है।

'महाराणा प्रताप' में संघर्षयुक्त राजनीतिक वातावरण है। एक ओर बादशाह अकबर की मेवाड़ को अपने स्वाधीन रखने की कामना है। इसके विरुद्ध महाराणा

प्रताप की मेवाड को पराधीनता से मुक्त करने की दृढ कामना है। परिणामस्वरूप सघष के छिडने पर पूरे नाटक मे सघषयुक्त राजनीतिक वातावरण बना रहता है। अनेक ऐतिहासिक नाटको में सघषयुक्त राजनीतिक वातावरण दृष्टिगत होता है।

"वितस्ता की लहरें' नाटक मे दो भिन्न सस्कृतियो के सघष के फलस्वरूप नाटकभर सघषयुक्त सास्कृतिक वातावरण दृष्टिगत होता है। एक ओर सिकन्दर के पक्ष के रूप म बबर सस्कृति सघष प्रवत्त हुई है तो दूसरी ओर आचाय विष्णुगुप्त और पुरु के पक्ष के रूप म उन्नत सस्कृति अपनी रक्षा के लिए सघष प्रवत्त हुई है। इनके सघष के चलने पर नाटक मे सघषयुक्त सास्कृतिक वातावरण बना रहता है।

'कोणाक' म विशु और धमपद क पक्ष के रूप मे एक ओर कला के स्वातन्त्र्य की रक्षा करने के हेतु सघष प्रवत्त हुए अभावग्रस्त शिल्पी हैं तो दूसरी ओर दमन पक्ष क रूप म वभव सम्पन्न तथा अत्याचारी चालुक्य (शासक) हैं। इन पक्षों मे सघष क छिडन पर नाटक म सघषयुक्त राजनीतिक वातावरण बना रहता है।

(इ) प्रसादोत्तर राजनीतिक नाटकों मे सघर्षयुक्त राजनीतिक वातावरण की प्रधानता है। चन्द्रशेखर आजाद शहीद भगतसिंह, नेता जी सुभाषचन्द्र बोस आदि स्वातन्त्र्यप्रिय क्रान्ति वीरो स सम्बन्धित नाटको में साम्राज्यवादी अंग्रेजो के विरुद्ध क्रान्ति वीरो के सघष करने पर सघषयुक्त राजनीतिक वातावरण बना रहता है।

भारत चीन और भारत पाकिस्तान सघष से सम्बन्धित घाटियाँ गूँजती हैं नेफा की एक शाम वतन की आबरू', तथा अन्य नाटको म एक ओर भारत को पराधीन बनाने की आक्रामकों की कांक्षा है। इसके विरुद्ध दूसरी ओर स्वातन्त्र्य प्रिय भारतीयों की भारत को स्वाधीन बनाए रखने की महत्त्वाकाक्षा है। आक्रमणशील पक्ष और रक्षणशील पक्ष म सघष का आरम्भ होने पर इन नाटको म सघषयुक्त राजनीतिक वातावरण दिखाई देता है।

(ई) प्रसादोत्तर सामाजिक नाटकों मे भी सघष के प्रभाव के फलस्वरूप विविध प्रकार का वातावरण सघष स युक्त है। 'रोटी और बेटी निस्तार", "मास्टर जी, अलग अलग रास्ते' और न धम न ईमान' इन नाटको मे धममान्य तथा समाज मान्य परम्पराओ म अन्धविश्वास रखने वालो क विरुद्ध सुधार वादी दृष्टिकोण रखने वाले सघष करते हैं। इस सघष के परिणामस्वरूप इन नाटको मे आरम्भ से अन्त तक सघषयुक्त धार्मिक सामाजिक वातावरण बना रहता है। सुधार वादियो के द्वारा घातक धम व्यवस्था तथा समाजव्यवस्था पर कठोर आघात किये जाते हैं।

बिना दीवारो के घर आधे अधूरे' चिराग की लौ" तथा अन्य अनेक नाटको म पारिवारिक सदस्यो म सघष के छिडने पर पारिवारिक वातावरण सघष

मय हो जाता है। संघर्षमय पारिवारिक वातावरण में शांति और आत्मीयतापूर्ण समझौते के दर्शन नहीं होते हैं। 'रक्त कमल' नाटक में आर्थिक समता की स्थापना करने वाले क्रांतिकारी बने हुए कमल और पूँजीवादी महावीर प्रसाद में संघर्ष के छिड़ने पर पारिवारिक तथा आर्थिक वातावरण संघर्ष से युक्त हो जाता है।

मालिक मजदूर के संघर्ष से सम्बद्ध नाटकों में वर्ग संघर्ष के चलने के फलस्वरूप संघर्षयुक्त आर्थिक वातावरण सृजित होता है। मजदूरों की हड़ताल, घोषणाएँ, भाषण आदि से संघर्षयुक्त आर्थिक वातावरण अधिक यथार्थ बन जाता है।

(२) वातावरण पर आंतरिक संघर्ष का प्रभाव

आंतरिक संघर्ष के प्रभाव के परिणामस्वरूप प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों में संघर्षयुक्त भावात्मक वातावरण परिलक्षित होता है।

(अ) 'कर्ण' नाटक में कर्ण के आंतरिक संघर्ष ने संघर्षयुक्त भावात्मक वातावरण का निर्माण किया है। एक ओर पाण्डवों से प्रतिशोध लेने की भावना है तो दूसरी ओर पाण्डवों को अनुज के समान की भावना है। जब तक कर्ण कोई निर्णय नहीं कर पाता तब तक आंतरिक संघर्ष चलता है। परिणामस्वरूप आंतरिक संघर्ष के चित्रण तक संघर्षयुक्त भावात्मक वातावरण बना रहता है। 'सूर्यमुख' में प्रद्युम्न, अनुरक्ता, रविमना और 'पहला राजा' में पृथु के परस्पर विरुद्ध भावनाओं के आंतरिक संघर्ष के चलने पर संघर्षयुक्त भावात्मक वातावरण का सृजन होता है। आंतरिक संघर्ष से ग्रस्त इन पात्रों की उद्विग्नता और चिड़चिड़ाहट से संघर्षयुक्त भावात्मक वातावरण हृदयस्पर्शी बन जाता है।

(आ) 'सिद्धार्थ का गृहत्याग' और 'लहरों के राजहंस' में क्रमशः सिद्धार्थ और नन्द में भोग सम्बन्धी और त्याग सम्बन्धी भावनाओं के बीच आंतरिक संघर्ष के छिड़ने पर सम्पूर्ण नाटक में अत्यन्त मर्मस्पर्शी संघर्षयुक्त भावात्मक वातावरण बना रहता है। 'कोणार्क' में शिल्पी विशु में परस्पर विरुद्ध भावनाओं का आंतरिक संघर्ष तब छिड़ता है जब उसे ज्ञात होता है कि धर्मपद मेरा ही पुत्र है। आंतरिक संघर्ष से ग्रस्त विशु की असमंजस्यता हृदयस्पर्शी संघर्षयुक्त भावात्मक वातावरण का सृजन करती है।

(इ) 'घाटियाँ गूँजती हैं' में नीरू की परस्पर विरुद्ध (पुत्रप्रेम और देशप्रेम सम्बन्धी) भावनाओं का आंतरिक संघर्ष संघर्षयुक्त भावात्मक वातावरण का निर्माण करता है।

(ई) 'डाक्टर' नाटक में अनिला की परस्पर विरुद्ध (प्रतिशोध सम्बन्धी और कर्तव्य सम्बन्धी) भावनाओं के आंतरिक संघर्ष छिड़ने पर सम्पूर्ण नाटक में हृदयस्पर्शी संघर्षयुक्त भावात्मक वातावरण बना रहता है। 'कर्ण' नाटक में भी कुन्ती के

आ तरिक सघप के कारण सघप युक्त भावात्मक वातावरण का निर्माण होता है। एक ओर पातिव्रत्य को निभाने की भावना है तो दूसरी ओर प्रेम का आकषण ह। परिणाम स्वरूप परस्पर विरुद्ध भावनाओ के सघष छिडन पर सघषयुक्त भावात्मक वातावरण का निर्माण होता है। 'भँवर", दपन तथा अन्य सामाजिक नाटकों म आन्तरिक सघष के प्रभाव के फलस्वरूप सघषयुक्त भावात्मक वातावरण का सजन होता है।

उपयुक्त विवचन से विदित होता है कि सघष तत्व के प्रभाव के फलस्वरूप प्रसादोत्तर हिन्दी नाटको का विविध प्रकार का वातावरण सघष से युक्त है।

५ शैली पर सघष तत्त्व का प्रभाव

सघष तत्त्व का नाटक के शैली तत्त्व पर अत्य त उपयुक्त प्रभाव पडता है जिसके परिणामस्वरूप नाटक हृदयग्राही रूप ग्रहण कर सकता है। इस दृष्टि से प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक के शलीगत पर सघष तत्त्व का समुचित प्रभाव दृष्टिगत होता है।

प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों में उन नाटकों की सख्या अधिक है जो उदघाटन शली म लिखे गय हैं। इन नाटकों मे घटनाओ को उसी क्रम स रखा गया ह, जिस क्रम स व घटती हैं। अत इन नाटकों के शली तत्व पर सघष का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है।

प्रसादोत्तर हिंदी नाटको म मनोवैज्ञानिक (मनोभावव्यजक) शली म लिखे गय नाटकों की सख्या मर्यादित है। कुछ ही नाटककारो न इस शली का निर्वाह किया है। मनोवज्ञानिक शली के अनुसार नाटक का आरम्भ किसी मार्मिक घटना से किया जाता है। प्रसादोत्तर नाटकों की प्रस्तुत शली पर सघष तत्त्व का अत्यन्त रुचिर प्रभाव पडा है।

(अ) सघष के प्रभाव के फलस्वरूप "सूयमुख नाटक का आरम्भ अत्य त मार्मिक क्षण स होता है। इससे प्रस्तुत नाटक के आरम्भ से ही प्रेक्षक का ध्यान सघष के प्रति आकृष्ट होता है। प्रेक्षक क मन म सघष की परिणति के विषय म कुतूहल बना रहता है। वह जिज्ञासा-पूर्ति क हतु रुचिपूवक नाटक क अन्त की प्रतीक्षा म रहता है। प्रस्तुत नाटक का आरम्भ रुक्मिनी क आन्तरिक सघष स होता है। रुक्मिनी को निणय करना है कि विमाता से प्रेम करन वाल पुत्र की ममता को प्राधा य दिया जाय या उस ममता का त्याग कर जनहित का प्राधान्य दिया जाय ? दान दन वाली रुक्मिनी स दान पान क हतु आये हुए भिखारी भी जब रुक्मिनी पर व्यग्य बाण चलात हैं कि 'यह प्रद्युम्न की माँ नहीं जननी है तब रुक्मिनी का आन्तरिक सघष चरम सीमा को पहुँच जाता है और प्रेक्षक म तीव्र कुतूहल बना रहता है। बभ्रु और साम्ब क सघष स कुतूहल की वद्धि होती है। प्रद्युम्न और वेनुरती के

आंतरिक संघर्ष से कुतूहल की और वृद्धि होती है। जिस क्षण प्रद्युम्न और वसुरती अपने उन्मत्त प्रेम के बल पर दुष्ट वभ्रु से समर संघर्ष करते हैं उस क्षण संघर्ष और प्रेक्षक का कुतूहल भी चरम सीमा पर पहुंच जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में संघर्ष के प्रभाव के फलस्वरूप मनोवैज्ञानिक शैली ने हृदयग्राही रूप धारण किया है।

'अश्वत्थामा' नाटक में भी संघर्ष के परिणामस्वरूप मनोवैज्ञानिक शैली ने आकर्षक स्वरूप ग्रहण किया है। इस नाटक का आरम्भ कौरव पाण्डव संघर्ष के चरम बिन्दु से होता है। पाण्डवों के सामने प्रश्न यह है कि कौरवों के सेनापति द्रोणाचार्य के पराक्रम के कारण अपने पक्ष की अतिशय हानि हो रही है इस हानि से किस प्रकार अपनी रक्षा की जाय ? इस स्थिति के कारण कौरव पक्ष निश्चिन्त है। लेकिन प्रथम अंक में ही अश्वत्थामा को ज्ञात होता है कि कृष्ण ने अतिशय धूर्तता से आचार्य द्रोणाचार्य की मृत्यु के रहस्य को जानने में सफलता पायी है। इससे अश्वत्थामा के सामने (और प्रेक्षक के सामने भी) दूसरे दिन के संघर्ष की परिणति के विषय में प्रश्न चिह्न बना रहता है। दूसरे अंक में प्रेक्षकों के मन में प्रश्न यह उपस्थित होता है कि पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए प्रमुख हुए अश्वत्थामा के कारण कौरव पाण्डव संघर्ष की परिणति न जाने क्या होगी ? तीसरे अंक में अश्वत्थामा और पाण्डवों का संघर्ष क्रमशः चरम सीमा की ओर अग्रसर होता है। फलस्वरूप प्रेक्षकों के कुतूहल की भी वृद्धि होने लगती है। नाटक के अन्त में अश्वत्थामा और पाण्डवों का संघर्ष भी चरम सीमा को पहुँच जाता है और प्रेक्षकों का कुतूहल भी। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में संघर्ष तत्त्व का मनोवैज्ञानिक शैली पर रुचिकारक प्रभाव पड़ा है।

(आ) 'कोणार्क' में विशु की कथा का मनोवैज्ञानिक शैली में प्रस्तुत किया गया है। इस मनोवैज्ञानिक शैली पर संघर्ष तत्त्व का ससाहस प्रभाव लक्षित होता है। नाटक का आरम्भ विशु के जीवन से सम्बन्धित एक निर्णायक क्षण से हो जाता है।

विशु के सामने प्रश्न यह है कि उसकी अपूर्व कलाकृति (कोणार्क) कब और कैसे पूर्ण होगी ? यदि वह पूर्ण नहीं हुई तो उस अपूर्व परन्तु अधूरी कलाकृति का क्या किया जाय ? विशु को कुछ निर्णय करना है और वह निर्णय नहीं कर पा रहा है। विशु की अस्थिर मनःस्थिति से प्रेक्षकों में विशु के निर्णय तथा कार्य के विषय में कुतूहल बना रहता है।

प्रेक्षकों में उस समय तीव्र कुतूहल बना रहता है जब अत्याचारी चालुक्य से संघर्ष करने के पूर्व विशु में आंतरिक संघर्ष चलता है। प्रेक्षकों में यह प्रश्न बना रहता है कि क्या विशु पुत्र के मोह में अत्याचारी चालुक्य से क्षमा की प्रार्थना करेगा या पुत्र के मोह को छोड़ कर कलाकार की स्वाधीनता रक्षा के लिए अत्याचारी चालुक्य

से संघर्ष करेगा ? इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में विशु की कथा का उदघाटन करते हुए मनोवैज्ञानिक शैली संघर्ष से प्रभावित होती है और मनोरम रूप ग्रहण करती है।

'लहरों के राजहंस' नाटक में नन्द के आन्तरिक संघर्ष से प्रभावित मनोवैज्ञानिक शैली ने रुचिर रूप ग्रहण किया है। परिणामस्वरूप नाटक के आरम्भ में नन्द का आन्तरिक संघर्ष उस समय व्यंजित होता, जिस समय वह संघर्ष चरम सीमा की ओर अग्रसर होता है। अतः नाटक के आरम्भ से अन्त तक प्रेक्षकों के मन में नन्द के निर्णय के विषय में तीव्र कुतूहल बना रहता है।

(इ) "घाटियाँ गूँजती हैं" और 'नेफा की एक शाम" नाटकों में संघर्ष से प्रभावित हुई मनोवैज्ञानिक शैली प्रेक्षकों में आरम्भ से अन्त तक कुतूहल बनाये रखने में सफल हुई है।

(ई) "डाक्टर" नाटक में संघर्ष के प्रभाव के फलस्वरूप मनोवैज्ञानिक शैली में रोचकता आ गयी है। आन्तरिक संघर्ष से ग्रस्त अनीला के निर्णय के विषय में प्रेक्षकों में कुतूहल उत्पन्न होता है। नाटक के अन्त में अनीला का आन्तरिक संघर्ष भी चरम-सीमा को पहुँच जाता है और प्रेक्षकों का कुतूहल भी। इस नाटक में अनीला के आन्तरिक संघर्ष की अभिव्यंजना के लिए परस्पर विरुद्ध दो मतों का कथोपकथन दिखाया गया है।

संघर्ष से प्रभावित मनोवैज्ञानिक शैली ने 'छठा बेटा' में स्वप्न दृश्य के द्वारा पिता के संघर्ष को व्यंजित किया है। संघर्ष से प्रभावित मनोवैज्ञानिक शैली के कारण 'आधे अधूरे' नाटक के आरम्भ, मध्य तथा अन्त अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़े हैं। पारस्परिक संघर्ष करने वाले पारिवारिक सदस्यों के सामने सदा एक प्रश्न चिह्न उपस्थित रहता है और वे उत्तर में कुछ नहीं पा सकते, कुछ निर्णय नहीं कर सकते। जो अवस्था नाटक के आरम्भ में है वही नाटक के अन्त में भी है।

उपर्युक्त विवेचन से निर्दिष्ट होता है कि प्रसादोत्तर युग में जो नाटक मनोवैज्ञानिक शैली में लिखे गये हैं उनकी मनोवैज्ञानिक शैली ने संघर्ष से प्रभावित होकर रमणीय रूप ग्रहण किया है।

६ उद्देश्य पर संघर्ष तत्व का प्रभाव

नाटक में उद्देश्य की प्रतिष्ठापना संघर्ष की सहायता से होती है। संघर्ष का उद्देश्य पर जो प्रभाव पड़ता है उससे उद्देश्य की अभिव्यक्ति सहज होती है। इस दृष्टि से प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों के उद्देश्य पर संघर्ष तत्व का उपयुक्त प्रभाव पड़ा है।

(अ) 'सूर्यमुख' नाटक का उद्देश्य यह है कि प्रेम किसी का भी हो, वह अपने मूल रूप में उदात्त, तेजस्वी कर्म प्रेरक और त्यागपूर्ण होता है। इस उद्देश्य की सफल

अभिव्यक्ति के लिए प्रस्तुत नाटक में दो पक्षों का निर्माण किया गया है। एक पक्ष प्रद्युम्न और वनलता का है जो उदात्त तपस्या, त्यागपूर्ण एवं कर्मप्रेरक प्रेम का समर्थन करता है। दूसरा पक्ष वधू आदि परम्परागत लोगों का है, जो विमाता और सौतेले पुत्र के प्रेम को पाप मानता है। परिणामस्वरूप इन दो पक्षों में संघर्ष छिड़ता है। इस संघर्ष में प्रद्युम्न और वनलता के निःस्वार्थी भावों और कार्यों से यही सिद्ध होता है कि प्रेम अपने मूल रूप में उदात्त और कर्मप्रेरक होता है।

(आ) 'कलाकार' का उद्देश्य यह है कि अपनी स्वाधीनता की रक्षा करना कलाकार का प्रथम कर्तव्य है। इस उद्देश्य की सफल अभिव्यक्ति के लिए परस्पर विरुद्ध दो पक्षों का निर्माण किया गया है। एक पक्ष शिल्पी विष्णु का है, जो कला को जनजीवन से दूर रखने और किसी के भी अधीन होकर कला का निर्माण करने को चाहता है। इसके विरुद्ध शिल्पी धर्मपद का पक्ष है जो कला को जन जीवन से जोड़ने और स्वाधीन रहकर कला का निर्माण करने को चाहता है। इन दो पक्षों के संघर्ष में धर्मपद के पक्ष की जीत हो जाती है। नाटक के अन्त में अत्याचारी चालुक्य से संघर्ष करने के पूर्व विष्णु में उक्त दो दृष्टिकोणों को लेकर संघर्ष छिड़ता है। इस संघर्ष में विष्णु को धर्मपद का दृष्टिकोण प्रिय लगता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार विष्णु कलाकार के स्वातन्त्र्य की रक्षा करने के लिए अत्याचारी चालुक्य से प्रखर संघर्ष करता है और चालुक्य का अन्त करने में सफलता पाता है। इस प्रकार संघर्ष के प्रभाव के फलस्वरूप 'कलाकार' के उद्देश्य की अभिव्यक्ति प्रभावशाली रीति से होती है।

(इ) 'घाटियाँ गूँजती हैं' नाटक का उद्देश्य यह दिखाना है कि स्वतन्त्र भारत का स्वातन्त्र्य प्रिय मन स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिए कितना भी त्याग और कितना भी संघर्ष कर सकता है। इस उद्देश्य की सफल अभिव्यक्ति के लिए प्रस्तुत नाटक में परस्पर विरुद्ध दो पक्षों का निर्माण किया है। एक ओर चीन और देशद्रोही भारतीय हैं जो भारत को पराधीन बनाना चाहते हैं। दूसरी ओर देश प्रेमी नायक विवेक आदि वीर भारतीय हैं जो किसी भी अवस्था में अपने देश के स्वातन्त्र्य की रक्षा करना चाहते हैं। इन पक्षों में संघर्ष चलने पर और देश प्रेमी नायक द्वारा देशद्रोही पुत्र की हत्या की जाने पर प्रस्तुत नाटक के उद्देश्य की अभिव्यक्ति अत्यन्त परिणामकारक गति से हो जाती है।

(ई) 'रक्तकमल' नाटक में उद्देश्य के रूप में यह दिखाया जाता है कि समाज तथा देशहित की दृष्टि से सम अर्थ व्यवस्था की प्रतिष्ठापना उपयुक्त है। क्रान्तिकारी कमल का पक्ष उस उद्देश्य का समर्थन करता है। पूँजीवादी महावीर का पक्ष इस उद्देश्य का खण्डन करते हुए विषम अर्थ व्यवस्था का समर्थन करता है। परिणामस्वरूप इन दो पक्षों में संघर्ष चलता है। इस संघर्ष से नाटक के उद्देश्य की

अभिव्यक्ति सरलता से तथा प्रभावशाली ढंग से होती है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह निर्देशित होता है कि प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों के उद्देश्य पर भी संघर्ष तत्त्व का अत्यन्त उपयुक्त प्रभाव पड़ा है ।

निष्कर्ष

सम्पूर्ण विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों के अन्य तत्त्वों पर संघर्ष तत्त्व का अत्यन्त उपयुक्त प्रभाव पड़ा है। फलस्वरूप कुछ हिन्दी नाटकों ने अत्यन्त मार्मिक प्रभावोत्पादक तथा रमणीय रूप ग्रहण किए हैं ।

आठवां अध्याय

उपसंहार

पिछले सात अध्यायों में नाटक और संघर्ष तत्त्व का किस प्रकार अभिन्न एवं महत्त्व का स्थान है, प्रसादपूर्व तथा प्रसादकालीन नाटकों में संघर्ष तत्त्व ने क्या स्थान पाया है, प्रसादोत्तर पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक नाटकों में संघर्ष तत्त्व की किस प्रकार प्रतिष्ठापना हुई है, प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों के अन्य तत्त्वों पर संघर्ष तत्त्व का क्या प्रभाव पड़ा है, इन सबका विवेचन किया गया है। इस विवेचन से उपलब्ध निष्कर्षों का संक्षेप में निर्देश करना समुचित है।

१ साहित्य प्राप्त और प्राप्य के संघर्ष से जन्म लेता है।

२ संघर्ष साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। विशेषकर कथा साहित्य में संघर्ष का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

नाटक अत्यधिक सामाजिक तथा प्रत्यक्ष कला है। रंगमंच पर प्रस्तुत होते समय नाटक के पात्र जीवन को प्रत्यक्ष भोगते हैं और अपनी क्रिया तथा वाणी से अपनी जीवन कथा एवं चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन करते हैं। फलस्वरूप नाटक में एक अनिवार्य तत्त्व के रूप में संघर्ष का स्थान मिल जाता है।

४ कथानक चाहे जिस प्रकार का हो, संघर्ष के बिना वह नाटक का रूप धारण नहीं कर सकता। नाटक के कथानक से संघर्ष का अत्यधिक महत्त्व का संबंध होता है।

५ नाटय कथा के साथ साथ नाटय विषय से भी संघर्ष का महत्त्वपूर्ण संबंध होता है। नाटय विषय किसी व्यापक संघर्ष से सम्बद्ध होता है। नाटय-कथा उस व्यापक संघर्ष को व्यंजित करने वाले विशिष्ट संघर्ष से सम्बद्ध होती है।

६ नाटक का पात्र संघर्ष का निर्माता होता है। पात्र इच्छापूर्ति के हेतु क्रियाशील संघर्षशील बन जाता है। इस तथ्य की दृष्टि से नाटयमर्मी ब्रुनतिएर का कथन बुद्धिसंगत है कि मनुष्य की संघर्षशील इच्छा का प्रस्तुतीकरण ही नाटक है।

७ पात्र की इच्छा क्रिया के रूप में संघर्षशील बन जाता है और किसी लक्ष्य

की ओर बढ़ती है। यह उद्देश्ययुक्त क्रिया शारीरिक तथा मानसिक होती है। इन दोनो की अभिव्यक्ति शारीरिक चेष्टाओ और कथोपकथनो के माध्यम से होती है। अत नाटक को नाटक का रूप प्रदान करने का काय वही उद्देश्ययुक्त क्रिया करती है, जो सघप का रूप धारण करती है।

८ पात्र सघर्षात्मक क्रिया के द्वारा अपने विशिष्ट व्यक्तित्व तथा कथानक के साथ ही नाटक का निर्माण करता है।

९ सघप के प्रभाव क फलस्वरूप नाटक क अन्य तत्वा मे विशिष्टता आ जाती है।

१० नाटक के मुख्य दो प्रकार के सघर्षों मे स बाह्य सघप तभी चलता है, जब मनुष्य इच्छा-पूर्ति के हेतु बाह्य बाधाओ से सघप करता है।

११ मनुष्य जब अपनी अनिणयात्मक तथा दुविधाग्रस्त मन स्थिति से सघप करता है, तब आतरिक सघप का आरम्भ होता है।

१२ दो सद्भावनाओ का सघप श्रेष्ठ श्रेणी का सघप होना है।

१३ विशिष्ट इच्छा सघप तथा नाटक की श्रेष्ठता का आधार होती है।

१४ सघप की परिणति के आधार पर नाटक के विविध प्रकार हो सकते हैं।

१५ पाश्चात्य नाटयशास्त्र में सघप तत्व की उद्बोधक विवेचना हुई है। प्रथम ब्रुनेतिएर ने तदुपरात अनक नाटयमर्मियो ने सघप को नाटक के अनिवाय तत्व के रूप म स्वीकार किया है। पाश्चात्य नाटको म सघप एक अनिवाय तत्व के रूप में दृष्टिगत होता है।

१६ सस्कृत नाटयशास्त्र मे सघप तत्व का स्पष्ट रूप म विवेचन नहीं हुआ है। केवल ध्वनित होता है कि 'प्रयत्न" नामक कार्यावस्था "नियताप्ति" तक सघप का रूप धारण कर सकती है। सस्कृत नाटको मे सघप आनुषगिक रूप में प्रतीत होता है न कि एक आवश्यक तत्व के रूप में।

१७ पाश्चात्य नाटय सिद्धाता के अध्ययन के फलस्वरूप हिन्दी के नाटय विषयक ग्रथो में सघप तत्व का उल्लेख किया गया है और किया भी जा रहा है।

१८ पाश्चात्य नाटक साहित्य के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी नाटक मे सघप तत्व को प्रतिष्ठित स्थान दने की प्रक्रिया का आरम्भ हुआ। इस प्रक्रिया का आरम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया है और इसे विकास की ओर अग्रसर कराने का काय जयशकर 'प्रसाद ने किया है।

१९ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटको म बाह्य सघप को उल्लेखनीय स्थान प्राप्त हुआ है।

२० जयशकर प्रसाद' क नाटको म बाह्य सघप के साथ साथ आतरिक

संघर्ष को अत्यधिक महत्त्व का स्थान मिला है। इनके नाटकों के प्रधान पात्रों के चारित्रिक विकास का प्रमुख आधार श्रेष्ठ श्रेणी का आन्तरिक संघर्ष है।

२१ 'प्रसाद' युग के अन्त में लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने सामाजिक नाटकों में बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष को उचित स्थान दिया है और पात्रों को अधिकाधिक यथार्थ बनाने का प्रयत्न किया है।

२२ प्रसादोत्तर युग के पौराणिक नाटकों में बाह्य संघर्ष की प्रधानता है। कुछ नाटककारों में वैचारिक तथा श्रेष्ठ श्रेणी के संघर्ष को स्थान मिला है। इस सन्दर्भ में 'रावण', त्रेता अपराजित और 'नारद की वीणा' नाटक उल्लेखनीय हैं।

२३ अधिकांश पौराणिक नाटकों में आन्तरिक संघर्ष उपेक्षित रहा है। केवल 'कर्ण, सूर्यमुख और पहला राजा' में श्रेष्ठ श्रेणी के आन्तरिक संघर्ष ने महत्त्वपूर्ण स्थान पाया है।

२४ अधिकतर पौराणिक नाटकों में धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक कारणों से व्यक्ति का व्यक्ति से, व्यक्ति का समाज (समूह) से और समूह का समूह से संघर्ष है।

२५ प्रसादोत्तर ऐतिहासिक नाटकों में बाह्य संघर्ष की अतिशयता है। अनेक ऐतिहासिक नाटकों में राजनीतिक कारण से समुदाय का समुदाय से और व्यक्ति का व्यक्ति से संघर्ष है। कुछ नाटकों में सांस्कृतिक तथा सामाजिक कारण से व्यक्ति का व्यक्ति से तथा व्यक्ति का समाज से संघर्ष है।

२६ अनेक ऐतिहासिक नाटकों में स्वाधीनता रक्षा की इच्छा के कारण श्रेष्ठ श्रेणी का संघर्ष है।

२७ कुछ ऐतिहासिक नाटकों में धर्म सुधार तथा समाज-सुधार की इच्छा के कारण उच्च श्रेणी का संघर्ष है। इन नाटकों में परस्पर विरुद्ध विचारधाराओं का वैचारिक संघर्ष है।

२८ कुछ ऐतिहासिक नाटकों में श्रेष्ठतम श्रेणी का आन्तरिक संघर्ष है। प्रस्तुत संघर्ष दो सम्भावनाओं के बीच चलता है। इस संघर्ष के द्वारा पात्रों की चरित्रगत श्रेष्ठता का अपने आप उद्घाटन होता है।

२९ प्रसादोत्तर राजनीतिक नाटकों में राजनीतिक कारण से छिड़े हुए बाह्य संघर्ष की ही अधिकता है। प्रस्तुत संघर्ष स्वातन्त्र्य प्राप्ति और स्वातन्त्र्य रक्षा की तीव्र इच्छाओं के कारण चलता है इसलिए यह उच्च श्रेणी का संघर्ष है।

३० राजनीतिक नाटकों में प्रातिनिधिक संघर्ष को महत्त्व का स्थान मिला है। इन नाटकों में एक-दूसरे के विरुद्ध संघर्ष करने वाले पात्र अपने अपने दल के प्रतिनिधि हैं। अतः इन नाटकों में व्यक्ति-व्यक्ति के संघर्ष को अपेक्षा राष्ट्र राष्ट्र का

सघष अधिक महत्त्व का है।

३१ जिन राजनीतिक नाटको मे आन्तरिक सघष है उनकी सख्या अत्यल्प है। दीकू (घाटियाँ गूँजती हैं) का दो सद्भावनाओ का आन्तरिक सघष अत्युच्च श्रेणी का सघष है।

३२ प्रसादोत्तर सामाजिक नाटकों म बाह्य सघष और आन्तरिक सघष को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। अधिकाश नाटको मे वयक्तिक, पारिवारिक सामाजिक, आर्थिक तथा अन्य अनक कारणो स बाह्य सघष है।

३३ सामाजिक नाटको मे परस्पर विरुद्ध विचारधाराओ, धारणाओ, दृष्टि-कोणो और जीवन मूल्यो के कारण उच्च श्रेणी का वचारिक सघष है। क्रान्तिकारी पात्र नवीन जीवन मूल्यो की प्रतिष्ठापना करने के हेतु सघष प्रवत्त होकर परम्परा बद्ध जीवन मूल्यो पर कठोर प्रहार कर रहे हैं। इस स दभ म अधिकाश सामाजिक नाटको में व्यक्ति का व्यक्ति स और व्यक्ति का समाज (समुदाय) स प्रखर सघष है। परम्परावादी तथा बुजुर्गा पात्रा ने रक्षणशील पक्ष का रूप ग्रहण किया है, तो क्रान्तिकारी तथा नवमतवादी पात्रा ने आक्रमणशाल पक्ष का रूप धारण किया है।

३४ सामाजिक नाटको में उच्च श्रणी के आन्तरिक सघष को भी महत्त्व का स्थान मिला है। प्रस्तुत आन्तरिक सघष तब तक चलता है, जब तक पात्र निणय नही कर पाता। यह आन्तरिक सघष परस्पर विरुद्ध अथवा तुल्यबल भावनाओं क बीच चलता है। इन नाटको में आन्तरिक सघष क द्वारा ही पात्र की चारित्रिक विशेषताओ का उदघाटन होता है।

३५ प्रसादोत्तर हिन्दी नाटका में बाह्य सघष की प्रधानता है। यह बाह्य सघष उत्तरोत्तर सूक्ष्म होना रहा है। पौराणिक तथा एतिहासिक नाटको में स्थूल बाह्य सघष की अधिकता ह। लेकिन कुछ पौराणिक ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा बहुसख्य सामाजिक नाटको में सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का सघष है। प्रस्तुत सघष दो विचारधाराओ दो जीवननिष्ठाओ, दो मान्यताओ और भावनाओ के बीच चलता है।

३६ पौराणिक, ऐतिहासिक तथा राजनीतिक नाटका म समुदाय समुदाय के सघष की अधिकता है। इन नाटको म व्यक्ति व्यक्ति और व्यक्ति समुदाय के सघष की न्यूनता है। इसके विरुद्ध सामाजिक नाटको मे व्यक्ति व्यक्ति और व्यक्ति समुदाय क सघष को उत्तरोत्तर अधिकाधिक महत्त्व का स्थान मिला है। इसका प्रमुख कारण यह है कि अनेक सामाजिक नाटककारों का ध्यान व्यक्ति तथा उसके जीवन पर केन्द्रित होता रहा है।

३७ प्रसादोत्तर युग क जिन नाटककारो का ध्यान व्यक्ति तथा उसके जीवन पर केन्द्रित हुआ है, उनके नाटको मे आन्तरिक सघष ने मूल्यवान स्थान पाया है।

प्रस्तुत आंतरिक संघर्ष सूक्ष्म तथा उच्च श्रेणी का संघर्ष है।

३८ प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों में अन्य तत्त्वों पर संघर्ष तत्त्व का अतिशय उपयुक्त प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव के फलस्वरूप कुछ नाटकों ने अत्यंत मर्मस्पर्शी, प्रभावोत्पादक तथा रुचिकारक रूप ग्रहण किए हैं।

३९ प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक में व्यक्ति और नियति, व्यक्ति और प्रकृति इन दो संघर्षों का अभाव सा है।

४० प्रसादोत्तर युग के जगदीशचन्द्र माथुर, मोहन राकेश डॉ० लक्ष्मी-नारायण लाल, रेवतीसरन शर्मा, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, विनोद रस्तोगी डॉ० शिवप्रसाद सिंह, ललित सहगल, अमृतराय तथा अन्य कुछ नाटककारों के नाटकों ने संघर्ष तत्त्व के कारण कितना नाट्यपूर्ण, कितना महत्त्वपूर्ण तथा हृदयग्राह्य रूप ग्रहण किया है, इस तथ्य का सहृदयतापूर्वक अवलोकन करने के उपरान्त कोई भी गर्वपूर्वक कह सकता है कि प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों में संघर्ष तत्त्व कितना महत्त्वपूर्ण स्थान पा रहा है।

परिशिष्ट १

पठित नाटकों की सूची

नाटककार	नाटक	संस्करण	तिथि
अम्बिकाप्रसाद "दिव्य"	तीन पग	प्रथम	अगस्त १९६५
,,	निर्वाण पथ		जनवरी १९६६
,	भोजनन्दन कस	,	सन् १९५९
,	लंकेश्वर	,	५५
अकिंचन शर्मा	गुरुदेव चाणक्य	अनुल्लेख	अनुल्लेख
अजयकुमार	पंच परमेश्वर	प्रथम	सन १९६२
अनन्त बहादुरसिंह	सम्राट अशोक	अनुल्लेख	, ६०
अमयकुमार 'यौधेय'	डूबते तारे	प्रथम	अनुल्लेख
अमृतराय	चिड़िया की एक झालर	,,	सन् १९६९
अवधभूषण मिश्र	कुरुक्षेत्र	अनुल्लेख	अनुल्लेख
आनन्द प्रकाश जैन	मास्टर जी	प्रथम	सन् १९६०
आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव	आत्म त्याग	प्रथम	,, ५१
आरिग्पुडि (ए० रमेश चौधरी)	कोई न पराया	प्रथम	, ६१
इन्द्रसेनसिंह भावुक	परिवार के शत्रु	द्वितीय	६१
उदयशंकर भट्ट	अन्तहीन अन्त	• चतुर्थ	, ४८
		प्रथम	, ४१
,,	क्रांतिकारी	॰ द्वितीय	, ६०
		प्रथम	, ५३
,	दाहर अथवा सिंध पतन	॰ द्वितीय	,, ६२
		प्रथम	,, ५२
,,	पार्वती	॰ द्वितीय	,, ६२
		प्रथम	,, ५८
,,	नया समाज	॰ द्वितीय	,, ६३
		प्रथम	,, ५२
,,	मुक्तिदूत (मुक्ति-पथ)	॰ द्वितीय	सन् १९६२
		प्रथम	,, ४४
,,	विक्रमादित्य	• छठा	,, ६१
		प्रथम	,, ३३

नाटककार	नाटक	संस्करण	तिथि	
उदयशंकर भट्ट	विद्रोहिणी अम्बा	० द्वितीय	,	६८
		प्रथम		३३
	नव विजय	० तृतीय	,	५५
		प्रथम	,,	४९
,	सागर विजय	० छठा	,	५६
		प्रथम	,	३७
उदयसिंह भटनागर	जागरण	प्रथम		५६
	टूटन अगार	प्रथम	,,	५९
उपेन्द्रनाथ अश्क	अजो दीदी	प्रथम		५५
	अंधी गली	प्रथम	,	५६
,	अलग अलग रास्ते	० द्वितीय	अनुल्लेख	
		प्रथम	सन्	१९५८
,	उड़ान	० द्वितीय		५५
		प्रथम	,,	५०
,	कैद	द्वितीय	,,	५५
,	छठा बेटा	० छठा		५१
		प्रथम	,	४०
	जय पराजय	० ग्यारहवाँ	,	६३
		प्रथम	,	३७
,	पतर	अनुल्लेख	अनुल्लेख	
,	बड़े खिलाड़ी	प्रथम	सन्	१९६७
,,	भवर	प्रथम		६१
,,	स्वर्ग की झलक	पाँचवाँ	,	५६
		प्रथम	,	३९
उमाशंकर बहादुर	वचन का मोल	प्रथम	,	५१
,,	व्यवहार	नया संस्करण		५०
एम एम कान्त सिन्हा कान्त	कुंवरसिंह	प्रथम	,	५८
ओंकारनाथ दिनकर	उत्तम सम्राट	,		५९
ओंकारनाथ दिनकर	अभिषेक	प्रथम	सन्	१९६८
,,	गुर्जरेश्वर	,	,	६७
,,	तथागत	,,	,,	६६
,,	धारेश्वर भोज	,	,	५८
,,	नव विहान	,,	,,	६५
,,	पद्मव्यूह	,,	,,	६७

नाटककार	नाटक	संस्करण	तिथि
,,	भगवान बुद्ध दव	सशोधित	,, ६८
,	मु जदेव	,	,, ६८
,		प्रथम	, ५४
,,	मुक्ति यन	,,	, ६७
,,	मत्युञ्जय	द्वितीय	,, ६७
		प्रथम	, ६६
,,	वागीश्वर	द्वितीय	, ७०
,,	विग्रहराज विशालदव	प्रथम	५७
वचनलता सब्बरवाल	अन ता	,	, ५९
	अमिया	ततीय	,, ५०
		प्रथम	, ४९
,,	आदित्यसन गुप्त	द्वितीय	, ४८
		प्रथम	,, ४२
,,	भीगी पलक	,,	,, ५७
,,	लक्ष्मीवाई	,,	, ६६
कणादऋषि भटनागर	जनता का सवक	,,	, ६३
,	जहर	,	६६
	सगम	,,	, ६३
,,	हम एक हैं	,,	, ६४
कमलाकान्त पाठक	अस्पृश्य		,, ५७
कमलेश्वर	अधूरी आवाज	,	६२
कर्तारसिंह दुग्गल	बुद्ध शरन गच्छामि	,	,, ५८
कविरत्न पाराशर	वीरागना दुर्गावती	,,	,, ६५
कालिदास कपूर	धम विजय	,,	, ६४
किशोरीदास वाजपयी	द्वापर की क्रांति	० द्वितीय	४८
		प्रथम	४०
कुँवरचन्द्र प्रकाशसिंह	कविवर नरात्तमदास	द्वितीय	सन १९६६
		प्रथम	, ५९
,,	सयम सम्राट	,	, ५७
,	स्वतन्त्रता सग्राम		, ५८
कुमार हृदय	निर्णय	,	, ३३
,	भग्नावशेष	,,	,, ३६
कृष्णकिशोर श्रीवास्तव	आदमी के टुकडे		, , ६२
	नीव की दरारें	अनुल्लेख	अनुल्लेख (शायद १९६३ के बाद

नाटककार	नाटक	संस्करण	तिथि	
गोविन्ददास सेठ	भिक्षु से गहस्थ और गहस्थ से भिक्षु	अनुल्लेख	सन	१९५७
,,	भूदान यज्ञ	द्वितीय	,,	६१
		प्रथम	,,	५४
,,	महत्त्व किसे ?	अनुल्लेख	,,	४७
,,	महात्मा गांधी	,,	,,	५९
,,	महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य	,,	,,	६६
,,	रहीम	प्रथम	,,	५५
,	विश्व प्रेम	द्वितीय	,,	६६
,,	शशिगुप्त	तेरहवाँ	,	६९
		प्रथम,	,,	४२
,	शेरशाह	अनुल्लेख	अनुल्लेख	
,,	सन्तोष कहाँ ?	,,	सन	१९४५
,,	सिंहल द्वीप	,,	,,	६६
,	सिद्धान्त स्वातन्त्र्य	,,	,	५८
,,	सेवा पथ	,,	,,	४०
,,	हृष	छठा	,,	६१
		प्रथम	,	५७
,,	हिंसा या अहिंसा	अनुल्लेख	,,	४२
गोविन्द वल्लभ पन्त	अंगूर की बेटी	० पाँचवाँ	,	६२
		प्रथम शायद	,,	३७
,	अन्तःपुर का छिद्र	० द्वितीय	,,	५४
		प्रथम	,,	४०
,,	अधूरी मूर्ति	,	अनुल्लेख	
,	ययाति	० द्वितीय	सन	१९६५
		प्रथम		४१
	राजमुकुट	० बाईसवाँ	,,	६७
,		प्रथम	,,	३५
,	सुजाता	ततीय	,,	६१
,	सुहाग बिंदी (सिंदूर बिन्दी)	पाँचवाँ	,,	६६
गौरीशंकर मिश्र	शबरी अछूत	प्रथम	,,	५२
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	अशोक	अनुल्लेख	अनुल्लेख	
		प्रथम	सन	१९३५

नाटककार	नाटक	संस्करण	तिथि
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	न्याय की रात	० तृतीय	, ६८
		प्रथम	, ५८
	रेवा	० चतुर्थ	, ६१
		प्रथम	, ३८
चन्द्रप्रकाश वर्मा	व्रता	प्रथम	, ६२
चन्द्रशेखर पाण्डेय	मेवाड़ उद्धार		४६
चतुर्भुज	अरावली का शेर	० द्वितीय	६१
		प्रथम	„ ५७
	कलिंग विजय		५६
	कुँवरसिंह	छठा	६४
,	झाँसी की रानी	प्रथम	७०
	भगवान बुद्ध		६०
,	भीष्म प्रतिज्ञा		७०
„	मीर कासिम	तृतीय	„ ६२
„	मेघनाद	संशोधित सं०	अनुपलब्ध
	श्रीकृष्ण	प्रथम	सन १९५६
	सिराजुद्दौला	तृतीय	, ६१
आ० चतुरसेन शास्त्री	अजातसिंह	अनुपलब्ध	६५
	अमरसिंह		६०
	गान्धारी		अनुपलब्ध
	धर्मराज	० पाँचवाँ	सन १९६६
		अनुपलब्ध	५६
„	पगध्वनि		अनुपलब्ध
,	मेघनाद		सन १९६५
		प्रथम	३६
	राजसिंह	० अनुपलब्ध	, ६५
	श्रीराम नाटक	प्रथम	४०
	श्रीराम	,	६३
चावलि सूर्य नारायण मूर्ति	महानाश की ओर	„	, ६०
चिरंजीत	घेराव	,	६७
	तस्वीर उसकी	„	, ६४
चनमुन वनाव	सिकन्दर पोरस		, ५८
जगन्नाथ चतुर्वेदी	कुसुम के फूल	„	„ ६०
जगदीशचन्द्र माथुर	कोणार्क	प्रथम	५९

नाटककार	नाटक	संस्करण		तिथि
लक्ष्मीसिंह शास्त्री	जनता तेरी जय हो	प्रथम	सन	१९६९
स्वरूप अटल	शान्तिदूत			५२
देवराज दिनेश	मानव प्रताप	० द्वितीय	,	५८
		प्रथम	,	५२
,	यशस्वी भोज			५५
	रावण			८८
देवीप्रसाद धवन 'विकल'	चन्द्रशेखर आजाद			६१
	तुम मुझे खून दो			६६
	मानवता का मत			६३
द्वारकाप्रसाद मौर्य	हैदरअली या मैसूर का पतन			२४
नरेन्द्र राव	अमर बलिदान			६०
नरेश मेहता	खंडित यात्राएँ			६२
	सुबह के घण्टे			५६
सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन	मुकुट	तृतीय		४०
परिताप गार्गी	छलावा	प्रथम		६१
परिपूर्णानन्द वर्मा	अवध का रंगीला नवाब (वाजिद अली शाह)	प्रथम	,,	५९
	नाना फड़नवीस			८६
पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र	चुम्बन			३७
पातीराम भट्ट	तात्या टोपे			६०
,	श्री चैतन्य			५७
पृथ्वीनाथ शर्मा	अपराधी	० तृतीय		५६
		प्रथम		३९
	उर्मिला	० द्वितीय		६०
,	दुविधा	अनुल्लेख	,	५७
,	नया रूप	० प्रथम	,,	६२
	साध	० द्वितीय	,,	५५
		प्रथम		४८
प्रकाश सायी	आराम हराम है	,		६१
प्रताप मुरारका	हव्वा का बेटा			५७
प्रताप नारायण टण्डन	स्वर्ग यात्रा	अनुल्लेख		अनुल्लेख
प्रतिमा अग्रवाल	नगर वधू	प्रथम	सन	१९६८
प्रेमकश्यप साज	शहीदों की बस्ती	,	,	६८
प्रेमचन्द	प्रेम की वेदी	आठवाँ	,	६०

नाटककार	नाटक	संस्करण	तिथि
प्रमनाथ दर	घर की बात	प्रथम	सन १९६१
प्रेमन द द्विवदी 'दुखित	अस्थिदान	'	" ५१
प्रेमनारायण टण्डन	कृष्ण ज म	'	' ३१
बनारसीदास करुणाकार	सिद्धाथ बुद्ध	'	" ५५
बल्राम चौहान	पनाह	"	" ५७
बाबा ढिके	मगु	'	' ५८
बाबूराम सिह 'लमगाडा''	गाँव का ओर	'	६१
"	प्रलय पल	द्वितीय	६१
		प्रथम	, ५६
बजनाथराय	सिहगढ	प्रथम	" ४१
ब्रजरत्नदास	आदश राम	"	' ५५
भगवतीचरण वर्मा	रुपया तुम्ह खा गया	द्वितीय	" ७०
भगवतीप्रसाद पाण्डरी	कालपी	प्रथम	' ३५
भगवतीप्रसाद वाजपेयी	छलना	अनुल्लेख	६४
"	राय पिथौरा	द्वितीय	६२
		प्रथम	५९
भारतसिह यादवाचाय	श्रीकृष्ण ज म	प्रथम	' ३४
भरवप्रसाद गुप्त	च दवरदायी	अनुल्लेख	अनुल्लेख
भोलानाथ झा	राजापुरु	प्रथम	सन १९६०
मदन मोहन गग	पर्वतेश्वर	"	' ५८
मनु भण्डारी	बिना दीवारो के घर	"	' ६५
महेश्वरी दयाल	१८५७ की दिल्ली	अनुल्लेख	' ५९
मोहन राकेश	आधे अधूरे	प्रथम	" ६९
	आषाढ का एक दिन	द्वितीय	" ६३
,	लहरा के राजहस	परिवर्धित	, ६८
मोहनलाल महतो वियोगी	अफजल वध	प्रथम	" ५१
,	कसाई	अनुल्लेख	अनुल्लेख
,	डाडी यात्रा	अनुल्लेख	अनुल्लेख
यमुनाप्रसाद त्रिपाठी	आजादी या मौत उफ वीर मलखान नाटक	प्रथम	सन १९३६
यज्ञदत्त शर्मा	सिस्टर कमलेश		, ६९
रघुनन्दन प्रसाद शुक्ल	मीराबाई	अनुल्लेख	" ६१
रघुन दन चौधरी	अछूत की लडकी	प्रथम	
रघुवीरप्रसाद गुप्त विशारद	शिक्षा सुधार नाटक	"	

नाटककार	नाटक	संस्करण	तिथि
रघुवीरशरण मिश्र	धरती माता	द्वितीय	सन् १९६५
,	बालवीकृष्ण	प्रथम	„ ५६
	भारत माता	चतुर्थ	६२
	वीर बालक	द्वितीय	६८
रत्न बी० ए०	अछूत नहीं नहीं	प्रथम	„ ४०
रत्न शंकर प्रसाद	कुणीक		५१
रमेश महता	अण्डर सक्रेटरी	प्रथम अभिनय दिनांक	२३-५-१९५८
,	अपराधी कौन	प्रथम	सन १९५२
	उलझन		२ ८-१९५४
	जमाना		सन १९५३
	दाग		१६-१२-५९
,	दामाद	,	२०-२-१९५१
	फसला	,	सन १९५१
	बड़े आदमी	,	१८-३-१९६६
	राटा और वटा		सन १९६०
,	हमारा गांव	प्रथम अभिनय दिनांक	२०-२-१९५४
रागय राघव	रामानुज	द्वितीय	सन् १९६५
		प्रथम	„ ५२
	विरूढक	प्रथम	६६
,	स्वर्ग भूमि का यात्री		५८
राजकुमार	काली आकृति	०द्वितीय	, ६३
		प्रथम	, ५९
,	ज्वार भाटा	प्रथम	, ६०
	देश के लिए	,	, ६४
	सही रास्ता	अनुल्लेख	६३
	पचभागी	अनुल्लेख	अनुल्लेख
,	हाजापीर का दर्रा	प्रथम	सन् १९६५
राजेन्द्रकुमार शर्मा	अपनी कमाई	,	६०
	रत का दीवार	द्वितीय	, ६३
राजेश्वर गुरु	झाँसी की रानी	प्रथम	५१
,	शरविद्ध स्वप्न	,	, ७०
राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह	अपना पराया	द्वितीय	, ६०

नाटककार	नाटक	सस्करण	तिथि
राजा राधिघकारमण प्रसाद सिह	धम की धुरी	प्रथम	सन् १९५३
राधेश्याम कवि रत्न	सती पावती	„	„ ३९
रामअवध शास्त्री	धरती की आस	„	„ ६९
रामकुमार भ्रमर	खून की आवाज	„	„ ६६
रामकुमार वर्मा	अशोक का शोक	,	६७
„	कला और कृपाण	ततीय	, ६२
,	जौहर की ज्योति	प्रथम	६७
„	नाना फडनवीस	अनुल्लेख प्रथम	६५ ६२
„	महाराणा प्रताप	,	„ ६७
„	विजय पव	अष्टम	, ६५
	सारग स्वर	प्रथम	„ ७०
रामकृष्ण शर्मा	युगान्तर	,	, ४८
रामगोपाल नर्मा दिनेश	लोक देवता जागा	„	, ६४
रामदत्त भारद्वाज	सोरा का सन्त	,	, ५०
रामदीन पाण्डेय	ज्योत्सना	,	„ ३९
रामनरेश त्रिपाठी	कन्या का तपोवन	„	, ५४
„	जयन्त	„	„ ३४
„	प्रेम लोक	,	, ३४
रामनारायण अग्रवाल	सूरदास	,	, ५९
रामप्रसाद विद्यार्थी 'रावी	प्रबुद्ध सिद्धाथ	,	, ५६
रामप्रिय मिश्र 'घुआं	औरत और अरस्तू	,	„ ६१
रामबालक शास्त्री	चाणक्य	अनुल्लेख	„ ५८
„	लोकमान्य	प्रथम	, ५७
,	शकराचाय	,	„ ५९
रामभरोस लाल गुप्त पकज शानी	नया भगवान		„ ६५
रामवक्ष बनीपुरी	अम्बपाली	अनुल्लेख प्रथम	„ ६२ ४७
„	सघागत	,	, ४८
	विजेता	द्वितीय प्रथम	५६ „ ५५
रामावतार चतन	धरती की महक		, ५९
रामाश्रय दीक्षित	एक भेंट		„ ६०

नाटककार	नाटक	संस्करण	तिथि
लक्ष्मीनारायण	वैशाली में वसन्त	द्वितीय	अनुल्लेख
		प्रथम	सन १९५५
,,	संन्यासी	तृतीय	,, ६१
		प्रथम	,, ३४
,,	सिन्दूर की होली	दसवाँ	,, ६३
		प्रथम	,, २९
डॉ लक्ष्मीनारायण लाल	अन्धा कुआँ	,,	,, ५५
,,	कलंकी		,, ६९
,,	तीन आँखों वाली मछली	,,	,, ६०
	दर्पन	द्वितीय	६६
,,	नाटक तोता मैना	प्रथम	,, ६२
,,	मादा कैक्टस	,,	,, ५९
,,	मिस्टर अभिमन्यु	,,	,, ७१
,,	रक्त कमल	तृतीय	,, ६६
,,	रातरानी	,,	,, ६६
,,	सुन्दर रस	द्वितीय	,, ६३
,,	सूखा सरोवर	प्रथम	,, ६०
,,	सूर्य मुख	,,	,, ६८
ललित सहगल	वर्तमान	,,	,, ६७
	हत्या एक आकार की	,,	६८
लालचन्द जैन	अमर सुभाष		,, ६५
विजयकुमार गुप्त	मुर्दा जी उठा	अनुल्लेख	अनुल्लेख
विजय शुक्ल	पतिता	प्रथम	सन् १९३८
विनोद रस्तोगी	आजादी के बाद	,,	,, ५३
,,	नये हाथ	द्वितीय	,, ६७
		प्रथम	,, ५८
,,	बर्फ का मीनार	,,	,, ६६
विमला रैना	तीन युग		५८
विराज	सम्राट विक्रमादित्य	द्वितीय	,, ६३
विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	कलियुगीन अभिमन्यु	प्रथम	,, ६१
,,	कवि की नियति	,,	,, ६६
,,	नेताजी सुभाषचन्द्र बोस		,, ५१
विश्वम्भर सहाय 'व्याकुल'	बुद्धदेव	द्वितीय	
		प्रथम	

नाटककार	नाटक	सस्करण	तिथि
विष्णु प्रभाकर	डाक्टर	पाँचवाँ	सन् १९६६
	नव प्रभात	ग्यारहवाँ	,, ६४
	युग युग क्रान्ति	प्रथम	, ६९
	समाधि	,	,, ६२
विष्णु दत्त कविरत्न	क्रांति का देवता चन्द्रशेखर आजाद		,, ६३
,	क्रांति का देवता–शिवाजी		६२
	क्रांति का देवता– सरदार भगत सिंह		६२
वी मुखर्जी गुञ्जन	दासिपजा		५१
वीर देव वीर	धाय		४५
	भूल		४३
	सघप		,, ६०
,	हलचल		६४
वीरेन्द्र नारायण	पाँच बड	प्रथम अभिनय दिनांक	२-३-१९५७
वीरेन्द्र कुमार गुप्त	सुभद्रा परिणय	प्रथम	सन् १९५२
वृन्दावनलाल वर्मा	केवट	पचम	, ६३
	खिलौने की खोज		, ६५
	झाँसी की रानी	० पचम प्रथम	,, ६० ४८
	दखा दखी	० ततीय प्रथम	५६
	धीरे धीरे	० चतुथ प्रथम	, ६२
	निस्तार	० चतुथ	६०
	नीलकण्ठ	० चतुथ प्रथम	, ६७ ,, ५१
	पूर्व की ओर	० ग्यारहवाँ	, ६६
	फूलो की बोली	० पचम प्रथम	,, ६५ ४७
	बाँस की फाँस	० पाँचवाँ प्रथम	, ६३ ४७
	बीरबल	० छठा प्रथम	,, ६५ ,, ५०

नाटककार	नाटक	संस्करण	तिथि
वृन्दावन लाल वर्मा			
,	मंगलसूत्र	चतुर्थ	१९६५
,		प्रथम	४७
,,	राखी की लाज	०तेरहवाँ	६८
,'		प्रथम	४६
,	ललित विक्रम	०तृतीय	, ५८
,	हंस मयूर	०सातवा	,, ६५
,,		प्रथम	, ४८
बकुण्ठनाथ दुग्गल	नारी	प्रथम	अनुल्लेख
'	समुद्रगुप्त		सन १९४९
,	हर्षवर्धन	,,	सन १९४९
व्यथित हृदय	पुण्य फल	,	" १९३७
शंभूदयाल सक्सेना	अंगारों की मौत	,	' १९६१
'	सगाई	,	,, ४५
,,	साधना पथ	चौथा	,, ६०
			(स्वातंत्र्य पूर्व)
		प्रथम	,, ५३
शंभूनाथसिंह	धरती और आकाश	पांचवाँ	,, ६८
शारदादेवी मिश्र	विवाह मण्डप	प्रथम	' ४१
शिवदत्त ज्ञानी	निमाड केशरी	,	,, ३७
			(तातिया भिल
डॉ शिवप्रसाद सिंह	घाटियाँ गूंजती हैं	०द्वितीय	,, ६५
		प्रथम	६३
नील	किसान	०संशोधित	, ६२
		प्रथम	५७
	तीन दिन तीन घर		,, ६१
,,	हवा का रुख		६२
श्यामकांत पाठक	बुंदेल केसरी	०द्वितीय	३८
श्याम बिहारी मिश्र		प्रथम	३४
श्यामकृष्ण वर्मा राजदां	राज्यवर्धन	प्रथम	, ५३
शुकदेव बिहारी मिश्र			
	ईशान वमन नाटक	,,	, ३७
	शिवाजी	०तृतीय	,, ४७
		प्रथम	,, ३७

नाटककार	नाटक	संस्करण	तिथि
श्यामलाल मधुप	क्रान्ति का नाहर	प्रथम	१९६४
			(नानकसाहब पेशवा)
,,	तलवार का धनी	प्रथम	,, ६९
			(तात्या टोपे)
,,	बिस्मिल की वहक	प्रथम	,, ६५
	बिहार का शेर	,,	६४
श्यामसुन्दरलाल दीक्षित	महाराजा भर्तृहरि	,,	,, ३५
श्यामसुन्दर सुमन	चाणक्य महान	,,	,, ६२
श्रीराम शर्मा	तुलसीदास	० द्वितीय	,, ५२
		प्रथम	
सत्यनारायणनोटियाल	चाय पार्टियां		,, ६३
सत्यनारायण सरस	झाँसी की रानी		५५
सत्य प्रकाश मिलिन्द	बदलती दिशायें		६३
सत्येन्द्र	जीवन पथ	अनुल्लेख	अनुल्लेख
	मुक्ति-पथ	प्रथम	सन् १९०७
सद्गुरु शरण अवस्थी	मझली महारानी	अनुल्लेख	अनुल्लेख
समर सरकार	जनगण अधिनायक	प्रथम	सन् १९६१
सरनामसिंह शर्मा अरुण	इमान की राह	,,	,, ६०
सर्वदानन्द	चतसिंह		,, ५७
,,	भूमिजा	,,	,, ६०
,,	सिराजुद्दौला	,,	,, ५८
साधुराम शास्त्री	सन्त कबीर	अनुल्लेख	अनुल्लेख
सिद्धनाथ सिंह	रामराज्य	प्रथम	,, ६७
सीताराम चतुर्वेदी	अजन्ता	,,	,, ४९
,,	अनारकली		,, ५२
,,	आनन्द विष्णुगुप्त	प्रथम	सन १९६५
,,	जय सोमनाथ	,,	,, ५६
,,	दन्तमुद्रा	,,	,, ६७
,,	पाटलाभिषेक	,,	,, ६८
,,	पाप का छाया	,,	,, ६०
,,	बेचारा केशव	० द्वितीय	,, ४६
		प्रथम	,, ३०
सीतारामचतुर्वेदी 'हृदय' } शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' }	महाकवि कालिदास	,,	,, ४४

नाटककार	नाटक	संस्करण	तिथि
सीताराम चतुर्वेदी	युग बदल रहा है	प्रथम	,, ६२
,,	विश्वास	द्वितीय	, ५२
,,	शबरी	प्रथम	,, ५३
,	सिद्धार्थ	अनुल्लेख	, ५६
,,	सेनापति पुष्यमित्र	प्रथम	,, ५१
सुदर्शन	भाग्यचक्र	बारहवाँ	, ६२
,,	सिकन्दर	सातवाँ	, ५७
		प्रथम	,, ४७
सुदर्शन बब्बर	गुस्ताखी माफ	अनुल्लेख	अनुल्लेख
,	सब चलता है	० द्वितीय	सन् १९६६
		प्रथम अभिनय दि	९ ११ १९५८
सुरेंद्रमोहन धुन्ना	स्वप्नपूर्ण	प्रथम	सन १९३४
सुवर्णसिंह वर्मा "आनन्द	वीर दुर्गादास	,,	, ३४
सूर्य नारायण अग्रवाल	माँ		, ६१
सैयद कासिम अली	ग्राम सुधार	,,	,, ३५
	देशभक्त नर्तकी	अनुल्लेख	अनुल्लेख
	निर्माण	प्रथम	सन १९६०
हरिकृष्ण	डेढ़ अरब	प्रथम	, ५७
हरिकृष्ण प्रेमी	अमर आन	,,	,, ६४
,	अमर बलिदान	,	,, ६८
	अमृत पुत्री	,	,, ७०
	आन का मान	० द्वितीय	, ६३
		प्रथम	,, ६२
	आहुति	० सत्रहवाँ	,, ६४
		प्रथम	४०
	उद्धार	० चतुर्थ	, ५६
		प्रथम	४९
	कीर्ति स्तम्भ	० अनुल्लेख	अनुल्लेख
		प्रथम	सन १९५५
	छाया	० चतुर्थ	,, ५८
	नई राह	,	,, ५०
		प्रथम	,, ६८
	प्रकाश स्तम्भ	० द्वितीय	, ६२
		प्रथम	,, ५४

नाटककार	नाटक	संस्करण	तिथि
हरिकृष्ण प्रेमी	प्रतिशोध	० तृतीय	,, ५६
		प्रथम	, ३७
	बन्धु मिलन	द्वितीय	, ६९
,	बन्धन	पांचवां	,, ५६
		प्रथम	४१
	भग्न प्राचीर	,	,, ५५
	भाई भाई		,, ६९
	ममता	० पांचवां	अनुल्लिख
		प्रथम	,
,	रक्तदान	० अनुल्लेख	,
,	रक्षा बन्धन	० बत्तीसवां	सन १९६५
		प्रथम	,, ३४
	विदा	० चौथा	, ६३
		प्रथम	,, ५८
,,	विषपान	० तृतीय	,, ४९
		प्रथम	,, ४५
	शक्तिसाधना		,, ६८
,,	शतरंज के खिलाड़ी	अनुल्लिख	५५
,	शपथ	० द्वितीय	,, ५४
		प्रथम	, ५९
,	शिवासाधना	० छठा	, ६१
		प्रथम	,, ३७
,,	शीशदान (तात्या टोपे)	अनुल्लेख	अनुल्लिख
,	संरक्षक	,	सन १९५५
,,	संवत प्रवर्तन	प्रथम	,, ५९
,	सांपों की सृष्टि	तृतीय	६६
,	सीमा संरक्षण	प्रथम	, ६७
,,	स्वप्न भंग	० छठा	५३
		प्रथम	४९
हरिश्चन्द्र खन्ना	अमर बेल	प्रथम	, ५३
हरिश्चन्द्र सेठ	पुरु और अलक्जेंडर	,,	,, ८६

परिशिष्ट–२

सहायक ग्रन्थों की सूची

(अ) मौलिक हिन्दी ग्रन्थ

लेखक	ग्रन्थ	संस्करण	ई० सन
१ डा० एस० पी० खत्री	नाटक की परख	द्वितीय	१९५१
२ डा० कमलिनी मेहता	नाटक और यथार्थवाद	प्रथम	६८
३ केसरीकुमार रघुवंशलाल	भारतेन्दु और उनके नाटक		४६
४ डा० गणेशदत्त गौड	आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	,	६५
५ डा० गिरिजासिंह	हिन्दी नाटकों की शिल्प विधि		७०
६ डा० गिरीश रस्तोगी	हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन	,,	६७
७ डॉ० गोपीनाथ तिवारी	भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य		५९
८ डॉ० चन्दूलाल दुबे	हिन्दी नाटकों का रूप विधान और वस्तु विकास	,	७०
९ जगन्नाथप्रसाद शर्मा	प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन	छठा	६४
१० जयनाथ नलिन	हिन्दी नाटककार	द्वितीय	६१
११ डा० दशरथ ओझा	हिन्दी नाटक उद्भव और विकास	तृतीय	६१
१२ डा० देवर्षि सनाढ्य शास्त्री	हिन्दी के पौराणिक नाटक	प्रथम	६०
१३ डा० धनञ्जय	हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों मे इतिहास तत्त्व		७०
१४ नन्ददुलारे वाजपेयी	आधुनिक साहित्य	द्वितीय	५६
१५ डा० नगेन्द्र	आधुनिक हिन्दी नाटक	नवीन	७०
१६ नेमिचन्द्र जैन	रंग दर्शन	प्रथम	६७
१७ परमेश्वरीलाल गुप्त	प्रसाद के नाटक	,,	५६
१८ डा० प्र० रा० भुपटकर	हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक तुलनात्मक विवेचन	,,	७०
१९ डा० बच्चनसिंह	हिन्दी नाटक	द्वितीय	६७
२० बलदेवप्रसाद	नाट्य प्रबन्ध अथवा नाटक का लक्षण और उसका इतिहास	प्रथम	०३
२१ डा० भानुदेव शुक्ल	भारतेन्दुयुगीन नाटक	,,	६२